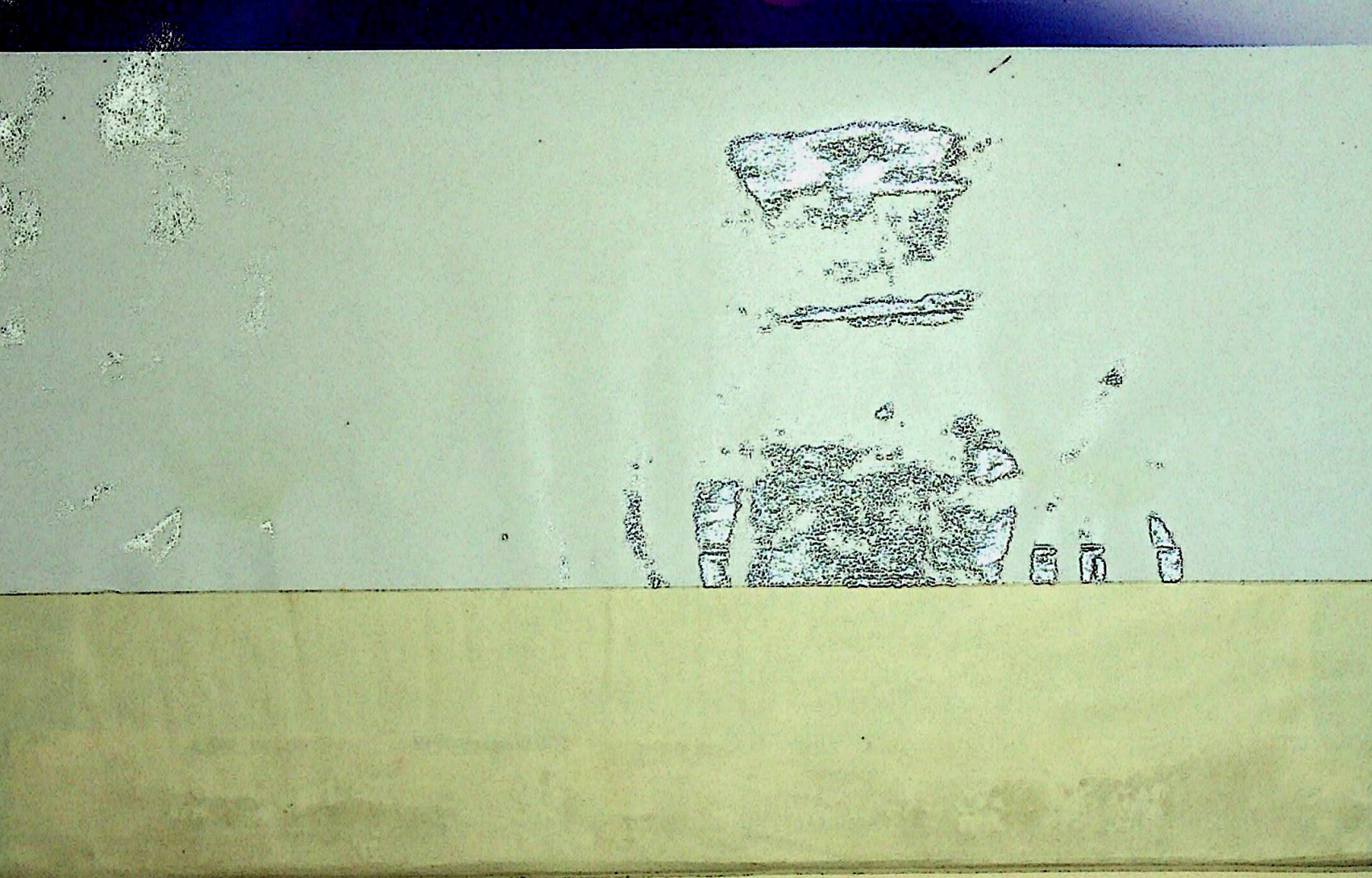
वैदिक ज्योतिष



गिरिजाशङ्कर शास्त्री



B-3

वैदिक ज्योतिष

(वेदाङ्गज्योतिषत्रय सोमाकर-सुधाकरभाष्य
हिन्दीरूपान्तर मञ्जुमती व्याख्या संवलिता)

लेखक

(डॉ. गिरिजा शङ्कर शास्त्री)

एम.ए. संस्कृत, ज्योतिषाचार्य, डी. फिल.

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

ईश्वर शरण डिग्री कालेज,

इलाहाबाद

प्रकाशक

ज्योतिष कर्मकाण्ड एवं अध्यात्म शोध संस्थान

४५५ वासुकी खुर्द, दारागंज

प्रयाग - ६

वैदिक ज्योतिष

(डॉ. गिरिजा शङ्कर शास्त्री)

प्रकाशक

ज्योतिष कर्मकाण्ड एवं अध्यात्म शोध संस्थान
४५५ वासुकी खुर्द, दारागंज
प्रयाग - ६

सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन

संस्करण : संवत् २०६०

मूल्य : दो सौ पचास रुपया

लेजर टाइप एवं मुद्रक :
एकेडमी प्रेस,
दारागंज, प्रयाग
दूरभाष : २५००९७०



।। समर्पण ।।

परम श्रद्धेय विद्वद्वर्य

पूज्यपाद गुरुदेव

प्रो. सुरेश चन्द्र पाण्डेय

एवं

गुरुमाता स्व. श्रीमती आशा पाण्डेय जी

के चरणों में सादर समर्पित।

– गिरिजा शङ्कर शास्त्री

एक दृष्टि में

१. वेदाङ्ग ज्योतिष के अन्तर्गत याजुष, आर्च एवं आथर्व की सप्रमाण प्रथमवार हिन्दी अनुवाद एवं मञ्जुमती व्याख्या ।

२. वैदिक साहित्य में प्रयुक्त सूक्ष्मतम कालमानों से स्थूल कालमान तक का सप्रमाण विवेचन।

३. वैदिक काल में सूर्यादि नवग्रहों के स्वरूपों का विस्तृत विवेचन।

४. वैदिक नक्षत्र उनके स्वामी तथा वैदिक उप नक्षत्रों का सयुक्तिक वर्णन।

५. वैदिक साहित्य में मीन मेषादि राशियों का वर्णन जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

६. वैदिक साहित्य में प्रथमवार सप्रमाण फलित ज्योतिष के सटीक नियमों का वर्णन।

७. सन्तति विज्ञान के अन्तर्गत गर्भस्थ सन्तान का लिंग ज्ञान, सन्तान योग तथा शान्ति कर्म से सन्तान प्राप्ति के उपाय।

८. रोगों का ज्ञान, भयंकर असाध्य कैंसर तथा एड्स आदि रोगों का अकाट्य वैदिक उपचार।

९. कर्मज व्याधियों का कारण तथा निवारण हेतु अनेक वैदिक मन्त्रों का विनियोग सहित वर्णन।

१०. पारिवारिक शाप, व्यापार में अवरोध तथा सुख, समृद्धि सौभाग्य हेतु मन्त्रों का अनुभूत प्रयोग।

११. वैदिक साहित्य के बिखरे मोतियों का एकत्र ग्रथन।

१२. मंगली दोष, वैधव्य दोष, विषकन्यादि दोष तथा मूलादि नक्षत्रों के दोषों का सरल वैदिक रीति से शान्ति विधान।

१३. शीघ्र पति अथवा पत्नी प्राप्ति का अचूक विधान, अकाल मृत्यु टालने का विधान तथा शिव संकल्प आदि का सम्यक् विधान।

१४. वास्तु प्रकरण द्वारा शल्य शोधन गृह जातक, काकिणी, भूमि शोधन तथा गृह आयु का सप्रमाण वैदिक विवेचन।

१५. देवताओं तथा सनातन धर्म पर अश्लील आक्षेपों का वैदिक ज्योतिषीय समाधान।

१६. सब कुछ अनुभव की कसौटी पर खरा।

अनन्तश्रीविभूषित श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य
शारदाद्वारका एवं ज्योतिष्पीठाधीश्वर
श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज

ज्योतिर्मठ (बदरिकाश्रम) हिमालय

सञ्चार यात्रा स्थान . वाराणसी



पत्रांक 1003/03

दिनांक 19/7/03

शुभाशंसनम्

वेदो हि भारतीय वाङ्मयस्य मूर्धन्यतमो अपौरुषेयो ग्रन्थः। अस्याध्ययनं द्विजन्मनां कृते प्रथमकर्तव्यतया सोद्घोषं प्रतिपादयन्ति श्रुतिस्मृत्यादयः। यथोक्तम् – 'विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम। शेवधिष्टे हमस्मि रक्षमाम्। माण्डूक्योपनिषदि स्पष्टतयोच्यते – "द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति, परा चैवापरा च। तत्रापरो वेदाः वेदाङ्गानि, अथ परायदा तदक्षरमधिगम्यते।

वेदस्याप्यध्ययनं साङ्गतयैवेति विहितं सर्वत्राचारशास्त्रे। ब्रूते पतञ्जलिः – "ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्म षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।" उक्तेष्वङ्गेषु प्रधानं ज्यौतिषं वेदपुरुषस्य चक्षुभूतत्त्वात्। अत्राभियुक्तोक्तिः प्रसिद्धा यत्

यद्वच्छिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्ध्नि तिष्ठति।।

षट्सु वेदाङ्गेषु ज्यौतिषस्य मुख्यतमं स्थानम्। "ज्यौतिषं नेत्रमुच्यते"

इत्यभियुक्तोक्तिरद्यापि प्रसिद्धा सकलजनानुमोदिता च। ब्राह्मणेन्द्राणां सम्मता यज्ञकालार्थसिद्धिः वेदाङ्गत्वेनास्य साक्षात् प्रयोजनम्। यतोहि-वेदा यज्ञार्थमेवेति। तथा च सिद्धान्तशिरोमणौभास्करः वेदानां यागप्रयोजनवत्ता, यागविधीनां कालाश्रयत्त्वं, कालबोधश्च ज्योतिषादिति सम्यक् प्रपञ्चितमस्ति। तद्यथा –

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ताः यज्ञाः प्रोक्तास्तेतु कालाश्रयेण ।
शास्त्रादस्मात्कालबोधोयतःस्या वेदाङ्गत्वंज्यौतिषस्योक्तमस्मात्।

अनयारीत्या ज्यौतिषस्य वेदाङ्गत्वं, तस्य महन्महत्त्वमपि वरीवर्ति। एतादृश्वेदाङ्गज्योतिषं "वैदिक ज्योतिष" इति महद् ग्रन्थे ग्रथितमस्मच्छिष्यवरेण श्रीमता. डॉ. गिरिजाशङ्कर शास्त्रिणा। ग्रन्थेऽस्मिन् न केवलं वैदिक साहित्ये कालमानादारभ्य अष्टाध्यायेषु ज्यौतिषस्य सर्वाङ्गविवेचनाकृता अपितु वेदाङ्ग ज्योतिषस्य "याजुष-आर्च-आथर्व" इति त्रयाणां स्कन्धानां सोमाकर-सुधाकर भाष्ययोः हिन्दी व्याख्याऽपि सर्वजनोपकाराय विहिता वर्तते।

एतादृशस्य ग्रन्थरत्नस्य साफल्याय भगवन्तं चन्द्रमौलीश्वरं शिवं पराम्बां राजराजेश्वरीं च प्रार्थये।

स्वरूपानन्द सरस्वती

(स्वरूपानन्द सरस्वती)

अध्यात्म विद्या निकेतन
परमहंसी गंगा क्षेत्र, श्रीवनम्
पोस्ट - झोंतेश्वर,
जिला-नरसिंहपुर-४८७११८
(म.प्र.)
☎ ०७७९४-८५२०१-८५२०९

शंकराचार्य आश्रम
त्रोटकाचार्य गुफा
स्थान व पोट - जोशीमठ
जिला-चमोली, गढ़वाल
(म.प्र.)
☎ ०१३८९-२२१८५

शंकराचार्य मठ
टैक्सी स्टेण्ड के पास
बद्रीनाथ धाम, हिमालय
जिला - सिंहभूमि
(बिहार)
☎ ०१३८-२२२५

विश्व कल्याण आश्रम
काली कोकिला संगम क्षेत्र
पोस्ट - राज आनन्दपुर
पिन कोड - ८३३९०४

NĀNDIVĀK



It would be really unjust to think that the divine language Sanskrit is deprived of technical sciences and it illumines the grandeur of poetry only. Actually, right from the hymns of Ṛgveda to the 11th century A.D., Sanskrit has produced hundreds and thousands authentic works, related with various disciplines, other than **Belles-lettres.** Just like the original streams of philosophical systems, drama and rhetoric etc we can very easily trace the origin of all technical sciences in the Ṛgveda alone. In the context of Indra's battles with Vṛtra, Namuchi Shambar, Bala, Rauhina and Bṛngada etc, the war-strategy has been highlighted along with the names of various weapons like Vajra and Dhanuṣ etc. Indra uses सरमा as his spy in order to know the whereabouts of Panis who had stolen the cows. Thereafter he spoilt 99 iron-forts of his enemies. Moreover, he helps Sudāsa in the fierce battle, namely Dāsarajna.1 शतमश्मन्मयीनां पुरमिन्द्रो व्यास्यत् दिवोदासाय दाशुषे। ऋग्वेद ४.३०.२० प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वो दस्यून् पुर आयसीर्नि तारीत्। ऋग्वेद २.२०.८

The medicinal value of Atharvaveda also cannot be denied. Our great Ṛsis and Maharṣis, dwelling in dense forests, knew the medicinal quality of each and every herb. Eventually, they became successful in developing the discipline known as आयुर्वेद which even today proves to be the best **Pathy** of curing any disease.

The Satapatha Brahmana explains the constituents of clouds and elaborates the symptoms of the rain-clouds. When the great poet Kalidasa describes the cloud saying : धूमज्योति : सलिलमरुतां सन्निपात: क्व मेघ: he seems to borrow this concept from 'Satapatha' which holds:

Further, we can gather some other information from these hymns which prove the antiquity of our technical sciences. Ṛgveda

delineates the boat of Bhujyu which could be waded about in the deep water through one hundred **helms** 'शतारित्रां नावम् (ऋग्वेद २.२१६.५) The Aryas of the Ṛgvedic era were frequent-users of planes. The king Tugru sends his son Bhujyu through a cosmic vessel which was controlled by the अश्विनौ. In Ṛgveda (1.34.2) a chariot of Ashvins has been narrated which had three wheels and three pillars. It was a horse-less ehariot and could float in air very easily.

Swami Brahmamuni, who edited the यंत्रसर्वस्व of महर्षि भरद्वाज has clearly stated in his preface to the वैमानिकप्रकरण that the work of Bharadwaja is based upon the sole testimony of the Vaidic Mantras. It is evident from the apt illustrations, quoted from the Vedic texts. Satyavrata Samashrami also holds the view that almost all the technical sciences are described in Vedas indirectly as well as quite minutely. The American writer Wheeler Villaxe has written in her book Sublimity of the Vedas that Vedic Ṛsis were absolutely adept in Aeronautics, navigation, electrolysis, Radiology and so on, so forth.

It is a well known historical fact that the Talapade brothers of India could achieve success in preparing their aeroplane in 1895 in complete 8 years prior to Right-brothers. But due to our political slavery the credit could not be given to Talapade-brothers and it is accepted quite ignorantly that the aeroplane could be originated only in 1903 by the Right-brothers. Shivaji Bapuji Talapade achieved this knowledge from the great scholar maharṣi Subbarai Shastri. He lived in the Chirabazar area near Dukkarwadi and later on was shifted to Mulad with his son विनायक who breathed his last in the Sixth decade of the 20th century. The wife of S.B. Talapade was also a great vedic scholar. With the help of his wife and younger brother, Talapade prepared his plane which could fly in the sky of the chowpatty area of Bombay, continuously for five minutes on the height of 1500 feet. B. Jaikar, N. Ranadey, Sayaji Rao Gaikwad, the Maharaja of Baroda and halji Narayanaji and thousands were the eye-witness on this historical moment.

The authorities of the Hindustan Aeronautics Ltd. have still preserved the original frame and other fabrics of the plane fortheir historical record. In Vedas and Puraṇas, eight varieties of the aeroplanes have been discussed of which the 6th is called पुष्पक and the 8th one मरुत्सखा. The plane, prepared by Talapade was based upon the synthesis of Puṣpaka and Marutsakha from the technical point of view. (Times of India, 6.9.95 issue.)

The Vedic evidences of aeronautics are seen more effectively practised in the Puranic era. The reference of the Puṣpaka in the Valmiki Ramayaṇa is well known. It was an automatic plane and could move freely as per traveller's with (कामग) That technology is still undeveloped in the history of aeronautics. In Shrimadbhāgawatam also we have two references : The Saubha Vimāna of Sālva and the Vimana of Maharṣi Kardama. The Saubha of Salvarāju was a cruiser type of plane. It could create dense clouds around itself in order to conceal its identity. The plane of Maharṣi Kardama was fully furnished with seasonal views. The pigeons, erected on the windows of the plane were so alive and concrete that the wild pigeons could join them fearlessly. It was also a pilotless plane and could move automatically. (Shrimadbhāgavatam, Skandha 5th and 10th.)

Now, to prove the superb development of Science and technology in ancient India, I would like to assess them one by one. Astrology, astronomy and mathematics are considered to be interlinked. The Indian astronomy undoubtedly touches the horizon of Vedic hymns when the Ṛṣi utters in a Mantra :

येनोदितेन दिनम् अस्तमितेन रात्रिः

The rising sun brings the day and disappears leaving behind the night. The Vedic Ṛṣis thought that the sun plunges into the water of ocean and the other day rises up from the top of the mountain. The Tattiriya Brāhmaṇa says :

य उद्गात् महतोऽर्णवात्
विभ्राजमानः सलिलस्य मध्यात्।। तै०ब्रा० २.१.

The receding and increasing **Kalas** of the Moon in the two fortnights of a month respectively, have been examined by our Ṛṣis in their own way. It occurs in the Ṛgveda 10.85.19.

नवो नवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम्।
भागं देवेभ्यो विदधाति आयन् प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः।।

This mantra seems to be quite allegorical in nature but the later commentators have unfolded the mystery. lying in it. Likewise, several other mantras delineate some significant scientific truth. For example :

अन्तरिक्षं नाम पक्षिमार्गः (ऋग्वेद १.२५.७)

सूर्यः द्युलोके सर्वोच्चः (ऋग्वेद १.५६.११)

चन्द्रः नक्षत्रमण्डले सञ्चरति (तै०सं० ७.५.२३.१)

पृथ्वी लघुतमा विश्वमपारम् (ऋग्वेद १.५२.११)

ऋतून् प्रशासद् विदधौ सूर्यः (ऋग्वेद १.९५.३)

Shri S.B. Velankar, in his article published in the Girvaṇa Sudhā has given an exhaustive account of the Vedic astronomy प्राचीनभारते खगोलशास्त्रज्ञानम् - एस.बी वेलङ्करः। गीर्वाणसुधा-अक्टूबर / नवम्बर १९९५ ई० अङ्कः। The geometry of Vedic Shulvasutras, along with decimal base numerals, squaring a circle and algebra etc prove the antiquity of Indian astronomy and mathematics. Lagadha's vedanga jyautiṣa stands between vedic and Traditional astronomy. Although, the astronomers of the later period have oftenly quoted the authority of Brahmā, Sūrya, Vasiṣṭha, Manu, Soma, Lomasha, Marichi, Angiras, Vyāsa, Nārada, Shaunaka, Bhṛigu, Chyavana, Garga, Kāshyapa and Parāshara etc. But only a few Samhitas are available now like Nārada Samhitā, Parāshara Samhita and Kāshyapa Samhita. Neverthe less, we can imagine the prosperity and splendour of our technical science even before Christian era.

Then, we find a galaxy of great astronomers and mathe

maticians. Aryabhat I, the writer of आर्यभटीयम् (476A.D.) Vārāhamihira, the writer of बृहज्जातक (6th C.A.D.) Bhāskarāchārya I, the writer of महाभास्करीयम् (end of the 6th C.A.D.) Brahmagupta, the writer of ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त and खण्डहवाद्य (628 A.D.) भास्कराचार्य II, the writer of Lilāvati and Siddhāntashriomani (12th C.A.D.) Ganesh Daivajna, the writer of ग्रहलाघव etc enriched Indian astronomy. Their original contributions cannot be highlighted here. throughly in this papers but some salient features are to be quoted.

1. The theory of gravitation has been dealt with by Bhaskaracharya II in the Golādhyāya of his Siddhānta Shiromani: आकृष्टशक्तिश्च मही। गोला० ३.६

Newton, the so called inventor of this theory was born in the 16th century A.D. It is to be noted.

2. Aryabhata I depicted in his Aryabhatiyam that the earth revolves around the sun, which is absolutely constant. But the same truth sould be known and declared by Galilio in the 17th century A.D.

3. It was Brahmagupta (7th C.A.D.) who introduced यन्त्राध्याय in his ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त comprising 24 chapters. In his observatory, Brahmagupta installed various yantras (technical devices) for the astronomical observations of planets, stars and the solar as well as lunar eclipses.

Bhaskaracharya, following the tradition of Brahmagupta explained the techniques of ताम्रघटीयंत्र, शंकुयंत्र, यष्टियंत्र, चक्रयंत्र and चक्रार्धयन्त्र. Above all the established the धीयंत्र iė the human mind itself. Bhaskaracharya wrote a full fledged text on these technical devices, namely सर्वतोभद्र which was followed by the Yantrarāja of Mahendra Suri, Dhruvabhramayantra of पद्मनाभ, Yantra chintamani of Chakradhara, Pratodayantra of Ganesh Daivajña, and Golānanda of Chintamani Dikshita. But all these yantras were confined to the text only and therefore the ruler of Amer, Maharājā Jai Singh got built a new observatory at Jaipur in 1730, wherein

the samrāt, Nadivalaya, Digansh, Bhitti and Shanku yantras are still preserved.

Regarding the process of eclipse an exhaustive account is available in the 8th chapter of Bhāskarāchārya's Siddhānta shiromani. The solar and lunar eclipses are never due to Rāhu and Ketu, as described in the Puranic texts. Actually it happens so when the moon comes in between the sun and the earth. It is called solar eclipse. According to Bhāskarāchārya:

पश्चाद्भागाद् जलदवदधः संस्थितोऽम्भेत्य चन्द्रो
भानोर्बिम्बं स्फुटदसितयाऽच्छादयत्यात्ममूर्त्या।
पश्चात्स्पर्शो हरिदिशि ततो मुक्तिरस्यात् एव
क्वापि च्छन्न क्वचिदपिहितो नैष कक्षान्तरत्वात्।।

– गोला : ८.१.

However, the ancient Indian astronomy and mathematics have hundreds and thousands subjects to explain and they have been elaborated as well. Right from the 5th to 18th century A.D. the Indian astronomy championed in the field of astronomical observations and inventions but due to our political subordination and lack of self-respect, the crown of supremacy is on the head of the western scientists.

Astronomy and mathematics are the two branches of the same tree. The Mathematics of today was known as Rāshividyā, Dhūlikarma, and Parilehka etc in old days. Bhāskarāchārya II, for the first time, divided mathematics in three parts- Gonita, Bijaganita and Pātiganita in his siddhānta. Shiromani. The **Ganitasūtras** were formulated by Aryabhat I in the 5th century A.D. for several reasons the Ankavidya or Ankaganita was considered to be the backbone of astrology :

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वत् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि संस्थितम्।।

, Varāhamihira also divided astrology in three branches सिद्धान्त, होरा and संहिता. The measurement of time, the movement of planets

and eclipses etc come under the perview of Siddhānta. The Horāskandha deals with Jaitaka ie the birth of a child along with his life circle and the auspicious-inauspicious effects of various Grahas (planets) on his life etc. The Samhita Skandha has another name also, that is Muhurts Skandha. In this part the Acharya describes various Yogas and Muhurtas (auspicious occasions) and their good and bad results. In Nārada Samhita, these three Skandhas have been given much significance as they are just like the vision of the Veda.

सिद्धान्तसंहिता होरारूपस्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षुः ज्योतिश्शास्त्रमनुत्तमम्।।

Varāhamihira, repeats the above, in other words :

गणितं जातकं शाखां यो वेत्ति द्विजपुङ्गवः।
त्रिस्कन्धज्ञो विनिर्दिष्टः संहितापारगश्च सः।।

Bhāskarāchārya elaborates two separate phases of Mathematics - Vyakta and Avyakta.

द्विविधगणितमुक्तं व्यक्तमव्यक्तयुक्तं
तदवगमननिष्ठः शब्दशास्त्रे पटिष्ठः।
भवति यदि तदेदं ज्यौतिषं भूरिभेदं
प्रपठितुमधिकारी सो ऽन्यथा नामधारी।।

If any astrologer is not adapt in mathematics, how can he explain the science of influence of stars on human affairs? specially the Gaṇita Jyottiṣa is totally based upon the mathematical calculations only. Such pseudo-astrologers are really नामधारी only and they are destined to be descarded.

As I have stated earlier, Aryabhat I formulated several **Gaṇitasūtras** like the system of finding the Vargamūla ( )

भागं हरदेवर्गान्नित्यं द्विगुणेन वर्गमूलेन।
वर्गाद् वर्गे शुद्धे लब्धे स्थानान्तरे मूलम्।।

This is one example. Many other examples can be had in connection with triangles, quadrilaterals, squares, rectangles,

parallelograms, rhombus (quadrilateral figure with equal sides but unequal angles, असम कोण चतुर्भुज) Diagonals (straight line joining opposite angles of rectilineal figure कर्ण-विकर्ण) area and altitude etc. addition, substraction, multiplication, division, big numbers, negative numbers, zero and decimal notations have been dealt with in ancient Indian Arithmetics at full length. Hypotenuse (side opposite to right angle of triangle : कर्ण) and its converse (opposite) theorem, at present, which are named after Pythagorous, have been propounded by Bothayana, much earlier. In the field of algebraic equations the contributions of Achārya Brahmagupta, Bhāskara, Pṛthudakaswami, Mādhava and Nārāyana can never be fórgotten. They have proved to be the milestones in Indian algebra.

However, the roots of Indian mathematics have to be traced back to the Vedas just like the astronomy. The Sulva Sūtra, which provides various formulas for constructing यज्ञ भूमिका's ie sacrificial altars is the oldest mathematical text ever known to the world. Baudhāyana and Apastamba **statras** give very good rational approximation for the irrational number $\sqrt{2}$ in the form : $1 + 1/3 + 1/3.4 - 1/1.3.4.34$ which is correct to 5 decimal places. 1

How, the Indian mathematics is proved to be the pre-eminent and pre-dominant in nature and how it acquires the precedence also is evident from the following statement which I borrow from the script of Dr. Kota Venkatachalam Rao. Putting forth the mathematical rediscoveries in Europe he writes :

1. Gregory (1671) rediscovers Madhava's (14th century) series for ten = 1 (0)
2. Euler (1732) solves a problem of Fermat (1657) which was solved much earlier by Bhāskara (1150 A.D.) what is now a days known as Pell's equation.
3. Thwiller (1782) rediscovers the formula of Papameswara (1430) for the circumradious(अर्धव्यास)

of a cyclic quadrilateral.

4. Snell (1690) rediscovers Brahmagupta's theorem (7th century) on diagonals of a cyclic quadrilateral.
5. Herigone (1634) rediscovers Mahāvira's (9th century) formula for nC.

After this brief account of the Indian Astrology and Mathematics I want to introduce a glittering star of the new generation of this science who has contributed excessively to popularise the Astralogy among the common readers. My brilliant student Dr. Girija Shankar Shastri, apart from his Sanskrit teaching, has chosen this primitive science of India for his devoted and dedicated study. He has written several books in Hindi to make this science easy and has achieved much success also in doing so. He has endeared himself through his reliable Astrological prophesies and likewise calculations. Actually he has studied and practised this science for self-satisfaction ie स्वान्तः सुखाय and not for earning money. He aims at the easy understanding of the Indian Astrology and keeps himself busy in its deep perusal.

The present volume, namely the Yājuṣa Jyautiṣam opens the new horizons of Astrology. Dr. Shastri has prepared the critical edition of this old text with a couple of commentaries, namely Somākara and Sudhākara. Further, he edits the Archa Jyautiṣa along with the Sudhākara bhāṣya. Lastly we find the Atharva Jyautiṣa with Hindi rendering done by Dr. G.S. Shastri.

The Second part of the book, namely the Vedic Jyoutiṣa seems to be an independent work of Dr. Girija Shankar Shastri. Actually, this volume incorporates each and every constituent part of the Indian Astralogy. Basically this volume, written in Hindi is meant for the preliminary, but at the same time, the exhaustive knowledge of Astrology. The talented writer has sincerely worked hard and has elaborated the enigmatic points of this science. One can digest the theme of the book very easily because of the straight path, paved by the writer.

I personly feel proud of Dr. Shastri, being his teacher at a time in the University of Allahabad. He is distributing the fragrance of his academic diligence, highlighting the honour of his teachers also. I am sure, that Indian Astralogy will be benefitted amply, through the many more publications of this young scholar.

With these words of praise and goodwishes I dedicate this grand work to the devotees of the Indian Astralogy.

– Abhiraja Rajendra Mishra

VC's Residence, Varanasi
16.7.2003

–Abhiraja Rajendra Mishra
Vice Chancellor

निवेदनम्

वेदेषु प्रथमो द्वितीयसहितो यो गण्यते चान्तिमः
तानालम्ब्य मखेषु कालविषये यन्निर्मितं ज्यौतिषम्।
आर्चं याजुष नामकं च विदितं भूयोप्यथाथार्णवम्।
तेषां मेऽस्ति विशेष भाव भरितं व्याख्यातु मे वोद्यमः।।

वेदिक साहित्य भारतीयों की अमूल्य निधि है। यह जितना व्यापक है उतना व्यावहारिक भी। प्रयोगात्मक दृष्टि से वैज्ञानिकों तथा विद्वानों की गवेषणात्मक उत्कण्ठा की परितृप्ति के लिये इसमें अक्षुण्ण वस्तु भण्डार उपलब्ध है। मानव मात्र के कल्याण की इसमें अपरिमित शक्ति है। आज का युग विज्ञान का युग है अतः प्रत्येक सिद्धान्तों का वैज्ञानिक ढंग से प्रयोग करने पर ही उसकी यथार्थता सिद्ध होती है। वेद के सिद्धान्त को जानना प्रत्येक भारतीय का प्रधान कर्त्तव्य है। वेद भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत हैं। आचार्य सायण के अनुसार वेद का वेदत्व इसी से है कि जो प्रत्यक्ष प्रमाण अथवा अनुमानादि प्रमाणों द्वारा बोध्य नहीं होता उसे वेद स्पष्ट रूप से बतला देता है।

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्मात् वेंदस्य वेदता।।

वैदिक साहित्य के विषय में पाश्चात्य एवं पौर्वात्य दो प्रकार के दृष्टिकोण सामने आते हैं जिसमें पाश्चात्यों के मत से वेद मानवीय चेतना की प्रारम्भिक अटपटी उक्तियां हैं, किन्तु भारतीय दृष्टि वैदिक साहित्य को ऋषियों की ऋतम्भरा प्रज्ञा से निःसृत दिव्यज्ञान मानती है। वैदिक साहित्य का सर्वमान्य भाष्य स्वनामधन्य परम श्रद्धेय आचार्य सायण तथा माधवाचार्य का है। ये सायण और माधव दोनों सगे भाई थे तथा दोनों विजयानगरम् के शासक बुद्ध महाराज के प्रधान अमात्य थे। इनके तीसरे भाई का नाम भोगनाथ था जो दोनों भाइयों के भाष्य लिखने में सहायक बने थे। सायणाचार्य के सन्दर्भ में कुछ जान लेना आवश्यक है। सायण के पिता का नाम मायण या अनन्त था तथा माता का नाम मायाम्बिका या मेगाम्बिका था। इनके माता-पिता के विषय में अधिक पता नहीं चलता। ये विजया नगर में १४वीं शताब्दी ई. में उत्पन्न हुए थे। विजय नगर तुंगभ्रदा नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है। यह नगर कर्नाटक एवं आन्ध्र प्रदेश के सीमा प्रान्त में पड़ता है। अतः यह कहना कठिन है कि ये कर्णाटक अथवा आन्ध्र प्रदेश में कहाँ के थे किन्तु इनका मूल नाम कर्नाटक शैली में सायण्णा था जिसे कालान्तर में सायण कहा गया होगा। इससे प्रतीत होता है कि ये

कर्नाटक प्रान्त के थे किन्तु एक स्थल पर स्वयं सायण ने लिखा है 'अस्माकमान्ध्राणाम्' अतः यह भी सम्भव है कि ये आन्ध्र प्रदेश के रहे होंगे। इनके बड़े भाई माधव थे तथा छोटे का नाम भोगनाथ था। सायण का गोत्र भरद्वाज था तथा ये कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा के ब्राह्मण थे। सूत्र बौधायन था। यह वर्णन इनके ग्रन्थों में प्राप्त होता है। सायणाचार्य के जीवन का सर्वोत्तम कार्य है वेदों का भाष्य। यद्यपि वेद भाष्यों के अतिरिक्त इनके अनेक ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं तथापि उन ग्रन्थों को उतना महत्त्व प्राप्त नहीं है जितना वेद भाष्यों को। इनके रचित अन्य ग्रन्थ हैं– (१) सुभाषित सुधानिधि (२) प्रायश्चित्त सुधानिधि (३) आयुर्वेद सुधानिधि (४) अलंकार सुधानिधि (५) धातुवृत्ति (६) पुरुषार्थ सुधानिधि (७) यज्ञतन्त्र सुधानिधि।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त जिन वैदिक ग्रन्थों पर आचार्य ने अपना भाष्य लिखा है वे निम्नलिखित हैं–

(१) तैत्तिरीय संहिता (कृष्ण यजुर्वेद की)

(२) ऋग्वेद संहिता

(३) सामवेद संहिता

(४) काण्व संहिता (शुक्ल यजुर्वेद की)

(५) आथर्ववेद संहिता

(६) तैत्तिरीय ब्राह्मण

(७) तैत्तिरीय आरण्यक

(८) ऐतरेय ब्राह्मण

(९) ऐतरेय आरण्यक

(१०) ताण्डय (पञ्चविंश) महाब्राह्मण

(११) षड्विंश ब्राह्मण

(१२) सामविधान ब्राह्मण

(१३) आर्षेय ब्राह्मण

(१४) देवताध्याय ब्राह्मण

(१५) उपनिषद् ब्राह्मण

(१६) संहितोपनिषद् ब्राह्मण

(१७) वंश ब्राह्मण

(१८) शतपथ ब्राह्मण

इस प्रकार सायणाचार्य ने ५ संहिता और १३ ब्राह्मण तथा आरण्यकों पर भाष्य लिखा है। यह कार्य इतना महत्त्वपूर्ण हुआ है कि इनकी समता न तो किसी प्राचीन आचार्य से की जा सकती है और न किसी परवर्ती आचार्य से क्योंकि किसी भी आचार्य ने इतने वैदिक ग्रन्थों पर इतना प्रामाणिक भाष्य नहीं लिखा है। ये भाष्य आचार्य सायण को अमरत्व प्रदान कर रहे हैं।

वेद के ६ अङ्गों में ज्योतिष को नेत्र कहा गया है। इसी नेत्ररूपी ज्योतिष के माध्यम से तिथि, नक्षत्र, पक्ष, मास, ऋतु, संवत्सर, अयन, युग आदि काल के समस्त खण्डों के साथ यज्ञ याज्ञ का विधान वेदों में वर्णित है। इन नियमों के यथार्थ निर्वाह के लिये ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान नितान्त आवश्यक तथा उपादेय है। इसीलिये आर्च ज्योतिष का कथन है कि जो व्यक्ति ज्योतिष को सम्यक् रूप से जानता है वही यज्ञ का अधिकारी है।

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालाभिपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्।।

यज्ञ की सफलता केवल कर्मकाण्ड के विधान से ही नहीं अपितु उचित तिथि, नक्षत्र, योग, करण आदि में करने से होती है। वेदाङ्ग ज्योतिष के अनुसार ज्योतिष समस्त वेदाङ्गों में शिरःस्थानीय है। जिस प्रकार मयूर की शिखा उसके सिर पर रहती है। सर्पों के शिर में ही मणियां होती हैं उसी प्रकार षडङ्गों में ज्योतिष शिर स्थान में ही प्रतिष्ठित है।

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धसंस्थितम्।।

वेदाङ्ग ज्योतिष के प्रतिनिधि ग्रन्थ तीन वेदों से सम्बन्ध रखने वाले आज उपलब्ध हैं। ऋग्वेद से आर्च ज्योतिष, यजुर्वेद से याजुष ज्योतिष तथा आथर्ववेद से आथर्व ज्योतिष। सामवेद का कोई भी ज्योतिष आज उपलब्ध नहीं है रहा अवश्य होगा किन्तु काल प्रवाह में कहीं लुप्त हो गया होगा। आर्च ज्योतिष में कुल ३६ तथा याजुष ज्योतिष में ४३ तथा आथर्व ज्योतिष में १६२ मन्त्र हैं। आर्च एवं याजुष ग्रन्थों में कुछ मन्त्र समान ही हैं ठीक उसी प्रकार से जैसे चारों वेदों में अनेक मन्त्र समान हैं। ये तीनों वेदाङ्ग ज्योतिष वेदकालीन प्राचीन ज्योतिष शास्त्र का वर्णन करते हैं। उस काल की बातें इतनी अज्ञात थीं कि वेदाङ्ग ज्योतिष के मन्त्रों का रहस्य खोलना आज तक विद्वानों के लिये गूढ

रहस्य बना रहा। अनेक वर्षों में पौर्वात्य एवं पाश्चात्य विद्वान् इन मन्त्रों के रहस्यों को जानने का प्रयत्न करते रहे हैं। तथापि वेदाङ्ग ज्योतिष के कतिपय मन्त्रों का रहस्योद्घाटन अभी भी ठीक–ठीक नहीं हो सका। शंकर बाल कृष्ण दीक्षित ने अपने भारतीय ज्योतिष में कुछ मन्त्रों का ठीक अर्थ किया है, किन्तु अनेक मन्त्रों को दुर्बोध कहकर छोड़ दिया। पाश्चात्य विद्वान् डॉ. थीबो ने एशियाटिक सोसाइटी बंगाल की पत्रिका में १८७७ ई. तथा लोकमान्य तिलक ने अपनी वेदाङ्ग ज्योतिष नामक अंग्रेजी पुस्तक में एवं महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी ने वेदाङ्ग ज्योतिष संस्कृत भाष्य में इन मन्त्रों की विशद् व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। वेदाङ्ग ज्योतिष के ऊपर एक प्राचीन भाष्य भी प्रकाशित है। जिसकी रचना शेषवंश में उत्पन्न वाराणसीवासी सोमाकर नामक किसी दाक्षिणात्य पण्डित ने की थी। आचार्य सोमाकर ज्योतिष शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् थे इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है परन्तु कष्ट इस बात का है कि उनके जीवन से सम्बन्धित काल तथा व्यक्तित्व आदि के सम्बन्ध में ज्योतिष शास्त्र का इतिहास भी मौन है। सन् १९०८ ई. में वेदाङ्ग ज्योतिष के दो ग्रन्थ याजुष ज्योतिष सोमाकर सुधाकर भाष्य के साथ तथा आर्च ज्योतिष सुधाकर भाष्य के साथ मेडिकल हाल काशी से एक जिल्द में प्रकाशित हुआ है। महामहोपाध्याय पं. सुधाकर द्विवेदी के सन्दर्भ में कुछ कहना असमीचीन न होगा। द्विवेदी जी का नाम सिद्धान्त ज्योतिष के उन्नायक के रूप में सदा अमर रहेगा। उन्होंने ज्योतिष शास्त्र के लुप्तप्राय प्राचीन ग्रन्थों को प्रकाश में लाने में तथा अपनी व्याख्या, भाष्य एवं उपपत्तियों से सुबोध बनाने में अपनी प्रतिभा का जो चमत्कार दिखाया है वह बड़े-बड़े विद्वानों को आश्चर्य में डाल देता है। इनका जन्म १९१७ संवत् अर्थात् १८६० ई. में वाराणसी में हुआ था। इनके नामकरण के सम्बन्ध में यह बात प्रसिद्ध है कि उन दिनों काशी में सुधाकर नामक पत्र प्रकाशित होता था। जिस समय इनका जन्म हुआ उस समय इनके पिता अनुपस्थित थे इनके बड़े चाचा रामेश्वर दत्त को डाकिया ने सुधाकर पत्र की प्रति जैसे ही दी ठीक उसी समय घर की नौकरानी ने इनके जन्म की प्रथम सूचना चाचाजी को दी। इस शुभ समाचार से अत्यन्त प्रसन्न होकर इनके चाचा ने उसी समय कहा कि सुधाकर पत्र की प्रति मिलने के साथ ही मुझे शिशु के जन्म की शुभ सूचना मिली है अतएव इस बालक का नाम सुधाकर होगा और यह हमारे वंश को सुधाकर (चन्द्रमा) के समान प्रकाशित करेगा। भविष्य की घटनाओं ने यह प्रमाणित कर दिया कि इनके चाचा की भविष्णवाणी इनके सम्बन्ध में अक्षरशः चरितार्थ हुई। इनके जीवन की एक अविस्मरणीय घटना

नितान्त प्रसिद्ध है जिससे सुधाकर की गणितीय प्रतिभा का पूर्ण परिचय मिलता है। महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री ने अपने ग्रन्थ बीजगणित प्रथम भाग की एक प्रति अपने सहायक अध्यापक पं. देवकृष्ण मिश्र को भेंट में दी थी। सुधाकर जी ने ग्रन्थ की अपूर्वता का विचार कर उसे अध्ययन के लिये गुरु से मांगा और अपने घर ले आये। एक रात में ही इन्होंने उस समस्त ग्रन्थ का मनोयोगपूर्वक अध्ययन कर लिया और उसमें गणित सम्बन्धी अनेक अशुद्धियां निकाली। दूसरे दिन उस ग्रन्थ का सम्पूर्ण संशोधन लाल स्याही से कर उसे गुरु जी को ले जाकर दिखाया और सरल भाव से कहा गुरु जी इस ग्रन्थ में तो बहुत सी अशुद्धियां हैं। अपने छात्र से यह बात सुनकर देवकृष्ण मिश्र जी डर गये तथा इन्हें संकेत से चुप रहने के लिये कहा। शास्त्री जी के विषय में ऐसी अपमानजनक बातें नहीं कहनी चाहिए। उसी कमरे के दूसरे छोर पर बैठे हुए बापूदेव शास्त्री जी के कानों में जब इस फुसफुसाहट की आवाज सुनायी दी तो उन्होंने अपने सहायक से पूछा क्या बात है जब सहायकाध्यापक से अपने छात्र की प्रातिभ उदण्डता की बात को शास्त्री जी ने सुना और संशोधन को देखा तब उसे नितान्त सत्य पाया तथा अप्रसन्न होने के स्थान पर प्रसन्न होकर उस कालेज के तात्कालीन अंग्रेज प्राचार्य ग्रिफिथ साहब के पास सुधाकर जी की प्रशंसा करते हुए लिखा कि "अयं सुधाकर शर्मा गणिते बृहस्पतिः समः" अर्थात् यह सुधाकर गणित में बृहस्पति के समान है। इतना ही नहीं उन्होंने सुधाकर जी को पुरस्कार देने के लिये अपनी संस्तुति भी लिख भेजी। सुधाकर जी को इस संस्तुति के फलस्वरूप अनेक पारितोषिक प्राप्त हुए। सुधाकर द्विवेदी ने संस्कृत तथा हिन्दी में अनेक पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। इन्होंने सिद्धान्तज्योतिष के सम्बन्ध में अनेक मौलिक ग्रन्थों को लिखा है तथा ज्योतिष के प्रख्यात प्राचीन ग्रन्थों की व्याख्या लिखी है। इनके प्रकाशित ग्रन्थ हैं। (१) दीर्घवृत्त लक्षणम् (२) वास्तव चन्द्र शृङ्गोन्नति साधनम् (३) भ्रूभ्रमरेखा निरूपणम् (४) ग्रहणे छादकनिर्णयः (५) यन्त्रराजः (६) प्रतिमाबोधकः (७) धराभ्रमे प्राचीन नवीनयोर्विचारः (८) पिण्डप्रभाकरः (९) गणकतरङ्गिणी (१०) घुचरचारः (११) समीकरणमीमांसा (१२) दिङ्मीमांसा।

ये सभी मौलिक ग्रन्थ हैं तथा सम्पादित ग्रन्थों में (१) पञ्चसिद्धान्तिका (२) सिद्धान्ततत्त्वविवेक (३) शिष्यधी वृद्धितन्त्रम् (४) करणकुतूहल वासना (५) लीलावती (६) बृहत्संहिता (७) ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त (८) ग्रह लाघव (९) त्रिंशिका (१०) करणप्रकाश (११) बीजगणित (१२) सिद्धान्तशिरोमणि (१३) सूर्यसिद्धान्त (१४) चलनकलन (१५) चलराशि कलन (१६) अंकगणित का इतिहास।

वेदाङ्ग ज्योतिष पर भाष्य– वेदाङ्ग ज्योतिष दो वाचनाओं में उपलब्ध होता है एक है यजुर्वेदीय और दूसरा है ऋग्वेदीय। इन दोनों वाचनाओं के पाठों और संख्या में बहुत भेद है। फलतः वे पृथक्-पृथक् दो ग्रन्थ माने जाते हैं। यजुर्वेदीय याजुष ज्योतिष पर सोमाकर का लिखा भाष्य पहले से ही विद्यमान था। इस भाष्य की आलोचना करते हुए श्री छोटे लाल नामक संस्कृतज्ञ इंजीनियर ने 'बृहस्पति' के उपनाम से हिन्दुस्तान रिव्यु में सन् १९०६ ई. में अनेक लेखों का प्रकाशन किया। परन्तु छोटे लाल के इन लेखों में अनेक अशुद्धियां भरी पड़ी थी। इन्हीं अशुद्धियों के निराकरण के लिये पं. सुधाकर द्विवेदी ने याजुष ज्योतिष पर भाष्य की रचना की। आर्च ज्योतिष पर तब तक कोई टीका नहीं थी। इस अभाव की पूर्ति के लिये इन्होंने इसका नवीन भाष्य लिखा। सुधाकर जी के इस भाष्य को अधिक स्पष्ट करने के लिये उनके प्रसिद्ध शिष्य ज्योतिष के विद्वान् पं. मुरली धर झा ने लघु विवरण नामक अपनी टीका की रचना की। इस टीका का अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। ये तीनों ग्रन्थ काशी के मेडिकल हाल प्रेस से सन् १९०८ ई. में प्रकाशित हुए थे।

वेदाङ्ग ज्योतिष के द्रष्टा ऋषि महात्मा 'लगध' है। ये कौन थे तथा किस काल में पैदा हुए थे इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता है। गणना के लिये इस ग्रन्थ में पांच वर्ष का युग माना गया है। इन वर्षों के नाम हैं– संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर। ये नाम इसी रूप में तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी आये हैं। उन दिनों वर्ष माघ मास से आरम्भ होता था। ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थों में गणनाएँ १२ राशियों से की जाती हैं परन्तु वेदाङ्ग ज्योतिष में राशियों का कहीं नाम निर्देश नहीं है। गणना के आधार २७ नक्षत्र हैं। शंकर बाल कृष्ण दीक्षित ने सप्रमाण इस रचना का काल ईसा पूर्व १४०० वर्ष माना है तथापि इन ग्रन्थों की रचना इससे पूर्व की ही है बाद की नहीं। अति प्राचीन काल से सम्बन्ध होने के कारण ग्रन्थ इतना दुरूह तथा दुर्बोध है कि आज तक इस पर कोई भी प्रामाणिक हिन्दी व्याख्या देखने में नहीं आयी। पाठकों को इस ग्रन्थ का सम्यक् बोध हो तथा कठिनाइयाँ न आवें इसके लिये हिन्दी अनुवाद अत्यन्त सरल ढंग से लिखने का प्रयत्न किया गया है। ग्रन्थ की प्रामाणिकता तथा सौष्ठव बना रहे अतएव ग्रन्थ लेखक की सहचरिणी मञ्जूमती के नाम से मञ्जुमती व्याख्या के साथ सोमाकर एवं सुधाकर संस्कृत भाष्य भी दे दिया गया है। आथर्व ज्योतिष पर किसी का भाष्य या टीकाएँ मुझे देखने को नहीं मिलीं अतः उस पर अन्य किसी विद्वान् का भाष्य नहीं दिया जा सका है।

महात्मा लगध का नाम आर्च ज्योतिष के मन्त्र २ में आया है।

प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः।।

लगध शब्द संस्कृत का ही होगा इसमें सन्देह होने के कारण कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने इन्हें विदेशी कहा है। परन्तु पाश्चात्यों के लेखों में सर्वत्र षड्यन्त्र की गन्ध दिखायी देती है अतः यह कहना कि ये विदेशी थे अन्याय होगा। यूरोपियन लोग लगध को लगड़ या लगढ़ कहते हैं। परन्तु रोमन लिपि में ध ठीक से न लिखा जाने के कारण यह भूल हुई होगी। प्रो. वेवर ने तो लगध को ज्योतिषी लाट मानकर उनका काल भी ईसवीं सन् पांचवी शताब्दी माना है। बेवर साहब लगध और लाट में ध्वनि साम्य करते हुए यह बात मानते हैं किन्तु यह सर्वथा असमीचीन है। आज भी वैदिक शुद्ध पाठ में लगध ही उच्चारण किया जाता है अतः लगध विदेशी न होकर भारतीय ऋषि थे इसमें लेशमात्र भी सन्देह का अवसर नहीं है। आर्च ज्योतिष में बड़े दिन की लम्बाई का वर्णन है। इस आधार पर ग्रन्थकार के निवास स्थान का अक्षांस ३५ डिग्री के आसपास का रहा है जो कि आज उत्तरकाश्मीर में सम्भव है अतः आचार्य लगध काश्मीरवासी थे यह कहा जा सकता है। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि आर्च ज्योतिष के कर्त्ता लगध थे तो अपने ग्रन्थ में ही यह कथन लगधस्य महात्मनः अर्थात् "मैं महात्मा लगध।" यह शोभनीय नहीं लगता। इस विषय में कहना यह है कि जैसे पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है –

येनाक्षर समाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः।।

येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः।
तमश्चाज्ञानजंभिन्नं तस्मै पाणिनये नमः।।

इसी प्रकार आर्च ज्योतिष में भी महात्मा लगध का नाम वर्णित है। याजुष ज्योतिष भी आचार्य लगध का है, इस विषय में विद्वानों में एकता नहीं है। कुछ के अनुसार याजुष ज्योतिष के कर्त्ता शुचि नामक दैवज्ञ हैं जैसा कि ग्रन्थ के प्रारम्भ का मन्त्र है।

पञ्च संवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनत्त्वर्यनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः।।

यद्यपि शुचि का अर्थ व्याख्या में शुद्ध (पवित्र) ही किया गया है तथापि शुचि नामक आचार्य भी रहे होंगे कहा जा सकता है और वे ही इस ग्रन्थ के कर्त्ता रहे होंगे।

आथर्व ज्योतिष में १६२ मन्त्र तथा १४ प्रकरण हैं। इसे पितामह (ब्रह्मा) ने कश्यप ऋषि से कहा है। जैसा कि अन्तिम दो मन्त्रों से स्पष्ट है। यथा–

आत्म ज्योतिषमित्युक्तं स्वयंमुक्तं स्वयंभुवा।
तत्त्वतः पृच्छमानस्य काश्यपस्य महात्मनः।।

य इदं पठते विप्रो विधिवच्च समाहितः।
यथोक्तं लभते सर्वमाम्नायविधिदर्शनात्।।

इससे स्पष्ट है कि आथर्वज्योतिष के मूलकर्त्ता ब्रह्मा ही हैं तथा इसका विस्तार कश्यप ऋषि द्वारा हुआ है। यहाँ तक तो वैदिक ज्योतिष के पूर्वार्द्ध भाग की चर्चा हुई। इस ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में वैदिक साहित्य में प्रयुक्त कालमान यथा त्रुटि, मुहूर्त, नक्षत्र, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, कल्प आदि विवेचनों के साथ प्रत्येक नक्षत्र का वैदिक स्वरूप, राशियों की चर्चा, ग्रहों का उल्लेख एवं वैदिक स्वरूप, फलित ज्योतिष का प्रयोग, चमत्कारी ज्ञान, प्रश्न ज्ञान, रोगों का ज्ञान एवं उपचार, कृत्या निवारण, असाध्य रोगों का उपचार यथा कैन्सर, एड्स, राजयक्ष्मा, कुष्ठ, क्षेत्रियरोग, दमा आदि का निवारण, सन्तानयोग, गर्भदोष विज्ञान, पितृ–मातृ शाप से सन्तानदोष, वंश विच्छेद, शान्ति कर्म से पुत्र प्राप्ति योग, वैधव्य दोष, मंगलीदोष, विषकन्या आदि दोषों का निवारण, जन्माङ्ग से उपासना, इष्ट आदि का ज्ञान, लाभालाभ प्रश्न, वैवाहिक ज्ञान, मृत्युज्ञान, मूल आदि दोषों की शान्ति, व्यापार, नौकरी आदि में प्रगति का विधान, मणिधारण विधान, गर्भाधानादि संस्कारों के मुहूर्त, वास्तु प्रकरण, गृहारम्भ, गृह प्रवेश के शुभ मुहूर्तादि कार्याकार्य की सिद्धि परीक्षा, भूतप्रेत पिशाचादि दोषों का उपचार, उन्माददोष शमन का उपाय, कर्मज व्याधि विनाश के लिये आथर्ववेदीय मन्त्रों द्वारा शान्ति विधान, पुष्टि कर्म, जलावसेचन हवन, रक्षाकरण्ड विधि, ऋग्वेदीय एवं यजुर्वेदीय मन्त्रों द्वारा अनेक असाध्य रोगों का निवारण, अर्थोत्थापन विधि, पारिवारिक सुख, शान्ति, सौहार्द प्राप्ति के उपाय, संकल्प शक्ति द्वारा रोग निवारण, सर्व रोग शान्त्यर्थ विधान, नक्षत्र दोष, ज्वर दोष का निवारण, शिव संकल्प द्वारा सदैव आरोग्य रहने का विधान, देवताओं पर अश्लील आक्षेपों का वैदिकी समाधान के साथ उपसंहार नामक आठ अध्यायों में यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ है। इस प्रकार यह वैदिक ज्योतिष संक्षिप्त रूप में पाठकों के समक्ष उपस्थित किया गया है। वेद तो अनन्त हैं अतः यह कहना कि समस्त ज्योतिषीय विषयों का समावेश इसमें हो गया है अहंमन्यता के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। महाकवि कालिदास रघुवंश महाकाव्य में भगवान् राम के गुणों का उल्लेख करते हुए जब समापन करने लगे उस समय वे कहते हैं कि हे भगवन् आपकी महत्ता की प्रशंसा करके जो हम चुप हो रहे हैं इसका

यह कारण नहीं है कि हमने आपके सब गुण बखान ड़ाले वरन् इसका कारण यह है कि हम थक गये हैं और आगे लिखने की शक्ति हममें नहीं रह गयी है।

महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया।।

(रघुवंश १०।३२)

मुझे भी यही कहना है कि आगे लिखने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है, वेद तो अनन्त ही है। इस ग्रन्थ रचना में मैनें जिन पुरातन और अर्वाचीन ग्रन्थों और भाष्यों की सहायता ली है उन समस्त रचनाकारों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इस परम्परा में पं० देवीदत्त शुक्ल तथा केशवदेव शास्त्री के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन मेरा परम कर्त्तव्य है इन महानुभावों के ग्रन्थों से मुझे अधिक सहायता मिली है। डॉ. हीरा लाल पाण्डेय जी को प्रणाम निवेदन करता हूँ जिन्होने इस ग्रन्थ लेखन में मेरा उत्साहवर्धन किया है। कृतज्ञता ज्ञापन के इस सन्दर्भ में श्रद्धेय शङ्कराचार्य शारदा द्वारका एवं ज्योतिषपीठाधीश्वर – स्वामी स्वरूपानन्द जी सरस्वती एवं गुरुदेव अभिराज डॉ. राजेन्द्र मिश्र, कुलपति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के प्रति कृतज्ञ और नतमस्तक हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ का शुभाशंसनम् तथा नान्दीवाक् लिखकर मुझे कृतार्थ किया है। इस पुस्तक में जो कुछ गम्भीर अंश आये हैं वह हमारे गुरुदेव प्रो. सुरेश चन्द्र पाण्डे राष्ट्रपति सम्मानित पूर्व विभागाध्यक्ष संस्कृत इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कृपा का प्रसाद हैं। कुछ अरुचिकर अथवा त्रुटिपूर्ण जो प्रसंग आ गये हैं वह मेरा प्रमाद है अतः विद्वद्जनों से करबद्ध निवेदन है कि यदि अशुद्ध अथवा शास्त्र विरुद्ध कुछ बातें आ गयी होंगी तो उसका परिमार्जन करते हुए मुझे क्षमा करेंगे। अन्त में परमात्मा से प्रार्थना है कि

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

गुरू पूर्णिमा 2003

डॉ. गिरिजा शङ्कर शास्त्री

455 वासुकी खुर्द

दारागञ्ज, इलाहाबाद

दूरभाष – 2503472



विषय सूची

वैदिक ज्योतिष पूर्वार्द्ध

याजुष ज्योतिष १-७४

आर्च ज्योतिष ७५-९८

आथर्व ज्योतिष ९९-१७२

वैदिक ज्योतिष उत्तरार्द्ध

अध्याय १ १७३-१८५

वैदिक साहित्य में कालमान

युगमान।
संवत्सर मान ।
अयन मान।
ऋतु मान।
मास मान।
पक्षमान।
तिथिमान।
वार मान।
नक्षत्र मान।
योग एवं करण मान।
मुहूर्त मान।
प्रति मुहूर्त मान।
कला काष्ठा मान।

अध्याय २ १८६-२०७

ग्रहों का वैदिक स्वरूप

वैदिक साहित्य में ग्रह शब्द का प्रयोग।
वैदिक सूर्य।
वैदिक चन्द्रमा।
वैदिक मंगल।
वैदिक बुध।
वैदिक बृहस्पति।

वैदिक शुक्र।

वैदिक शनि।

वैदिक राहु एवं केतु।

अध्याय ३ २०८-२३८

वैदिक नक्षत्रों एवं राशियों का विवेचन

वैदिक नक्षत्र परिचय।
वैदिक अश्विनी नक्षत्र।
वैदिक भरणी नक्षत्र।
वैदिक कृत्तिका नक्षत्र।
वैदिक रोहिणी नक्षत्र।
वैदिक मृगशिरा नक्षत्र।
वैदिक आर्द्रा नक्षत्र।
वैदिक पुनर्वसु नक्षत्र।
वैदिक पुष्य नक्षत्र।
वैदिक श्लेषा नक्षत्र।
वैदिक मघा नक्षत्र।
वैदिक पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र।
वैदिक उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र।
वैदिक हस्त नक्षत्र।
वैदिक चित्रा नक्षत्र।
वैदिक स्वाती नक्षत्र।
वैदिक विशाखा नक्षत्र।
वैदिक अनुराधा नक्षत्र।
वैदिक ज्येष्ठा नक्षत्र।
वैदिक मूल नक्षत्र।
गोस्वामी तुलसीदास जी की पीड़ा।
वैदिक पूर्वाषाढ़ नक्षत्र।
वैदिक उत्तराषाढ़ नक्षत्र।
वैदिक अभिजित नक्षत्र।
वैदिक श्रवण नक्षत्र।
वैदिक धनिष्ठा नक्षत्र।
वैदिक शतभिषा नक्षत्र।
वैदिक पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र।
वैदिक उत्तराभाद्रपद नक्षत्र।

वैदिक रेवती नक्षत्र।
वैदिक उप नक्षत्र।
वैदिक नक्षत्रों की तालिका उनके नाम देवता आदि।
वैदिक साहित्य में राशि प्रयोग।
मीन मेषादि राशियों का स्पष्ट उल्लेख ।

अध्याय ४ २३९-२७७

वैदिक साहित्य में फलित ज्योतिष

मुहूर्त, शकुन, सुदिनत्व, दुस्वप्न, शान्ति आदि का प्रयोग।
प्रश्नों द्वारा फल जानने का सरल उपाय।
ग्रहग्रस्त शापग्रस्त दोष ज्ञान।
गर्भादि दोष ज्ञान।
सन्तति विज्ञान।
प्रश्न लग्न में विशेष।
गर्भस्थ सन्तान का लिंग ज्ञान।
सन्तान योग विचार।
पितृ शाप से पुत्रहानि योग।
मातृ शाप से पुत्रहानि योग।
कुलदेव शाप से पुत्रहानि योग।
पुत्रहीन योग।
पुत्रनाशन योग।
पुत्र सुख क्षीण योग।
वंश विच्छेद।
विलम्ब से पुत्रोत्पत्ति योग।
शान्ति कर्म से पुत्र प्राप्ति योग।
शीघ्र सन्तानोदय योग।
पुत्र प्राप्ति योग।
कन्या प्राप्ति योग।
अनपत्य, मृतापत्य योग।
वैधव्य योग।
विवाह में गुरु विचार।
विषकन्या योग।
विष कन्या भंग योग।
पुत्र प्राप्ति प्रश्न विचार।
पुत्र जन्म न होने पर देव दोष विचार।

जन्माङ्ग से उपासना एवं ग्रह योग।
कार्य सिद्धि असिद्धि प्रश्न।
लाभालाभ प्रश्न।
प्रवासी प्रश्न ज्ञान।
वैवाहिक प्रश्न ज्ञान।
शुभाशुभ ज्ञान।
रोग, आरोग्य, मृत्यु ज्ञान।
शीघ्र मृत्यु योग।

अध्याय ५ २७८-३५४

रोगों का ज्ञान एवं वैदिक उपचार
कर्मज व्याधियों का कारण।
व्याधि निवारण के लिये जलावसेचन विधि (असाध्य रोग के लिये)।
मिर्गी रोग निवारण में सदस्पति मन्त्र का प्रयोग।
हवन विधान (असाध्य रोगों के शमन हेतु)।
रक्षा करण्ड विधि (प्रेतादि बाधा, जादू टोना के शमन हेतु)।
रक्षोघ्न मन्त्र (अकाल मृत्यु, रोग, शोक तथा पाप शाप से रक्षा का विधान)।
जलचिकित्सा विधि (कोढ़, टी.वी., कैन्सर तथा एड्स रोगों के शमन हेतु)।
अपनोदन भेषज (पीलिया, जलोदर, हृदय सम्बन्धी रोगों के शमन में)।
आङ्गिरसी भेषज (आकस्मिक दुर्घटना, पागलपन तथा आनुवंशिक रोग निवारण)।
सूर्योपस्थापन (असाध्य रोग में)।
हस्ताभिमर्श उपचार (असाध्य रोगों में)।
कृत्या निवारण (अभिचार आदि से बचने का विधान)।
मणिधारण विधि (समस्त रोग दोष, भय बाधा निवारण)।
अर्थोत्थापन विधि (व्यापार, नौकरी में प्रगति हेतु)।
बृहद् शान्ति कर्म (दुःख, दारिद्र्य, ऋण विमोचन हेतु)।
कर्मज व्याधि नाश के लिये ऋग्वेदीय मन्त्र।
असाध्य रोग, अपमृत्यु निवारण।
निऋत दोष या शाप निवारण।
दुर्भाग्य जन्य अरिष्ट निवारण।
समस्त व्याधि निवारण।
दुर्वृत्ति तथा अल्पायु निवारण।
यशस्वी पुत्र हेतु मन्त्र।
सुख, सौभाग्य समृद्धि हेतु मन्त्र।

अलगाव, तनाव एवं तलाक निवारण मन्त्र।
गूंगे, बहरे दोष निवृत्ति मन्त्र।
वैर भाव नष्ट करने का मन्त्र।
वाणी की सिद्धि का मन्त्र।
देवकृपा प्राप्ति मन्त्र।
हृदय रोग, छिद्र, हृदयाघात निवारण मन्त्र।
भूत प्रेतादि तथा विषैले जन्तुओं के निवारण का मन्त्र।
कुष्ठ रोग निवारण मन्त्र।
पारिवारिक शाप तथा दुर्भाग्य निवारण मन्त्र।
कलंक, मिथ्यापवाद निवारण मन्त्र।
मृतकों की मुक्ति हेतु मन्त्र।
मूर्च्छा निवृत्ति मन्त्र।
व्यधिनाशन यजुर्वेदीय मन्त्र।
प्रेतादि बाधा निवारण मन्त्र।
हिंसक जन्तुओं का निवारण मन्त्र।
औषधि परिचय।
स्वरूप भेद।
महौषधि वर्ण।
जहरवाद ओषधि।
थनेला ओषधि।
अजीर्णनाशक ओषधि।
बलवीर्य वर्धक ओषधि।
हरीतकी रसायन।
मेध्य रसायन।
ऐन्द्री रसायन।
भिलाये का दूध।
अनार्तव।
चिकित्सा।
न्यग्रोधादिगण।
आज्यतन्त्र।
अक्षिरोग भैषज्य।
केशवृद्धि तथा केशपतन भेषज।
जलोदर।

नहरुआ उपचार।
अपस्मार मिर्गी उपचार।
विच्छू के विष की ओषधि।
गूंगेपन की ओषधि।
बहरेपन की ओषधि।
सुजाक की ओषधि।
कमलवात की ओषधि।
बवासीर की ओषधि।
कर्णशूल की ओषधि।
उदरशूल की ओषधि।
नपुंसकताहरण की ओषधि।
वीर्य स्तम्भन की ओषधि।
दमा श्वांस का उपचार।
क्षेत्रिय रोग-उपचार।
सर्व ज्वर शान्ति विधान।
नक्षत्रदोष ज्वर निदान।
नक्षत्र ज्वर शान्त्यर्थ विधान।
नक्षत्रों के मन्त्रों से हवन विधान।
सर्वज्वर हरण मन्त्र।
नेत्र विकार शमन मन्त्र।

अध्याय ६ ३५५-३८९

वैदिक साहित्य के बिखरे मोती

विभिन्न संस्कारों के मुहूर्त।
गर्भाधान काल ज्ञान।
गर्भमासों के स्वामी।
जन्मकाल का ज्ञान।
आधानकालीन लग्न द्वारा पुत्र कन्या का ज्ञान पारस्कर के अनुसार गर्भाधान में।
ग्राह्य दिन एवं फल।
ग्राह्य तिथि एवं वार।
ग्राह्य नक्षत्र।
गर्भाधान में त्याज्य योग, तिथि नक्षत्रादि।
गर्भाधान में स्वरों का ज्ञान।

गर्भाधान के समय मन का विचार।
गर्भाधान विवेचन।
पुंसवन संस्कार का मुहूर्त।
पुंसवन में ग्राह्य दिन।
पुंसवन के ग्राह्य नक्षत्र।
पुंसवन में ग्राह्य तिथि।
पुंसवन में ग्राह्य लग्न।
सीमन्तोन्नयन संस्कार मुहूर्त।
जातकर्म संस्कार मुहूर्त।
ग्राह्य तिथि, वारादि, नक्षत्र एवं लग्न।
नामकरण संस्कार।
नामकरण में ग्राह्यवार एवं तिथि।
नामकरण में ग्राह्य नक्षत्र।
अन्नप्राशन संस्कार मुहूर्त।
अन्नप्राशन में ग्राह्यवार एवं तिथि।
अन्नप्राशन में ग्राह्य नक्षत्र।
उपनयन संस्कार मुहूर्त।
उपनयन में ग्राह्य दिन एवं तिथि।
उपनयन में ग्राह्य नक्षत्र।
विवाह संस्कार मुहूर्त।
मंगली दोष की शान्ति।
वैधव्य दोष की शान्ति।
शीघ्रपति प्राप्ति विधान।
शीघ्र पत्नी प्राप्ति विधान।
मूलादि नक्षत्रों की शान्ति।
मृत्यु सूचक लक्षणों का ज्ञान।
अरिष्ट निवारण विधि।
मृत्यु टालने का विधान।
शिव संकल्प का विधान।
वास्तु प्रकरण।
ग्रह बल।
द्वार शुद्धि।
ग्रामानुकूल्य।

शल्यशोधन।
प्रश्नाक्षर फल।
गृह जातक।
काकिणी।
भूमिरज।
भूमि शयन।
शेष शिरोज्ञान।
राहु पुच्छ ज्ञान।
वास्तु भूमि के शुभाशुभ ज्ञान की विधि।
शिलान्यास।
आय–व्यय साधन विधि।
गृह नक्षत्र और आय व्यय का ज्ञान।
चरणी विचार।
मण्डलेश ज्ञान।
गृहराशि ज्ञान।
गृह का नामकरण।
अंश ग्रहण।
गृह में स्थान योजना।
वास्तुचक्र नाम।
गृहारम्भ के मासों का फल।
गृहद्वार।
गृहद्वार शाखा चक्र।
गृह मध्य में कूप अथवा नल का विचार।
चुल्ली चक्र।
स्तम्भ में कूर्म चक्र।
धनरक्षण (भौमचक्र)।
गृहारम्भ के नक्षत्रादि मुहूर्त।
वास्तुशान्ति अग्नि चक्र।
गृहाहुति क्रम।
गृह प्रवेश।
गृह प्रवेश में वामार्क (वामरवि) ज्ञान व फल।
गृह आयु प्रमाण।

अध्याय ७ ३९०-३९९

देवताओं पर अश्लील आक्षेपों का वैदिक ज्योतिषीय समाधान

वेदों में मांस भक्षण का निषेध।

वैदिक समुद्र मन्थन।

वामन का त्रिपाद न्यास।

चन्द्रमा तारा तथा बुध।

अहल्या का सतीत्व भंग।

ब्रह्म एवं सरस्वती।

श्रीकृष्ण की रासलीला।

अगस्त्य का समुद्र पान एवं विन्ध्याचल को रोकना।

अध्याय ८ ४००

उपसंहार



वैदिक ज्योतिष

श्री जानकीवल्लभो विजयते

अथ सोमाकरसुधाकरभाष्याभ्यां सहितं

याजुषज्यौतिषं प्रारभ्यते

पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः।।१।।

ज्योतिषामयनं पुण्यं प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः।
सम्मतं ब्राह्मणेन्द्राणां यज्ञकालार्थसिद्धये।।२।।

सोमाकरः -

अव्याकृताद्व्यकृतं यत् तदाद्यं
त्रय्यात्मकं शब्दराशिं विशिष्टैः ।
कालस्येदं कारणं यज्ञसारं
भोगावाप्तेः साधनं सम्प्रणम्य।।१।।

देशस्य कालस्य विपर्ययाद्य-
दुत्पन्नार्थं चाङ्गमाद्यं तु शास्त्रम्।
ज्यौतिषं नामाकुलकं प्रधानं
सोमाकरोऽहं विवृणोमि शक्त्या।।२।।

लब्ध्वा ज्ञानं प्रातिभं बुद्धियोगात्
तद्वच्च भाष्यप्रचयोऽस्य नास्ति।
सर्वज्ञता नास्ति ममेति मत्त्वा
ज्योतिर्विदो[१] नॄन् प्रणिपत्य मूर्ध्ना।।३।।

यस्मादहं स्वप्रभावात् प्रवृत्तो-
ऽहोरात्रीये गणिते चाप्रगल्भः।
तस्मादन्ये वस्तुसारं विदित्वा
कृत्स्नार्थाप्त्यै कल्पयिष्यन्ति शेषम्।।४।।

---

१. ज्योतिर्वदोऽन्यान् इति पाठान्तरम्।

पञ्चसंवत्सरमयमिति। एतेन श्लोकद्वयेन शास्त्रकारोऽभिधेयभूतामिष्टदेवतां नमस्कृत्य वस्तूपन्यासं करोति। तद्यथा। शुचिरहं वाङ्मनःकायशुद्धो ज्योतिषामयनं सूर्यचन्द्रनक्षत्राणां गमनं प्रवक्ष्यामि कथयिष्यामि। कथम्। अनुपूर्वशो यथाक्रमेणेत्यर्थः। कीदृशम्। पुण्यम्। यागकालविधिज्ञानतया पापापहम्। तथा सम्मतं ब्राह्मणेन्द्राणाम्। यजमानानामभिप्रेतम्। एते वै यज्ञस्येन्द्रा इति श्रुतेः। किमर्थम्। यज्ञकालार्थसिद्धये। यागचोदितकालविधानार्थमित्यर्थः। किं कृत्वा। प्रणम्य। नमस्कृत्य। कम्। प्रजापतिम्। स्रष्टारम्। केन। शिरसा। उत्तमाङ्गेन। कीदृशम्। पञ्चसंवत्सरमयम्। संवत्सरपरिवत्सरेदावत्सरानुवत्सरेद्वत्सरात्मकम्। तथा युगाध्यक्षम्। कृतादीनां वैष्णवबार्हस्पत्येन्द्राग्नित्वाष्ट्राहिर्बुध्न्यपित्र्यसौम्यवैश्वदेवसर्पार्यम्णदास्रभाग्यान्तानां द्वादशानां च स्रष्टारम्। तथा दिनर्त्त्वयनमासाङ्गम्। कालावयवा दिनादयो मुहूर्त्तकालपुरुषस्याङ्गानि। तथा स एष संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलस्तस्याहोरात्रय एव पञ्चदश कला ध्रुवैकास्य षोडशी कलेति। मासाश्चार्धमासाश्च परूंषि ऋतवोऽङ्गानि संवत्सरो महिमेति। एवमहं प्रवृत्त इत्यर्थः।।१-२।।

सुधाकरः -

'पञ्चसंवत्सरमययुगाध्यक्षं' इति पाठः साधुः।

अहं शुचिः पवित्रो भूत्वा वा शुचिनामा ज्योतिषां ज्यौतिषशास्त्राणामयनं स्थानं निधिरूपं निबन्धम्। अनुपूर्वशो यथाक्रमम्। प्रवक्ष्यामि कथयिष्यामि। किमर्थम्। यज्ञकालार्थसिद्धये। ज्योतिष्टोमादीनां यज्ञानां ये कालास्तदर्थानां या सिद्धिस्तस्यै। किं कृत्वा। प्रजापतिं ब्रह्माणं शिरसा मूर्ध्ना प्रणम्य प्रणिपातपूर्वकं नमस्कृत्य। किं विशिष्टं ब्रह्माणम्। पञ्चसंवत्सरमययुगाध्यक्षम्। पञ्चसंवत्सरात्मकं यद्युगं तदध्यक्षं तदधिपतिम्। पुनः किंविशिष्टम्। दिनर्त्त्वयनमासाङ्गम्। दिनानि ऋतवः अयने मासाश्चैवाङ्गानि यस्य तम्। किंविशिष्टं ज्योतिषामयनम्। पुण्यं पवित्रं पुण्योत्पादकमित्यर्थः। पुनः किंविशिष्टम्। ब्राह्मणेन्द्राणां ब्राह्मणेषु श्रेष्ठानां ज्योतिर्विदां सम्मतं ज्योतिर्विद्भिः स्वीकृतमित्यर्थः।।१-२।।

अन्वय १-२

शुचिः अनुपूर्वशः पुण्यं ब्राह्मणेन्द्राणां सम्मतं यज्ञकालार्थसिद्धये पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं दिनर्त्त्वयनमासाङ्गम् प्रजापतिं शिरसा प्रणम्य ज्योतिषा-मयनं प्रवक्ष्यामि।

इन दो श्लोकों द्वारा शास्त्रकार अभिधेयभूत, इष्टदेवता प्रजापति को प्रणामकर वस्तु का (प्रतिपाद्य का) उपन्यास करते हैं।

मञ्जुमती व्याख्या -

शुचिः = वाणी, मन, शरीर से शुद्ध (मैं), अनुपूर्वशः = यथाक्रम, पुण्यम् = यज्ञ काल के विधिज्ञान से पापापह अतएव पवित्र, ब्राह्मणेन्द्राणाम् = श्रेष्ठ ब्राह्मण अर्थात् यज्ञ को जाननेवालों के, सम्मतम् = अभिप्रेत, यज्ञकालार्थसिद्धये = ज्योतिष्टोमादि यज्ञ के समय और उनके प्रयोजन की सिद्धि के लिए, पञ्चसंवत्सरमयम् = संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर, इद्वत्सर स्वरूप, युगाध्यक्षम् = पाँच संवत्सरात्मक युग के अध्यक्ष, दिनर्त्वयनमासाङ्गम् = दिन-ऋतु-मास-अयन अङ्गवाले, प्रजापतिम् = ब्रह्मा को, शिरसा = उत्तमाङ्ग द्वारा, प्रणम्य = सम्मानपूर्वक प्रणाम कर, ज्योतिषामयनम् = सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रों के अयन-गमन-स्थान-निधि रूप निबन्धन को, प्रवक्ष्यामि = कहूँगा।

अर्थ -

वाणी-मन-शरीर से शुद्ध मैं क्रमशः पवित्र यज्ञज्ञ ब्राह्मणों के सम्मत यज्ञ काल एवं यज्ञ के प्रयोजन की सिद्धि के लिए पञ्च संवत्सरात्मक युगाध्यक्ष दिन-ऋतु-मास-अयन अङ्गवाले प्रजापति को अवनतशिर प्रणाम कर सूर्यचन्द्र-नक्षत्र के अयन को कहूँगा।

विशेष -

सुधाकर ने शुचि का अर्थ पवित्र और शुचिनामवाला उल्लिखित किया है। ज्योतिषशास्त्र किस प्रकार वेदाङ्ग है ? इस आशंका का समाधान करते हैं-

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः
कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं
यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञम्।।३।।

सोमाकरः -

वेदा हि यज्ञार्थमिति। वेदा ऋग्वेदादयः किल यस्माद्यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः प्रगता उत्पन्नाः।

यथा च स्मृतिः –

अग्निवायुरविभ्यश्च त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम्।।

तथा कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः। दिनर्त्त्वयनेषु यज्ञा विहिता विभक्ताः श्रुताः। यथाह। पुण्याहे दीक्षा वसन्ते ज्योतिष्टोमेन यजेत यजेत वाजपेयेन ग्रीष्मे इति। तथा पञ्चशारदीय इति। तस्मादिदं कालविधानशास्त्रम्। अनेन हि कालावयवा विज्ञायन्ते। यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञम्। ज्योतिःशास्त्रज्ञः कालस्वरूपज्ञः। तथा यथोक्तयज्ञफलभाग्भवतीत्यर्थः। न वै शुविदुरिव मपुष्यनक्षत्रमिति श्रुतिः। तथा। ते असुरा अयज्ञा अदक्षिणा अनक्षत्रा यच्च किञ्चाकुर्वत तां कृत्यामेवाकुर्वतेति।

तथा च परिशिष्टकृत्।

मन्त्रपादपदसन्धिविधिज्ञो धातुनामवचनप्रकृतिज्ञः।
ईदृशो भवति यज्ञविधिज्ञः पक्षमासतिथिचन्द्रगतिज्ञः।। इति तृतीयः।।३।।

सुधाकरः –

अस्य ज्यौतिषशास्त्रस्य कथं वेदाङ्गत्वमित्याशङ्क्याह वेदा हीति। हि यतो वेदा यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः सन्ति। यज्ञाश्च कालानुपूर्वाः कालाधीनाः सन्ति। तस्मादिदं ज्यौतिषं कालविधानशास्त्रं कालविधिशिक्षकं यो वेद जानाति स वेदाङ्गज्ञानाद् यज्ञान् दर्शपौर्णमासादीन् वेद जानाति। कालविधायकत्वादस्य किल वेदाङ्गत्वं सिद्धम्। वेदाङ्गत्वादवश्यमेव द्विजैरध्येतव्यमिति।

तथा च सिद्धान्तशिरोमणौ भास्करः–

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता
यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्याद्
वेदाङ्गत्वं ज्यौतिषस्योक्तमस्मात्–इति।।३।।

अन्वय–

हि वेदाः यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः यज्ञाः कालानुपूर्वाः। विहिताः, तस्मात् यः इदम् कालविधानशास्त्रं ज्यौतिषं वेद सः यज्ञं वेद।

मञ्जुमती व्याख्या -

हि = क्योंकि, वेदाः = ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः = यज्ञ के प्रयोजन हेतु अभिप्रवृत्त (हैं), यज्ञाः = याग, कालानुपूर्वाः = कालाधीन, विहिताः = प्रतिपादित (हैं), विधिप्रयुक्त (हैं), (जैसे-पुण्याह में दीक्षा, वसन्त में ज्योतिष्टोम आदि), तस्मात् = इस कारण से, यः = जो, इदम् कालविधानशास्त्रम् = इस कालविधि शिक्षा, ज्यौतिषम् = ज्योतिष शास्त्र को, वेद = जानता है, सः = वह, यज्ञम् = दर्श पौर्णमास आदि यज्ञों को, वेद = जानता है।

अर्थ -

ऋग्यजुषसामादि वेद यज्ञ के लिए अभिप्रवृत्त हैं और यज्ञ कालाधीन विहित हैं, इस निमित्त से जो व्यक्ति इस काल विधान शास्त्र ज्योतिष को जानता है, वह यज्ञ को जानता है। काल विधायक होने से ज्योतिष का वेदाङ्गत्व सिद्ध है।

गणित-जातक-संहिता तीन स्कन्धवाले ज्योतिषशास्त्र में गणित की प्रशंसा :

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्।।४।।

सोमाकरः -

यथा शिखेति। यथा मयूराणां शिखा चूलिका मूर्धनि तिष्ठति। शिरसि यथा नागानां सर्पाणां मणयो रत्नानि। तद्वदत्र वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं क्षेत्रसंख्याविज्ञानं देवयजनादीनाम्।

यथाऽऽह विष्णुः -

इष्टका शोषपाकाभ्यां त्रिंशत् मात्रा तु हीयते।
तत् क्षेत्राणि चतुर्भागं विहीने दापयेच्छिरः।। इति।
एवमादिव्यवहारार्थमाह।।४।।

सुधाकरः -

इदानीं स्कन्धत्रयात्मकज्यौतिषशास्त्रे गणितं प्रशंसते। यथा शिखेति। यथा मयूराणां शिखा मयूरशिरसि स्थिता। यथा नागानां सर्पाणां मणयस्तच्छिरोरूपफणासु स्थिताः सन्ति। तद्वत् तथा वेदाङ्गशास्त्राणां व्याकरण-निरुक्तकल्पशिक्षाछन्दसां शिरःसु गणितं ज्यौतिषं स्थितमस्ति। सर्वत्र वेदाङ्गेषु संख्याव्यवहारात् संख्याविधानप्रतिपादकं गणितशास्त्रमेव प्रधानमिति।।४।।

अन्वय -

यथा मयूराणां शिखा यथा नागानां मणयः तद्वत् वेदाङ्गशास्त्राणां मूर्ध्नि गणितं स्थितम्।

मञ्जुमती व्याख्या -

यथा = जिस प्रकार, मयूराणाम् = मयूरों की, शिखा = चूलिका, यथा = जिस प्रकार, नागानाम् = सर्पों की, मणयः = मणियाँ, तद्वत् = उसी प्रकार, वेदाङ्ग-शास्त्राणाम् = शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त आदि शास्त्रों के, मूर्ध्नि = सिर पर, गणितम् = ज्योतिषशास्त्र, स्थितम् = स्थित है।

अर्थ -

जैसे मयूरों की शिखा मयूरों के सिर पर अवस्थित है, जैसे सर्पों के सिर पर सर्पमणि अवस्थित है, उसी प्रकार वेदाङ्ग शास्त्रों के शिर पर ज्योतिष शास्त्र (गणित) स्थित है। समस्त वेदाङ्गों में संख्या व्यवहार के कारण संख्या विधान प्रतिपादक गणित शास्त्र ही प्रधान है।

पाँच वर्षात्मक युग के विषय में संवत्सर आनयन बतला रहे हैं-

ये बृहस्पतिना भुक्ता मीनात् प्रभृति राशयः।
ते हृताः पञ्चभिर्याताः यः शेषः स परिग्रहः।।५।।

सुधाकरः -

इदानीं पञ्चवर्षात्मकयुगे संवत्सरानयनमाह। ये बृहस्पतिनेति। बृहस्पतिना गुरुणा ये मीनात् प्रभृति मीनराशेः सकाशात् राशयो भुक्तास्ते पञ्चभिर्हृता लब्धा याता युगसंख्या ज्ञेया। यः शेषः स वर्तमाने युगे परिग्रहो ग्राह्य इति। अत्र पञ्चवर्षात्मकयुग एव सर्वा गणनाऽत इदं पद्यं क्षेपकम्। बृहस्पतिभुक्तराशीनां पञ्चाल्पत्वात् सोमाकरभाष्येऽस्य पाठाभावाच्चेति स्फुटं ज्योतिर्विदामिति।

अन्वय-

बृहस्पतिना ये राशयः मीनात् प्रभृति भुक्ताः ते पञ्चभिः हृता याताः, यः शेषः स परिग्रहः।

मञ्जुमती व्याख्या -

बृहस्पतिना = बृहस्पति द्वारा, ये राशयः = जो राशियाँ, मीनात् प्रभृति = मीनराशि से, भुक्ताः = भोगी गयीं, ते = वे राशियाँ, पञ्चभिः = पांच संख्या द्वारा, हृता = लब्ध, याता = बीती हुई युग संख्या (समझी जायँ), यः शेषः = जो अवशिष्ट हो, स परिग्रहः = वह (वर्तमान युग में) ग्राह्य हैं।

अर्थ -

बृहस्पति द्वारा जो राशियाँ मीन राशि से आरम्भ कर भुक्त हुईं, वे राशियाँ पाँच संख्या से हृत हुई बीती हुई युग संख्या जानी जायँ। जो राशि शेष हों वह (वर्तमान युग में) ग्राह्य है।

विशेष -

इस याजुष ज्योतिष में पाँच वर्षात्मक युग ही सब गणना है–अतः सुधाकर के अनुसार यह पद्य क्षेपक है क्योंकि बृहस्पति से भुक्त राशियाँ पाँच से कम हैं।

अनादि अनन्त काल में यहाँ कितने काल पर्यन्त गणना की जाय–

माघशुक्लप्रपन्नस्य पौषकृष्णसमापिनः।
युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते।।५।।

सोमाकरः -

माघशुक्लप्रपन्नस्येति। एवं ज्योतिर्विदः कालज्ञानं तत्स्वरूपप्रतिपादनं प्रचक्षते कथयन्ति। कस्य। युगस्य। कीदृशस्य। पञ्चवर्षस्य। संवत्सरादीनां चैकीकृत्य यतश्चत्वारि मानानि वक्ष्यमाणानि सौरसावनचान्द्रार्क्षाणि। तेषां च यतः परस्परवैषम्येण कालवैषम्यम्। यतः सावनस्य संवत्सरस्य प्रकृत्यैव षड्दिनानि लुप्यन्ते सौरमानापेक्षया चान्द्रमानापेक्षया षड्दिनानि वर्धन्ते युगे च तानि त्वधिकमासाभ्यां पूर्यन्ते। यतस्तौ द्वौ युगमध्ये भवतः। ते च युगा द्वादश वैष्णवबार्हस्पत्यैन्द्राग्नित्वाष्ट्राहिर्बुध्न्यपित्र्यसौम्यवैश्वदेवसार्पार्यण्मदास्त्र-भाग्याः। तैः षष्ट्यब्दनिष्पत्तिस्ततः काम्यं भवति। सौरमानापेक्षया तस्य कुतः प्रवृत्तिरित्याह माघशुक्लेति। तदादिकालगणनेत्यर्थः।

तथा च लौगाक्षिः -

माघ्याः पौर्णमास्याश्चतुरहे संवत्सराय दीक्षन्त इति।

तथा च गर्गः-

कालज्ञानं महत्पुण्यं कालश्चादित्य उच्यते।
स च माघस्य शुक्लस्य सोमवासवयोः सह।।
सहोदयं श्रविष्ठाभिः प्रस्थमह्नामुदङ्मुखे। इति।।

एवमेव पौषकृष्णसमापिनः। ततस्तदा तस्य समापनं पञ्चानामन्ते एव। अतः शुक्लपक्षादिकालप्रवृत्तिरिति सिद्धं भवति यतः। एवमतोऽधिमासमृतानां कृष्णपक्षादिकालप्रवृत्त्यपेक्षयैव मृताहानुष्ठानं कुर्वन्ति।

तथा च गर्गः -

तेषां च सर्वेषां नक्षत्राणां कर्मसु कृत्तिकाः प्रथममाचक्षते। श्रविष्ठा तु संख्यायाः पूर्वा लग्नानाम्। अनुराधं पश्चिमम्। विघ्नानां रोहिणी सर्वनक्षत्राणाम्। मघाः सौर्याणाम्। भोग्यानां चार्यमा। नक्षत्राणां सर्वासां षड्राशीतानामादिः श्रविष्ठा। एवं पञ्चवर्षस्य युगस्यादिः संवत्सरः। वसन्त ऋतूनाम्। माघो मासानाम्। पक्षाणां शुक्लः। अयनयोरुत्तरम्। दिवसानां शुक्लप्रतिपत्। मुहूर्त्तानां रौद्रः। करणानां किंस्तुघ्नः। योगानां ध्रुव इति। ननु कथमेषा शातपथी श्रुतिः - या वैषा फाल्गुनी पौर्णमासी संवत्सरस्य प्रथमा रात्रिः। योत्तरा सा पूर्वमुत्तमेति मानुषाणां च विषयापेक्षया यतस्तेषां यथा चोदनास्ते फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां लभन्त इति। ततो नैतेषां नैसर्गिकी कालव्यवस्था। यस्मादघमर्षणसूक्ते-

अहोरात्रं सूर्या चन्द्रमसां पुरा कल्पव्यवस्थया।
कालानां च स्थितिः प्राप्ता या सा चेहावधार्यते-इति।। ५।।

सुधाकरः -

इदानीमनाद्यन्तकालेऽत्र कियत्कालपर्यन्तं गणनेत्याशङ्क्याह माघशुक्लेति। अत्र दैवज्ञाः पञ्चवर्षात्मकयुगस्य मध्ये कालानां चान्द्रसौरसावननक्षत्राणां ज्ञानं प्रचक्षते कथयन्ति। किंविशिष्टस्य। माघशुक्लप्रपन्नस्य माघशुक्लप्रतिपदि समुद्भूतस्य। पुनः किंविशिष्टस्य। पञ्चमे वर्षे पौषकृष्णसमापिनः पौषकृष्णामायां यस्य समाप्तिर्भवति तस्य। अत्र चान्द्रा मासा गृह्यन्ते येषामारम्भः शुक्लादिः समाप्तिस्तु दर्शन्ति।।५।।

अन्वय - माघशुक्लप्रपन्नस्य पौषकृष्णसमापिनः पञ्चवर्षस्य युगस्य कालज्ञानं प्रचक्षते।

मञ्जुमती व्याख्या -

माघशुक्लप्रपन्नस्य = माघ शुक्ल प्रतिपद में समुद्भूत के, पौषकृष्णसमापिनः = पौषकृष्ण अमावस्या में समाप्त होनेवाले, पञ्चवर्षस्य = पाँच वर्षवाले, युगस्य = युग के (मध्य), कालज्ञानम् = चान्द्र-सौर-सावन, नाक्षत्र काल के ज्ञान को, प्रचक्षते = कहते हैं।

अर्थ-माघ शुक्ल प्रतिपद में सञ्जात पौषकृष्ण अमावस्या को समाप्त होने - वाले पाँच वर्ष के युग के मध्य काल के ज्ञान को कहते हैं।

विशेष-यहाँ चान्द्रमास गृहीत हैं, जिनका आरम्भ शुक्लपक्ष प्रतिपद को तथा समाप्ति अमावस्या को होती है।

किस माघ की शुक्ल प्रतिपदा को पाँचवर्ष वाले युग का आरम्भ होता है-

स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदादियुगं माघस्तपः शुक्लोऽयनंह्युदक्।।६।।

सोमाकरः -

स्वराक्रमेते सोमार्काविति। स्वर्दिव यस्मिन् काले आक्रमेते व्याप्नुतः। कौ। सोमार्कौ। कस्य साकं सह। तथा सवासवौ धनिष्ठायां नक्षत्र इत्यर्थः। तथा च तत्र यदि बृहस्पतिरासीत्। तदा किमित्याह। स्यात् तदादियुगम्। तदादियुगप्रारम्भो भवेत्। तथा तदैव माघो मास ऋतुर्वा भवेत्। तथा स एव तपोमासो भवेत्। तपश्च तपस्यश्चेति श्रुतौ। तथा शुक्लः पक्ष इति वाक्यशेषः। तथा तदेव यस्मादुदगयनं भवेदिति प्रतिज्ञा। ननु यद्येवं कथं ऋतूनां वसन्तो जायते आद्यस्तत्पूर्वाः सर्वाः श्रुतय इति। उच्यते। तावर्णानां क्रमानुष्ठा नाभिधायकत्वेन प्रवृत्ताः। यस्माच्छिशिरस्यैवाजन्म श्रूयते। शिशिराग्रे अग्नेर्जन्मति। तस्मादग्निरभिसृज्यतेऽभमाग्निजन्म यतः स्वय-मनभिव्यक्तरूपमासीत् पश्चाच्च नेषाम--- ततोऽस्य पश्चिमजन्मैतदित्यभि-गतत्वादत एवात्र---कारस्तस्मात्तदाद्यैव मुख्यप्रवृत्तिस्तथाप्येवम्।।६।।

सुधाकरः -

इदानीं कस्य माघस्य शुक्लप्रतिपदि पञ्चवर्षात्मकयुगस्यारम्भ इत्याह स्वराक्रमेते इति। यदा सवासवौ धनिष्ठानक्षत्रसहितौ सोमार्कौ चन्द्रसूर्यौ साकं सह स्वराकाशे आक्रमेते गच्छतस्तदाऽऽदियुगं भवति। अत्रैतदुक्तं भवति। ''यदा रविचन्द्रधनिष्ठानां क्रान्तिवृत्ते ह्येकमेव स्थानं तदाऽऽदिर्युगस्य। न ह्यत्र

धनिष्ठाचन्द्रसूर्यबिम्बानां युतिरपेक्षिता। ज्यौतिषसिद्धान्ते सर्वत्र दर्शादिशब्देन स्थानीययुतिग्रहणात्'' इति बार्हस्पत्यमतम्। कस्यचिद्विशिष्टकालस्य नाम युगमिति प्रसिद्धम्। अतो यस्मिन् काले बिम्बाभिप्रायेण त्रयाणां युतिर्जाता स एव युगादिरिति बहूनां मतम्। क्रान्तिवृत्तस्य समाः सप्तविंशतिभागा एव ज्यौतिषवेदाङ्गे नक्षत्राणि। अतोऽग्रिमश्लोकेन श्रविष्ठापदेन क्रान्तिवृत्ते तत्स्थान-मेवापेक्षितमतोऽत्र बार्हस्पत्यमतमेव समीचीनमिति मन्मतम्। यदा युगादिस्तदैव माघो माघादिः। य एव माघः स एव तपः माघस्तपश्चैकार्थवाचिनौ शब्दा-वित्यर्थः। तपः शब्देन तपो नाम ऋतुरिति बार्हस्पत्यमतं मन्मते न साधु। तपञ्च तपस्यश्च शैशिरावृतूइति श्रुतेः। यदा युगादिस्तदैव शुक्लपक्षादिः। तथा हीति निश्चयेनोदगयनमुदायनादिश्चेति।।६।।

अन्वय-

यदा सवासवौ सोमार्कौ साकं स्वराक्रमेते तदा आदियुगम् माघः शुक्लः तपः उदक् अयनं।

मञ्जुमती व्याख्या -

यदा = जब, सवासवौ = धनिष्ठानक्षत्र सहित, सोमार्कौ = चन्द्र-सूर्य, साकम् = साथ, स्वर = आकाश में, आक्रमेते = गमन करते हैं, तदा = तब, आदियुगम् = आदि युग (होता है), माघः = माघ मास, शुक्लः = शुक्ल पक्ष, तपः = माघ मास, उदक् = उत्तर, अयनं = स्थिति, गति चरत् होती है।

अर्थ -

जब धनिष्ठा नक्षत्र सहित चन्द्रमा और सूर्य साथ-साथ आकाश में गमन करते हैं, तब आदि युग होता है। अर्थात् जब सूर्य-चन्द्र-धनिष्ठा का क्रान्ति वृत्त में एक स्थान हो तब आदि युग होता है। यहाँ धनिष्ठा नक्षत्र चन्द्रमा और सूर्य बिम्ब की युति अपेक्षित नहीं है। यह युगादि ही माघ मास का आदि है। जो माघ है वही तप है। माघ और तप एकार्थवाची शब्द हैं। माघ मास शुक्ल पक्ष प्रतिपद को उदग् अयन होता है।

विशेष - किसी विशिष्ट काल का नाम 'युग' प्रसिद्ध है।

अयन निरूपण -

प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोः सदा।।७।।

सोमाकरः -

प्रपद्येते श्रविष्ठादाविति। सर्वेषु युगेषु सूर्याचन्द्रमसावुदक् प्रवृत्तिं प्रपद्येते। श्रविष्ठादौ प्रथमेंऽशे। तथा सार्पार्धे श्लेषामध्ये ग्रीष्मान्ते सूर्यः दक्षिणां प्रपद्यते। एवं तस्यायने माघश्रावणयोः सर्वकालं पञ्चस्व---:। एवं भूतस्य।।७।।

सुधाकरः -

इदानीमयने आह प्रपद्येते इति। सूर्याचन्द्रमसौ यदा श्रविष्ठादौ धनिष्ठादौ प्रपद्येते तदोदक् उत्तरमयनम्। तथा तौ यदा सार्पार्धे श्लेषार्धे तदा दक्षिणा दक्षिणमयनं भवति। सदा सर्वदाऽर्कस्य सूर्यस्य माघश्रावणयोस्ते उदग्दक्षिणायने भवतः।

अत्रोपपत्त्यर्थं तावज्ज्यौतिषवेदाङ्गसम्बन्धिनो रविभगणादयः प्रदर्श्यन्ते। वराहमिहिरकृतपञ्चसिद्धान्तिकायां पैतामहसिद्धान्ते ये रविभगणादयो विलिखितास्त एव ज्यौतिषवेदाङ्गीया इति (मत्कृता पञ्चसिद्धान्तिकाटीका विलोक्या)।।

तत्रैकस्मिन् युगे रविवर्षाणि = ५ = एतावन्त एव रविभगणाः।

सौरमासाः = ६०।	सौरदिनानि	=	१८००।
चान्द्रमासाः = ६२।	चान्द्रदिनानि	=	१८६०।
क्षयाहाः		=	३०।
सावनदिनानि		=	१८३०।
भभ्रमा वा नक्षत्रोदयाः		=	१८३५।
चन्द्रभगणाः		=	६७।
चन्द्रसावनदिनानि		=	१७६८।
एकस्मिन् सौरवर्षे सावनदिनानि		=	३६६।
एकस्मिन् सौरवर्षे चान्द्रदिनानि		=	३७२।
एकस्मिन् सौरवर्षे नक्षत्रोदयाः		=	३६७।
अथैकस्मादयनाद द्वितीयायनपर्यन्तं सौरदिनानि		=	१८०।

एते सौरांशा वा सौरदिनानि एकनक्षत्रभोगेन त्रयोदशांशैः सत्र्यंशै $^{४०}/_{३}$ भक्ता लब्धान्ययनयोरन्तरे नक्षत्राणि = $\frac{३\times १८०}{४०} = \frac{२७}{२} = १३^{१}/_{२}$।

श्रविष्ठादिगणनया जातं द्वितीयमयनं श्लेषार्धेऽत उपपन्नम्। यद्वा ..... द्वितीयायनपर्यन्तं सौरवर्षार्धं तत्र रवेः सप्तविंशत्यर्धमितानि .... चायं पूर्वागतनक्षत्रसमानि। माघे धनिष्ठागतत्वाद्रवेरुत्तरमयश्लेषार्धगतत्वेन कर्किराशिगतत्वाच्च श्रावणे मासि तस्य दक्षिणमयनः स्फुट।।७।।

अन्वय-

सूर्याचन्द्रमसौ श्रविष्ठादौ प्रपद्येते उदक् सार्पार्धे दक्षिणा सदा अर्कस्तु माघ श्रावणयोः।

मञ्जुमती व्याख्या -

सूर्याचन्द्रमसौ = सूर्य और चन्द्रमा (जब), श्रविष्ठादौ = धनिष्ठा नक्षत्र के प्रथमांश में, प्रपद्येते = प्राप्त होते हैं, (तब) उदक् = उत्तरायण (होता है) सार्पार्धे = श्लेषा के मध्य में (दोनों प्राप्त होते हैं तब), दक्षिणा = दक्षिणायन (होता है), सदा = सर्वदा, अर्कस्तु = सूर्य तो, माघ श्रावणयोः = माघ-श्रावणमास में उत्तरायण दक्षिणायन होते हैं।

अर्थ-

सूर्य और चन्द्रमा जब धनिष्ठा नक्षत्र के प्रथमांश में प्राप्त होते हैं तब उत्तरायण होता है और श्लेषा के मध्य में दक्षिणायन सूर्य सर्वदा माघ और श्रावण (मासों में) क्रमशः उत्तरायण और दक्षिणायन होता है।

विशेष- सूर्य बारह महीनों में अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों का भोग करते हैं। एक अयन के आरम्भ से दूसरे अयन के आरम्भ तक के समय में १३ $^{१}/_{२}$ नक्षत्र भोग करेंगे। धनिष्ठा नक्षत्र के आदि में उत्तरायण का आरम्भ प्रतिपादित है। अतएव धनिष्ठा से १३ $^{१}/_{२}$ नक्षत्र भोग के बाद सूर्य आश्लेषा नक्षत्र के मध्य में जब उपस्थित होते हैं तब दक्षिणायन का आरम्भ होता है। अर्थात् माघमास में उत्तरायण तथा छह मास बाद श्रावण मास में दक्षिणायन का आरम्भ होता है।

उत्तरायण और दक्षिणायन के दिनमान और रात्रिमान-

घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्त्ययमेन तु।।८।।

सोमाकरः -

घर्मवृद्धिरपां प्रस्थ इति। तस्य सूर्यस्य उदग्गतौ निमित्ते घर्मवृद्धिर्भवतीति

वाक्यशेषः। घर्म इत्यहर्नाम। घर्मः। घ्रंसः। घृणिः इत्यहर्नामसु पठितम्। तथा क्षपाह्रासः। रात्रिः। क्षपा। श्यावी। शर्वरी। इति रात्रिनामसु पठितम्। तदाप्रभृति दिनानि वर्धन्ते रात्रिश्चापचीयते। एवमेव तस्य दक्षिणेतौ विपर्यासः। दक्षिणायने दिनह्रासो रात्रिवृद्धिश्चेत्युक्तं भवति। कियती वृद्धिरित्याह षण्मुहूर्त्ती षण्मुहूर्त्ताः।

तथा च गर्गः –

उदग्गतेऽर्के षण्मासास्तपादीनार्कमानजाः।
क्रमादेद्रात्रयः षट्संख्या दिनवृद्धिमिति।।
उदग्गतेऽर्के षण्मासास्तपाद्या अर्कमानजाः।
क्रमादह्नां मुहूर्त्ताः स्युः षट्संख्या दिनवृद्धये।।

एवमयने वृद्धिह्रासौ। तथा च सापि कियतीत्याह। प्रस्थो द्वात्रिंशत्पुलाकमित्यर्थः। एवं पञ्चानामपि युगानामहः सामान्यलक्षणमाह।।८।।

सुधाकरः-

इदानीमयनयोर्दिनरात्रिमाने आह घर्मवृद्धिरिति। उदग्गतावुत्तरायणे रवावपां पयसां प्रस्थमात्रं प्रत्यहं घर्मवृद्धिर्दिनवृद्धिर्भवति तथा तदैव प्रस्थमात्रं क्षपाह्रासो रात्र्यपक्षयो भवति। दक्षिणेतौ दक्षिणायने च विपर्यासो भवति, प्रत्यहं जलप्रस्थसमो दिनह्रासस्तथा रात्र्युपचयो भवतीत्यर्थः। अयनेन तु एकस्मादयनाद् द्वितीयायनेन..... षण्मुहूर्त्ती। मुहूर्त्तो घटिकाद्वयमित्यनेन द्वादशघटिंकाल्यौ दिनरात्र्योर्वृद्धिक्षयौ भवतः। अत उत्तरायणारम्भे परमाल्पं दिनमानम् = नक्षत्र नाडिका। दक्षिणायनारम्भे च परमाधिकं दिनमानम् = ३६ नाडिकाः। एवं विपर्ययाद्रात्रिमाने च।

अत्रोपपत्तिः।

द्रोणास्तु कार्याः खलु षोडशांशः स्यादाढको द्रोणचतुर्थभागः।
प्रस्थश्चतुर्थांश इहाढकस्य प्रस्थाङ्घ्रिराद्यैः कुडवः प्रदिष्टः।।
इति भास्करपाटीगणितप्रसिद्धपरिभाषाभिस्तथा
पलानि पञ्चाशदपां धृतानि तदाढकं द्रोणमतः प्रमेयम्।
त्रिभिर्विहीनं कुडवैस्तु कार्यं तन्नाडिकायास्तु भवेत प्रमाणम्।।

इति ज्यौतिषवेदाङ्गचतुर्विंशश्लोकेन त्रिभिः कुडवैर्विहीनं द्रोणं नाडिकायाः प्रमाणम्।

तथा

५० प० = १ आढकः। ४ आ० = १ द्रो० = २०० प०।

४ प्र० = १ आ० = ५० प ∴ प्र० = $१२^{१}/_{२}$ प०।

४ कु० = १ प्र० = $१२^{१}/_{२}$ प ∴ कु० = $३^{१}/_{८}$ पलानि

अतः ३ कुड० = $९^{३}/_{८}$ पलानि।

एका नाडिका = १ द्रो०-३ कु०=२०० प०-$९^{३}/_{८}$ प०=$१९०^{५}/_{८}$ प०

$\frac{१९०^{५}/_{८}}{१२^{१}/_{२}}$ प्रस्थाः = $\frac{१५२५ \times २}{८ \times २५}$ प्र०= $\frac{६१}{४}$ प्रस्थाः।

द्वादशघटिकासु प्रस्थमानम् = १२ × $\frac{६१}{४}$ = १८३।

अथायनयोर्मध्ये सूर्यसावनदिनानि सौरवर्षसावनदिनार्धस्य = $३६६/_{२}$ = १८३। ततोऽनुपातो यदि १८३ सावनदिनैः १८३ प्रस्थाः तदैकेन सावनदिनेन किं लब्धिः प्रस्थमितौ प्रत्यहं दिनरात्र्योर्वृद्धि त्युपपद्यम्। यथा पयसां षष्टिपलैः पूर्णा जलघटी प्राचीनैः श्रीपत्यादिभिर्निर्मिता यत्राधश्छिद्रेण प्रतिपलं पलमात्रं जलं बहिः पतति तथा ज्यौतिषवेदाङ्गसमये तथैकं जलयन्त्रमासीत् यत्र $६१/_{४}$ प्रस्थमितं जलमधश्छिद्रेणैकघटीतुल्येन कालेन निरसरत्। तत्र प्रस्थमितजलनिःसरणकालश्च पानीयपलकालवत् प्रस्थसंज्ञ उच्यते। एवमाढकतुल्यजलनिःसरणकाल आढकसंज्ञः। एवमन्येऽपि कालसंज्ञका बोध्या इति। एवमत्र ज्यौतिषवेदाङ्गस्य यत्र रचना जाता तत्र परमं चरघटीमानं घटिकात्रयं सिध्यति ततो 'दिग्नागसत्र्यंशगुणैर्विनिघ्नी' इत्यादिभास्करप्रकारवैपरीत्येन तत्र देशे स्वल्पान्तरात् पलभाऽङ्गुलात्मिका = १८०/२१$^{१}/_{३}$ = $५४०/_{६४}$ = $१३५/_{१६}$ = $८^{७}/_{१६}$। अथ चापीयत्रिभुजेन चरज्या = अक्षांक्षस्पर्शरेखा × क्रान्तिस्पर्शरेखा ÷ त्रिज्या।

अत्र नाडीत्रयं परमं चरं परमक्रान्तिं च जिनांशसमां गृहीत्वा सूक्ष्मज्याविधिना लघुरिक्थग्रहणेन

लास्पअ = लाज्याच - लास्पक्रां + १०। अनेन समीकरणेन सूक्ष्मा अक्षांशाः = ३४°। ४५'। ४०''।। ८।।

अन्वय -

उदग्गतौ अपां प्रस्थः घर्मवृद्धिः क्षपाह्रासः दक्षिणेतौ विपर्यासः अयनेन षण्मुहूर्त्ती।

मञ्जुमती व्याख्या -

उदग्गतौ = उत्तरायण सूर्य के होने पर, अपां प्रस्थः = जल के प्रस्थ परिमाण मात्र, घर्मवृद्धिः = दिन बड़ा (होता है), (तथा जल के प्रस्थ परिमाण मात्र) क्षपाह्रासः = रात्रि घटती है, दक्षिणेतौ = दक्षिणायन सूर्य गति होने पर, विपर्यासः = पूर्व के विपरीत होता है, अयनेन = उत्तरायण दक्षिणायन द्वारा, षण्मुहूर्त्ती = छह मुहूर्त का (दिन रात्रि के वृद्धि और ह्रास में विपर्यास होता है)।

अर्थ-

सूर्य के उत्तरायण अवस्थिति में जल के प्रस्थ परिमाण मात्र दिन बड़ा और रात छोटी होती है। सूर्य के दक्षिणायन होने पर ठीक इसके विपरीत होता है। अर्थात् जल प्रस्थापरिमाण मात्र रात्रि बड़ी और दिन छोटा होता है। अयन से रात और दिन में छह मुहूर्त का (१२ घड़ी) अन्तर होता है। उत्तरायण के आरम्भ में परमाल्प दिन मान २४ नाड़ी तथा दक्षिणायन के आरम्भ में परमाधिक दिनमान ३६ नाड़ी बहुमत है। ऐसे ही उत्तरायण में परमाधिक रात्रिमान ३६ नाड़ी तथा दक्षिणायन में परमाल्प रात्रिमान २४ नाड़ी होता है।

विशेष-जल के वष्टि पलों से पूर्ण जलघटी का प्राचीनों ने निर्माण किया था जिसके नीचे के छेद से प्रतिपल पलमात्र जल बाहर गिरता था, उसी प्रकार ज्योतिष वेदाङ्ग के समय एक जल पात्र का जहाँ $^{६१}/_{४}$ प्रस्थमात्र जल निचले छेद से एक घटी तुल्य समय में निकलता था। प्रस्थमात्र जलनि:सरण काल पानी के पल के समय समान प्रस्थ कहा जाता है।

एक युग में दस सूर्य अयनों में तिथियाँ-

प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदश।
चतुर्थे दशमं चैव द्वियुग्माद्यं बहुलेऽप्यृतौ।।९।।

सोमाकरः -

प्रथमं सप्तमं चाहुरिति। एतानि आद्यानि दिनानि द्वे द्वे युगाब्दानां पञ्चानाम्।

कथम्। प्रथमं सप्तमं चाद्यस्य माघशुक्लप्रतिपत् श्रावणशुक्लसप्तमी च तयोरुदगयनदक्षिणायने संवत्सरस्येत्याहुर्गर्गादयः। तथा द्वितीयस्य त्रयोदशं शुद्धं चतुर्थं कृष्णम्। एवं तृतीयस्या दशमं कृष्णम्। द्विरेवं पुनर्बहुलेऽप्यृतौ कृष्णपक्षकाले बहुलचन्द्रस्य कला लीयन्ते। ततो बहुलमपरपक्षः। कथम्। प्रतिपदादि द्वे द्वे इत्यर्थः। इतरास्मिन् श्लोके स्फुटतरं गर्गवाक्यैः प्रतिपादयिष्यामः।।९।।

सुधाकरः -

अथैकस्मिन् युगे दशसु रव्ययनेषु तिथीराह प्रथममिति। प्रथमं सप्तमं त्रयोदशं चतुर्थं दशमं तिथिं द्विद्विवारमाचार्याअयनाद्यमाहुः। अत्रैतदुक्तं भवति। १। ७। १३। ४। १०। एतास्तिथयो द्विः स्थाप्यास्तदा अयनाद्यास्तिथयः स्युः। प्रथममयनं प्रतिपदि द्वितीयं सप्तम्यां तृतीयं त्रयोदश्यां चतुर्थं चतुर्थ्यां पञ्चमं दशम्याम्। पुनः षष्ठाद्यं प्रतिपदादिषु भवतीत्यर्थः। तत्र युग्मं तिथिमानं चतुर्थी दशमी च बहुले कृष्णपक्षे ज्ञेयम्। अन्यानि तिथिमानानि चानुक्तत्वात् शुक्लपक्षे बोध्यानीति। अपि निश्चयेनैवमृतौ षट्तिथौ षडधिके तिथावेकायनतिथेरपरायनतिथिर्भवतीत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। एकायनादपरायनपर्यन्तं वर्षचान्द्रदिनार्धसमास्तिथयो भवन्ति। एकस्मिन् सौरवर्षे चान्द्रतिथयः=३७२। एतदर्धमानम् =१८६। अत्र मासानां प्रयोजनाभावात् त्रिंशत्तष्टे ह्येकायनतिथेरपरायनतिथिः षडधिका। तथाकृते जाता अयनाद्यास्तिथयः।१। ७। १३।१९। २५। १। ७। १३। १९। २५।।

अत्र चतुर्थी पञ्चमी संख्या तथा नवमी दशमी संख्या च पञ्चदशतिथिवियोजनेन जाता कृष्णपक्षीया चतुर्थी दशमी च। अत्र शुक्लपक्षादिमासो गृहीतः सप्तमश्लोके माघश्रावणयोः सदेत्युक्तत्वात्। प्रथममयनाद्यं माघशुक्लप्रतिपदि। द्वितीयमयनं श्रावणशुक्लसप्तम्याम्। तृतीयं माघशुक्लत्रयोदश्याम्। चतुर्थं श्रावणकृष्णचतुर्थ्याम्। पञ्चमं च माघकृष्णदशम्यां भवति। एवं नवमदशमे अपि श्रावणकृष्णचतुर्थीमाघकृष्णदशम्योः क्रमेण भवत इति सर्वं निरवद्यम्। इदं बार्हस्पत्यव्याख्यानं समीचीनम्। तत्र ऋतुशब्देन मासो मन्यते न समीचीनः किन्तु ऋतुशब्देनात्र प्रसिद्धा षट् संख्या ग्राह्येति।।९।।

अन्वय -

अयनाद्यं प्रथमं सप्तमं त्रयोदशम् चतुर्थम् दशमम् द्विः युग्मम् बहुलेऽपि

ऋतौ आहुः।

एक युग में दस सूर्य अयनों में तिथियाँ-

१-माघ शुक्ल प्रतिपद	२-श्रावण शुक्ल सप्तमी
३-माघ शुक्ल त्रयोदशी	४-श्रावण कृष्ण चतुर्थी
५-माघ कृष्ण दशमी	१-३ माघ शुक्ल प्रतिपद
७-५ श्रावण शुक्ल सप्तमी	१३.३ माघ शुक्ल त्रयोदशी
४-५ श्रावण कृष्ण चतुर्थी	१०- माघ कृष्ण दशमी

मञ्जुमती व्याख्या -

अयनाद्यम = अयन की आदि तिथि, प्रथमम् = माघ शुक्ल प्रतिपद्, सप्तमम् = श्रावण शुक्ल सप्तमी, त्रयोदशम् = माघ शुक्ल त्रयोदशी, चतुर्थम् = श्रावण कृष्ण चतुर्थी, दशमम् = माघ कृष्ण दशमी, द्विः = दबार, युग्मम् = चतुर्थी और दशमी, बहुलेऽपि = कृष्ण पक्ष की, ऋतौ = मास या ऋतुएँ आहुः = कहा है।

अर्थ-

प्रतिपद्, सप्तमी, त्रयोदशी, चतुर्थी, दशमी तिथि दो-दो बार अयन की आदि तिथि हैं। चतुर्थी और दशमी महीने के कृष्ण पक्ष की ग्राह्य हैं।

विशेष-सुधाकर के मत से ऋतु का अर्थ प्रसिद्ध छह ऋतुएँ हैं। यहाँ शुक्ल पक्ष से ही आदि मास का ग्रहण किया गया है, ७वें श्लोक में माघश्रावणयोः कथनानुसार। पहली अयनादि तिथि, माघ शुक्ल प्रतिपद, दूसरी अयनादि तिथि श्रावण शुक्ल सप्तमी, तीसरी माघ शुक्ल त्रयोदशी, चौथी श्रावण कृष्ण चतुर्थी, पाँचवीं माघ कृष्ण दशमी, छठी माघ शुक्ल प्रतिपद, सातवीं श्रावण शुक्ल सप्तमी, आठवीं माघ शुक्ल त्रयोदशी, नवीं श्रावण कृष्ण चतुर्थी, दसवीं माघ कृष्ण दशमी।

अयनों में नक्षत्र और ऋतु नक्षत्र-

वसुस्त्वष्टा भवोऽजश्च मित्रः सर्पोऽश्विनौ जलम्।
धाता कश्चायनाद्याः स्युरर्धपञ्चमभस्त्वृतुः।।१०।।

सोमाकरः -

वसुस्त्वष्टा भवोऽजश्चेति। वसुर्धनिष्ठा देवतोपलक्षिता। एवं त्वष्टा चित्रा। भवो रुद्र आर्द्रा। अजः पूर्वप्रोष्ठपदाः। मित्रोऽनुराधाः। सर्प आश्लेषाः। अश्विनावश्वयुजो। जलं पूर्वाषाढाः। धाता उत्तरा फाल्गुनी धातार्यमेति

मन्त्रवर्णात्। को रोहिणी। एवमेते ऋक्षाः। एतेनैव क्रमेणायनाद्याः स्युर्भवेयुः। एवमप्यर्धपञ्चमभस्त्वृतुः। ऋतौ ऋतौ सार्धाश्चत्वार ऋक्षा भवन्ति। वक्ष्यमाणनक्षत्रैर्जावाद्यैः। एतस्मिन्नर्थे प्रतिप्रत्यर्थं विस्तरेणाह गर्गः।

तद्यथा-

अयनान्यृतवो मासाः पक्षास्तृक्षं तिथिं दिनम्।
तत्त्वतो नाधिगम्यन्ते यदाब्दो नाधिगम्यते।।१।।

यदा तु तत्त्वतोऽब्दस्य क्रियतेऽधिगमो बुधैः।
तदैवैषाममोहः स्यात् क्रियाणां चापि सर्वशः।।२।।

तस्मात् संवत्सराणां तु पञ्चानां लक्षणानि च।
कर्माणि च पृथक्त्वेन दैवतानि च वक्ष्यति।।३।।

यदा माघस्य शुक्लस्य प्रतिपद्युत्तरायणम्।
सहोदयं श्रविष्ठाभिः सोमार्कौ प्रतिपद्यतः।।४।।

तदा नभस्य सप्तम्यां क्रियते दक्षिणायनम्।
सार्पार्धे कुरुते युक्तिं चित्रायां च निशाकरे।।५।।

प्रथमः सोऽग्निदैवत्यो नाम्ना संवत्सरः स्मृतः।
यदा माघस्य शुक्लस्य त्रयोदश्यामुदग्राविः।।६।।

युक्ते चन्द्रमसा रौद्रे वासत्वं प्रतिपद्यते।
चतुर्थ्यां नभसः कृष्णे तदार्को दक्षिणायनम्।।७।।

सार्पार्धे कुरुते सूर्यस्त्वजयुक्ते निशाकरे।
द्वितीयश्चार्कदैवत्यः स नाम्ना परिवत्सरः।।८।।

कृष्णे माघस्य दशमी वासवादौ दिवाकरः।
उदीचीं दिशमातिष्ठेत मैत्रस्थे कृष्णतेजसि।।९।।

नभसश्चातिवर्तेत शुक्लस्य प्रथमे तिथौ।
चन्द्रार्काभ्यां सुयुक्ताभ्यां सार्पार्धे वायुदैवतम्।।१०।।

तदा तृतीयं तं प्राहुरिदासंवत्सरं जनाः।
सप्तम्यां माघशुक्लस्य वासवादौ दिवाकरः।।११।।

अश्विनीसहिते सोमे यदाशामुत्तरां व्रजेत्।
सौम्ये चाप्ये च संयुक्ते सार्पार्धस्थो दिवाकरः।।१२।।

व्रजेत याम्यां शुक्लस्य श्रावणस्य त्रयोदशीम्।
चतुर्थमिन्दुदैवत्यं प्राहुश्चाप्यनुवत्सरम्।।१३।।

फाल्गुनीमुत्तरां प्राप्ते सोमे सूर्ये च वासवे।
यद्युत्तरायणं कृष्णे चतुर्थ्यां तपसो भवेत्।।१४।।

श्रावणस्य च कृष्णस्य सार्पार्धे दशमो पुनः।
रोहिणीसहिते सोमे रवेः स्याद्दक्षिणायनम्।।१५।।

इद्वत्सरः स विज्ञेयः पञ्चमो मृत्युदैवतः।
एवमेतद्विजानीयात् पंञ्चवर्षस्य लक्षणम्।।१६।।

दृष्टा स्वरूपं युक्तस्य तद्वर्षमिति निर्दिशेत। इति।

अर्धपञ्चमभस्त्वृतुरितीह प्रतिज्ञा यस्मादृतुसंख्यायां विप्रतिपत्तिराचार्याणाम्। पञ्चतंत्रः संवत्सरस्येति च ब्राह्मणम्। तथा गर्गस्त्रय ऋतव इत्याह। कृष्णात्रेयः षट् द्वादशेति। नारदश्चतुर्विंशतिरित्याह। भागुरिस्त्रीणि शतानि सषट्षष्टीनीत्याह। क्रौष्टुकिः न सर्वे ह्येते मता ऋतव ऋषिभिरिति। एवमिहोक्तऋतुर्ऋक्षं च।।१०।।

सुधाकरः -

इदानीमयनेषु नक्षत्राणि ऋतुनक्षत्राणि चाह वसुरिति। वसुर्धनिष्ठा। त्वष्टा चित्रा। भवो रुद्र आर्द्रा। अज एकपात्। मित्रोऽनुराधा। सर्प आश्लेषाः। अश्विनावश्विनी। जलं पूर्वाषाढा। अर्यमा उत्तरफाल्गुन्यः। को रोहिणी। एता अयनाद्याश्चन्द्रोडवः स्युः। चतुश्चार्धपञ्चमभः। पञ्चमभस्य यदर्धं सार्धवेद = ४$^{१}/_{२}$ सूर्यनक्षत्राणि चैकर्तौ भवन्ति।

अत्रोपपत्तिः। एकस्मिन् युगे चन्द्रनक्षत्राणि = ६७ × २७ = १८०९। दशभिर्हृतानि लब्धान्येकस्मिन्नयने नक्षत्राणि = १८०$^{९}/_{१०}$। सप्तविंशतितष्टानि = १८$^{९}/_{१०}$। एकद्वित्र्यादिगुणानि १८$^{९}/_{१०}$। ३७ $^{८}/_{१०}$। ५६$^{७}/_{१०}$। ७५$^{६}/_{१०}$। ९४$^{१}/_{२}$। ११३$^{४}/_{१०}$। १३२$^{३}/_{१०}$। १५१$^{२}/_{१०}$। १७०$^{१}/_{१०}$। १८९। एतानि सप्तविंशतितष्टानि जातानि १८$^{९}/_{१०}$। १०$^{८}/_{१०}$। २$^{७}/_{१०}$। २१$^{६}/_{१०}$। १३$^{१}/_{२}$। ५$^{४}/_{१०}$। २४$^{३}/_{१०}$। १६$^{२}/_{१०}$। ८$^{१}/_{१०}$।०। धनिष्ठात् एतत्संख्यान्तरचन्द्रनक्षत्रेषु अयनानि भवन्ति। यथा धनिष्ठात एकोनविंशतितमनक्षत्रे चित्रायामन्यदयनम्। धनिष्ठात एकादशे नक्षत्रे आर्द्रायां ततोऽन्यत्।

धनिष्ठातस्तृतीये नक्षत्रे पूर्वभाद्रपदायां ततोऽप्यन्यदयनम्। एवमन्यान्यानीत-चन्द्रनक्षत्रेषु भवन्ति। अथैकस्मिन् वर्षे सूर्यनक्षत्राणि = २७। षड्भिर्हतानि लब्धान्ये कर्त्तौ सूर्यनक्षत्राणि = $^{२७}/_{६}$ = $४^{१}/_{२}$ अत उपपचं सर्वम्।।१०।।

अन्वय -

वसुः त्वष्टा भवः अजः च मित्रः सर्पः अश्विनौ जलम् धाता कः अयनाद्याः अर्धपञ्चमभस्तु ऋतुः।

मञ्जुमती व्याख्या -

वसुः = धनिष्ठा, त्वष्टा = चित्रा, भवः = आर्द्रा, अजः = पूर्वाभाद्रपदा, च = और, मित्रः = अनुराधा, सर्पः = आश्लेषा, अश्विनौ = अश्विनी, जलम् = पूर्वाषाढ़ा, धाता = उत्तराफाल्गुनी, कः = रोहिणी, (इस प्रकार ये नक्षत्र इसी क्रम से) अयनाद्याः = अयन के आदि में होते हैं, अर्धपञ्चमभस्तु = $४^{१}/_{२}$ नक्षत्र, ऋतुः = दो-दो माह की प्रसिद्ध ऋतु (होती है)

अर्थ-

देवता से उपलक्षित धनिष्ठा, चित्रा, आर्द्रा, पूर्वाभाद्रपद, अनुराधा, आश्लेषा, अश्विनी, पूर्वाषाढा, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी क्रमशः पञ्चसम्वत्सरमय युगाब्द अयनों के चान्द्र नक्षत्र होते हैं। एक ऋतु में $४^{१}/_{२}$ सूर्य नक्षत्र होते हैं।

मासान्तर में दिनानयन और पर्व विशेष का कथन-

एकान्तरेऽह्नि मासे च पूर्वान् कृत्वादिरुत्तरः।
अर्धयोः पञ्चपर्वाणां मृदू पञ्चदशाष्टमौ।।११।।

सोमाकरः-

पुनरेकान्तरेऽह्नि यस्मिन्नहनि सूर्यसङ्क्रमणं तस्मादह्नस्तृतीयेऽह्नि ऋतुरन्यो भवतीति वाक्यशेषः। कथम्। मासे च मासमतिक्रम्य तं द्वितीयं तृतीयमिति। तस्मादर्धपञ्चमभस्त्वृतुरिति द्वावेवोक्तौ। यस्माद्भचोदनमप्याह। पूर्वान् कृत्वादिरुत्तरः। उत्तर आर्द्रादिर्वक्ष्यमाणऋक्षः। स एकान्तरेऽह्नि मासे चापि भवेत्। तत अश्विन्युपलसितमाश्वयुज्यां तत् एक्रमतिक्रम्यान्तराणां कृत्तिकायुक्ता कार्त्तिकी भवेदित्युत्तरमेव। अथवान्यो वा ऋतुः। एकान्तरे च दिने मासे च। एवमृतावन्यस्मिन्। कथम्। पूर्वान् जावादीन् पञ्च पूर्वान् कृत्वा अतिक्रम्येत्यर्थः। क्व। पञ्चपर्वाणां पक्षाणामर्धसन्धीनां वक्ष्यमाणांशकल्पनया मध्ये पञ्चदशी-

प्रतिपदोर्भवेदित्यर्थः। एतदुक्तं भवति। जाविति चोदिताश्विनी यस्मिन् पर्वणि विहिता तस्मादुत्तरं पञ्च पञ्चर्क्षान् पञ्च पर्वाण्यतिक्रम्य भरण्यादींश्च ऋक्षांस्ततो द्रेति चोदितार्द्रा भवति। भरण्यादयश्चान्तरपर्वसु यागदिवसेष्वित्युक्तं भवति। ते च पुनरेकान्तरेऽह्नि मासे च पौर्वापर्येण भवन्ति। तद्यथा च। यत्र ह्यश्विनी ततः पुनः षड्विंशेऽह्नि पञ्चविंशे वा भवेत्।

तथा च गर्गः –

यावता त्वेव कालेन भवर्गं चिणवात्मकम्।
भुङ्क्ते चन्द्रः स आर्क्षो मास्तस्यार्धं पक्ष उच्यते।।

यतश्चत्वारि मानानि तानि तु गर्गवाक्यैर्दर्शयिष्यामि।

तद्यथा-

सावनं चापि सौर्यं च चान्द्रं नाक्षत्रमेव च।
चत्वार्येतानि मानानि यैर्युगं प्रविभज्यते।।१।।

आहोरात्रात्मकं लोक्यं मानं च सावनं स्मृतम्।
अतश्चैतानि मानानि प्रकृतानीह सावनात्।।२।।

ततः सिद्धान्यहोरात्राण्युदयाश्चाप्यथार्कजाः।
त्रिंशच्चाष्टादशशती दिनानां च युगे स्मृता।।३।।

मासस्त्रिंशदहोरात्राः पक्षोऽर्धं सावनं स्मृतम्।
अहोरात्रलवानां तु चतुर्विंशं शतात्मकम्।।४।।

सौर्यं तु सूर्यसम्भूतं परिसर्पति भास्करे।
यावता ह्युत्तरां काष्ठां गत्वा गच्छति दक्षिणाम्।।५।।

कालेन सोऽब्दस्तस्यार्धमयनं तु त्रयोर्त्तवः।
ऋतोरर्धो भवेन्मासस्त्रिंशद्भागो दिनोऽर्कजः।।६।।

तस्यार्धमर्कजः पक्षस्तस्मात् पञ्चदशं दिनम्।
शतं लवानां षड्विंशं लवाः पञ्चदशस्तथा।।७।।

यतश्चाष्टादशशतं (१८००) युगमार्कैर्दिनैः स्मृतम्।
वृद्धिक्षयाभ्यां सम्भूतं चान्द्रं मानं हि चन्द्रतः।।८।।

लवं लवमथोनेन सावनेन निशाकरः।
क्षयवृद्धिमवाप्नोति स चान्द्रा मास उच्यते।।९।।

तस्यार्धं पार्वणः पक्षस्तस्मात् पञ्चदशी तिथिः।
प्रमाणेन लवानां तु द्वाविंशं शतमुच्यते (१२२)।।१०।।

सोमस्याष्टादशशती युगे षष्ट्यधिका (१८६०) स्मृता।
यावता त्वेव कालेन भवर्गं त्रिणवात्मकम्।।११।।

भुङ्क्ते चन्द्रः स आर्क्षो मास्तस्यार्धं पक्ष उच्यते।
आर्क्षात् पक्षात् पञ्चदशं नाक्षत्रं दिनमुच्यते।।१२।।

प्रमाणेन लवानां तु द्वादशं शत (११२) मुच्यते।
षष्ट्या तु सप्तषष्ट्यंशे $^{६०}/_{६७}$ नाधिकोऽस्मिन् परो लवः।।१३।।

दशोत्तरे द्वे सहस्रे (२०१०) युगमार्क्षैर्दिनैः स्मृतम्। इति।

एतदुत्तरप्रतिपत्त्यर्थमाश्वलायनोदाहृतम्। यस्मादेतदेवाभिप्रेत्येदं शास्त्रं प्रवृत्तम्। वक्ष्यति च 'उदया वासवस्य स्युः'। इति एतेनोत्तरमन्यदूहितुं शक्यते। तेषां वक्ष्यमाणानामृक्षाणां मृदू पञ्चदशाष्टमावनुराधा तिष्यं च। 'अनुराधा चतुस्तारं मृदु मित्रोऽत्र दैवतम्'-इति। एतत् स्वरूपसूचनं ''क्रूराण्युयाणि च'' वक्ष्यति यस्मादेवं तस्मात्।।११।।

सुधाकरः -

इदानीं मासान्तरे दिनानयनं पर्वविशेषं चाह एकान्तरेऽह्नि मासे चेति। पूर्वान् वारानादिं कृत्वा एकान्तरेऽह्नि मासे चोत्तरो दिवसो ज्ञेयः। यस्मिन् चान्द्रे मासे यो वारस्तदग्रिमे चान्द्रे मासे तदुत्तरो वारो ज्ञेयः। यथा यदि प्रथमचान्द्रमासारम्भे रविवारस्तदा द्वितीयमासारम्भे चन्द्रवारो भविष्यति स्वल्पान्तराच्चन्द्रमासस्यैकोनत्रिंशत्सावनदिनात्मकत्वात्। अत्र वारगणनया यदि वारेऽन्तरं पतति तदा वारः सैकः कार्य इति ज्योतिर्विदामहर्गणवारानयनवत् स्फुटमेव। वक्ष्यमाणचतुर्दशश्लोके यानि दिवसस्य पञ्चभागात्मकानि पञ्चपर्वाणि तेषामर्धयोः खण्डयोर्यौ पञ्चदशाष्टमौ खण्डौ तत्र रवेस्तेजोमन्दात् मृदू ज्ञेयौ। तौ मृदुसंज्ञौ ज्ञेयावित्यर्थः।।११।।

अन्वय -

पूर्वान् आदिं कृत्वा एकान्तरेऽह्नि मासे च-उत्तरः (ज्ञेयः) पञ्चपर्वाणाम् अर्धयोः पञ्चदशाष्टमौ मृदू (ज्ञेयौ)।

मञ्जुमती व्याख्या -

पूर्वान् = प्रथम, वारान् = दिनों को, आदिम् = पहले, कृत्वा = कर, एकान्तरेऽह्नि = एक दिन के अन्तरवाले दिन में, मासे च = और एक अन्तरवाले महीने में, उत्तरः = अग्रिम (दिन समझें) पञ्चपर्वाणाम् = दिन के पाँच भागात्मक पर्वों के, अर्धयोः = खण्डों में, पञ्चदशाष्टमौ = पन्द्रहवाँ, आठवाँ खण्ड, मृदू = मृदुसंज्ञक समझें।

अर्थ -

पूर्व के दिनों को आदि में कर एक का अन्तर दिन या मास में करने से अगला दिवस समझा जाय। जिस चान्द्रमास में जो वार हो-उसके आगे के चान्द्रमास में उस वार से आगे का वार समझा जाय। जैसे यदि पहले चान्द्रमास के आरम्भ में यदि रविवार है तो दूसरे चान्द्रमास के आरम्भ में सोमवार होगा। वार गणना द्वारा यदि वार में अन्तर पड़े तो वार को एक के साथ करना चाहिए। दिन के पाँच भागों वाले पाँच पर्वों के आधे खण्डों में जो पन्द्रहवाँ और आठवाँ खण्ड है, वहाँ सूर्य के तेज के मन्द होने के कारण मृदु जाने।

पर्व में अंश साधन-

दुहेयं पर्व चेत् पादे पादस्त्रिंशत् तु सैकिका।
भागात्मनापवृज्यांशान् निर्द्दिशेदधिको यदि।।१२।।

सोमाकरः -

दुहेयं पर्व चेत् पाद इति। पर्वार्धमासः। यथाह नैरुक्तः। अर्धमासः पर्व देवा अस्मिन् प्रीणन्तीति वचनात्। तच्चेद्यदि दुहेयं गर्गोक्तलवादिकल्पनयाऽधिकमासार्थं यच्छिष्यते तत् संख्यायैकं कल्पयेत्।

यथाह गर्गः -

ततः प्रक्षीयमाणस्य तिथिरित्येव संज्ञता।
द्विलवोनमहोरात्रं सोमस्य गतिरुत्तमा।। इति।

एतदूनं कियद्भवेदित्याह। पाद इति। तदप्यप्रतीतमित्याह पादस्त्रिंशत् तु सैकिका नाडिकेति वाक्यशेषः। तत्राधिकमासनिष्पत्तिः।

यथाह गर्गः -

द्विलवक्षयसम्भूतो द्वाषष्टिर्भवते तिथिः।
ऋतोरन्तमनुप्राप्य हीनरात्रेति नामतः।।

यस्मात् तस्मादेतावन्मात्रमर्धमासस्याह्ना ह्रसते तस्य भागात्मनापवृज्यांशान् निर्दिशेत्। सङ्कलितं व्यवस्थायैकत्र सङ्कलयेदंशं लवानां कुतस्तदधिकदिनानां लुप्तत्वादिति वाक्यशेषः। एवं तूक्तभागानां विसूचितानामुत्तरत्र वक्ष्यमाणानामंशानाम्।।१२।।

सुधाकरः -

अथ पर्वणि अंशसाधनमाह द्योरिति। चेद् द्योर्दिनस्य पादे पर्व भवेत् तर्हि गणितागतमेवांशमानं ज्ञेयम्। यद्यंशमानं पादतोऽधिकं तदा तेभ्ययोंऽशेभ्यः पादांशानपवृज्य वर्जयित्वा शेषानंशान् गणको निर्दिशेत्। पादे कियन्तांऽशा इत्याह। पादस्त्रिंशत् तु सैकिकेति। भागात्मना विभागावयवेन पादे एकत्रिंशद्भवति। अत्रैतदुक्तं भवति। ज्यौतिषवेदाङ्गे सावनदिनस्य नक्षत्रादिमानस्य च चतुर्विंशत्यधिकशतभागाः कृताः सन्ति। ते च भागा अंशा वोच्यन्ते। अतो दिनादिचतुर्थांशे एकत्रिंशद्भागा भवन्ति। सावनदिनेन सावनमहोरात्रं गृह्यते। अतः पादांशा मध्याह्नपर्यन्तं भवन्ति। ततोऽधिकेभ्यभागेभ्यः पादांशान् विशोध्य शेषांशा दिनोत्तरदले बोध्याः। एवं रात्रावपि निजपादीया भागाः साधनीयाः। यथा यदि रात्रिपूर्वार्धे पर्वमानं दशभागमितं तदा सूर्योदयात् पाददयमिते दशपादाधिके पर्वमाने पादयोः स्वतो ज्ञानात् पर्वणोंऽशा दशसमा इत्येव गणका वदन्तीति। अत्र 'दुर्हेयं' वा बार्हस्पत्यशोधितं 'दुहेयं' इति मन्मते न समीचीनमिति।।१२।।

अन्वय -

चेत् द्योः पादे पर्व तु पादः सैकिका त्रिंशत् इति ज्ञेयम्। यदि अधिकः भागात्मनापवृज्यांशान निर्दिशेत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

चेत = यदि, द्योः = दिन के, पादे = चरण में, पर्व = पर्व हो, तु = तो, पादः = चरण, सैकिकात्रिंशत् = एकतीस ३१ अंशमान होगा। यदि अधिकः = यदि अंशमान अधिक हो तो, भागात्मना = अंशों से, अपवृज्य = वर्जितकर, अंशान् = शेष अंशों को, निर्दिशेत् = निर्देश करे।

अर्थ -

यदि दिन के पाद में पर्व हो तो गणित से आये हुए अंशमान को जाने। यदि अंशमान पाद से अधिक हो तो उन अंशों से पादांश को वर्जित कर शेष अंशों को गणक निर्दिष्ट करे। विभागावयव से पाद में एकतीस अंश होते हैं।

विशेष -

वेदाङ्ग ज्योतिष में सावन दिन और नक्षत्रादिमान के एक सौ चौबीस भाग किये गये हैं। इन भागों को अंश कहा जाता है। इसलिए दिन के चतुर्थांश एकतीस होंगे। सावन दिन से सावन दिन–रात का बोध होता है। अतः पादांश मध्याह्न पर्यन्त होगा। इससे अधिक भाग से पादांश को विशोधित कर शेषांश दिन के उत्तर पाद में समझना चाहिए।

युगादि से इष्ट पर्व पर्यन्त पर्वगणना के विषय में कहते हैं–

निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं चाप संयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरुच्यते।।१३।।

सोमाकरः-

निरेकं द्वादषाभ्यस्तमिति। अर्धयोः पञ्चपर्वाणां जावाद्युक्तं प्रकृतं यस्मिन् पर्वणि तस्मिन् वक्ष्यमाणचोदनया यावन्तोऽंशा भवन्ति द्वौ त्रयश्चत्वारो वा तेषां निरेकमेकं निरस्य त्यक्त्वेत्यर्थः। ततः शेषं द्वादशाभ्यस्तं द्वादशभिर्गुणयेत्। यद्येकस्तदा द्वादश। यदि द्वौ तदा चतुर्विंशतिः। यदि त्रयस्तदा षट्त्रिंशत्। ततस्तदेतद् द्विगुणं कुर्यात। चतुर्विंशतिरष्टचत्वारिंशत् द्वासप्ततिर्वा। ततश्चापसंयुतं कुर्यात्। आपो युगाः कृतादयश्चत्वारः। कृतमापानामिति श्रुतेः। चत्वारस्तदुपरि भवन्त्यन्ये। ततस्तेषामेव षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां तदुपरि द्वाभ्यां षष्टिर्द्वाषष्टि ६२ र्भवति। एवमेतत्सर्वं तदेकीकृत्य यावद्भवति स पर्वणां यागकर्मणि राशिरुच्यते ज्योतिर्विदिभरापर्वणस्तदा वा समाप्तेः। एतदुक्तं भवति। द्वांशस्य चोदितस्य जावादीनां मध्यात् ऋक्षस्य नवतिर्नाडिकाः ९० पर्वकालराशिः। त्र्यंशस्य चतुर्दशाधिकं शतम् ११४। चतुरंशस्य अष्टत्रिंशदधिकं शतम् १३८। तस्य राशेः पर्वसन्धिकालात् पूर्वं पञ्चदश्युत्तरार्धे कार्यम्। उत्तरं प्रतिपदि यागाय। एवं त्वेष पर्वराशिः पौर्णमास एव पर्वक्षेन्दुसम्बन्धात्। अमावास्यायां तूपरिष्टाद्वक्ष्यत्येकादशभिरभ्यस्येति सूर्यसम्बन्धेनान्तरालमृक्षाश्रये। अत एवमुभयमेतत् तु राकाकुहूकालगत इति चोदितेन तत्त्वादनुवादिनापि किञ्चित्

सङ्गतं विशेषमुत्तरत्र ऋक्षविधाने दर्शयिष्याम एवमपि।।१३।।

सुधाकरः -

इदानीं युगादेरिष्टपर्वपर्यन्तं पर्वगणानयनमाह निरेकमिति। अत्र पूर्णान्त-दर्शान्तयोः पर्वसंज्ञा ज्ञेया। वर्तमानसौराब्दमानं चाध्याहार्यम्। ततोऽस्य श्लोक-स्यैवं व्याख्यानं कार्यम्। वर्तमानसौराब्दमानं निरेकं शेषं द्वादशभिरभ्यस्तं गुण्यं गुणनफलं च द्विगुणं कर्त्तव्यम्। तच्च गतैः पर्वभिः संयुतं कार्यम्। संयुतं च षष्ट्या षष्ट्या द्वाभ्यां युतं कार्यम्। संयुतमानं द्विगुणं षष्ट्या विभक्तं निरयलब्धं च संयुतमान एव योज्यमित्यर्थः। तदेव पर्वणां चान्द्रपर्वणां राशिर्गण उच्यते आचार्यैरिति।

अत्रोपपत्तिः। मासार्धं स्वस्वपर्वेति एकयुगे सौराब्दाः = ५। सौरमासाः = ६०। सौरपर्वाणि = १२०। चान्द्रमासाः = ६२। चान्द्रपर्वाणि = १२४। सौरचान्द्रपर्वान्तरं युगेऽधिपर्वाणि = ४। एतानि विंशत्यधिकशतसौरपर्वसु जातानि तेन षष्टिमित सौरपर्वसु अधिपर्वमानम् = २। अथ वर्तमानसौराब्दमानं निरेकं गतसौराब्दमानं जातम्। तद् द्वादशगुणं जाता गतसौरमासास्ते द्विगुणा जातो गतसौराब्दान्ते गतसौरपर्वगणः। तत्र वर्तमानचान्द्राब्दीयगतचान्द्र-पर्वसंख्यासमा गतरविपर्वसंख्यैव योजिता। एवं गतचान्द्रपर्वाये यद्रविपर्व तत्पर्यन्तं रविपर्वगणो जातः। तस्य चान्द्रपर्वकरणार्थं त्रैराशिकेनाधिपर्वानयनम्। यदि षष्टिमितैः सौरपर्वभिर्द्वयमधिपर्वमानं तदा गतसौरपर्वगणेन किम्। लब्धमधिपर्वमानं तच्छेषं च यदि गतरविपर्वगणे योज्यते तदा गतसौरपर्वान्ते सावयवश्चान्द्रपर्वगणो भवेत्। तत्र चान्द्ररविपर्वान्तरमधिपर्वशेषसमं वियोज्यं तदा निरवयवो गतचान्द्रपर्वगणो भवेत्। एवं स्थितौ निरयमधिपर्वमानमेव गतरविपर्वगणे योज्यं तदा लाघवेन गतचान्द्रपर्वगणो भवतीति। यथा सिद्धान्त-शिरोमण्यादौ सिद्धान्तग्रन्थे चान्द्रमासगणानयनार्थमधिशेषत्यागकारणं विलिखितं तथैवात्रापि बोध्यमिति स्फुटं ज्योतिर्विदाम्। अत्र बार्हस्पत्यव्याख्यानं तच्छोधितं पद्यं च शङ्करबालकृष्णदीक्षितशोधितानुरूपं समीचीनम्। परन्तु तदुपपत्तौ च सशेषमधिपर्वमानमागच्छति येन गतरविपर्वान्ते सावयवो गतचान्द्रपर्व-राशिरायाति तत्र समीचीनं चान्द्रपर्वगणस्य निरवयवत्वादिति स्फुटं ज्योतिर्विदामिति।।१३।।

अन्वय-

निरेकं द्वादशाभ्यस्तं, द्विगुणं चापसंयुतम्, षष्ट्या षष्ट्या द्वाभ्यां युतं पर्वणां राशिः उच्यते।

मञ्जुमती व्याख्याः -

(वर्तमान सौराब्दमान को) निरेकम् = एकरहित, (शेष को) द्वादशाभ्यस्तम् = बारह से गुणाकर (गुणनफल को), द्विगुणम् = दूनाकर, चाप संयुतम् = पाँच संख्या से जोड़कर, षष्ट्या-षष्ट्या = साठ-साठ और, द्वाभ्याम् = दो से, युतम् = युत, पर्वणाम् = अमावस्या और पूर्णिमा पर्वों की, राशिः = गण, उच्यते =कहा जाता है।

अर्थ -

वर्तमान सौराब्द मान को एक हीन कर बारह से गुणित कर गुणनफल को दूना करें। उसमें गतपर्व को जोड़े, जोड़े हुए को साठ-साठ पदों से युत करे। यही चान्द्रपर्वों की राशि कही जाती है।

दिन के आठ यामों में पर्वगत याम संज्ञा-

स्युः पादार्धास्त्रिपद्या ये त्रिद्व्येकेऽह्नः कृतस्थितेः।
साम्येनेन्दोस्त्रयोऽन्ये तु पञ्चकाः पर्वसम्मिताः।।१४।।

सोमाकरः-

एवं जावादिचोदितानामृक्षाणामेकैकस्मिन् पञ्च पञ्च चोदिताः क्रमश्रुताः स्तृणः ऋक्षाः स्युर्भवेयुः। कीदृशाः। पर्वसम्मिताः। चोदितपर्वर्क्षसदृशा इत्यर्थः। किमेत एव। न। अन्यदपि। किम्। त्रिपद्यायाः पञ्चदश्याः पादः पश्चिमो दिनभाग उपवसनीयः सोमः सोऽपि भवेत्। तथाऽर्धमपि। यः पर्वभाविराशेरुत्तरार्धविभागः सोऽपि तथैव भवेदित्यर्थः। किमेकवारम्। न। त्रिद्विः। त्रीन् वारान्। द्विवारान्। पञ्चवर्षाणि पौनःपुन्येनेत्यर्थः। तथैवापि त्रिपद्यायास्त्रिपदोपलक्षितायाः प्रतिपदः। "आद्याः प्रतिपदस्त्रयः" इति यदुक्तं तदपि भवेत्। किमेवं सर्व आहुः। न। एकेऽह्नः कृते स्थितिम्। अह्नो यागदिवसस्यैवं कृते कल्पनायामेतां स्थितिं व्यवस्थामाहुर्न सर्वे। अन्ये तु जावाद्यक्षव्यवस्थां पञ्चस्वपि एवमाहुः। स्तृण इति वा षष्ठी। तत्सम्बन्धिनी व्यवस्थेत्यर्थः। तस्य तत्र।।१४।।

सुधाकरः -

इदानीं दिनस्याष्टयामेषु पर्वणि गते यामसंज्ञामाह स्युरिति। अह्ना दिनस्य ये त्रयद्व्येके पादार्धास्ते त्रिपाद्याः पादार्धाः स्युः। तत्र कृतस्थितेः कृता स्थितिर्येन तस्येन्दोश्चन्द्रस्य साम्येन कारणेन पर्वदिने त्रिपदौ योगविशेषो भवतीत्यर्थः। पदार्धद्वितीये यदि पर्व तदा तत्पूर्वापरयोः पादार्धयोरपि पर्वसान्निध्यात् स्नानदानादौ विशेषतः पुण्यमतः पादत्रयस्य त्रिपदी योगवैशिष्ट्यात पूर्वैः

संज्ञा कृतेति। एवं तस्मिन् पर्वणि येऽन्ये पञ्च पादार्धा अवशिष्टास्ते पूर्वसम्मिताः। तेषु स्नानदानादिजन्यं तथैव पुण्यं यथाऽन्यसाधारणपर्वसु भवतीत्यर्थः।।१४।।

अन्वय-

अह्नः ये त्रिद्व्येके पादार्धा (ते) त्रिपद्या स्युः, कृतस्थितेः इन्दोः साम्येन त्रयः अन्ये पञ्चकाः तु पूर्व सम्मिताः।

मञ्जुमती व्याख्या -

अह्नः = दिन के, ये = जो, त्रिद्व्येवेके = तीन, दो, एक, पादार्धाः = पाद के आधे भाग (वे) त्रिपद्याः त्रिपदी नामक-योग विशेष, स्युः = हों, कृतस्थितेः = वहाँ स्थित, इन्दोः = चन्द्रमा के, साम्येन = कारण से, त्रयः = तीन, त्रिपदी नामक योग-विशेष, अन्ये = और, पञ्चकाः = पाँच पादार्ध (अवशिष्ट- वे भी) पूर्वसम्मिताः = त्रिपदी योग-विशेषवाले होते हैं।

अर्थ -

दिन के जो तीन, दो, एक पादार्ध हैं वे त्रिपदी नामक योग–विशेषवाले हैं। वहाँ अवस्थित चन्द्र के कारण पर्व दिन में त्रिपदीयोग विशेष होता है। पाद के द्वितीयार्ध में यदि पर्व हो तो उसके पहले और बाद के पादार्ध में भी पर्व के सान्निध्य के कारण-स्नानदानादि में विशेष पुण्य होता है। उस पर्व में जो अन्य पाँच पादार्ध अवशिष्ट हैं वे भी पर्व हैं। उनमें भी स्नानदानादि से जन्य पुण्य अन्य साधारण पर्व में होता है।

पर्व में चन्द्र नक्षत्र लाने के लिए नक्षत्र आनयन-

भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणाश्चेन्दोः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि।।१५।।

सोमाकरः -

भांशाः स्युरष्टकाः कार्या इति। यदृक्षो जावादिः। तस्य येंऽशाः स्युर्भवेयुः। चत्वार ४ स्त्रयो ३ द्वौ २ वा तेऽष्टकाः कार्या अष्टनाडिका इत्यर्थः। एवं सामान्यव्यवस्था। एवमेव यागकालापेक्षया कल्पना च ततो व्याप्तिः। तेषामन्यथैवोपरिष्टाद्वक्ष्यति 'ससप्तैकं भयुक् सोमः'। इति। द्व्यकावेति पाठः। दिवसाष्टभागा इत्यर्थः। तथापि पक्षा द्वादशकोद्गता द्वादशदिवसाभ्यधिकाः सार्धास्त्रयोदश वा। किं सर्वे। न। आर्क्षा एव वक्ष्यमाणभेदविधानात्। यतो जावादिना ये पञ्च चोदितास्तदा स्थितानि पञ्च पर्वाण्यतिक्रम्य आर्क्षचोदना ततश्च षष्टितमेऽह्नि इत्यन्ते च भवति। एवमेषाऽऽर्क्षी व्याप्तिः पाञ्चवार्षिक्युक्तैकेन

प्रयत्नेनेति तस्मादेवं चोदना। किं च एकादशगुणश्चोनः। यदि पक्षाद्भागस्तदैकादशगुणो भवेत् एकादशदिवस इत्यर्थः। किं च शुक्लेऽर्धं भवेदिति वाक्यशेषः। यदि शुक्लपक्षस्तदार्धं भवेन्मासस्येति वाक्यशेषः। एवमैन्दवा यदि। यदि चान्द्रा मासोऽभिप्रेतस्तदा तिथिसंख्या या पूर्वपक्षादिचोदना सावनसौराणां तत एव व्यवस्था।।१५।।

सुधाकरः -

इदानीं पर्वणि चन्द्रनक्षत्रानयनार्थं भांशानयनमाह भांशा इति। वर्त्तमानाब्दे द्वादशकेषु मासेषु उद्गताः प्राप्ता इष्टका अभीष्टाः पक्षाः कार्याः। 'निरेकं द्वादशाभ्यस्त' मित्यादिना पूर्वोदितेन प्रकारेणाभीष्टपर्वणि पर्वगण आनेयस्त एवत्रिष्टकाः पक्षाः सन्ति। ते च पक्षा एकादशगुणा इन्दोश्चन्द्रस्य भांशाः स्युः। यदि ऐन्दवाश्चान्द्राः पक्षाः शुक्ले शुक्लपक्षे तदा पूर्वागतभांशेषु अर्धं च-शब्दाद्योज्यम्। भांशानां चतुर्विंशत्यधिकैकशतमितानामर्धं द्विषष्टिर्योज्या तदा चन्द्रस्य भांशाः स्युरित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। एकस्मिन् युगे चान्द्रमासाः = ६२। तत्पक्षाः= १२४। चन्द्रभगणाः = ६७। एते सप्तविंशतिगुणाश्चन्द्रभुक्तंनक्षत्राणि = १८०९। ततोऽनुपातो यदि १२४ पक्षैः पर्वभिर्वा १८०९ नक्षत्राणि तदैकपक्षेण किं जातान्येकपक्षे नक्षत्राणि = $१८०९/१२४$ =$१४७३/१२४$ नक्षत्राणि + ७३ भांशाः। यत एकस्मिन्नक्षत्रे भांशाः = १२४। इति पूर्वमेव प्रतिपादितम्। अत्र नक्षत्राणां प्रयोजनाभावात्त्यागे एकस्मिन् पक्षे भांशाः

= ७३ = ६२ + ११। ततोऽनुपातो यद्येकस्मिन् पक्षे एते भांशास्तदा पक्षगणे कियन्तः। लब्धा इष्टपक्षेषु भांशाः = ६२ द्वय + ११ द्वय। अत्र यदि पक्षाः समाः कृष्णपक्षे तदा प्रथमखण्ड पूर्णानि नक्षत्राणि लभ्यन्ते तेषां त्यागेन तदा भांशाः = ११ द्वय। अथ यदि पक्षा विषमाः शुक्लपक्षे तदा प्रथमखण्डे पूर्णनक्षत्राणां त्यागात् भांशाः = ६२। अतस्तदा वास्तवा भांशाः

= ६२+११ द्वय। एवमत्राभीष्टे पक्षान्ते यत् किमपि नक्षत्रं तस्य भुक्ता भांशा आगच्छन्तीति सर्वं निरवद्यम्। अत्र बार्हस्पत्यव्याख्यानं तदुपपत्तिश्च निरर्थकेति।।१५।।

अन्वय -

द्वादशकोद्गताः इष्टकाः पक्षाः कार्या, (ते च पक्षाः) एकादशगुणाः इन्दोः भांशाः स्युः यदि ऐन्दवाः शुक्ले-अर्धं च (योज्यम्)

मञ्जुमती व्याख्या -

द्वादशकोद्गताः = वर्तमान अब्द में बारह मासों में प्राप्त, इष्टकाः = अभीष्ट, पक्षाः = पक्ष, कार्याः = करे, (वे पक्ष) एकादशगुणाः = ग्यारह से गुणित, इन्दोः = चन्द्रमा के, भांशाः = नक्षत्र अंश, स्युः = हों, यदि = जबकि, ऐन्दवाः = चन्द्रसम्बन्धी पक्ष, शुक्ले = शुक्ल पक्ष में (हों) अर्धं = आधा, च = जोड़ें।

अर्थ-

वर्तमान अब्द में बारह मासों में प्राप्त को अभीष्ट पक्ष किया जाय। वे पक्ष ग्यारह से गुणित होने पर चन्द्र के भांश हों। यदि चान्द्र पक्ष शुक्लपक्ष में हो तो पूर्व आगतभांश में आधा जोड़े।

विशेष - भांश एक सौ चौबीस हैं। इनका आधा बासठ होगा। शुक्ल पक्ष में इसे जोड़ने पर चन्द्रमा का भांश होगा। एक युग में चान्द्रमास ६२। चान्द्र पक्ष १२४ चन्द्रभगण ६७ ये २७ से गुणित चन्द्र युक्त नक्षत्र १८०९ अनुपातिक एक पक्ष में कितना इस ढंग से भांश का ज्ञान करें।

तिथि नक्षत्र भांशों में द्वितीय खण्ड जन्म संस्कार विशेष का कथन-

नवकैरुद्गतोंऽशः स्याद्युतः सप्तगुणो भवेत्।
आवापस्त्वयुजे द्वौ स्यात् पौलस्त्येऽस्तं गतेऽपरम्।।१६।।

सोमाकरः -

नवकैरुद्गतोंऽशः स्यादिति। स पर्वांशः पक्षयोरर्धमासयोर्नवकैरुद्गतोंऽशः स्यान्नव नाडिका ९ इत्यर्थः। ऊनः सप्तगुणः सप्तनाडिका इत्यर्थः। आवापस्त्वयुजे द्वौ स्यात्। यदि स ऋक्षो द्वावं शौ भवेत् तदा त्वयुजे प्रथमश्रावणे विकारः स्यात् ''कला एकान्न विंशतिः'' वक्ष्यमाणस्तत्रादौ कुर्यात्। कालापेक्षया तथा परमंशं द्वितीयं पौलस्त्ये पुरस्ताच्चन्द्रमा अभ्युदियादिति श्रुतेः। पौलस्त्ये चन्द्रमस्यस्तं गते द्वतीयमंशं कल्पयेद्दर्श इति वाक्यार्थशेषः। प्रथम उपवसनीये यजनीय इत्यर्थः। एवमत्र।।१६।।

सुधाकरः -

अधुना वक्ष्यमाणविंशश्लोकागततिथिनक्षत्रभांशेषु द्वितीयखण्डजन्यं संस्कारविशेषं कथयति नवकैरिति। अयुजे विषमे पक्षे शुक्लपक्षावसाने पञ्चदशतिथौ आवापः 'तिथिमर्कदशाभ्यस्ताम् '-इत्या 'दिविंशश्लोकविधिना

लब्धोंऽशो भांशो नवकैर्नवभिर्भांशैरुद्गतो वर्धितः कार्यस्तदा वास्तवभांशमानं भवेदित्यर्थः। अथ तदा 'कार्या भांशाष्टकास्थाने' इत्यादि एकोनविंशश्लोक-विधिना या भादानकलास्तत्र ऋक्षः सप्तगुणो युतस्तदा द्यु रविसावनदिनं सावयवं स्यात्। पौलस्त्ये चन्द्रऽस्तं गते दर्शान्ते तु अपरं मानं कुदिनमानमेव साधयेत्। तत्र नवकैरुद्गतोऽशो न कार्य इति।

अत्रोपपत्तिः। विंशश्लोकप्रतिपादितनक्षत्रानयने द्वितीयखण्डं ९ति/१५ यत् त्यक्तं तत्र पञ्चदशतिथिषु नव भांशा उत्पद्यन्ते। अवान्तरेऽनुपातेन भांशा आनेया इत्यनुक्तमपि बुद्धिमता ज्ञायते। दर्शान्ते च तिथ्यभावादयं संस्कारः शून्यसमो भवत्यतः शुक्लपक्षान्ते पूर्वागता भांशा नवभिर्भांशैर्वर्धनीयाः। दर्शान्ते च यथाऽऽगतास्तथैव ज्ञेयाः। अथैकस्मिन् नक्षत्रे एकं भूदिनं सप्त-कलाधिकं भवत्यतो नक्षत्रसंख्या सप्तगुणा तत्रत्यभादानकलासु युता रविसावनं दिनं स्यात्। दर्शान्ते च भांशसंस्काराभावात् सावनं द्युमानमेव साध्यं तच्च तिथिनक्षत्राभावात् पर्वभादानसमं भवतीति। बार्हस्पत्येन पौलस्त्यपदेन सोमाकरसम्मतोऽर्थश्चन्द्रवाचकः साधुर्गृहीतस्तथाऽप्यत्र मन्मते न तद्व्याख्यानं समीचीनमिति।।१६।।

अन्वय –

अयुजे आवापः नवकैरुद्गताः अंशः सप्तगुणो युतः द्युः स्यात् पौलस्त्ये अस्तं गते अपरम् (स्यात्)।

मञ्जुमती व्याख्या –

अयुजे = विषम पक्ष में अर्थात् शुक्ल पक्ष के बाद अमावस्या के, आवापः= आगत अंश (भांश), नवकैरुद्गतः नवमांशों से वर्धित (करे)। सप्तगुणः = सात गुना, युतः = युक्त, द्युः = रवि सावन दिन (सावयव), स्यात् = हो, पौलस्त्ये = चन्द्र के, अस्तंगते = अस्त होने पर अर्थात् (अमावस्या के अन्त में) अपरम् = दूसरा मान (हो)।

अर्थ–

विषम पक्ष अर्थात् शुक्ल पक्ष के अवसान होने पर पन्द्रहवीं तिथि के उपस्थित होने पर प्राप्त भांश को नवमांशों से वर्धित (गुणित) करे तब वास्तव भांशमान होगा। अनन्तर गत भांश सातगुने से युत होने पर सावयव रवि सावन दिन होगा।

चन्द्र के अस्त होने पर दूसरा मान साधन करे।

पक्षान्त में भांश ज्ञान से नक्षत्र कथन-

जावाद्यंशैः समं विद्यात् पूर्वार्धे पर्वसूत्तराः।
भादानं स्याच्चतुर्दश्यां द्विभागेभ्योऽधिको यदि।।१७।।

सोमाकरः-

जावाद्यंशैः समं विद्यादिति। वक्ष्यमाणं जावादिकमृक्षमंशैरवयवैः समं विद्यात्। एतदुक्तं भवति। अमृक्षं चोदयिष्यति जौ-द्रा-ग इत्येवं समं विद्याज्जानीयात्। तदा येनाक्षरेण तद्देवताकेन वा चोदितस्तस्य तावन्तोंऽशा भवन्ति। जावित्याश्वयुजे चत्वारः। द्रा इति द्वौ तदुत्तरस्मिन् निर्देशे वक्ष्यामः। तेषां पूर्वार्धे पर्वसु उत्तरा अंशाः कार्याः। औपवसथादौ यदा तैः पञ्चदशी समग्रा व्याप्यते तदा भादानं स्याच्चतुर्दश्यां तदा तस्याः पूर्वं चतुर्दशीशेषे न्यसेत्। कदैतत्। द्विभागेभ्योऽधिको यदि। यदि स ऋक्षस्त्र्यंशश्चतुरंशो वा भवेत्। एतदेवाभिप्रेत्यैकादशीगणना राका कुहूः इत्यादीनां ज्योतिर्विद्भिः कल्पिता।

तथा च परिशिष्टकृत् –

अर्धं चतुर्दशी यत्र परे पञ्चदशी यदि।
चतुर्दश्यवसाने तु पितृयज्ञं तु कारयेत्।। इति।

तथा च गर्गः-

चतुर्दश्यां यदा कृष्णे क्षयमभ्येति चन्द्रमाः।
दृश्यो भवति चाप्युच्चैः सिनीवाली ततस्तदा।। इति।

अमावास्यामदृष्टेऽपि सोमे प्राधान्यकारणात्।
केचिदिच्छन्ति दृष्टेऽपि केचित्तेन गताध्वनि।।

निश्युद्गतोऽथवाऽप्युच्चैरस्तं वाप्युपगच्छति।
तदा पूर्वेऽप्यृतौ ह्येतत् कार्यं चन्द्रवशाद्भवेत्।। इति।

एतत्सर्वं सूत्रकारापेक्षमेकाङ्गवैकल्यापेक्षं चोत्तरत्र ह्रासदर्शनं पूर्वां पौर्णमासीमुत्तरां वोपवसेदित्यादि। एतेन ज्ञायते चतुर्दशीपञ्चदश्यौ या पूर्णमासी सानुमतिरित्यादौ विवक्षिते न पञ्चदशीप्रतिपदौ। एवं तु दाक्षायणयज्ञसिद्धिः। एवं च पूर्वं कृत्वा उत्तरां सचोदितां सप्रतिपत्त्या प्रतिपदादौ यागः। तदतिक्रमे

कालस्याग्नेयमेवाग्नेये यदि कृते कुर्यादिति चोदना। पूर्वापरार्ध चाभ्युदिते चाभ्युदितेष्टिरिति। एवमेतत् सुविदितं कृत्वोपवसथादिस्वकाले कार्यम्। पूर्वां पौर्णमासीमुपवसेदिति यथा चोदितम्। अन्यथा तु दोषः। यथाह श्रुतिः। ते असुरा अयज्ञा अदक्षिणा अनक्षत्रा अदर्शमपौर्णमासमनारायणमतिथिवर्जं तं चाहुतमवैश्वदेवमश्रद्धयाऽविधिना हुतमासप्तमान् तस्य लोकं हिनस्तीति। तस्मादुभयसम्भवे ये चतुर्दशीमुपवसन्ति ते निःफलमेवात्मना यागं कृत्वा प्रजानां महान्तं दोषं जनयन्ति।

यथाह स्मृतिः-

दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः।
विप्राणां कर्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भयम्।।इति।

तस्मादुभयकालसंरक्षणायेदं ज्योतिःशास्त्रं महर्षिणा आम्नातम्। तत्र पञ्चानामपि वर्षाणां मासद्वयचोदनायामेकमेकमृक्षं चतुर्भिरन्तरान्तरवर्तमानैः सहितं निदर्शयति युगपदस्य सकृदेव। तद्यथा।।१७।।

सुधाकरः -

इदानीमग्रिमश्लोकोक्तसङ्केतेन पक्षान्ते भांशज्ञानतो नक्षत्रमाह जावाद्यंशैरिति। पर्वसमये अंशैर्भांशैः समं तुल्यं जौआदि नक्षत्रं गणको विद्याज्जानीयात्। अत्रैतदुक्तं भवति। पर्वकाले ''भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः'' इति पूर्वोदितप्रकारेण ये भांशाः समागतास्तत्संख्या 'जौ द्रा गः खे' इत्यादिक्रमेण गणनया यस्मिन् नक्षत्रे स्यात् तदेव पर्वणि नक्षत्रं स्यात्। यथा यदि भांशमानम् = २। तदा क्रमगणनया द्वितीयं द्रा आर्द्रा भं स्यात्। एवं यदि भांशमानम् = २७। तदा क्रमगणनया सप्तविंशतिसंख्याकं ष्ठा श्रविष्ठाभं स्यात्। यदि भांशमानम् = २८। तदेदं सप्तविंशतितष्टं शेषेणैकेन समं पुनः क्रमगणनया जौ अश्विनीभं स्यात्। एवं कस्मिंश्चिद्भांशमाने सप्तविंशतितष्टतो नक्षत्रं स्यात्। तस्य भस्य चानीता भांशा गताः स्युरित्यर्थः। अथ रविसावनदिनस्य पूर्वार्धे मध्याह्नात प्राक् पर्व भवेत् तदा तस्मिन्नेव दिने पर्व ज्ञेयं तदैव स्नानदानादिकं कार्यमिति। यदि तूत्तरे दिनस्योत्तरार्धे पर्व तथा द्विभागेभ्यो द्विपादभागेभ्योऽधिके भांशमाने तदा तद्दिने चतुर्दश्यामेव पूर्वविधिनाऽऽगतस्य भस्यादानं ग्रहणं कार्यम्। अत्रैतदुक्तं भवति। भागद्वयमतिक्रम्य मध्याह्नानन्तरं यदि पर्व तदा तद्दिने न दर्शपौर्णमासप्रारम्भः

किन्तु स्नानदानादिकर्मणि तद्दिने उदये चतुर्दशी ज्ञेया। पूर्वविधिनाऽऽगतनक्षत्रस्य ग्रहणं च तस्यां चतुर्दश्यामेव कार्यम्। त्रयं श्लोकः 'जौ द्रा-ग' इत्यादि श्लोकस्य प्राक् प्रमादतो विलिखितः।

अत्रोपपत्तिः। एकस्मिन् युगे चान्द्रपर्वाणि वा पक्षाः = १२४। चान्द्रनक्षत्राणि= १८०९ पूर्वमेव पञ्चदशश्लोकभाष्ये लिखितानि। अथ यदि पर्वगणमानम् = प, तत्रत्यगतनक्षत्रमानम् = न। वर्तमाननक्षत्रस्य गता भांशाश्च = भा, तदा यदि १२४ पक्षैः पर्वभिर्वा १८०९ नक्षत्राणि लभ्यन्ते तदा पपर्वभिः किमिति लब्धानि न-नक्षत्राणि शेषाणि भा-भांशाः। अतो लब्धिगुणो हरः शेषयुतो भाज्यराशिसमः। तेन

१८०९ प = १२४ न + भा। अतः प = $\frac{१२४\,न + भा}{१८०९}$ । अत्र पमानमभिन्नम्। अतः कुट्टकेन रूपक्षेपे।

वल्ली

०		
१४		ततो लब्धिगुणौ १७। २४८। स्वक्षेपेण भासंज्ञकेन
१		
१		गुणौ जातौ भा-क्षेपे लब्धिगुणौ १७ भा।
२		
३		२४८ भा। ''ते भाज्यतद्भाजकवर्णमाने'' इति भास्कर-
१		
०		बीजोक्त्या न = २४८ भा = (९×२७+५) भा।

प = १७ भा। नक्षत्राणां सप्तविंशतेरल्पत्वात् भा-वशेन गतनक्षत्राणि= न = ५ भा। अत्र भा-मानस्य हरा-१२४ ल्पत्वात् भामानं १,२,३,..., १२४। इत्यादिभिरुत्थाप्य अविष्ठादिगणनया जावादिनक्षत्रक्रमाण्युपपद्यन्ते।

यथा यदि भांशमानम् =भा =१ तदा गतनक्षत्रसंख्या = न = ५। अविष्ठातः क्रमगणनया गतभं रेवती वर्त्तमाननक्षत्रं चाश्विनौ जौ वा। एवं यदि भा = २ तदा गतनक्षत्रसंख्या = १०। श्रविष्ठातः क्रमगणनया गतभं मृगशिरो वर्त्तमानं चार्द्रा वा द्रा-इति। एवमन्यानि पाठपठितान्यायान्तीति। अथ यदि भा = २७ इ द् + शे तदा गतनक्षत्रसंख्या = २७×५× इद + ५ शे सप्तविंशतितष्टेन गतनक्षत्रसंख्या = ५ शे। अतः सप्तविंशतितष्ट-भांशमानेन एकद्व्यादिसमेन पुनः पुनस्तान्येव नक्षत्राणि समायान्ति। एवं लब्धिमानम् ''१७ भा'' अस्मिन् भास्थाने १,२,३,..., १२४ उत्थापनेन पर्वमानं समायाति। यथा यदि भा = १ तदा पर्वमानम् = १७। युगादितः १७ मिते पर्वगणे भांशमानं रूपं तत्रस्थं

नक्षत्रं च 'जौ' भवतीति। एवं वास्तवभांशमानतः पर्वसंख्या तत्र स्थितं नक्षत्रं च सुलभेन ज्ञायते। पूर्वोदितेनैव प्रकारेण डॉ० थिबो-लिखिता पर्वनक्षत्रसूची उत्पद्यते। इदं सर्वं हि प्रकारान्तरेण बार्हस्पत्येन साधु प्रतिपादितं परन्तु 'जावाद्यंशै' रिति श्लोकस्य तदीयं व्याख्यानं न साध्विति सुजनैर्निपुणं विलोक्यमित्यलं पल्लवितेन।।१७।।

अन्वय -

पर्वसु अंशैः समं जावादि विद्यात् पूर्वार्धे पर्व (विद्यात्) उत्तरे (पर्व) द्विभागेभ्यः अधिके (तदा) चतुर्दश्याम् भादानं स्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या -

पर्वसु =पर्वों में, अंशैः = भांशों से, समं = तुल्य, जावादि = जौ अर्थात् अश्विनी आदि नक्षत्रों को, विद्यात् = गणक जाने, पूर्वार्धे = मध्याह्न के पहले, पर्व = दर्शादि (होवे), उत्तरे = दिन के उत्तरार्ध में पर्व, द्विभागेभ्यः = द्विपादभाग से, अधिके = भांशमान के अधिक होने पर, चतुर्दश्याम् = पूर्व विधि से आगत भांश का ग्रहण चतुर्दशी में करे।

अर्थ-

पर्व समय में भांश के तुल्य अश्विनी आदि नक्षत्रों को गणक जाने। मध्याह्न के पहले अमावस्यादि पर्व हो। दिन के उत्तरार्ध में द्विपादभाग से भांश के अधिक होने पर चतुर्दशी में ही पूर्व विधि से आगत भांश का पर्व के लिए ग्रहण करना चाहिए। दिन के दो भाग का अतिक्रमण कर यदि मध्याह्न के बाद पर्व हो तो उस दिन अमावस्या या पूर्णिमा का प्रारम्भ नहीं होगा। स्नानदानादि कर्म में उस दिन उदय काल में चतुर्दशी समझे। पूर्व विधि से आगत नक्षत्र का ग्रहण चतुर्दशी में करे।

पक्षान्त में पूर्वागत भांश से नक्षत्र ज्ञान के लिए पहले भांश क्रम से नक्षत्रों का लघु नाम-

जौ द्रा गः खे श्वे ही रो षाश्विन्मूषक्ण्यः सूमाधाणः।
रे मृ (म्रे) घाः स्वा पो जः कृष्यो ह ज्ये ष्ठा इत्यृक्षा लिङ्गैः।।१८।।

सोमाकरः -

जौ द्रा गः खे श्वे इति। सप्तविंशतिभिरक्षरैर्नामदेबतावयवभूतैर्नक्षत्राणि। तेषामवयवास्तेषां क्रमस्तस्य च कालव्यवस्था तथा तिथेर्ऋतोर्नक्षत्रस्य युगस्य

चाधिमाससम्भवस्योत्तरनक्षत्राणां वर्षस्य मानान्येतानि दश वस्तूनि चोदितानि भवन्तीति वाक्यशेषः। तेषां संख्याद्योतनार्थं स्थाननियमार्थं चैवं निर्देशः। यस्य पादाक्षरं यत्सङ्ख्याकं प्रतिपदादौ भवति पूर्वं पञ्चदश्यन्ते यदि द्वौ तदोभौ विभज्यौ। यथा द्व्यंशमार्द्रा द्रेति चोदितम्। एवं सर्वाणि द्व्यक्षरचोदितानि। त्र्यक्षराणां तु चोदिताक्षरनिर्दिष्टोंऽशः प्रतिपदादौ स यदि द्वितीयस्तदाऽद्यः पञ्चदश्यन्तद्वावुत्तरे। यथा वेति चोदिते आश्लेषा तृतीये तु चोदितौ द्वौ पूर्वमुत्तरः प्रतिपदि यथा ण्य इति भरणी। यदि चतुरंशस्तदा चोदितोंऽशः प्रतिपदादौ त्रयः पूर्वम्। यथा जावित्यश्वयुजोपलक्षिताश्विनीति। एतदर्थं भादानं स्याच्चतुर्दश्यामित्युक्तम्। पूर्वार्धे पर्वसूत्तरा इति वचनात्। संख्याक्षरचोदितानां पूर्वाक्षरचोदितानां तु प्रथमोंऽशः पञ्चदश्यन्त शिष्टाः प्रतिपदि यावन्तो भवेयुः। यथा रो इति रोहिणी एवमन्येषां सर्वेषाम्। अथवा सैव प्रतिपदादौ चोदिता रो इत्यादिको भवेत तदा तु न नववासः पञ्चदश्यन्ते "नवकैरुद्गतोंऽश" इति विधानात्। अथैषा चोदना। अथवा दर्शप्रधाना चैव वा। तेषां तत्र पूर्वाक्षरचोदिताऽपेक्षया च। एवं जावित्यश्विन्यन्तेन निर्देशं पर्व तदैषामपि देवतोपलक्षितानां तयोपलक्षित आश्वयुज्यादौ यागकालस्तस्मिन् सत्यपि वा। ततः प्रभृति पञ्चवर्षाणि सैव व्यवस्था कर्तुं यावत्। तत्र तु अष्टत्रिंशं शतं पर्वराशिर्भवति। ततोऽर्धभागेनैकोनसप्ततिः ६९ पूर्वं पूर्णान्तात पृष्ठे विहाय पूर्वोत्तरमेकोनसप्तति ६९ रन्या नाडिका यागकालः। एवमेषां चतुरंशानां व्यवस्था। एषैव तदुत्तराणां चतुर्णामन्येषां पर्वणां व्यवस्थेत्येके आहुः। यस्मादेतदर्थमेवान्यानि चत्वारि नक्षत्राण्यन्तरा नोक्तानि। अन्ये त्वाहुर्यस्मात् पञ्चानामपि पर्वणामेकेनैव प्रत्यत्नेन सकृदेव व्यवस्थाप्यते एकेनैवर्क्ष-पर्वसङ्ग्रहेण। तस्माद्यस्य या व्यवस्था साङ्गतया मुख्य याऽऽवृत्त्या स्वचोदिते पर्वणि भवत्यन्यत्र तु गौणी। तस्मात् पर्वर्क्षचोदिता व्यवस्थेत्यन्येषां व्यवस्थामाहुः। एवमुत्तरेषामपि अन्तर्क्षाधिमासे कृत्तिकानां नियतग्रहणं यतस्तयोपलक्षितः कार्त्तिकः। कालचोदनायामनिर्दिष्टानां भरण्यादीनाम-परपक्षपञ्चदशीषु कालावाप्तिस्तृतीया। एवमन्येषाम्। एवमेतेनैवैकेन निर्देशेन पञ्चवर्षाणि गम्यन्ते। द्रेत्यार्द्रा द्वावंशौ मार्गशीर्ष्यामुक्तप्रायमन्यत्। ग इति भगदेवतोपलक्षिता पूर्वाफाल्गुनी तस्या द्वावंशौ उक्ता व्यतस्था सा तु फाल्गुन्याम्। खे इति विशाखा त्रयोंऽशा वैशाख्यामुक्ता व्यवस्था। श्वे इति विश्वेदेवास्तदुप-लक्षितोत्तरषाढी तस्यां चन्द्र-गत्यपेक्षयांशकल्पनाश्चत्वारो द्वौ वा। एवमेव हिरित्यहिर्बुध्न्योपलक्षिता प्रोष्ठपदा। रो इति रोहिणी त्र्यंशा द्वितीये वर्षे ततः

पञ्चपर्वाण्यतिक्रम्याधिकमासकल्पनार्थे कालव्यत्यासः सा कार्त्तिक्याम्। षा इत्याश्लेषास्त्र्यंशा इत्येव। चिदिति चित्रा तथा चैत्र्यां द्वौ। मू इति मूले द्वौ। षक्-इति शतभिषक् चतुरंशाः। ण्य इति भरणी त्रयोंऽशाः। (ज्यै ष्ठ्यां तृतीय-वर्षादिः)। सू-इति पूनर्वसू चतुरं-शोऽधिकमासापेक्षा। मेत्यर्यमोपलक्षितोत्तरा-फाल्गुनी त्र्यंशाः। तथैव धेत्यनुराधा चतुरंशकल्पना। ण इति श्रवणं त्र्यंशम्। तथैव रे इति रेवती चतुर्थे संवत्सरे (प्रथम) त्र्यंशाः। मृ इति मृगशिरश्चतुरंशं तथैव। मघा द्वयंशं तथैव। स्वेति स्वाती तथैव। आपः पूर्वाषाढा तथैव। अज इति पूर्वप्रोष्ठपदा द्वयंशं चतुरंशं वा। कृ इति कृत्तिका पञ्चमवर्षे त्र्यंशम्। ष्येति तिष्यं द्वयंशं तथैव ह इति हस्तं द्वयंशम्। ज्ये इति ज्येष्ठा तथैव (ज्यैष्ठ्यां) मासापेक्षया नियमः। ष्ठा इति धनिष्ठा श्रावण्यन्ते त्र्यंशम्। एवमेभिः स्मर्यमाणैर्ऋतैर्यागकालः प्रकल्प्यः। एवमेव त्वृक्षं चन्द्रगत्यपेक्षया। अथवैतत्तु ऋक्षं चोदनायामुत्तरोत्तरं षष्टि-सङ्ख्याक्रमेणोदाहृता। आर्द्रा पौनःपुन्येन षष्टितमा स्यात्। गेति तस्मात् खे इति एवं सर्वे तस्मात् तयैव संख्यया पर्व ततस्ततोऽपि प्रकल्प्याः। एवं तु द्विमासान्तरचोदनाय पूर्वर्क्षचोदनायैव व्यवस्था। पौषमाघमासयोर्यथादौ यतः पञ्चानामृतवस्त्र्यंशात् पर्वर्क्षाश्च सप्तविंशतिः। तस्मादर्धपञ्चमभकल्पनयैव सर्वे प्रत्येतव्याः। तस्मादेवं सर्व एव प्रवक्ष्यतेऽस्य मासोपलक्षकाश्चापि भरण्याद्याः। तस्मादेव कालसाम्यम्। एवमेतेषाम्।।१८।।

सुधाकरः -

इदानीं पक्षान्ते पूर्वागतभांशतो नक्षत्रज्ञानार्थमादौ लाघवेन नक्षत्रनाम-स्मरणर्थं भांशक्रमतो नक्षत्राणां लघुनामान्याह जाविति। जौ (आश्वयुजौ =अश्विनौ)। द्रा (आर्द्रा)। गः (भगः=पूर्वफाल्गुन्यौ)। खे (विशाखे)। श्रे (उत्तराषाढा = विश्वे)। हिर् (उत्तरभाद्रपदा = अहिर्बुध्न्यम्)। रो (रोहिणी)। षाः (आश्लेषाः)। चित् (चित्रा)। मू (मूलम्)। षक् (शतभिषक्)। ण्यः (भरण्यः)। सू (पुनर्वसू)। मा (उत्तरफाल्गुन्यौ =अर्यमा)। धाः (अनुराधाः)। णः (श्रवणः)। रे (रेवती)। मृ (म्रे) (मृगशिरः)। घाः (मघाः) स्वा (स्वाती)। पः (पूर्वाषाढा = आपः)। जः (पूर्वभाद्रपदा = अजः = एकपात्)। कृ (कृत्तिकाः)। ष्यः (पुष्यः)। ह (हस्तः)। ज्ये (ज्येष्ठा)। ष्ठाः (श्रविष्ठाः = धनिष्ठाः)। इति लिङ्गैः सङ्केतैः ऋक्षा नक्षत्राणि द्राक्स्मरणार्थं ज्ञेया इति। इदं विद्युन्मालानाम छन्दः। तत्र सर्वे वर्णा दीर्घा भवन्ति लाघवेनैकाक्षरेण

नामग्रहणे सर्वेषां नामानि भिन्नानि यथा भवेयुर्यथा छन्दोभङ्गोऽपि न भवेत् तथा स्वेच्छया नक्षत्रनामतः पूर्वात्रये उत्तरात्रये च तुल्याक्षरग्रहणे नामैक्यदोषात् तत्तद्देवतानामतोऽक्षराणि गृहीतानि आचार्येण। मन्मते चित्रायामाचार्येण 'चित्'-इति गृहीतम् तेन 'चिन्मू' इति पाठः साधुः। एवं वैदिकव्याकरणानुसारेण 'मृ' इत्यस्योच्चारणं 'म्रे' इति भवति तेन न छन्दोभङ्गदोष इति। अत्र बार्हस्पत्यव्याख्यानं समीचीनम्। युक्तपरो हि वर्णो दीर्घो भवति-इति बुद्ध्याऽऽचार्येण नक्षत्रनामसु आदिमध्यान्ताक्षराणि गृहीतानि यतो नामाक्षराणां कस्याप्यक्षरस्य ग्रहणेन न कश्चिद्विशेषस्तदक्षरेण तस्यैव नक्षत्रस्य ग्रहणादित्यलम्।।१८।।

अन्वय -

जौ द्रा गः खे श्वे ही रो षा श्चित् मूषक्ण्यः सूमा घाणः, रे मृ धाः स्वा पः जः कृष्यो ह ज्येष्ठा इति लिङ्गैः ऋक्षाः (ज्ञेयाः)।

मञ्जुमती व्याख्या -

जौ = अश्वयुजौ अर्थात् अश्विनी, द्रा = आर्द्रा, गः = भगः अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी, खे = विशाखा, श्वे = उत्तराषाढा, ही (हिर्) = उत्तराभाद्रपद, रो = रोहिणी, षाः = आश्लेषा, चित् = चित्रा, मू = मूल, षक् = शतभिषा, ण्यः = भरणी, सू = पुनर्वसु, मा = (अर्यमा) उत्तराफाल्गुनी, धाः = अनुराधा, णः = श्रवण, रे = रेवती, मृ = मृगशिरा, घा = मघा, स्वा = स्वाती, पः = (आपः) पूर्वाषाढा, जः = (अत्र, एकपात्) पूर्वाभाद्रपद, कृ = कृत्तिका, ष्यः = पुष्य, ह = हस्त, ज्ये = ज्येष्ठा, ष्ठाः = (श्रविष्ठा) धनिष्ठा, इति = इस प्रकार, लिङ्गैः = संकेतों से, (नक्षत्रों को स्मरण रखने के लिए जाने)।

अर्थ -

अश्विनी, आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, आश्लेषा, चित्रा, मूल, शतभिषक, भरणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, अनुराधा, श्रवण, रेवती, मृगशिरा, मघा, स्वाती, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, कृत्तिका, पुष्य, हस्त, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, इस प्रकार संकेत से सत्ताईस नक्षत्रों के नाम शीघ्र स्मरण के लिए जानना चाहिए।

पर्व के भांश से कलानयन-

कार्या भांशाष्टकास्थाने कला एकोन्नविंशतिः।
ऊनस्थाने द्विसप्तति मुद्वपेद्युक्तसम्भवे।।१९।।

सोमाकरः -

कार्या भांशेति। तेषामृक्षाणां ये स्थानमुक्तस्तेऽष्टकाः कार्या अष्टनाडिका इत्यर्थः। उक्तमेतद्विशेषार्थं पुनरुच्यते। विशेषस्तु कला एकान्नविंशतिरधिका उद्वपेदादाविति वाक्यशेषः। तथा ऊनस्थाने द्विसप्ततिमपि तत्र दद्यात्। किं सर्वकालम्। ऊनस्थाने युक्तसम्भवे ऊनर्क्षचन्द्रयोग इत्यर्थः। एवमेतेन प्रकारेण चन्द्रगतिमपेक्ष्य पर्वराशिः प्रकल्प्य इत्यर्थः। एवमत्रैषा यागकालचोदना मिश्रिताभिप्रायानुसारिणी तथा ऋतुयाजी वान्यश्चातुर्मास्ययाजीति। तथा तामेव चोदितां गणनामभिप्रेत्य लौगाक्षिणा तान्येव पञ्चवार्षिकाण्याम्रातानि। संवत्सरस्य षडहेऽतिरिच्यते इत्यादि यथा तस्मात् पञ्चानां वर्षाणामेक एव प्रयत्नः।।१९।।

सुधाकरः -

इदानीं पर्वभांशतः कलानयनमाह कार्या इति। एकस्मिन् वर्षे अष्टकाश्चतस्रो भवन्ति (अश्नन्ति पितरोऽस्यामित्यष्टका) ताश्च वेदे प्रसिद्धास्तेनाष्टकाशब्देन चत्वारि गृह्यन्ते। ततोऽस्य श्लोकस्य व्याख्यानम्। भांशानामष्टका भांशाष्टका तत्स्थाने एकोनविंशतिः कलाः कार्याः। तथा ऊनस्थाने हीनस्थाने हीनजातीयकाष्ठास्थाने गणक इनैः सूर्यैर्द्वादशभिः संयुतां द्विसप्ततिं चतुरशीतिमावपेत् प्रक्षिपेत्। अत्रैतदुक्तं भवति। भांशानां प्रतिश्चतुष्कं एकविंशतिः कलाश्चतुरशीतिः काष्ठाश्च कार्या इति।

अत्रोपपत्तिः। यदि युगचन्द्रनक्षत्रैः १८०९ युगकुदिनानि १८३० लभ्यन्ते तदैकेन चन्द्रनक्षत्रेण किम्। लब्धम् = $^{१८३०}/_{१८०९} = ^{६१०}/_{६०३} = १ + ^{७}/_{६०३}$ = एकं कुदिनं $^{७}/_{६०३}$ कुदिनशेषं च। तत्रैकस्य कुदिनस्य हरसमान् त्र्यधिकषट्शतमितान् भागान् कृत्वैकस्य भागस्य संज्ञा कला कृता। तत एकस्मिन् चन्द्रनक्षत्रे एकं कुदिनं सप्तकला वा ६०३ + ७ = ६१० कला भवन्ति। वक्ष्यति चाचार्यः "ससप्तैकं भयुक् सोमः" इति। पुनरेककलायां चतुर्विंशत्यधिकशतसमान् भागान् कृत्वा एकभागस्य काष्ठा संज्ञा कृता। इदमपि वक्ष्यति चाचार्यः "काष्ठानां चैव ताः कला" इति। ततोऽनुपातो

यद्येकचन्द्रनक्षत्रेण वा चतुर्विंशत्यधिकशतभांशैः ६१० कला लभ्यन्ते तदा चतुर्भिर्भांशैः किम्। लब्धा एकाष्टकायां कलाः

$= {}^{६१०\times४}/_{१२४} = {}^{२४४०}/_{१२४} = १९\ {}^{८४}/_{१२४} = १९$ कलाः + ८४ काष्ठाः। अत उपपन्नं सर्वम्। अत्र बार्हस्पत्यव्याख्यानं तदुपपत्तिश्च न साध्वीति।।१९।।

अन्वय -

भांशाष्टकास्थाने एकोनविंशतिः कलाः कार्याः ऊनस्थाने इन संयुतां द्विसप्ततिम् आवपेत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

भांशाष्टकास्थाने = भांशानामष्टका भांशाष्टका तत्स्थाने (एक वर्ष में चार अष्टकाएँ होती हैं) भांशों के अष्टका स्थान में, एकोनविंशतिः = एक कम बीस अर्थात् उन्नीस, कला = समय परिमाण, कार्याः = करे, ऊनस्थाने = हीन जातीयक अष्टका स्थान में, इन संयुताम् =सूर्य संयुक्त = अर्थात् बारहसहित, द्विसप्ततिम् = बहत्तर, आवपेत् = प्रक्षिप्त करे।

अर्थ -

एक वर्ष में चार अष्टकाएँ होती हैं। अष्टका का अभिप्राय है-'अश्नन्ति पितरोऽस्यामिस्त्यष्टका ' अर्थात् 'पितर जिसमें अशन करें'-भांशों के अष्टका स्थान में उन्नीस कलाएँ करे, हीन स्थान में गणक सूर्य अर्थात् बारह से युक्त बहत्तर का प्रक्षेप करे।

विशेष - भांश के प्रत्येक चार भाग में इक्कीस कला तथा चौरासी काष्ठा होती है।

इष्ट तिथि में नक्षत्रानयन प्रकार-

तिथिमर्कदशाभ्यस्तां पर्वभांशसमन्विताम्।
विभज्य भसमूहेन तिथिनक्षत्रमादिशेत्।।२०।।

सोमाकरः -

एवमत्र या तिथिचोदना तामाह तिथिमेकादशाभ्यस्तामिति। पर्वचोदितां तिथिमेकादशाभ्यस्तां पञ्चदशीमेकादशभिर्गुणिताम्। सङ्गुण्य पञ्चषष्टिः शतं भवति। विभज्य भसमूहेन सप्तविंशत्या भागमपहृत्य चीण्यवशिष्यन्ते। एवं पुनस्तृतीयं पर्वक्षं तस्माद्भवति प्रागुक्तादेकान्तरेऽह्नीति यदुक्तम्। अथवा

तिथिपरिमाणमुत्तरे श्लोके वक्ष्यति तासु सप्तगुणां तिथिमिति। एवं तिथेः सप्तावयवास्तानेकादशभिर्गुणयेत् सप्तसप्ततिर्भवति। ततः पर्वभांशसमन्वितां कुर्यादिति वाक्यशेषः। एतदुक्तं भवति। तिथ्यवयवेषूपरि पर्वनक्षत्रावयवान् विन्यसेत् द्वौ वा त्रीन् चतुरो वा तत एकान्नाशीति ७९ रशीति ८० रेकाशीति ८१ र्वा भवति। ततस्तान् विभज्य भसमूहेन ऋक्षगणेन जातं सप्तविंशतिस्तेन भागमपहृत्य पञ्चविंश षडविंशं सप्तविंशं वा नक्षत्रं तस्मिन्नहनि तिथिनक्षत्रमादिशेत् कथयेदित्यर्थः। सा च संख्या पर्वभांशसमन्वितामिति वचनात् तस्मादेव नक्षत्रादारभ्य प्रवर्त्तते नाश्विन्यादेः। एवं तु येन यो मास उपलक्षितस्तस्मिंस्तस्मादेव गणना प्रवर्त्तते। तथा तूत्तरेषु सर्वेषु स्फुटतरा प्रवृत्तिर्भवति। यतस्तथोपलक्षितं नक्षत्रं नियमेन सर्वकालं भवति। यदि त्वेवं सर्वासां तिथीनां नक्षत्रानयनमिच्छेत् तदा नष्टकालानयनान्यन्यानि करणान्यनुसृत्योहापोहाभ्यां कल्पयेदस्याकृत्स्नत्वात् तेनेहोपकारकृत्। यस्मादिह पर्वचोदनया पक्षद्वयचोदितो यागकाल एव प्रकृतस्तस्मादेतदेवोच्यते।।२०।।

सुधाकरः -

इदानीमिष्टतिथौ नक्षत्रानयनमाह तिथिमिति। अर्कैर्द्वादशभिर्दशभिश्चाभ्यस्तां गुणितां तिथिं किंविशिष्टाम्। पर्वभांशसमन्विताम्। पर्वणि 'भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः' इति विधिना ये भांशाः स्युस्तैः समन्विता युक्तेति तां भसमूहेन भांशसमूहेन चतुर्विंशत्यधिकशतेन विभज्य लब्धं गणकस्तिथिनक्षत्रं तिथिसम्बन्धिनक्षत्रमादिशेत् कथयेदिति।

अत्रोपपत्तिः। एकयुगे चन्द्रदिनानि वा तिथयः = १८६०। चन्द्रनक्षत्राणि च = १८०९। ततोऽनुपातो यदि युगतिथिभिर्युगनक्षत्राणि तदेष्टतिथिभिः किम्। लब्धानि नक्षत्राणि = $^{१८०९ \times \text{ति}}/_{१८६०}$ वा

नक्षत्रांशाः = $^{१२४ \times १८०९ \times \text{ति}}/_{१८६०} = ^{१८०९\ \text{ति}}/_{१५} = (१२० + ^{९}/_{१५})\ \text{ति} =$ १२० ति + $^{९\ \text{ति}}/_{१५}$। अत्र द्वितीयखण्डं त्यक्तं तदर्थं १६ श्लोके नवकैरित्यादौ संस्कारविशेष कथित आचार्येण। अत्र पर्वभांशयुतेनेष्टतिथौ भांशमानमेकनक्षत्रभांशमानेन भक्तं तिथिनक्षत्रमानं स्फुटमत उपपन्नम्। मन्मतेऽस्य श्लोकस्याय एव १६ श्लोकनिवेश उचितः। अत्र बार्हस्पत्यशोधितपाठस्तद्व्याख्या तदुपपत्तिश्चेति सर्वं न साध्विति सुधीभिर्भृशं विचिन्त्यम्।।२०।।

अन्वय -

पर्वभांशसमन्विताम् तिथिम् अर्कदशाभ्यस्तां भसमूहेन विभज्य तिथिनक्षत्रमादिशेत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

पर्वभांशसमन्विताम् = पर्व के भांश से युक्त, तिथिम् = तिथि को, अर्कदशाभ्यस्तां = अर्क अर्थात् बारह और दस से गुणित कर उसे, भसमूहेन = भांश समूह से अर्थात् एक सौ चौबीस से, विभज्य = विभाजित कर (लब्ध को), तिथिनक्षत्रम् = तिथि सम्बन्धी नक्षत्र, आदिशेत् = (गणक) कहे।

अर्थ -

पर्व के नक्षत्रांश से युक्त तिथि को बारह और दस से गुणा कर उसे नक्षत्र समूह अर्थात् १२४ से विभाजित कर लब्ध को तिथि सम्बन्धी नक्षत्र कहे।

इष्टतिथि के तुल्य होने पर गतनक्षत्र में उसके कलानयन की प्रक्रिया-

याः पर्वभादानकलास्तासु सप्तगुणा तिथिः।
युक्ता स्तासां विजानीयात् तिथिभादानिकाः कलाः।।२१।।

सोमाकरः -

पर्वमत्र चोदितायास्तिथेः परिमाणमाह याः पर्वभादानकला इति। याः पूर्वमुक्ताः कथिताः पर्वभादानकलाः। भांशाः स्युरष्टकाः कार्या इति। सप्तनवकैस्त्वावापो यदि नेह विवक्षितस्तिथीनां समूहत्वात्। कलापरिमाणमुपरिष्टाद्वक्ष्यति पर्वणां स्याच्चतुष्पादी काष्ठानां चैव ताः कला इति। किं तासामित्याह। तासु सप्तगुणा तिथिर्भवेदिति वाक्यशेषः। एतदुक्तं भवति। पर्वभांशसमन्वितैरंशैः सप्तभिस्तिथिपरिमाणं कल्पयेत्। सप्तांशानि तिथिर्भवतीत्यर्थः। एवमतस्तासामपि कारणभूतानां सम्यग् विजानीयात् कास्तिथिभादानिकाः कला याः पूर्वचोदिताः कलाः। पूर्वार्धे पर्वसूत्तरा इत्यादौ तिथिभादानिकाः कलास्तस्यां तिथौ पर्वनक्षत्रकल्पना तस्यामेव भवेदित्यर्थः। पूर्वपूर्णमास्यां तदंशचोदितयागकालकल्पनयौपवसथादि कार्यमित्यर्थः।।२१।।

सुधाकरः -

इदानीमिष्टतिथितुल्ये गतनक्षत्रे तत्कलानयनमाह या इति। पूर्वप्रकारेण पर्वसमये या भादानकला आगतास्तासु सप्तगुणतिथिर्युक्ता ताश्च गणकस्तिथिभादानकलास्तिथितुल्ये गतभे सति आदानकला ग्रहणयोग्याः कला विजानीयात्। यदि पर्वतो गततिथिसंख्याससमेव गतनक्षत्रमानं तदा पर्वभादानकलासु सप्तगुणतिथिर्योज्या। योगसमास्तिथितुल्ये पर्वतो गतभे तस्यादानकला भवन्तीति।

अत्रोपपत्तिः। तिथितुल्ये पर्वतो गतभे तिथिसंख्यासमा गतनक्षत्रसंख्या। एकैकस्मिन् नक्षत्रे तु एकं कुदिनं सप्तकलाधिकं भवति "ससप्तैकं भयुक् सोमः" इति वक्ष्यमाणवचनात्। अतो दिनस्य प्रयोजनाभावात् पर्वभादानकलासु सप्तगुणा तिथिर्युक्ता ताश्च तिथिदिने भस्यादानकला भवन्तीति स्फुटम्। अत्र बार्हस्पत्यव्याख्यानं न स्फुटमिति।।२१।।

अन्वय -

याः पर्वभादानकलाः तासु सप्तगुणा तिथिः युक्ता ताः तिथिभादानिकाः कलाः विजानीयात्।

मञ्जुमती व्याख्या -

याः = जो (भांश ग्रहण कला), पर्वभादानकलाः = पूर्व प्रकार से पर्व समय में भांश ग्रहण कला (आगत हैं), तासु = उनमें, सप्तगुणा = सात से गुणित, तिथिः = तिथि को जोड़कर। ताः = उन्हें, तिथिभादानिका = तिथि के भांश से ग्रहीत कलाः = कला, विज्ञानीयात् = समझे।

अर्थ -

पूर्व प्रकार से पर्वसमय में जो भांश ग्रहण कला प्राप्त हुई उसमें सात से गुणित तिथि को जोड़कर गणक तिथि के समान गत नक्षत्र के होने पर ग्रहण करने योग्य कला समझे। यदि पर्व से गत तिथि संख्या समान ही गत नक्षत्रमान हो तब पर्व नक्षत्र ग्रहण कला में सात से गुणित तिथि को जोड़े।

तिथिमान के आनयन की प्रक्रिया–

अतीतपर्वभागेभ्यः शोधयेद् द्विगुणां तिथिम्।
तेषु मण्डलभागेषु तिथिनिष्ठां गतो रविः।।२२।।

सोमाकरः -

तथा परपक्षार्थमाह अतीतपरभागेभ्य इति। द्वौ चयश्चत्वारो वा षोडश चतुर्विंशतिर्द्वात्रिंशद्वा तेभ्यः शोधयेत् पातयेत् द्विगुणां तिथिं द्वौ सप्तकौ चतुर्दशेत्यर्थः। ततः किम्। तेषु मण्डलभागेषु भायावत्सङ्ख्याकेषु तिथिनिष्ठां गतो रविर्भवेदिति वाक्यशेषः। एतदुक्तं भवति। अमावास्यायां पर्वर्क्षचोदना–भावात् ततः परं पञ्चदशं यत तदपेक्षयौपवसथादौ प्रवृत्तिः। पूर्वेऽशे तिथेर्निष्ठा निष्पत्तिगतो रविः। तद्विवससूर्यर्क्षभागकल्पना एवं वा भवन्तु।।२२।।

सुधाकरः-

इदानीं तिथिमानमानयति अतीतेति। सूर्योदयादतीतपर्वणो गतपर्वणो ये भागा भोगभागा उन्नतांशा ये चैकसावनदिने चतुर्विंशत्यधिकशतमिता भवन्ति तेभ्यो द्विगुणां तिथिं गणकः शोधयेत्। शेषेषु तेषु मण्डलभागेषु स्वाहोरात्रवृत्तभागेषु यदा रविरागच्छति तदा स रविस्तिथिनिष्ठां तिथिमानान्तं गतो भवति। द्विगुणतिथिशोधनेन येऽहोरात्रवृत्तभागा आगतास्त एव तिथिभोगभागास्तद्भागसमो यदा रविरुचतस्तदा तिथ्यन्ते स्थितो भवतीत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। अतीतपर्वभागास्तद्दिने पर्वणो भोगभागाः। अथैकतिथौ रविसावनभागानयनार्थमनुपातो यदि १८६० तिथिभिः १८३० सावनदिनानि लभ्यन्ते तदैकतिथौ किमिति लब्धः सावनदिनावयवः = $^{१८३०\ ति}/_{१८६०}$ = $^{६१\ ति}/_{६२}$ = ति - $^{ति}/_{६२}$ = ति - $^{२\ ति}/_{१२४}$ = तिथिसमानि दिनानि -२ तिथिभागाः। अत्र दिनानां प्रयोजनभावात् द्विगुणतिथिसमा भागाः पर्वभागेभ्यो विशोधितास्ते वर्त्तमानतिथेर्भोगभागा भवन्तीति बार्हस्पत्यव्याख्यानं गणितं च समीचीनमिति।।२३।।

अन्वय-

अतीत पर्वभागेभ्यः द्विगुणां तिथिं शोधयेत् तेषु मण्डलभागेषु रविः तिथि निष्ठां गतः।

मञ्जुमती व्याख्या -

अतीत पर्वभागेभ्यः = सूर्योदय से गतपर्व भोगभाग से द्विगुणाम् = दूनी की गयी, तिथिम् = तिथि को (गणक), शोधयेत् = शोधित करे, (शेष) तेषु = उन, मण्डलभागेषु = दिनरातवृत्तभागों में, रविः = सूर्य, तिथिनिष्ठाम् = तिथिमान के अन्त में, गतः = प्राप्त (होता है)।

अर्थ -

सूर्योदय से बीते हुए पर्व के उन्नतांश जो एक सावन दिन में एक सौ चौबीस होते हैं उनसे द्विगुणित तिथि को गणक शोधित करे, शेष उन रात-दिन के वृत्त भागों में जब सूर्य आता है तब वह सूर्य तिथिमान के अन्त को प्राप्त करता है।

अभीष्ट विषुवत्समय में युगादि से पक्षतिथि आनयन प्रकार-

विषुवन्तं द्विरभ्यस्तं रूपोनं षड्गुणीकृतम्।
पक्षा यदर्धं पक्षाणां तिथिः स विषुवान् स्मृतः।।२३।।

सोमाकरः -

विषुवन्तं द्विरभ्यस्तमिति। द्विरिति द्वैविध्यमुक्तं तद्विषुवत्संज्ञकमुक्तं दिवससंज्ञकमुक्तम्। तदेव पक्षा वा तदेव परिमाणं चतुर्दशरूपोनमेकेनोनं त्रयोदशकं तावन्मात्रं दिनद्वयं षड्गुणीकृतं द्वादशगुणनया दिनानि पक्षः। असावार्क्ष एव न चान्द्र एतदेवागमतो यदेतत्तद्रूपोनमध्यर्धं मध्यतिथेः स विषुवान् स्मृतः। तिथिदिनानां तु चान्द्रमस एव न सौर्यः। पक्षा द्वादशका इति यदुक्तं तदेव शुनकप्रतिपादितं वक्ष्यमाणतत्सङ्ख्योपयोग्यम्।।२३।।

सुधाकरः-

इदानीमभीष्टविषुवत्समये युगादितः पक्षतिथ्यानयनमाह विषुवदिति। "समरात्रिदिवं कालं विषुवद् विषुवं च तत्" इत्यमरः। विषुवच्चैकस्मिन् सौरवर्षे सायनमेषादौ सायनतुलादौ भवतीति वर्षमध्ये वारद्वयं भवति। ज्यौतिषवेदाङ्गे रविचन्द्रादीनां समानवेगेन चलनाद् द्वयोर्द्वयोर्विषुवतोर्मध्ये समानान्येव सौरचान्द्रदिनानि भवन्तीति प्रसिद्धम्। विषुवद् युगादितोऽभाष्ट-विषुवतः संख्यात्मकं यन्मानं भवेत तद् द्विर्द्विकेनाभ्यस्तं गुण्यं गुणितफलं रूपेणैकेनोनं शेषं षड्गुणीकृतं षड्गुणं कार्यम्। इदं गुणनफलं स्वविषुवति युगादितः पक्षा भवन्ति तथाऽऽगतानां पक्षाणां यदर्धं यद्दलं स एव विषुवान् तिथिः स्मृतः आचार्यैरिति। "तिथिर्द्वयोः" इति लिङ्गानुशासनात् तिथिशब्दः पुँलिङ्गेऽपि।

अत्रोपपत्तिः। माघशुक्लादेर्युगादेः सौरमासत्रयान्तरे प्रथमं विषुवत्। अतो यदि ६० सोरैर्मासैर्युगचान्द्रपक्षा १२४ लभ्यन्ते तदा सौरमासत्रयेण किमित्यनु-पातेन लब्धाः पक्षाः $= {}^{३\times १२४}/_{६०} = {}^{३१}/_{५}$ क्षेपाख्याः। अथ द्वयोर्विषुवतोर्मध्ये षट् सौरा मासाः अतस्तदन्तर्गताः पक्षा $= {}^{६५}/_{५}$। द्वयोर्विषुवतोर्मध्ये ह्येकगुणा विषुवत्रयमध्ये द्विगुणाः अभीष्टविषुवन्मध्ये च (वि-१) एतद्गुणाः पक्षा भवन्ति। यद्यभीष्ट विषुवत्सङ्ख्या = वि। तर्हि विषुवदन्तर्गताः -

पक्षाः $= {}^{६२}/_{५}$ (वि-१) $= {}^{६२\,वि}/_{५} - {}^{६२}/_{५}$। क्षेपाख्ययोजनेन जाता युगादितः पक्षाः $= {}^{६२\,वि}/_{५} - {}^{६२}/_{५} + ३१/५ = १२\,वि + {}^{२\,वि}/_{५} - १२ - {}^{२}/_{५} + ६ + {}^{१}/_{५} = १२\,वि - ६ + {}^{२\,वि}/_{५} - {}^{१}/_{५} = ६\,(२\,वि - १)$ पक्षाः $+ ({}^{२\,वि-१}/_{५})$ १५ तिथयः। $= ६\,(२\,वि - १)$ पक्षाः $+ ३\,(२\,वि - १)$ तिथयः $= ६\,(२\,वि - १)$ पक्षाः $+ {}^{६\,(२\,वि-१)}/_{२}$ तिथयः।

अत उपपद्यते सर्वम्। अत्र बार्हस्पत्यकृतं व्याख्यानं गणितं च समीचीनं शङ्करबालकृष्णादीक्षितगणितानुरूपमिति।।२३।।

अन्वय -

विषुवत तत् द्विरभ्यस्तं रूपोनं षड्गुणी कृतम्, पक्षा (भवन्ति) पक्षाणां यदर्धं स विषुवान् तिथिः स्मृतः।

मञ्जुमती व्याख्या -

विषुवत् = समान रात–दिन का काल विषुवत् (संज्ञक है) तत् = उस विषुवत् को, द्विरभ्यस्तं = दो से गुणा करे, (गुणित फल को) रूपोनं = एक से घटाये, (शेष को) षड्गुणीकृतम् = छह से गुणा करे, पक्षाः = पक्ष (होते हैं), (आगत) पक्षाणां = पक्षों का, यदर्धं = जो आधा भाग (है), सः = वह, विषुवान् तिथिः = विषुवत् तिथि, स्मृतः = कही जाती है।

अर्थ -

"सम रात्रि दिवं कालं विषुवद् विषुवं च तत् " अर्थात् रात–दिन का समान काल विषुवत् संज्ञक है। एक सौर वर्ष में सायन मेष के आदि में तथा सायन तुला के आदि में–इस प्रकार वर्ष में दो बार विषुवत् होता है सूर्य–चन्द्रादि के समान वेग से चलने के कारण दो–दो विषुवत् के मध्य समान सौर–चान्द्र दिन होते हैं। उस विषुवत् का जो संख्यात्मक मान है–उसे दो से गुणा करे, गुणित फल को एक से रहित करे, शेष को छह से गुणा करे, यह गुणनफल अपने विषुवत् में युगादि से पक्ष होता है। आगत पक्ष का आधा भाग विषुवान् तिथि कहा जाता है।

नाडिका प्रमाण–

पलानि पञ्चाशदपां धृतानि
तदाढवं द्रोणमतः प्रमेयम्।
त्रिभिर्विहीनं कुडवैस्तु कार्यं
तन्नाडिकायास्तु भवेत् प्रमाणम्।।२४।।

सोमाकरः -

यस्मात् कलाभिर्नाडिकानिष्पत्तिस्तस्मादन्यथालघुत्वेनाह पलानि पञ्चाशदपां धृतानीति। पञ्चाशदपां धृतानि अष्टाब्दानि तस्मिन् परिमाणे

ताम्रघटेनाढकं नाम प्रमाणम्। द्रोणस्तस्तेन प्रमाणेन प्रमेयं प्रमातव्यम्। तदपि प्रमाणं पलशतद्वयप्रमाणं २०० तदेव पश्चात् त्रिभिर्विहीनं कुडवैस्तु कार्यम्। कुडवजा त्र्यङ्गुला शलाका तयाधश्छिद्रयेत् ततश्छिद्रोदकप्रस्नुत्या यावन्मात्रा कलोपगच्छति तन्नाडिकाया घटिकायाः प्रमाणं भवेत् सा भवतीत्यर्थः।।२४।।

सुधाकरः -

इदानीं नाडिकाप्रमाणमाह पलानीति। अपां जलस्य पञ्चाशत् पलानि यस्मिन् पात्रे धृतानि स्थापितानि तत् पात्रमाढकं कथ्यते। अतोऽस्मादाढकमानात् पूर्वाचार्यमतेभ्यो द्रोणं द्रोणमानं प्रमेयं प्रमातव्यम्। तद् द्रोणं त्रिभिः कुडवैर्विहीनं शेषं नाडिकाप्रमाणं भवेदिति सर्वं विस्तरतोऽष्टमश्लोकभाष्ये पूर्वं व्याख्यातमिह किं पिष्टपेषणेनेति।।२४।।

अन्वय -

अपां पञ्चाशत् पलानि धृतानि तदाढकम् अतः द्रोणं प्रमेयम् त्रिभिः कुडवैः विहीनं कार्यं तत् नाडिकायाः प्रमाणं भवेत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

अपां = जल के, पञ्चाशत् =पचास, पलानि-पल, धृतानि = स्थापित, तदाढकम् = वह पात्र आढक (कहा जाता है) अतः = इस आढक मान से, द्रोणम् = द्रोणमान, प्रमेयम् = प्रमित करें, त्रिभिः =तीन, कुडवैः = तीन अंगुल की शलाका कुडव संज्ञक है उससे, विहीनं = रहित, कार्यं = करे, तत् = वह, नाडिकायाः = नाडिका का, प्रमाणं = मान, भवेत् = हो।

अर्थ -

जल के पचास पल जिस पात्र में स्थापित हो वह पात्र आढक कहा जाता है। इस आढकमान से पूर्वाचार्यों के मत से द्रोणमान प्रमाणित करे। वह द्रोण तीन कुडव से विहीन हो तो वह नाडिका का मान होता है।

इष्ट तिथि में रवि के नक्षत्र का आनयन प्रकार-

एकादशभिरभ्यस्य पर्वाणि नवभिस्तिथिम्।
युगलब्धं सपर्व स्याद्वर्त्तमानार्कभक्रमात्।।२५।।

सोमाकरः -

तत्प्रसङ्गादुक्त्वा यागकालविधिविशेषमाह। पर्वाणीति। तदर्थानामवयवाः

कलासमूहा येऽष्टकाः कार्या इत्युक्ताः षोडश वा चतुर्विंशतिर्द्वात्रिंशद्वा द्वित्रिचतुरंशानेकादशभिरभ्यस्य सङ्गुण्य षोडशानां षट्सप्तत्यधिकं शतं १७६ भवति। चतुर्विंशतेः शतद्वयं चतुःषष्टिः २६४। द्वात्रिंशतः शतत्रयं द्विपञ्चाशच्च ३५२। तथा नवभिस्तिथिं तिथ्यवयवानपि नवभिरभ्यस्य ते च सप्तानामष्टकानां षट्पञ्चाशत् ५६ भवन्ति। तान् नवभिरभ्यस्य शतपञ्चकं चत्वारि च ५०४। ता एकीकृत्य शतत्रयेण द्वापञ्चाशता च सह शताष्टकं षट्पञ्चाशच्च ८५६ भवति। तेषां युगलब्धं युगा द्वादशेह युगोपन्यासप्राधान्यात्। तैस्ततो भागमपहृत्य यल्लब्धमेकसप्ततिकं ७१ स पर्व स्याच्चतुरंशः स्यादिति शेषः। एवं त्र्यंशावयवैश्चतुःषष्ट्यधिकेन शतद्वयेन सहाष्टषष्ट्यधिकं शतसप्तकं ७६८ भवति। तस्य तथैव भागापहारे लब्धं चतुःषष्टिः ६४। तथैव द्वयंशस्य शतषट्कमशीतिश्च ६८०। लब्धं तथैतत् षट्पञ्चाशत् ५६। कृत्ये च कदौपवसथे पर्वकाल इत्याह वर्तमानार्कभक्रमात्। यस्मिन्नृक्षे अर्क आस्ते तत उत्तरः काल इत्यर्थः। एष एव यागकालः। औपवसथे तु पूर्वोक्त एंव। अथवैतमेवार्थमन्यथा। तिथिं त्रिंशत्संख्याकं नवभिर्गुणयेत् तथा तदा द्वापञ्चाशत् पञ्चचत्वारिंशदेकोन चत्वारिंशत् कला एकोनविंशतिमुद्वापं कृत्वा एवमेतयोः कालयोरुपक्रमापवर्गौ यथा भवतस्तथा वर्तितव्यम्। तमभ्युदितेष्टिपथिकृती दशमी प्रकान्ते वेदनिष्पत्तिं विद्यादिति श्रुतेश्च। एतदमावास्यामधिकृत्योक्तम्।।२५।।

सुधाकरः -

इदानीमिष्टतिथौ रविनक्षत्रानयनमाह एकादशभिरिति। युगादितो वर्त्तमानपर्वपर्यन्तं यावन्ति पर्वाणि "निरेकं द्वादशाभ्यस्तम्" इत्यादिना स्युस्तान्येकादशभिरभ्यस्य सङ्गुण्य तथा पर्वानन्तरं या तिथिस्तां तिथिं तिथिसंख्यां नवभिः सङ्गुण्य द्वयमेकीकृत्य युगलब्धं युगे यावन्ति पर्वाणि तत्सङ्ख्यया चतुर्विंशत्यधिकशतेन लब्धं फलं सपर्व पर्वमानेन सहितं काये तदा तत् क्रमात् युगादिभवश्रविष्ठादितोवर्त्तमानार्कभं वर्त्तमानसूर्यनक्षत्रं स्यात्। इदं शङ्करबालकृष्णदीक्षितव्याख्यानं समीचीनम्।

अत्रोपपत्तिः। युगे सूर्यनक्षत्राणि = ५ × २७ = १३५। चान्द्रपर्वाणि च = १२४। ततोऽनुपातो यदि युगपर्वभिर्युगरविनक्षत्राणि तदेष्टपर्वभिः किमिति लब्धानि रविनक्षत्राणि = $^{१३५ प}/_{१२४} = प + {}^{११ प}/_{१२४}$ । अथैकेन पर्वणा वा पञ्चदशतिथिभिर्यदि रविनक्षत्रमानम् = $^{१३५}/_{१२४}$ इदं तदेष्टतिथिभिः किमिति लब्धमिष्टतिथिसम्बन्धिरविनक्षत्रमानम् = $^{१३५ \times इति}/_{१५ \times १२४} = {}^{९ \times इति}/$

$_{१२४}$। द्वयोर्योगेन जातं युगादितो रविनक्षत्रमानम् = प + $^{११ प + ९ इति}/_{१२४}$। अतः श्रविष्ठादिगणनया वर्त्तमानतिथावर्कनक्षत्रं स्यादित्युपपन्नम्। अत्र बार्हस्पत्यव्याख्यानं न समीचीनं तद्गणितेनापि न वर्त्तमानार्कभमायातीति गणकैर्निपुणं विलोक्यम्।।२५।।

अन्वय -

पर्वाणि एकादशभिरभ्यस्य तिथिं नवभिः (संगुण्य) युगलब्धं सपर्व क्रमात् वर्तमानार्कभं स्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या -

पर्वाणि = युगादि से वर्तमान पर्व पर्यन्त जितने पर्व हों, उन्हे, एकादशभिः = ग्यारह से, अभ्यस्य = गुणित कर, (पर्व के अनन्तर) तिथिं = तिथि की संख्या को, नवभिः = नव से (गुणित कर) (दोनों को एक कर), युगलब्धं = युग में जितने पर्व हों उनकी संख्या से, सपर्व = पर्व के मान सहित करे, क्रमात् = क्रमशः, वर्तमानार्कम् = वर्तमान सूर्य नक्षत्र, स्यात् = हो।

अर्थ -

युगादि से वर्तमान पर्वपर्यन्त जितने पर्व हों, उन्हें ग्यारह से गुणित कर फिर पर्व के अनन्तर जो तिथि हो, उस तिथि की संख्या को नौ से गुणा कर दोनों को एकत्रित कर युग में जितने पर्व हों उस संख्या से लब्धफल पर्वमान के सहित किया जाय, वह क्रम से वर्तमान सूर्य नक्षत्र हो।

वर्तमान नक्षत्र में कब सूर्य प्रवेश हुआ-

सूर्यर्क्षभागान् नवभिर्विभज्य
शेषं द्विरभ्यस्य दिनोपभुक्तिः।
तिथीयुता भुक्तिदिनेषु कालो
योगो दिनैकादशकेन तद्धम्।।२६।।

सोमाकरः-

अथ भेदेन परिमाणमाह। यस्मिन्नक्षत्रे सूर्यः स्थितः स सूर्यर्क्षस्तस्य भागान् भुक्तान् भागान् उक्तानष्टसंख्याकान् (अस्य यावन्तः) तान् नवभिर्विभज्य भागं दत्त्वा ततः शेषं द्विरभ्यस्य द्विगुणीकृत्य षोडशानां नवयात्यस्य सप्तांशा

अवशिष्यन्ते ते द्विगुणाश्चतुर्दश भवन्ति। चतुर्विंशतेर्द्वौ नवकावष्टादश पात्य षडवशिष्यन्ते ते द्विगुणा द्वादश भवन्ति। तथा द्वात्रिंशतस्त्रीन् नवकान् सप्तविंशतिं पात्य पञ्चावशिष्यन्ते ते द्विगुणा दश भवन्ति। ततः किम्। सा दिनोपभुक्तिः सूर्यस्येति वाक्यशेषः। कथम्। शेषं तथैव विभज्येति वर्त्तते। एतदुक्तं भवति। यावद्यस्यावशिष्यते तद्द्विगुणं कृत्वा तथा विभज्य यस्य यावती भागावाप्तिस्तस्य तावती सूर्यभुक्तिरित्युक्तं भवति। द्व्यंशस्य द्व्यंशकलना यावत् त्र्यंशस्य त्र्यंशाश्चतुरंशस्य चतुरंशा एव भावः। दिनकालपरिमाणमाह। तिथी युता भुक्तिदिनेषु कालः। तिथियुता सप्तगुणाष्टकाः सा षट्पञ्चाशत्परिमाणा भुक्तिः। सा च भुक्तिः सहिता द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिर्वा सहिता अष्टपञ्चाशत् ५८। एकोनषष्टिः ५९। षष्टिः। ता भागानां सङ्कलनया दिनेषु स कालो भवतीति वाक्यशेषः। एवं तु स्वकपरिमाणेन दिनैकादशकेन तद्भम्। एकादशभिर्दिवसैः सूर्यर्क्षं व्याप्नोतीत्यर्थः। एवमेतद्योगे सभावे सूर्यस्य विचार्यमिति वाक्यशेषः।।२६।।

सुधाकरः -

इदानीं कदा वर्त्तमाननक्षत्रादौ रवेः प्रवेशो जात इत्याह सूर्यर्क्षभागानिति। अनन्तरोक्तप्रकारेण सूर्यर्क्षस्य वर्त्तमानसूर्यनक्षत्रस्य ये भुक्ता भागा भवन्ति तान् नवभिर्विभज्य फलं ग्राह्यम्। तत् फलं द्विर्द्विवारं द्वाभ्यामभ्यस्य सङ्गुण्य गुणितफलेन दिनांशमानेन पूर्वागतं फलं दिनात्मकं हीनं कृत्वा शेषं ग्राह्यम्। तदेव शेषं सूर्यस्य दिनोपभुक्तिर्भवति। शेषसमेन सावनदिनाद्येन ते भागा रविणा भुक्ताः। अतस्तत्सावनदिनाद्येन वर्त्तमानकालात् प्रागेव तन्नक्षत्रादौ रवेः प्रवेश इति। एवं तिथेर्वर्त्तमानतिथिगतभुक्तभांशेभ्यो वा युतेः पर्वगणभव-भुक्तभांशेभ्यश्च यानि भुक्तिदिनानि तेषु प्राक् यः कालः स एव योगो नक्षत्रादेरर्कस्य च योगकालो भवति। अथ योगकालज्ञाने सति दिनैकादशकेन दिने एकादशकेन "एकादशभिरभ्यस्य" इत्यादि भानयनप्रकारेण तद् भं योगसम्बन्धि नक्षत्रं च ज्ञेयमिति।

अत्रोपपत्तिः। युगरविनक्षत्रै १३५ र्युगसावनदिनानि १८३० लभ्यन्ते तदैकेन नक्षत्रेण किम्। लब्धमेकनक्षत्रे सावनदिनमानम् = $^{१८३०}/_{१३५}$ =

$^{१२२}/_{९}$ = $^{१३५}/_{९}$ एतदेव मानं वक्ष्यति चाचार्यः ''सूर्यो द्यूनि त्रयोदश। नवमानि च पञ्चाह्नः'' इति। अथान्योऽनुपातो यद्येकेन नक्षत्रेण वा चतुर्विंशत्यधिकशतभांशैरिदं $^{१२३}/_{९}$ सावनमानं लभ्यते तदा रविभुक्तभांशैः किमिति लब्धं भुक्तभांशसम्बन्धि सावनदिनमानम् = $^{१२२ + \text{भुभां}}/_{१२४ \times ९}$ = $(१-^{२}/_{१२४})\ ^{\text{भुभां}}/_{९} = ^{\text{भुभां}}/_{९} - ^{२}/_{१२४} . ^{\text{भुभां}}/_{९} = ^{\text{भुभां}}/_{९}$ सावनदिनानि = $^{२\text{भुभां}}/_{९}$ सावनदिनांशमानम्। अस्यैव संज्ञा दिनोपभुक्तिः कृता यत एतावद्दिनपर्यन्तं रविणा तन्नक्षत्रभागा भुक्ता इति। उत्तरार्धोपपत्तिरतिसुगमा पूर्वार्धप्रकारागतभुक्तिदिनज्ञानत इति। अत्र मन्मते बार्हस्पत्यव्याख्यानं तद्गणितं च न समीचीनमिति।।२६।।

अन्वय -

सूर्यर्क्षभागान् नवभिर्विभज्य शेषं द्विरभ्यस्य दिनोपभुक्तिः तिथेः युतेः भुक्तिदिनेषु कालो योगो दिनैका दशकेन तद् भं (ज्ञेयम्)।

मञ्जुमती व्याख्या -

सूर्यर्क्षभागान् =वर्तमान सूर्य नक्षत्र के भुक्त भागों को, नवभिः = नव संख्या से, विभज्य = भाग देकर (फल ग्रहण करे), (उस फल) शेषं = फल को, द्विरभ्यस्य = दो बार दो से गुणा करे, (वही शेष) दिनोपभुक्तिः = सूर्य का भुक्त दिन (होता है), तिथेः = तिथि के भुक्तभांश से, युतेः = युक्त होने से, भुक्तिदिनेषु = जो भुक्त दिन हैं उनमें, कालः = जो पहले समय है, योगः = वही काल योग, दिनैकादशकेन = दिन में ग्यारह गुणित, तद्भं = योग सम्बन्धी नक्षत्र (समझे)।

अर्थः -

वर्तमान सूर्य नक्षत्र के जो भुक्त भाग हों उन्हें नव से विभाजित कर फल ग्रहण करे, उस फल को दो बार दो से गुणित कर गुणितफल दिनांशमान से पूर्वागत फल दिनात्मक को हीनकर शेष ग्रहण करे, वही शेष सूर्य की दिनोपभुक्ति होगा। वर्तमान तिथिगत भुक्तभांश से युत जो भुक्त दिन है उनमें पहले जो काल हो वही योग नक्षत्रादि तथा सूर्य का योगकाल होता है। योग काल ज्ञान होने पर दिन में ग्यारह से गुणा करने पर योग सम्बन्धी नक्षत्र समझे।

रवि भुक्त नक्षत्रों में सावनदिन कथन-

त्र्यंशी भशेषो दिवसांशभाग-
श्चतुर्दशश्चाप्यपनीय भिन्नम्।
भार्धेऽधिके चापि गते परोंऽशो
द्वावुत्तमे तन्नवकैरवेर्द्युः।।२७।।

सोमाकरः -

सिन्दग्धकालपरिमाणमाह त्र्यंशी भशेषो दिवसांशभाग इति। तद्रवेर्द्युर्भवेदिति शेषः। तत्परिमाणं त्र्यंशः। तत्परिमाणमष्टौ। तथा दिवसचोदनाः सप्तगुणाः षट्पञ्चाशत्प्रमाणं तत्संख्याकां तिथिं किं समयाम्। त्र्यंशी भशेषं दिवसांशभागं चतुर्दशं चाप्यपनीय तस्या अपनीय यथैकत्वं प्रागुक्तं तथा कल्पनया नवकैर्भिन्नं द्वावुत्तमे तु द्वयंशाद्यपेक्षया पञ्च षट् सप्त वा भवन्ति। तत्। तथा दिवसांशभागं चतुर्दशं चाप्यपनीय ते अष्टानामर्धे चत्वार एवं षट्पञ्चाशत्। तान् नव वा दश वैकादश वा पात्य सप्तचत्वारिंशत् ४७। षट्चत्वारिंशत्। पञ्चचत्वारिंश ४५ द्वाऽवशिष्यते। तेषामादौ अंशा अष्टौ तथोपरिष्टादन्यः परोंऽशस्तेऽप्यष्टौ। एवं द्युरेकषष्टिर्द्वाषष्टिस्त्रिषष्टिर्वा नक्षत्रापेक्षया भवति। एतत्तदार्क्षं सौरम्। सोमस्य यस्यां तिथिकल्पनायामिह प्रमाणं नक्षत्रापेक्षया किमेव भवतीति नाक्षत्री भुक्तिः। नभे गते नभे नक्षेत्रेऽतीते अधिके च काले वा सति तत्र किं परोंशो भवेदिति वाक्यशेषः। किं सर्वकाले। न। द्वावुत्तर एव कालगत्यपेक्षया पश्चिमे द्वौ पञ्चांशौ भवतः। एवमेतस्यां कल्पनायां ग्रहगणितं तद्वहुगणितसापेक्षत्वान्न पर्यालोचितम्। तत्तु गणितज्ञाः स्फुटतरं कल्पयिष्यन्ति तेषां त्वागमप्रतिपत्तये पदार्थमेवं श्रुतिपुराणप्रतिपादितम्।।२७।।

सुधाकरः -

इदानीं रविभुक्तनक्षत्रेषु सावनदिनान्याह त्र्यंश इति। चतुर्दशस्य सावनदिवसस्य योऽन्तिमस्त्र्यंशः स भशेष इति कथ्यते। भस्य नक्षत्रस्य सम्बन्धेन यः शेषः स भशेष इत्यन्वर्थकं नाम तदस्ति। अतस्तद्भिन्नं खण्डात्मकं मानं चतुर्दशस्य सावनदिवसस्य मध्येऽपनीय हित्वा शेषमिते चतुर्दशदिनभागे रवेरेकस्य भस्य भोगो भवति। १४-$^{१}/_{३}$ =१३$^{२}/_{३}$ एतेषु सावनदिनेषु रविरेकनक्षत्रं भुङ्क्ते इत्यर्थः। परं त्वत्र मानेऽन्तरं पतति तदर्थं विशेषं कथयति

''भार्धेऽधिके'' इति। रवौ भार्धे १३$^{१}/_{२}$ वाऽधिके भार्धाधिके वाल्पगते भार्धाल्पगते नवकैर्नक्षत्रैर्यः परोऽपर एकोंऽशो भवेत् एतदपि मानं द्यौ पूर्वप्रकारागतनक्षत्र-संबन्धिसावनदिनमानेऽपनयनार्थं शोधनार्थमुक्तम्। अत्रैतदुक्तं भवति। एकनक्षत्रभोगसावनमानं ''त्र्यंशो भशेषः'' इत्यादिविधिनाऽऽगतमभीष्टनक्षत्रसंख्यागुणमभीष्टनक्षत्रसंबन्धिसावनदिनमानमागच्छति तत्र नवभिर्नवभिर्नक्षत्रैरेकैकं दिनमपनेयं तदा तद्वास्तवं मानं ज्ञेयमन्यथा स्थूलमित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। रवियुगनक्षत्रैः ५ × २७ = १३५ युगसावनदिनानि १८३० लभ्यन्ते तदैकेन किमिति लब्धमेकरविनक्षत्रे सावनमानम् = $^{१८३०}/_{१३५}$ = $^{१२२}/_{९}$ = १३$^{५}/_{९}$ = १३ + $^{६}/_{९}$ - $^{१}/_{९}$ = १३ + $^{२}/_{३}$ - $^{१}/_{९}$ = (१४ - $^{१}/_{३}$) - $^{१}/_{९}$। इदमभीष्टनक्षत्रमानगुणमभीष्टनक्षत्रमानसम्बन्धि सावनदिनमानम्।

= (१४ - $^{१}/_{३}$) इन- इन/९। अत्राचार्येण प्रथमं प्रथमखण्डभवं फलं साधितं तत्र द्वितीयखण्डफलं यन्नवभिर्नवभिर्नवभिर्नक्षत्रैरेकमेकमुपलभ्यते तस्य शोधनं साधूक्तम्। अत्र बार्हस्पत्यव्याख्यानादिकं न साध्विति। तत्र ''द्वावुत्तमे'' तथा 'अवेद्यः' इति शोधितपाठोऽपि न साधु रिति।।२७।।

अन्वय -

दिवसांशभाग चतुर्दशस्य त्र्यंशः भशेषो भिन्नं अपनीय भार्धेऽधिके वाल्पगते नवकैः परोऽंशो द्यौ यः एतदुक्तम्।

मञ्जुमती व्याख्या -

दिवसांशभाग चतुर्दशस्य = दिन के अंशभाग चौदह सावन दिन का, त्र्यंशः = अन्तिम तीन अंश, भशेषः = नक्षत्र शेष कहा जाता है, भिन्नम् अपनीय = खण्डात्मक मान चौदह सावन दिन के मध्य में हीन कर, भार्धेऽधिके = नक्षत्र के आधे भाग के अधिक होने पर, वाल्पगते = अथवा कम होने पर, नवकैः = नव नक्षत्रों से, परो = दूसरा, अंशो = भाग, द्यौ = पूर्व प्रकार से आगत नक्षत्र सम्बन्धी सावन दिनमान में, यः एतत् उक्तम् = जो शोधन के लिए कहा है।

अर्थ -

किसी नक्षत्र में रवि के सञ्चार काल से चौदह सावन दिन का जो अन्तिम तृतीयांश सावन दिन वह 'भशेष' है। इस एक तृतीयांश दिन को चौदह सावन दिन में

घटाने पर शेष सावन दिन में रवि एक नक्षत्र भोग करते हैं। रवि नक्षत्र के मध्य भाग में, अर्धाधिक भाग में, या अर्धाल्प भाग में जहाँ भी स्थित हो, उपर्युक्त नियम से गणना कर उससे प्रति नव नक्षत्र में एक सावन दिन यह अंश घटा देने पर रवि के नक्षत्र योग का वास्तव सावन दिन मान प्राप्त होगा।

युग में सावन दिनादि का कथन-

त्रिशत्यह्नां सषट्षष्टिरब्दः पञ्चर्त्तवोऽयने।
मासा द्वादश सौराः स्युरेतत् पञ्चगुणं युगम्।।२८।।

सोमाकरः -

एवमेतत्पूर्णमासस्य दर्शस्य चन्द्रसूर्यसम्बधेन पर्वसञ्ज्ञोदनया यागकालं प्रतिपाद्यावयवानां संख्या तेन कालनिष्पत्तिप्रतिपत्त्यर्थमाह त्रिशत्यह्नां सषट्षष्टिरब्द इति। त्रयाणां शतानां समाहारस्त्रिशती या सा सषट्षष्टिः। षट्षष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानीत्युक्तं भवति। ततः किम्। तदब्दो वर्षमितिर्भवतीति वाक्यशेषः। स च पञ्चर्त्तवः पञ्च वा ऋतव इति श्रुतिमभिप्रेत्य निरुक्तकृत् पञ्चर्त्तवः संवत्सरस्येत्याह। तथा तस्यायने द्वे उदग्दक्षिणे इति तस्य ते। तयोर्मासा द्वादश भवन्तीति वाक्यशेषः। तेषु तु सूर्याश्रयणादर्का द्वादश स्युः। मासविभागेन द्वादशादित्या इति श्रुतेः। ब्रह्म वा एष इतस्तपति यद्वशत इत्याद्या विभागचोदना। एवमेतत्समग्रमेकीभूतम्। एतत् पञ्चगुणं युगम्। यदिह युगाध्यक्षमित्यादौ युगमधिकृतं तस्यैषा प्रतीतिर्न कृतादीनाम्। एते तु द्वादश पूर्वमेवेह कृतास्तत्प्राधान्येन शास्त्रप्रवृत्तिः। तस्य दिनानि।।२८।।

सुधाकरः -

इदानीं युगे सावनदिनाद्याह त्रिशतीति। सषट्षष्टिः षट्षष्टिसहिता अह्नां रविसावनदिनानां त्रिशती अब्दः सौराब्दो भवति। तस्मिन् सौरॉब्दे ऋतवः षट्। अयने द्वे अयने। सौरा मासाश्च द्वादश भवन्ति।

अत्रोपपत्तिः। अत्र वेधेन सौरवर्षे स्थूलाः ३६६ सावनदिवसा आनीताः। ते पञ्चगुणा युगे सावना दिवसाः=१८३०। शेषोपपत्ति स्फुटा।।२८।।

अन्वय -

सषट्षष्टिः त्रिशत्यह्नाम् अन्यः षट्ऋतवः अयने द्वादश सौराः मासाः स्युः एतत् पञ्चगुणं युगम्।

मञ्जुमती व्याख्या -

सषटषष्टिः = छाछठ सहित, त्रिशत्यहाम् = तीन सौ रविसावन दिनों का, अब्दः = सौरवर्ष, (उस सौरवर्ष में) षड्ऋतवः छह ऋतुएँ, अयने = दो अयन, द्वादश = बारह, सौराः = सूर्य सम्बन्धी, मासाः = महीने, स्युः = होवें, एतत् =यह तीन सौ छाछठ सावन दिन, पञ्चगुणम् =पाँच से गुणित, युगम् = युग हो।

अर्थ -

तीन सौ छाछठ सूर्य सावन दिन का एक वर्ष होता है, एक वर्ष में छह ऋतुएँ होती हैं, दो अयन (उत्तरायण + दक्षिणायन) होते हैं, बारह सौर मास होते हैं, तीन सौ छाछठ को पाँच से गुणा करें तो एक युग गुणनफल सावन दिन होगा।

उदया वासवस्य स्युर्दिनराशिः सपञ्चकः।
ऋषेर्द्विषष्टिहीनं स्याद् विंशत्या सैकया स्तृणाम्।।२९।।

सोमाकरः -

उदया वासवस्य स्युरिति। वासव इन्द्रस्तत्संबन्धेन यज्ञ इति श्रुतेः। ससवनानां प्रातरादीनां संबन्धात् सवनस्य प्राधान्यात् तस्य निर्देशः। तदीयमानस्य प्रमाणमुदया एव ते स्युर्भवेयुः। ते तु सूर्यस्य नान्येषाम्।

यथाह परिशिष्टकृत्-

सा तिथिस्तदहोरात्रं यस्मादभ्युदितो रविः।
तथा कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्।। इति।

एवं स मानो दिनराशिर्भवेदिति वाक्यशेषः। तथा तत्पञ्चकाः। ऋषेश्चन्द्रस्य ऋषिर्विप्राणामिति मन्त्रवर्णात् तस्य स्वनामनिवृत्तः पञ्चकः। त्रिपञ्चक इति वा पाठः। तदा पक्ष एव। परुर्द्विषष्टिहीनं स्यात् प्रत्येकस्यापि तिथेर्द्वाषष्ट्या भागो हीयते।

तथा च गर्गः -

द्विलवोनमहोरात्रं चन्द्रस्य गतिरुत्तमा-इति।

स एष तिथिर्विंशत्या सैकया स्तृणाम्। स्तृणामृक्षाणां ऋक्षास्तृभिरिति नक्षत्राणामिति नैरुक्ताः। तेषामेकविंशत्या हीनं स्यादिति वर्त्तते। तास्तु कला एव स्त्रीलिङ्गनिर्देशात्।

तथा च गर्गः-

दिनरात्रिषु यः पक्षपादवृद्ध्या चरेद्रविः।
चरांशप्रमितैरंशैरेकविंशतिभिर्दिनैः।। इति।

एवमेतानि मया पूर्वमेव गर्गवाक्यैर्विस्तरेण प्रतिपादितानि इहार्थमितमेतदुदाहृतम् । एवमेतस्य युगस्य।।२९।।

सुधाकरः -

उदया इति। पूर्वविधिना युगे यो दिनराशिः सूर्यसावनाहर्गणः स सपञ्चकः पञ्चभिः सहितस्तदा युगे वासवस्य धनिष्ठाया उदयाः स्युः। अत्र धनिष्ठाग्रहणमुपलक्षणार्थम्। तेन पूर्वागता संख्या सर्वेषां नक्षत्राणामुदया भभ्रमा भवन्ति क्रान्तिवृत्तस्थानां सर्वेषां नक्षत्राणां समानकालेन भ्रमणात्। स दिनराशिर्द्विषष्ट्या हीनस्तदा ऋषेश्चन्द्रस्योदयाश्चन्द्रसावनदिवसा भवन्ति। स एव दिनराशिः सैकया विंशत्या एकविंशत्या हीनस्तदा स्तृणां नक्षत्राणां चन्द्रनक्षत्राणां मनानि स्युरित्यर्थः।।

अत्रोपपत्तिः। ''भभ्रमास्तु भगणैर्विवर्जिता यस्य तस्य कुदिनानि तानि वा'' इति भास्करोक्तिवैपरीत्येन युगे भभ्रमाः = १८३० + ५ = १८३५। युगे चान्द्रमासाः =६२। एते रविचन्द्रभगणान्तरसमा अतो विलोमेन युगे चान्द्रभगणाः = ६२ + ५ = ६७। अथोक्तभास्करविधिनैव चन्द्रसावनदिवसाः = भभ्र - चभ = १८३५ - ६७ = १८३० - ६२ = १७६८। युगे चन्द्रभगणाः सप्तविंशति-गुणास्तन्नक्षत्राणां मानम् = ६७×२७=१८०९ =१८३०-२१। इत्युपपन्नं सर्वम्।।२९।।

अन्वय -

दिनराशिः सपञ्चकः वासवस्य उदयाः स्युः, द्विषष्ट्या हीनः ऋषेः सैकया विंशत्या (हीनः) स्तृणाम् (मानानि स्युः)।

मञ्जुमती व्याख्या -

दिनराशिः = युग में सूर्य सावन अहर्गण (एक हजार आठ सौ तीस) सपञ्चकः = पाँच से युक्त, वासवस्य = धनिष्ठा का, उदयाः = उदय, स्युः = हो, (वह

दिनराशि) द्विषष्ट्याहीनः = बासठ रहित, ऋषेः = चन्द्रमा के (उदय हों) सैकया विशत्या = इक्कीस से हीन, स्तृणाम् = चन्द्र नक्षत्रों का (मान हों)।

अर्थ -

युगीय सावन दिन की संख्या के साथ पाँच योग करने से तत्संख्यक सावन दिन में धनिष्ठा नक्षत्र की उदय संख्या होती है। उक्त सावन दिन संख्या से बासठ घटाने पर चन्द्र की सावन दिन संख्या होती है तथा इक्कीस घटाने पर चन्द्र के नक्षत्र भोग की संख्या मिलती है।

सौर नक्षत्रमान तथा चन्द्र-अयन-

पञ्चत्रिंशं शतं पौष्णमेकोनमयनान्यृषेः।
पर्वणां स्याच्चतुष्पादी काष्ठानां चैव ताः कला।।३०।।

सोमाकरः -

पञ्चत्रिंशं शतं पौष्णमिति। यत् पौष्णं सौरमयनमुदगमनाद्यमुक्तं तदृषेश्चन्द्रस्यायनानि पञ्चत्रिंशं शतमेकोनं चतुस्त्रिंशं शतं भवतीति वाक्यशेषः। चन्द्रमासापेक्षया प्रतिमासं द्वे द्वे इत्येतत् चान्द्रमासाः सप्तषष्टिस्तत्र भवति। पर्वणां स्याच्चतुष्पादी। पादस्त्रिंशत् तु सैकिकेत्युक्तम्। तेषां चतुष्पादी चत्वारः पादाश्चतुर्विंशं शतमित्यर्थः। केषां पर्वणां सर्वमासानां यस्मादधिकमासाभ्यां सह तत्र द्वाषष्टिमासास्तस्मादेतेषां तत्र समस्तत्र समस्तसंख्याप्रसङ्गादाह काष्ठानां चैव ताः कला। काष्ठा पञ्चाक्षरा भवेदिति वक्ष्यति। तासां चतुष्पादी च कलानिष्पत्तिरित्यर्थः। स चतुर्विंशं काष्ठाशतं कला भवतीत्यर्थः।।३०।।

सुधाकरः -

पञ्चत्रिंशमिति। पौष्णं सौरं नक्षत्रमानं युगे पञ्चत्रिंशं शतं पञ्चत्रिंशदधिकं शतं १३५ भवति। तदिदं मान १३५ मेकोनं तत्प्रमाणानि युगे ऋषेश्चन्द्रस्यायनानि भवन्ति। युगे यानि चन्द्रपर्वाणि चतुर्विंशत्यधिकशतमितानि भवन्ति तेषां चतुर्थांशः पर्वपादः कथ्यते तेन युगे पर्वणां चतुष्पादी चतुर्विंशत्यधिकशतमितानि। एतन्मितानां काष्ठानां चैका कला भवतीत्यर्थः।।

अत्रोपपत्तिः। युगे रविभगणाः सप्तविंशतिगुणास्तन्नक्षत्रमानम् = २७ × ५ = १३५। युगे चन्द्रभगणा द्विगुणास्तानि तदयनमानानि = ६७ × २ = १३४ - १३५ - १। शेषोपपत्तिः स्फुटा।।३०।।

अन्वय-

पौष्णं पञ्चत्रिंशं शतम् ऋषेः एकोनमयनानि (भवन्ति) पर्वणां चतुष्पदी स्यात् काष्ठानां चैव ताः कलाः (भवन्ति)।

मञ्जुमती व्याख्या -

पौष्णं = सूर्य सम्बन्धी नक्षत्रमान, पञ्चत्रिंशशतं = एक सौ पैंतीस, ऋषेः - चन्द्रमा का, एकोनम् = एक कम, अयनानि = अयन होते हैं, पर्वणाम् =युग में जो चन्द्रपर्व - एक सौ चौबीस होते हैं-उनका, चतुष्पदी = चारपाद, काष्ठानाम् = काष्ठाओं की, एका = एक, कला = कला परिमाण (होता है)।

अर्थ -

सौर नक्षत्रमान युग में एक सौ पैंतीस होता है, वह यह मान एक कम अर्थात् एक सौ चौंतीस युग में चन्द्र का अयन होते हैं। युग में जो चन्द्रपर्व एक सौ चौबीस होते हैं, उनका चतुर्थांश (चौथा भाग एक तीस) पर्वपाद कहा जाता है। इससे युग में पर्व की चतुष्पदी एक सौ चौबीस होती है। इससे मित काष्ठाओं की एक कला होती है।

सावनमास-चान्द्रमास-नक्षत्रमास संख्या कथन-

सावनेन्दुस्तृमासानां षष्टिः सैकद्विसप्तिका।
द्यु त्रिंशत् सावनस्याब्दः सौरस्तृणां सिपर्ययः।।३१।।

सोमाकरः -

सावनेन्दुस्तृमासानां षष्टिरिति। मासानां युगे संख्या। सावनसंख्यापेक्षया सौराणां षष्टिरेव। त्रिंशद्दिवसमाससंख्यया सावनानां षष्टिः सैका एकषष्टिः। तथाधिकमासाभ्यां सह द्विषष्टिश्चान्द्राणाम्। तथा ससप्तिका षष्टिर्नाक्षत्राणां सप्तषष्टिरित्यर्थः। स तु मासः सर्वेषां द्यु त्रिंशत्। द्युरहर्नाम। त्रिंशद्दिनं मास इत्यर्थः। तथा सावनस्य दिनस्य त्रिंशदेवार्धनाडिका इति वाक्यशेषः। सूर्यस्य विपर्ययः परावृत्तिर्दिनम्। तथा स्तृणां नक्षत्राणां च परावृत्तिरेव स्वकं दिनमित्युक्तं भवति।।३१।।

सुधाकरः -

षष्टिः क्रमेण एकेन द्विकेन सप्तभिश्च युता तद्य क्रमेण युगे सावनमास-

संख्या = ६१। चान्द्रमाससंख्या = ६२। स्तृमासानां नक्षत्रमासानां संख्या = ६७। द्युत्रिंशत् सावनदिनानां त्रिंशत् सावनो मासो भवति। यः सौरोऽब्दः स एव स्तृणां नक्षत्राणां पर्ययो भ्रमः सौराब्दकालेन रविरेकं नक्षत्रगणं भुङ्क्ते इत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। चन्द्रो यावतो कालेनैकं नक्षत्रगणं भुङ्क्ते स एव कालो नक्षत्रमास इति सांहितिका वदन्ति। तथा च सिद्धान्ततत्त्वविवेके कमलाकरः। "भचक्रैकभोगाद्विधोः केचिदार्क्षं वदन्त्यत्र मासं बुधाः संहितासु" इति। तेन चन्द्रभगणा एव युगे नक्षत्रमासाः। एतेन सर्वमुपयोग्युपपद्यते। अन्यत् स्फुटम्। अत्र सर्वं बार्हस्पत्यव्याख्यानं समीचीनं तच्च पञ्चसिद्धान्तिकायां पैतामहसिद्धान्ते लिखितसममिति। एतेषु बहु मया ६-८ श्लोकानां भाष्ये व्यलेखीति।।३१।।

अन्वय-

षष्टिः सैकद्विसप्तिका सावनेन्दुस्तृमासानां (संख्या भवति) द्युत्रिंशत् सावनस्य (मासो भवति) स्तृणां सपर्ययः सः सौरः अब्दः स्तृणां पर्ययः।

मञ्जुमती व्याख्या -

षष्टिः = साठ, सैकद्विसप्तिका = क्रमशः एक-दो-सात से जुटकर, सावनेन्दुस्तृमासानां = सावनमाससंख्य एकसठ, चान्द्रमास संख्या बासठ, नक्षत्रमास संख्या सरसठ, द्युत्रिंशत् = सावन दिनों की तीस संख्या, सः = वह, सौरः = सूर्य सम्बन्धी, अब्दः = वर्ष, स्तृणां = नक्षत्रों का, पर्ययः = भ्रमण होता है।

अर्थ-

साठ संख्या क्रम से एक-दो तथा सात से युक्त हो तब क्रमशः युग में सावन मास संख्या = एकसठ, चान्द्रमास संख्या = बासठ, नक्षत्रमास संख्या = सरसठ होती है, सावन दिनों की तीस संख्या सावन मास होती है, जो सौर अब्द है, वही नक्षत्रों का भ्रमण है-सौराब्दकाल से सूर्य एक नक्षत्रगण का भोग करता है।

यज्ञ में पूजन के लिए नक्षत्र देवता कथन-

अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रोऽदितिर्बृहस्पतिः।
सर्पाश्च पितरश्चैव भगश्चैवार्यमापि च।।३२।।

सविता त्वष्टाऽथ वायुश्चेद्राग्नी मित्र एव च।
इन्द्रो निर्ऋतिरापो वै विश्वेदेवास्तथैव च।।३३।।

विष्णुर्वसवो वरुणोऽज एकपात् तथैव च।
अहिर्बुध्न्यस्तथा पूषा अश्विनौ यम एव च।।३४।।

सोमाकरः -

अग्निः प्रजापतिरिति। प्रसिद्धा एता देवताः। रुद्रस्य प्रतिरूपः सोमः। प्रोष्ठपदयोर्विपर्ययः पाठदोषो वा।।३२-३४।।

सुधाकरः -

इदानीं यज्ञेऽर्चनाय नक्षत्रदेवता आह अग्निरिति। कृत्तिकादेरेता नक्षत्र-देवताः संहिताग्रन्थेषु सर्वत्र प्रसिद्धाः। अत्र पूर्वभाद्रपदाया अजो वैकपादिति देवताद्वयं वा एकदेवताया नामद्वयम्।।३२-३४।।

अन्वय -

अग्निः प्रजापतिः सोमः रुद्रः दितिः बृहस्पतिः सर्पाः पितरः च एव भगः च एव अर्यमा अपिच सविता त्वष्टा अथ वायुः च इन्द्राग्नी मित्र एव च इन्द्रः निर्ऋतिः आपः वै विश्वेदेवाः तथा एव च विष्णुः वसवः वरुणः अजः एकपात् तथा एव च अहिर्बुध्न्यः तथा पूषा अश्विनौ यम एव च।

मञ्जुमती व्याख्या -

अग्निः = अग्नि, प्रजापतिः = प्रजापति, सोमः = सोम, रुद्रः = रुद्र, दितिः = दिति, बृहस्पतिः = बृहस्पति, सर्पाः =सर्प, पितरः = पितर, च = तथा, एव = ही, भगः = भग, च एव = वाक्यपूरक अव्यय, अर्यमा =अर्यमा, अपि च = तथा, सविता = सविता, त्वष्टा = त्वष्टा, अथ = और, वायुः = वायु, च = और, इन्द्राग्नी = इन्द्र और अग्नि, मित्रः =मित्र, एव च =वाक्यपूरक, इन्द्रः = इन्द्र, निर्ऋति =निर्ऋति, आपः = आप (जल), वै = तथा, विश्वेदेवाः = विश्वेदेवा, तथा एव च = वाक्य पूरक अव्यय, विष्णुः = विष्णु, वसवः = वसव, वरुणः = वरुण, अजः = अज, एकपात्, तथा एव च = वाक्यपूरक अव्यय, अहिर्बुध्न्यः = अहिर्बुध्न्य, तथा = और, पूषा = पूषा, अश्विनौ = दो अश्विनीकुमार, यमः = यम, एव च = वाक्यपूरक अव्यय।

अर्थ -

अग्नि, प्रजापति, सोम, रुद्र, दिति, बृहस्पति, सर्प, पितर, भग, अर्यमा, सविता, त्वष्टा, वायु, इन्द्र अग्नि, मित्र, निर्ऋति, आप, विश्वेदेवा, विष्णु, वसव, वरुण, अज-

एकपात, अहिर्बुध्न्य, पूषा, अश्विनी कुमार, यम-कृत्तिका नक्षत्र से आरम्भ कर क्रमशः नक्षत्र देवता कहे गये हैं।

नक्षत्र देवताओं का प्रयोजन कथन-

नक्षत्रदेवता एता एताभिर्यज्ञकर्मणि।
यजमानस्य शास्त्रज्ञैर्नाम नक्षत्रजं स्मृतम्।।३५।।

सोमाकरः -

नक्षत्रदेवता एता इति। एतासां प्रयोजनं यस्मात् शास्त्रज्ञैस्तन्त्रकारैबह्वचानां सूक्तवाचकैर्यजमाननामनीति द्वितीयं नाम नक्षत्रजं स्मृतमदाहृतं यज्ञकर्मणि तस्मादेता उदाहृताः।।३५।।

सुधाकरः -

एताभिर्देवताभिः शास्त्रज्ञैर्दैवविद्भिर्यज्ञकर्मणि यजमानस्य नक्षत्रजं नाम स्मृतं कथितम्। यस्मिन्नक्षत्रे यजमानस्य जन्म तद्देवताबोधकं यजमानस्य यन्नाम तन्नक्षत्रजं नामेति। सम्प्रति दैवज्ञैर्नक्षत्राणां चत्वारः पादाः क्रियन्ते। यस्मिन् पादे जातस्य जन्म भवति तत्पादबोधकाक्षरादिकं नाम जन्मनाम च कथ्यते।।३५।।

अन्वय -

एताः नक्षत्रदेवताः एताभिः यज्ञकर्मणि शास्त्रज्ञैः यजमानस्य नक्षत्रजं नाम स्मृतम्।

मञ्जुमती व्याख्या -

एताः = ये (पूर्वोक्त), नक्षत्र देवताः = नक्षत्रों के अधिदेवता हैं, एताभिः = इन देवताओं द्वारा, शास्त्रज्ञैः = ज्योतिष शास्त्र के विद्वानों ने, यजमानस्य = यज्ञ करने-वाले यजमान का, यज्ञकर्मणि = यज्ञ कर्म में, नक्षत्रजं = नक्षत्र से उत्पन्न, नाम = यजमान की संज्ञा, स्मृतम् = कहा है।

अर्थ -

ऊपर ये नक्षत्र देवता कहे गये हैं। इनसे यज्ञ कर्म में ज्योतिषी लोग यजमान का नक्षत्र से उत्पन्न नाम कहते हैं अर्थात् जिस नक्षत्र में यजमान का जन्म, उस नक्षत्र के देवता का बोधक यजमान का जो नाम वह नक्षत्र नाम होता है।

शुभ कर्म में वर्जित उग्र और क्रूर नक्षत्र कथन-

उग्राण्यार्द्रा च चित्रा च विशाखा श्रवणोऽश्वयुक्।
क्रूराणि तु मघा स्वाती ज्येष्ठा मूलं यमस्य यत्।।३६।।

सोमाकरः -

उग्राण्यार्द्रा च चित्रेति। नक्षत्रस्वरूपज्ञानस्तवनप्रतीत्यर्थः श्लोकः। याम्यं भरणी संक्षेपार्थमाह।।३६।।

सुधाकरः -

इदानीं शुभकर्मणि वर्ज्यानि उग्राणि क्रूराणि च नक्षत्राण्याह उग्राणीति। आर्द्रा। चित्रा। विशाखा। श्रवणः। अश्वयुक् अश्विनी। एतानि षट् नक्षत्राणि उग्राणि सन्ति। मघा। स्वाती। ज्येष्ठा। मूलम्। यमस्य यत् नक्षत्रं भरणी। एतानि क्रूराणि नक्षत्राणि सन्ति। मुहूर्त्तचिन्तामणौ रामेण च "पूर्वात्रयं याम्यमघे उग्रं क्रूरं वुत्रजस्तथा" इत्यनेन उग्रमेव क्रूरं कथ्यते। तथैतद्गणे ज्यौतिषवेदाङ्गोक्तेभ्यो बहूनि भिन्नानि पठितानीति।।३६।।

अन्वय -

आद्रा च चित्रा च विशाखा श्रवणः अश्वयुक् उग्राणि, तु मघा स्वाती ज्येष्ठा मूलम् यमस्य यत् क्रूराणि (नक्षत्राणि)।

मञ्जुमती व्याख्या -

आर्द्रा = आर्द्रा, च = और, चित्रा = चित्रा, च = तथा, विशाखा = विशाखा, श्रवणः = श्रवण, अश्वयुक् = अश्विनी, उग्राणि = उग्रसंज्ञक (नक्षत्र हैं), तु = तथा, मघा = मघा, स्वाती = स्वाती, ज्येष्ठा = ज्येष्ठा, मूलम् = मूल, यमस्य यत् = यम का नक्षत्र अर्थात् भरणी, क्रूराणि = क्रूर संज्ञक (नक्षत्र हैं)।

अर्थ -

आर्द्रा, चित्रा, विशाखा, श्रवण, अश्विनी उग्र नक्षत्र हैं, तथा मघा, स्वाती, ज्येष्ठा, मूल, भरणी क्रूर नक्षत्र हैं।

विशेष - उग्र और क्रूर नक्षत्र शुभ कर्म में वर्जित हैं।

चन्द्र पर्वगण से सूर्य पर्वगण साधन-

ह्यूनं द्विषष्टिभागेन ज्ञेयं सौरं सपार्वणम्।
यत्कृतावुपजायेते मध्येऽन्ते चाधिमासकौ।।३७।।

सोमाकरः -

तत्र मध्येऽन्ते च द्वावधिमासकौ यत्कृतावुपजायेते यया कल्पनया भवतस्तदर्थं हेयमपहातव्यं कुतोऽवयवमिति वाक्यशेषः। किं केवलमानम्। न। सपार्वणम्। पार्वणनक्षत्रसहितमित्यर्थः। एकान्तरेऽह्नि मासे चेत्यनियमे एतदेवार्थे उत्तरसौम्याविष्णवाजानां परतो द्वौ द्वौ न। एवं मापलक्षके अत एवेह समसंख्यायाः सर्वाणि कालसाम्यमभिप्रेत्य पाञ्चवार्षिकयुगे उदाहृतानि। पर्व तु विभागार्थं कुतो हेयं सूर्यात सूर्यमानादिति वाक्यशेषः। किमेकदेशो ह्यूनं द्विषष्टिभागेन प्रत्येकं दिनं द्वाषष्टेन भागेन द्वयेन हीनं कृत्वेति वाक्यशेषः। एतदर्थमेवोक्तं ''दुहेयं पर्व चेत्पाद'' इति।

तथा च गर्गः –

ततः प्रक्षीयमाणस्य तिथिरित्येष संज्ञिता।
द्विलवोनमहोरात्रं चन्द्रस्य गतिरुत्तमा।। इति।

तथा –

द्विलवक्षयसम्भूतो द्वाषष्ट्या भवते तिथिः।
ऋतोरन्तमनुप्राप्य हीनरात्रेति नाम च।। इति।।३७।।

सुधाकरः -

इदानीं चन्द्रपर्वगणात् सूर्यपर्वगणसाधनमाह ह्यूनमिति। सपार्वणं युगादेर्वर्त्तमानपर्यन्तं पर्वगणमानं तच्च द्विषष्टिभागेन ह्यूनं कार्यं तद्द्विगुणं द्विषष्ट्या भक्तं फलेन तदेवोनं कर्त्तव्यमित्यर्थः। एवं यच्छेषं तत् सौरं पर्वगणमानं स्यात्। इयं सा कृतिः प्रकारो यत्कृतौ च युगमासानां मध्ये त्रिंशत् सौरमासान्ते ह्येकस्तथान्ते षष्टितमसौरमासान्ते चान्य इत्यधिमासौ द्वावुपजायेते उत्पद्येते इत्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः-त्रयोदशश्लोकभाष्ये प्रदर्शितं यदेकस्मिन् युगे सूर्यपर्वाणि = १२०। चन्द्रपर्वाणि = १२४। अधिपर्वाणि = ४। अतो द्विषष्टिचन्द्रपर्वसु अधिपर्वद्वयम्। ततोऽनुपातो यदि ६२ चन्द्रपर्वभिरधिपर्वद्वयं तदेष्टचन्द्रपर्वभिः किमिति लब्धं सौरचान्द्रपर्वान्तररूपमधिपर्वमानम् = $^{२\,\text{चंप}}/_{६२}$। इदं चन्द्रपर्वगणे विहीनं शेषं सूर्यपर्वगणमानं स्यात्। अत्रापि अधिपर्वशेषं त्याज्यम्। त्यागकारणं

च तत्रैव त्रयोदशश्लोकभाष्येऽभिहितम्। चन्द्रपर्वगणात् सौरपर्वगणानयनार्थं वा सौरपर्वगणाच्चन्द्रपर्वगणानयनार्थ याऽधिपर्वसंख्या सोभयत्र समानैव तथाऽधिपर्वशेषं चोभयत्र सममेव किन्तु एकत्र द्विषष्टिर्हरोऽन्यत्र षष्टिर्हर इति सर्वं भास्करेण निजे गोलाध्याये "सौरेभ्यः सधितास्ते चेदधिमासास्तदैन्दवाः" इत्यादौ स्फुटं प्रदर्शितमतो लेखप्रयासेन किम्। अत्र बार्हस्पत्यादिव्याख्यानं मन्मते न समीचीनमिति।।३७।।

अन्वय -

सपार्वणं सौरं द्विषष्टिभागेन ह्यूनं ज्ञेयम्, यत्कृतौ मध्ये अन्ते च अधिमासकौ उपजायेते।

मञ्जुमती व्याख्या -

सपार्वणं = युगादि से वर्तमान पर्यन्त पर्वगणमान, सौरं = सूर्य सम्बन्धी, द्विषष्टि भागेन = बासठ भाग से, ह्यूनं = हीन, ज्ञेयं = करे (जाने), यत् कृतौ = ऐसा करने पर, मध्ये = युगमासों के मध्य तीस सौर मास के अन्त में एक तथा, अन्ते = साठवें सौरमास के अन्त में, अधिमासकौ = दो अधिमास, उपजायेते = उत्पन्न होते हैं।

अर्थ -

युगादि से वर्तमान पर्यन्त पर्वगणमान को बासठ भाग से विहीन करके जो शेष हो वह सौर पर्वगणमान होगा। इस प्रकार युग मासों के मध्य तीस सौरमास के अन्त में एक तथा अन्त में साठवें सौरमास के अन्त में दूसरा अधिमास उत्पन्न होगा।

काल परिभाषा-

कला दश सविंशा स्याद् द्वे मुहूर्त्तस्य नाडिके।
तन्त्रिंशत् द्युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्।।३८।।

सोमाकरः -

काललक्षणमाह कला दश सविंशा स्यादिति। ताः कला इत्युक्तास्ता दश कला विंशभागसहिता नाडिकेति वाक्यशेषः। द्वे मुहूर्त्तस्य नाडिके भवतः इति वाक्यशेषः। "मुहूर्त्तस्तु नाडिके" इति गर्गः। ते मुहूर्त्ता द्वि त्रिंशत्त्रिंशन्मुहूर्त्तं दिनं तत्र कलानां षट्शती त्र्यधिका भवेत्। त्र्युत्तराणि षट्शतानि कलानां दिनमित्यर्थः। एतदेव।।३८।।

सुधाकरः -

इदानीमन्याः परिभाषा आह कलेति। सविंशा एकस्य विंशतिभागेन सहिता दश कला एका नाडिका भवति। अत्र नाडिकाया अध्याहारः साहचर्यात्। मुहूर्त्तस्यैकमुहूर्त्तस्य मध्ये द्वे नाडिके भवतः। तत्रिंशत् तेषां मुहूर्त्तानां त्रिंशत् द्यु भूदिनं भवति तत्र भूदिने तु कलानां त्र्यधिका षट्शती भवेदिति परिभाषा।

अत्रोपपत्तिः। एका नाडिका = $१०^{१}/_{२०}$ कलाः। मुहूर्त्त एकः = २ नाडिके = २० + $^{१}/_{१०}$ कलाः। सावनदिनमेकम् = ३० मुहू० = ६० नाडिकाः = ६०० + $^{३०}/_{१०}$ = ६०३ कलाः। एकस्मिन् चन्द्रनक्षत्रे रविसावनदिनमानम् = $^{१८३०}/_{१८०९}$ = १ + $^{२१}/_{१८०९}$ = १ + $^{७}/_{६०३}$ इति प्रथममनुपातेन प्रदर्शितम्। तत्र शेषावयवे $^{७}/_{६०३}$ ऽस्मिन् गुणहरयोर्दृढत्वा-दाचार्येणैकरविसावनदिनस्य हरतुल्यो विभागः कृतस्तस्यैक-भागस्य कला संज्ञा। एवं दिनकलाभिर्वैपरीत्येनैकनाडिकायां सविंशा दशकला आयान्तीति। अत्र बार्हस्पत्यव्याख्यानं साधु परन्तु 'च विंशा' इति तच्छोधित-पाठस्तु मन्मते न युक्तः। अत्र शङ्करबालकृष्णदीक्षितादीनामपि व्याख्यान-मेवमेव।।३८।।

अन्वय -

सविंशा दश कला स्यात् मुहूर्त्तस्य द्वे नाडिके, तन्त्रिंशत् द्यु कलानां तु त्र्यधिका षट्शती भवेत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

सविंशा = एक के बीस भाग सहित, दशकला = दश कला (एक नाडिका होती है), मुहूर्त्तस्य = एक मुहूर्त्त के मध्य, द्वे नाडिके = दो नाडिका (होती है), तत् त्रिंशत् = उस तीस मुहूर्त्त का, द्यु = भूदिन (होता है), (उस भूदिन में) कलानां = कलाएँ, त्र्यधिकाषट्शती = छह तीन (होती हैं)।

अर्थ -

एक के बीस भाग सहित दस कला एक नाटिका होती है, (यहाँ नाडिका का अध्याहार साहचर्य से करना चाहिए) एक मुहूर्त्त के मध्य दो नाडिका होती है। तीस मुहूर्त्त का एक भूदिन होता है, एक भूदिन में छह सौ तीन कलाएँ होती हैं।

चन्द्र सूर्य का भोग काल-

ससप्तैकं भयुक् सोमः सूर्यो द्यूनि त्रयोदश।
नवमानि तु पञ्चाह्नः काष्ठा पञ्चाक्षरा भवेत्।।३९।।

सोमाकरः -

ससप्तकं भयुक् सोम इति। स सोमः कृतो भयुक् नक्षत्रसमाहितः ससप्तकं सप्तांशसंख्याकं दिनं तु भुङ्क्ते इति वाक्यशेषः। तथा सूर्यो द्यूनि त्रयोदश। सौर्यं दिनं त्रयोदशांशरहितमित्यर्थः। अथवा ''दिनैकादशकेन तद्भ'' मिति यदुक्तं तत्स्वमानेनेदं तु मापनेन दिनानि तानि त्रयोदश भवन्ति। सूर्यर्क्षभुक्ता-वथोत्तमानि पञ्चमाह्नः आर्क्षचान्द्रमानतो नायान्त्युत्तमानि मानान्तराणि सौरेणाप्तानि। नाडिकाः षडंशकाश्च षड् भवन्ति तानि पञ्च घटिकास्त्रिंशत् सार्धाः। एवं शशिना त्रयोदश सार्धा आर्क्षभुक्तिरित्युक्तं भवति तान्येव तूत्तमान्यह्नो मानानि पञ्च पञ्च। कापि भावेन पञ्चावशा तद्वा पञ्चावधिकौ तयोरेकमधिमासयोरुत्तमं तथैव तयोर्भुक्तिः। तदर्थं च वक्ष्यति 'विभजेज्ज्ञानराशिने'ति। अथ च ऋतुसंवत्सरयुगात्मना काष्ठा पञ्चाक्षरा भवेत्। काष्ठानाम् परिमाणं सर्वकालकलनायामुदाहृतम्। मनुगर्गादिभिर्भेदेन 'दश वाष्टौ च काष्ठे'त्यादिभिर्वाक्यैः सह काष्ठा पञ्चाक्षरा इह सैव चोदिता कलनादिभागनियमार्थं पर्वर्त्वर्धभद्व्यांशादिकयागकालापेक्षया व्यवहरन्ति तेऽपि च।।३९।।

सुधाकरः -

इदानीं पुनरन्याः परिभाषा आह ससप्तैकमिति। सोमश्चन्द्रो यावता कालेन भयुक् भेन नक्षत्रेण सह युक्तो भवति स कालश्च ससप्तैकं सप्तकलाधिकमेकं रविसावनदिनम्। चन्द्रः सप्तकलाधिकेनैकेन रविसावनदिनेनैकं नक्षत्रं भुनक्तीत्यर्थः। एवं सूर्यश्च यावता कालेनैकं नक्षत्रं भुनक्ति स कालश्च त्रयोदश द्यूनि रविसावनदिनानि अह्नो दिनस्य पञ्च नवभागाश्च। १३-$^{५}/_{९}$ एतैः सावनदिनै रविरेकभं भुनक्तीत्यर्थः। पञ्चभिर्गुर्वक्षरैरेका काष्ठा भवति।

अत्रोपपत्तिः-यदि युगचन्द्रनक्षत्रैः १८०९ युगभूदिनानि १८३० लभ्यन्ते तदैकेन नक्षत्रेण किम्। लब्धमेकनक्षत्रे सावनदिनमानम् = $^{१८३०}/_{१८०९}$ = १ + $^{२१}/_{१८०९}$ = १ + $^{७}/_{६०३}$ = १ दिनम् + ७ कलाः। एवं युगरविनक्षत्रैः १३५ युगसावनदिवसास्तदैकेन रविनक्षत्रेण किं लब्धान्येकनक्षत्रे भूदिनानि = $^{१८३०}/_{१३५}$ = $^{१२२}/_{९}$ = १३-$^{५}/_{९}$। पञ्चगुर्वक्षरैरेका काष्ठेति परिभाषा काष्ठातोऽपि

सूक्ष्मगणनार्थं कृताऽऽचार्येणेति सर्वमुपपन्नम्। अत्र बार्हस्पत्यव्याख्यानं सर्वं समीचीनं किन्तु तच्छोधितः ''ससप्तकम्'' इति पाठो मन्मते न साधुरिति।।३९।।

अन्वय -

सोमः भयुक् ससप्तैकं सूर्यः त्रयोदश द्यूनि अह्नः पञ्चनवमानि पञ्चाक्षरा काष्ठा भवेत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

सोमः = चन्द्रमा, भयुक् = नक्षत्र से युक्त (वह काल), ससप्तैकं = सात कला अधिक एक (रविसावन दिन होता है), सूर्यः = सूर्य, त्रयोदश = तेरह, द्यूनि = रविसावन दिन, अह्नः = दिन का, पञ्चनवमानि = पाँच बटा नव ($^5/_9$), पञ्चाक्षरा = पाँच गुरु अक्षरों के उच्चारण समकाल एक, काष्ठा = काष्ठा (सूक्ष्म समय परिमाण) हो।

अर्थ -

चन्द्रमा जितने समय में नक्षत्र से युक्त होता है वह समय सात कला अधिक एक रविसावन दिन होता है। अर्थात् चन्द्रमा सात कला अधिक एक रविसावन दिन में एक नक्षत्र का भोग करता है। इसी प्रकार सूर्य जितने काल में एक नक्षत्र का भोग करता है वह काल तेरह सावन दिन तथा दिन का पाँच बटा नव भाग होता है। अर्थात् $१३^5/_9$ सावन दिन में सूर्य एक नक्षत्र का भोग करता है। पाँच गुरु अक्षरों के उच्चारण समकाल की एक काष्ठा होती है।

दिनमान आनयन विधि-

यदुत्तरस्यायनतो गतं स्या-
च्छेषं तथा दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेकषष्ट्या द्विगुणं विभक्तं
सद्वादशं स्याद् दिवसप्रमाणम्।।४०।।

सोमाकरः -

यदुत्तरस्येति। यदुत्तरस्यायनत उत्तरायणादारभ्य यद्गतं स्याद्यावद्दिनं गतमतीतं भवेत्। शेषं तथा दक्षिणतोऽयनस्य। एवमेव दक्षिणायने शेषं विचारयेत्। तदेव संख्याय द्विगुणं कुर्यादिति वाक्यशेषः। ततः षष्ट्या विभक्तं सद्वादशं दिवसप्रमाणं स्यात्। एतदुक्तं भवति। (उदगयने चतुर्विंशतिनाडिका

च, एका च द्वाविंशतिर्दिनं भवति। ततो मासगते त्रिंशत्सु दिवसेषु त्रिंशद् द्विगुणा षष्टिर्भवति। ते च वर्षकालेश्च षष्टिघटिका भवन्ति। पञ्चमासे मासार्धे पञ्चविंशतिनाडिकाः। ते च द्वादश एवमेव सद्वादशं स्याद् दिवसप्रमाणम्। (एवमेतयैव कलनया) द्वयोर्मासयोरन्ये ततोऽप्यधिके द्वे नाडिके अतिरिच्येते। त्रिष्वन्यास्तिस्रः। एवं विषुवति त्रिंशन्नाडिकं दिनं भवति। उत्तरेष्वेतेनैव क्रमेण द्वयंशं कल्पयेत्। ततो वक्ष्यति 'ज्ञेयराशिं गताभ्यस्तं विभजेज्ज्ञानराशिने'ति। तस्मादिह यत् सूचितं तदन्यज्ज्योतिःशास्त्रमपेक्ष्य प्रकल्प्यमेवं तु।।४०।।

सुधाकरः-

इदानीं दिनमानमानयति यदुत्तरस्येति। अयनतोऽयनारम्भदिनादुत्तरस्यायनस्य यद्गतं भूदिनमानं भवेत् तथा दक्षिणतो दक्षिणायनारम्भदिनादयनस्य दक्षिणायनस्य यद्गतं भूदिनमानं तदयनान्तर्गतकुदिनमानात् प्रोह्य यच्छेषं दिनमानं तद् द्विगुणं फलमेकषष्ट्या विभक्तं लब्धं सद्वादशं द्वादशमुहूर्त्तसहितं तदा मुहूर्त्तात्मकं दिनमानं भवति।

अत्रोपपत्तिः। अष्टमश्लोकभाष्ये पूर्वमेव प्रतिपादितं यदुत्तरायणारम्भे द्वादशमुहूर्त्ततुल्यं दिनमानं षण्मासान्तरे दक्षिणायनारम्भे चाष्टादशमुहूर्त्तमानं तदन्तरं षड् मुहूर्त्तास्ततोऽनुपातो यदि षण्मासकुदिनै १८३ रेतैः षड्मुहूर्त्तसममन्तरं तदोत्तरायणगतकुदिनैर्वा दक्षिणायनशेषकुदिनैः किं लब्धमन्तरम् = $\frac{६ \times \text{अंदि}}{१८३} = \frac{२ \text{ अंदि}}{६१}$ इदं द्वादशयुक्तं जातं दिवसमानम्। इत्युपपन्नम्। इदं सर्वं पञ्चसिद्धान्तिकाप्रकाशिकायां पैतामहसिद्धान्तप्रकरणेऽस्माभिः प्रदर्शितमेवेति।।४०।।

अन्वय -

अयनतः उत्तरस्य यद् गतं स्यात् तथा दक्षिणतः अयनस्य शेषं तत् द्विगुणम् एकषष्ट्या विभक्तं सद्वादशं दिवसप्रमाणं स्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या -

अयनतः = अयन के आरम्भ दिन से, उत्तरस्य = उत्तर के, यद् गतं = जो गत दिनमान हो, तथा = और, दक्षिणतः = दक्षिणायन के आरम्भ से, अयनस्य = दक्षिणायन का (जो गत दिनमान हो) (उससे), शेषं = शेष दिनमान को, द्विगुणम् = दो से गुणा कर, (गुणनफल को) एकसठ से, विभक्तं = विभाजित कर

(लब्ध फल को) सद्वादशं = बारह मुहूर्त्त में जोड़ने पर, दिवसप्रमाणं = मुहूर्त्तात्मक दिनमान, स्यात् = हो।

अर्थ -

अयन के आरम्भ दिन से उत्तर अयन का जो गत भूमि दिनमान हो तथा दक्षिणायन आरम्भ दिन से दक्षिणायन का जो गत भूमि दिनमान हो उसे अयनान्तर्गत कुदिनमान से घटाकर जो शेष दिनमान हो, उसे दो से गुणा कर गुणनफल में एकसठ का भाग देने पर लब्ध में बारह जोड़ने पर मुहूर्त्तात्मक दिनमान होगा।

ऋतु शेष आनयन विधि-

यदर्धं दिनभागानां सदा पर्वणि पर्वणि।
ऋतुशेषं तु तद् विद्यात् संख्याया सह पर्वणाम्।।४१।।

सोमाकरः -

यदर्धं दिनभागानामिति। यदर्धं दिनभागानां द्वाषष्ट्यंशकल्पनया यदर्धं लुप्तमित्यर्थः। तदेकत्र कलयेदिति वाक्यशेषः। सदा पर्वणि पर्वणि। तत् सदा एकत्रिंशन्नाडिका भवति। 'दुहेयं पर्व चेत् पाद' इत्युक्तम्। ततः किम्। ऋतुशेषं तु तद् विद्यात्। मासद्वये व्यतीते दिनमेकमतिरिच्यते। एवं संख्याय संकलय्य पर्वणो सर्वेषां ततोऽधिकमासनिष्पत्तिरिति वाक्यशेषः।

तथा च गर्गः-

द्विलवक्षयसम्भूतो द्वाषष्टिर्भवते तिथिः।
ऋतोरन्तमनुप्राप्य हीनरात्रेति नामतः।। इति।।४१।।

सुधाकरः -

इदानीमृतुशेषानयनमाह यदर्धमिति। पर्वणि पर्वणि सदा दिनभागानां चान्द्रदिनभागानामर्धं यच्छेषं तच्चान्द्रसौरपर्वान्तरं पर्वणां संख्यया पर्वगणेन सह यदागच्छेत् तदिष्टपर्वसमये रविचन्द्रपर्वान्तरसममृतुशेषं विद्याज्जानी- यद्गणक इति शेषः। पर्वगण एकपर्वभवेन रविचन्द्रपर्वान्तरेण दिनार्धतुल्येन गुण्यः फलमभीष्टसमये ऋतुशेषं भवतीत्यर्थः। मन्मते अधिशेषस्य ऋतुशेषमिति नामकरणे फले विशेषाभावात् ऋतुशेषपाठे न काचिद्धानिरिति।

अत्रोपपत्तिः। त्रयोदशश्लोकेन रूपतुल्ये पर्वणि पर्वात्मकमधिशेषमानम्

$=^{२}/_{६०}$। इदं पञ्चदशगुणं जातं चान्द्रदिनात्मकमधिशेषम्=$^{२\times१५}/_{६०}=^{१}/_{२}$। इदं पर्वगणगुणमभीष्टचान्द्रसौरपर्वान्तररूपमधिशेषं भवतीति। सौरपर्वान्ते ऋतु-समाप्तिः। चन्द्रपर्वतोऽग्रेऽधिशेषान्तरे रविपर्वसमाप्तिरतः पूर्वागतमधिशेषं चान्द्रदिनात्मकमृतुशेषं भवितुं योग्यमिति। अत्र बार्हस्पत्यव्याख्यानं प्रायः समीचीनमेव।।४१।।

अन्वय -

पर्वणि पर्वणि सदा दिनभागानां यद् अर्धं तत् पर्वणां संख्यया सह ऋतुशेषं विद्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या -

पर्वणि -पर्वणि = प्रत्येक पर्व में, दिनभागानां = चान्द्रदिन भागों का, अर्धं = आधा, जो शेष हो, पर्वणाम् = पर्वों की, संख्यया = गिनती, सह = के साथ, ऋतु शेषं = रवि चन्द्र-पर्वान्तर समान ऋतु शेष, विद्यात् समझे।

अर्थ-

प्रत्येक पर्व में चान्द्र दिन भाग का आधा जो शेष उसे, चान्द्र सौर पर्वान्तर पर्वों की संख्या के साथ जोड़ने पर जो आये, उसे इष्ट पर्व समय में रविचन्द्र पर्वान्तर समान ऋतु शेष जानना चाहिए।

वेधोपाय कथन-

इत्युपायसमुद्देशो भूयो ऽप्येवं प्रकल्पयेत्।
ज्ञेयराशिं गताभ्यस्तं विभजेज्ज्ञानराशिना।।४२।।

सोमाकरः -

इत्युपायसमुद्देश इति। इत्युपायसमुद्देशः एवमुक्तप्रकारेण यागकाल-लक्षणप्रतिपादने भूयोऽप्यहः प्रकल्पयेत् पौनःपुन्येनोहेत् सर्वकर्मसु। कथम्। ज्ञेयराशिं गताभ्यस्तं पदार्थान् सूचितार्थान् संक्षेपार्थान् तान् विभजेज्ज्ञानराशिना। ज्ञानं बुद्धियोगः। ऊहापोहसामर्थ्येन अन्यानि ज्योतिःशास्त्राण्यपेक्ष्य। कथम्। अभ्यस्तं तत उद्धृत्य यथार्थमवगत्याऽऽगमेन च कल्पयेत् सर्वमित्यर्थः। यथा मुहूर्त्तनाडिकाकलाकाष्ठाक्षरकल्पनं तथैव दिवसप्रमाणमिति।।४२।।

सुधाकरः -

इदानीं बेधोपायमाह इतीति। इत्येव पूर्वोदितविधिना उपायसमुद्देशो बेधोपायोपदेश एव बोध्यः। बेधेन ज्ञातराशौ गतं प्राप्तं कमपि पदार्थं विज्ञाय ततो ज्ञेयराशौ तत्पदार्थानयनार्थं गणको ज्ञानराशिसंबन्धिगतेन पदार्थेनाभ्यस्तं गुणितं ज्ञेयराशिं ज्ञानराशिना विभजेत् फलं ज्ञेयराशिसंबन्धि तत्पदार्थमानं भवति। एवं ज्ञानराशिना भूयः पुनः पुनः सर्वान् सावनदिवसादीन् प्रकल्पयेदिति।

अत्रोपपत्तिः। ज्ञेयराशिरिच्छाराशिस्ततस्त्रैराशिकेन वासना स्फुटा।।४२।।

अन्वय -

इति उपाय समुद्देशः भूयोऽपि एवं प्रकल्पयेत्, ज्ञेयराशि ज्ञानराशिना गताभ्यस्तं विभजेत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

इति = इस प्रकार कही गयी, विधि से, उपायसमुद्देशः = वेध के उपाय का उपदेश, भूयोऽपि =पुनः, एवं = इस प्रकार, प्रकल्पयेत् = जाने, ज्ञेयराशिं = उस पदार्थ के आनयन के लिए ज्ञेय राशि को, ज्ञानराशिना = ज्ञान राशि सम्बन्धी, गताभ्यस्तं = गतपदार्थ द्वारा गुणित, विभजेत् = तथोक्त ज्ञेयराशि को ज्ञानराशि से विभाजित करे।

अर्थ -

पूर्व प्रतिपादित विधि से वेधोपाय का उपदेश समझे-वेध से ज्ञात राशि में प्राप्त किसी पदार्थ को जानकर, ज्ञेय राशि में उस पदार्थ को ले आने के लिए-ज्ञान राशि सम्बन्धी गत पदार्थ से गुणित ज्ञेयराशि को ज्ञानराशि से विभाजित करे-फल ज्ञेयराशि सम्बन्धी उस पदार्थ का मान होगा। इसी प्रकार ज्ञान राशि से पुनः-पुनः सावन दिनादि समझे।

उपसंहार -

इत्येतन्मासवर्षाणां मुहूर्त्तोदयपर्वणाम्।
दिनर्त्तुयनमासानां व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत्।।४३।।

सुधाकरः -

इदानीमुपसंहरति इतीति। इति एवमेतत् पूर्वोक्तं मासवर्षाणां मुहूर्त्तानामुदयपर्वणां चन्द्रादीनामुदयानां सावनदिनानां पर्वणां दिन-ऋतु-अयनानां मासानां चान्द्रार्क्षाणां च व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत्। तदेवाहं चोक्तवानिति

ज्यौतिष-वेदाङ्गरचयितुरुक्तिरिति। इदं पद्यं सोमाकरभाष्ये नास्तीति।।

अन्वय -

इति एतत् मासवर्षाणां मुहूर्त्तोदयपर्वणाम्, दिनर्त्त्वयनमासानां व्याख्यानं लगधः अब्रवीत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

इति = इस प्रकार, एतत् = पूर्वोक्त, मासवर्षाणां = माह, वर्षों का, मुहूर्त्तोदय पर्वणाम् = मुहूर्त्त चन्द्रादि के उदय सावन दिन पर्वों का, दिनर्त्त्वयनमासानां = दिन ऋतु अयन महीनो का, व्याख्यानं = विस्तृत ज्ञान, लगधः = लगध नामक वैदिक ज्योतिर्विद, अब्रवीत् = कहे।

अर्थ -

इस प्रकार मास, वर्ष, मुहूर्त चन्द्रादि का उदय, सावनदिनपर्व, दिन, ऋतु, मास का व्याख्यान 'लगध' ने कहा।

ज्योतिष वेदाङ्गवेत्ता की स्तुति

सोमसूर्यस्तृचरितं विद्वान् वेद विदश्नुते।
सोमसूर्यस्तृचरितं लोकं लोके च सन्ततिम्।।४४।।

सोमाकरः-

एवमुपसंहृत्य विज्ञानफलमाह सोमसूर्यस्तृचरितमिति। सोमसूर्यनक्षत्राणां चरितं गतागतविज्ञानं यो वेद जानाति सोऽश्नुते आप्नोति किम्। सोमसूर्य-नक्षत्रचरितं लोकं तत्सायुज्यमित्यर्थः। तथेह लोके च सन्ततिमनवच्छिन्न-सन्तानसिद्धां स्वर्गलोकवान् प्रजावान् भवतीत्यर्थः। अभ्यासः शास्त्रनिष्पत्तये स च पक्षमासतिथिचन्द्रगतिज्ञानादार्त्विज्ययोग्यत्वाच्च पङ्क्तिपावन एव। एतत्तु विदग्धसांवत्सराणां तिथिज्ञानफलं वृथाभिमानिनां त्वसर्वज्ञानां वृथोपदेशिनां वृथानुष्ठानप्रवर्त्तकानामकालयागकालचोदनादकालयागप्रवर्त्तकत्वादौप-मन्यवादिवन्मूर्धपातादिदोषपरम्परा 'नक्षत्रैर्यश्च जीवती' त्यश्रद्धेयत्वं तथा प्रदोषज्ञापकत्वाच्च परत्राप्यसिद्धिः।

तथा च स्मृतिः -

दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः।
विप्राणां कर्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भयम्।।इति।

तस्मात् तथा यागकर्मणि वर्त्तितव्यं यथोपक्रमापवर्गावुभावपि न नश्यतः। अभ्युदितेष्टिदर्शनादकालोपक्रमदोषः। उपसत्समासदर्शनादकालापवर्गदोषः। तथा पुरा द्वादशाः पुरा दीक्षिताय द्वादशामिति वदन्तं न धीयेतेति श्रुतिः ?। तदेतदेवार्थमभिप्रेत्य सूत्रकारः पूर्णमासीमुपवसेददर्शनेऽमावास्यायामित्याह। तथा च श्रुतिः। य एवासा आग्नेयोष्टाकपालः पौर्णमासे योऽमावास्यायां तमग्नये पथिकृते कुर्यादिति तस्मादकाल उपक्रमापवर्गयोरेवैते अपार्थके भवतस्तस्माद्विचार्ययतस्ते असुरा अयज्ञा अनुक्षत्रा यत् किं चाकुर्वत तां कृत्यामेवाकुर्वतेति श्रुतेः। तस्मादुभयकालानुरोधवशादेकाङ्गवैकल्यम्। अपि च शास्त्रादौ प्रवृत्तिर्येषामभिप्रेता परिशिष्टवाक्यानुरोधवशात् 'चतुर्दश्यवसाने तु पितृयज्ञं तु कारयेदिति वाक्यैर्यागस्तत्र न कर्त्तव्य इत्यपेक्षमेव।

तथा च गर्गः –

चतुर्दश्यां यदा कृष्णे क्षयमभ्येति चन्द्रमाः।
दृश्यो भवति वाप्युच्चः सिनीवाल्यास्ततस्तदा।।
निश्युद्गतोऽथवाऽप्युच्चो ह्यस्तं वाप्युपगच्छति।
ततः पूर्णेऽप्मृतौ ह्येतत् कार्यं चन्द्रवशाद्भवेत्।।इति।

यद्यप्येवं तथापि य एवासा आग्नेयोष्टाकपाल इति श्रुतेरस्ति गौणत्वमेवं प्रतीयते। अन्यथैषा श्रुतिरेव न स्यात् येषां तु सूत्रकारो विकल्पेनाह। पूर्वा पौर्णमासीमुपवसेदुत्तरां वेत्यादि कात्यायनसूत्रापेक्षावशेन स्वेच्छया प्रवृत्तिरिह तु सूत्रकारस्य प्रवृत्तिंतेह प्रतिज्ञा पूर्ण इत्याद्या। तस्मादेतत् सुतरां विचार्यम् ।।४३।।

मयोक्तमेतत् सकलं विदित्वा यागात् फलं प्राप्नुयुश्चोदितं यत्।
निर्मत्सरश्रौतकर्मप्रवृत्ता दोषान् बहून प्राप्नुयुरन्यथान्ये।।१।।

मया कृतं भाष्यमस्य स्वबुद्धया यस्मान्नाप्तमागमं पूज्यमानम्।
तस्माच्छेषं तद्विदः कल्पयन्तु नमस्तेभ्यो ब्रह्मसूर्येन्दुभेभ्यः।।२।।

सोमाकरो वेदविदुक्तकान्तप्रातिभज्ञानागमभावबुद्धिः।
ज्योतिःशास्त्रानाकुलकेन संसा जिह्वात् सर्वमात्मनां प्रव्रजिघ्यन्।।३।।

इति शेषकृतं ज्योतिःशास्त्रभाष्यं समाप्तम्।

सुधाकरः -

इदानीं ज्यौतिषवेदाङ्गविदं स्तौति सोमेति। सोमसूर्यस्तृचरितं चन्द्रसूर्यनक्षत्रचरितं यो विद्वान् वेद जानाति स विद् विद्वान् सोमसूर्यस्तृचरितं चन्द्रसूर्यनक्षत्रैश्चरितं प्रचरितं प्रसिद्धं लोकं चन्द्रलोकं सूर्यलोकं नक्षत्रलोकं चाश्नुते तत्र गत्वा तत्सुखं भुङ्क्ते लोके संसारे च सन्ततिमश्नुते पुत्रपौत्रादिकं च लभते इति।।४३।।

श्रीरामं जनकामनाकरमरं सीतासमेतं वरं
श्रीमल्लक्ष्मणलाललालितपदं कन्दर्पमायाहरम्।
नत्वा कोशलपालमेव विमलं दृग्ज्यौतिषस्य श्रितं
बार्हस्पत्यमतं विचिन्त्य सकलं भाष्यं मयैतत् कृतम्।।
इति सुधाकरद्विवेदिकृतं ज्योतिःशास्त्रभाष्यं समाप्तम्।।

अन्वय-

सोमसूर्यस्तृचरितं (यः) विद्वान् वेद, (सः) विद् सोम सूर्यस्तृचरितं लोकं लोके सन्ततिं च अश्नुते।

मञ्जुमती व्याख्या -

सोमसूर्यस्तृचरितं = चन्द्रसूर्य नक्षत्र के चरित को, (यः = जो) विद्वान् = विद्यावान्, वेद = जानता है, (सः = वह) विद् = विद्वान, सोमसूर्यस्तृचरितं = चन्द्र सूर्य नक्षत्र से प्रचरित-प्रसिद्ध, लोकं = लोक को, लोके = संसार में, सन्ततिं = पुत्रपौत्रादि को, अश्नुते = प्राप्त करता है।

अर्थ-जो विद्वान् चन्द्र-सूर्य-नक्षत्र के चरित को जानता है वह विद्वान् सोमसूर्य नक्षत्र से प्रचरित प्रसिद्ध चन्द्र लोक, सूर्य लोक, नक्षत्र लोक को प्राप्त करता है- अर्थात् वहाँ जाकर वहाँ के सुख का भोग करता है, संसार में पुत्र पौत्रादिकों को प्राप्त करता है।

श्रीजानकीवल्लभो विजयते।

अथ

सुधाकरभाष्यसहितम्-

आर्चज्यौतिषम्

श्रीरामं सीतया सार्धं रत्नसिंहासनस्थितम्।
नत्वा कुरु मनः कार्यं सफलं सकलं किल।।

निर्विघ्नता के लिए आरम्भ में मंगल –

पञ्चसंवत्सरमय-युगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
दिनर्त्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः।।१।।

अस्य भाष्यं याजुषज्यौतिष प्रथम श्लोकवदिति स्फुटम्।।१।।

अन्वय –

दिनर्त्त्वयनमासाङ्गं पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिं शिरसा प्रणम्य शुचिः।

मञ्जुमती व्याख्या -

दिनर्त्त्वयनमासाङ्गं = दिन ऋतु- अयन-मास अवयव वाले, पञ्चसंवत्सरमयं = पंच संवत्सर स्वरूप, युगाध्यक्षं = युग के अध्यक्ष, प्रजापतिं = प्रजापति को, शिरसा = उत्तमांग सिर से, प्रणम्य = प्रणामकर, शुचिः = पवित्र (मैं)।

अर्थ -

दिन-ऋतु-अयन-मास अंगवाले पाँच संवत्सर स्वरूप युगाध्यक्ष प्रजापति को सिर से प्रणाम कर पवित्र (मैं)।

प्रणम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः।।२।।

शिरसा कालं कालपुरुषं रविं प्रणम्य सरस्वतीमभिवाद्य अभिवन्द्य लगधस्य महात्मनो महर्षेः कालज्ञानमहं शुचिः प्रवक्ष्यामि वच्मीति। लगधः कश्चित् प्राचीनो महर्षिस्तेन पञ्चवर्षात्मके युगे यथा कालानां रविचन्द्रसावनदिनादीनां ज्ञानं कृतं तथा तदानयनमहं शुचिर्वच्मीत्यर्थः।।२।।

अन्वय –

कालं शिरसा प्रणम्य सरस्वतीम् अभिवाद्य महात्मनः लगधस्य कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि।

मञ्जुमती व्याख्या -

कालं = काल को, शिरसा = सिर से, प्रणम्य = प्रणामकर, सरस्वतीं = वाक्देवी सरस्वती को, अभिवाद्य= अभिवादन कर, महात्मनः = महात्मा, लगधस्य = लगध के, कालज्ञानं = काल ज्ञान को, प्रवक्ष्यामि = कहूँगा।

अर्थ-

काल को सिर से नमस्कार कर सरस्वती का अभिवादन कर महात्मा लगध के बतलाये गये काल ज्ञान को मैं कहूँगा।

कथ्य का उपस्थापन

ज्योतिषामयनं कृत्स्नं प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः।
विप्राणां सम्मतं लोके यज्ञकालार्थसिद्धये।।३।।

ज्योतिषां सूर्यचन्द्रनक्षत्राणामयनं चलनं कृत्स्नं सकलं विप्राणां ज्योतिर्विदां सम्मतं स्वीकृतमनुपूर्वशो यथाक्रमं लोके संसारे यज्ञकालार्थसिद्धये वक्ष्यामीति स्फुटम्। याजुषात् किञ्चित् पाठभेदः।।३।।

अन्वय –

ज्योतिषामयनं कृत्स्नं विप्राणां सम्मतं अनुपूर्वशः लोके यज्ञ कालार्थसिद्धये प्रवक्ष्यामि।

मञ्जुमती व्याख्या -

ज्योतिषां = सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रों के, अयनं = गति (चलन), कृत्स्नं = सम्पूर्ण, विप्राणं = ज्योतिषियों के, सम्मतं = स्वीकृत, अनुपूर्वशः = क्रम से, लोके = संसार में, यज्ञकालार्थसिद्धये = यज्ञकाल की अर्थसिद्धि के लिए, प्रवक्ष्यामि = कहूँगा।

अर्थ -

सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रों की गति सम्पूर्ण रूप से ज्योतिषियों के सम्मत क्रम से संसार में यज्ञ काल की अर्थसिद्धि के लिए कहूँगा।

पर्वगणानयन -

निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरुच्यते।।४।।

याजुष त्रयोदशश्लोकोऽयमतस्तदेव भाष्यादिकं स्फुटम्।।४।।

अन्वय -

निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्, षष्ट्या षष्ट्या द्वाभ्यां युतं पर्वणां राशिः उच्यते।

मञ्जुमती व्याख्या -

(पाँच संवत्सररूप युग की वर्तमान संवत्सर संख्या में से) निरेकं = एक घटाकर, (शेष को) द्वादशाभ्यस्तं = बारह से गुणा कर, गतसंयुतम् = गतमास जोड़कर, द्विगुणं = योग को दूनाकर, षष्ट्या-षष्ट्या = साठ-साठ के प्रत्येक पर्यय में, द्वाभ्यां युतं = दो-दो जोड़कर, (वह) पर्वणां = पर्वों की, राशिः = राशि उच्यते = कही जाती है।

अर्थ-

पाँच संवत्सरात्मक युग की वर्तमान संवत्सर संख्या में से एक घटाकर शेष में बारह का गुणा करे, उसमें गत (माह) जोड़े, योग को द्विगुणित करे, साठ के प्रत्येक पर्यय में दो-दो-जोड़े, यह पर्वों की राशि कही जाती है।

युगादि कथन

स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदादियुगं माघस्तपःशुक्लोऽयनं ह्युदक्।।५।।

याजुषस्य षष्ठश्लोकोऽयमतस्तद्भाष्यमेव द्रष्टव्यम्।।५।।

अन्वय -

यदा सवासवौ सोमार्कौ साकं स्वराक्रमेते तदा आदि युगं माघः शुक्लः तपः उदक अयनं स्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या -

यदा = जब, सवासवौ = धनिष्ठा नक्षत्र सहित, सोमार्कौ = चन्द्र-सूर्य, साकं =

साथ-साथ, स्वर = आकाश में, आक्रमेते = गमन करते हैं, तदा = तब, आदियुगं = आदियुग, माघः =माघमास, शुक्लः -शुक्लपक्ष, तपः = माघमास, उदक् =उत्तर, अयनं = गति, स्यात् = हो।

अर्थ -

जब चन्द्र और सूर्य एकत्र धनिष्ठा नक्षत्र में प्राप्त होकर आकाश में आक्रमण करते हैं, उस समय युग माघमास शुक्ल पक्ष उदगयन का आरम्भ होता है।

अयनों का आरम्भ-

प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणाऽर्कस्य माघश्रावणयोः सदा।।६।।

याजुष सप्तमश्लोकेन सर्वं स्फुटमिति।।६।।

अन्वय -

सूर्याचन्द्रमसौ श्रविष्ठादौ प्रपद्येते-उदक्, सार्पार्धे दक्षिणा सदा अर्कस्तु माघश्रावणयोः...।

मञ्जुमती व्याख्या -

सूर्याचन्द्रमसौ=सूर्य और चन्द्रमा, श्रविष्ठादौ = धनिष्ठा के आरम्भ में, प्रपद्येते= गमन करते हैं, उदक = उत्तरायण, सार्पार्धे = श्लेषा के आधे पर, दक्षिणा = दक्षिण की ओर, अर्कस्तु = सूर्य तो, सदा = हमेशा, माघश्रावणयोः = माघ और श्रावण में (क्रमशः उत्तर और दक्षिण की ओर मुड़ता है।)

अर्थ -

धनिष्ठा के आरम्भ में सूर्य और चन्द्रमा उत्तर की ओर मुड़ते हैं और आश्लेषा के आधे पर दक्षिण की ओर। सूर्य सर्वदा माघ और श्रावण महीने में क्रमशः उत्तर और दक्षिण की ओर मुड़ता है।

दिनरात्रिमान-

घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपा ह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्त्यनेन तु।।७।।

याजुषाष्टमश्लोकेन भाष्यादिकं स्फुटम्।।७।।

अन्वय –

उदग्गतौ अपां प्रस्थः घर्मवृद्धिः क्षपा ह्रासः, दक्षिणे तौ विपर्यासः अयनेन तुषण्मुहूर्त्ती।

मञ्जुमती व्याख्या -

उदग्गतौ = सूर्य के उत्तरायण गतिशील होने पर, अपां प्रस्थः = जल के प्रस्थ परिमाण मात्र, घर्मवृद्धिः = दिन बढ़ता है, क्षपाह्रासः = रात घटती है। दक्षिणे तौ = दक्षिण गति होने पर, विपर्यासः = विपरीत होता है। अयनेन = अयन द्वारा, षण्मुहूर्त्ती= छह मुहूर्त का अन्तर (दिन रात में होता है)।

अर्थ -

सूर्य के उत्तरायण में जल के एक प्रस्थ समान दिन बढ़ता है और रात घटती है। दक्षिणायन की स्थिति इसके विपरीत होती है। अयन में ६ मुहूर्त्त दिन–रात में अन्तर होता है।

विशेष-

एक प्रस्थ दिनमान वृद्धि का अर्थ है ४/६१ नाडी वृद्धि।

अयनादि कथन

प्रथमं सप्तमं चाहुरयनाद्यं त्रयोदशम्।
चतुर्थं दशमं चैव द्विर्युग्मं बहुलेऽप्यृतौ।।८।।

याजुषनवमश्लोकभाष्यादिना स्फुटम्।।८।।

अन्वय –

अयनाद्यं प्रथमं सप्तमं त्रयोदशम् चतुर्थं दशमं द्विः युग्मं बहुलेऽपि ऋतौ आहुः।

मञ्जुमती व्याख्या -

अयनाद्यं = अयन की आदितिथि, प्रथमं = प्रतिपदा, सप्तमं = सप्तमी, त्रयोदशम् = त्रयोदशी, चतुर्थं = चतुर्थी, दशमं = दशमी, द्विः = दोबार, युग्मं = चतुर्थी और दशमी, बहुलेऽपि = कृष्ण पक्ष में भी, ऋतौ = मास या ऋतु में, आहुः = कही गयी है।

अर्थ -

प्रतिपदा, सप्तमी, त्रयोदशी, चतुर्थी और दशमी तिथियाँ दो बार अयनादि होती हैं। ये क्रमशः दो-दो अयनों की आदि तिथि हैं। चतुर्थी और दशमी कृष्णपक्ष की भी अयनादि हैं।

अयनादि नक्षत्र देवता ऋतु नक्षत्र आनयन

वसुस्त्वष्टा भवोऽजश्च मित्रः सर्पोऽश्विनौ जलम्।
अर्यमा कोऽयनाद्याः स्युरर्धपञ्चमभस्त्वृतुः।।९।।

याजुष दशमश्लोक भाष्यादिना सर्वं स्फुटम्।।९।।

अन्वय -

वसुः, त्वष्टा, भवः, अजः, मित्रः, सर्पः, अश्विनौ, जलम्, अर्यमा, कः अयनाद्या स्युः ऋतुः तु अर्धपञ्चमः (स्यात्)

मञ्जुमती व्याख्या -

वसुः = धनिष्ठा, त्वष्टा = चित्रा, भवः = आर्द्रा, अजः = पूर्वाभाद्रपदा, मित्रः = अनुराधा, सर्पः = आश्लेषा, अश्विनौ = अश्विनी, जलम् = पूर्वाषाढा, अर्यमा = उत्तराफाल्गुनी, कः = रोहिणी, अयनाद्याः = अयनादि है, ऋतुः = ऋतु, तु = तो, अर्धपञ्चमः = चार और पाँचवें का आधा अर्थात् $४^{१}/_{२}$ नक्षत्र।

अर्थ -

वसु, त्वष्टा, भव, अज, मित्र, सर्प, अश्विनीकुमार, जल, धाता, क जिनके स्वामी हैं वे नक्षत्र क्रमशः धनिष्ठा, चित्रा, आर्द्रा, पूर्वाभाद्रपदा, अनुराधा, आश्लेषा, अश्विनी, पूर्वाषाढा, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी, अयनादि हैं, साढ़े चार नक्षत्रों की ऋतु होती है।

अभीष्ट पर्व में चन्द्रभांश आनयन

भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणाश्चेन्दोः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि।।१०।।

याजुषपञ्चदशश्लोकभाष्यादिना सर्वं स्फुटम्।।१०।।

अन्वय -

द्वादशकोद्गाताः इष्टकाः पक्षाः कार्याः, एकादशगुणाः इन्दोः भांशाः स्युः यदि ऐन्दवाः शुक्ले अर्धं च (योज्यम्)।

मञ्जुमती व्याख्या -

द्वादशकोद्गाताः = वर्तमान अब्द के बारह मासों में प्राप्त, इष्टकाः = वाञ्छित, पक्षाः = पक्ष, कार्याः = करे, एकादशगुणाः = वे पक्ष ग्यारह से गुणित, इन्दोः = चन्द्रमा के, भांशाः = नक्षत्र अंश, स्युः = हों, यदि = जबकि, ऐन्दवाः = चन्द्र सम्बन्धी पक्ष, शुक्ले = शुक्ल पक्ष में हों, अर्धं = आधा, च = जोड़े।

अर्थ-

वर्तमान अब्द में बारह मासों में प्राप्त को अभीष्ट पक्ष किया जाय, वे पक्ष ग्यारह से गुणित होने पर चन्द्र के भांश हों, यदि चन्द्र पक्ष शुक्ल पक्ष में हो तो पूर्व आगत भांश में आधा जोड़े।

पर्व में भांश काल आनयन

कार्या भांशाष्टकास्थाने कला एकोन्नविंशतिः।
ऊनस्थाने द्विसप्ततिमावपेदिनसंयुताम्।।११।।
याजुषैकोनविंशश्लोक भाष्यादिना सर्वं स्फुटम्।।११।।

अन्वय -

भांशाष्टका स्थाने एकोनविंशतिः कलाः कार्याः, ऊनस्थाने इन संयुतां द्विसप्ततिम् आवपेत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

भांशाष्टकास्थाने = भांशों के अष्टका स्थान में, एकोनविंशतिः = उन्नीस, कलाः = कलाएँ, कार्याः = की जायँ, ऊनस्थाने = हीन जातीयक अष्टका स्थान में, इन संयुताम् = बारह सहित, द्विसप्ततिम् = बहत्तर, आवपेत् = प्रक्षिप्त करे।

अर्थ-

एक वर्ष में चार अष्टकाएँ होती हैं-भांशों के अष्टका स्थान में उन्नीस कलाएँ करे, हीन अष्टका स्थान में बारह से युक्त बहत्तर का क्षेप करे।

विशेष -

भांश के प्रत्येक चार भाग में इक्कीस कला तथा चौरासी काष्ठा होती हैं।

नक्षत्र सम्बन्धी भूदिन कथन

त्र्यंशो भशेषो दिवसस्य भाग-
श्चतुर्दशस्याप्यपनीय भिन्नम्।
भार्धेऽधिके वाऽल्पगते परोंशो
द्यावुक्तमेतन्नवकैर्भवेद्यः।।१२।।

याजुष सप्तविंशश्लोकभाष्यादिना सर्वं स्फुटम्।।१२।।

अन्वय -

दिवसस्य भागः चतुर्दशस्य त्र्यंशः भशेषः भिन्नम् अपनीय भार्धे अधिके वा अल्पगते नवकैः परोंशः द्यौ यः एतत् उक्तम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

दिवसस्य = दिन के, भागः = अंश, चतुर्दशस्य = चौदह सावन दिन के, त्र्यंशः = अन्तिम तीन अंश, भशेषः = नक्षत्र शेष कहा जाता है, भिन्नम् = खण्डात्मक मान चौदह सावन दिन में, अपनीय = हीन कर, भार्धेऽधिके = नक्षत्र के आधे भाग के अधिक होने पर, वा = अथवा, अल्पगते = कम होने पर, नवकैः = नव नक्षत्रों से, परः = दूसरा, अंशः = भाग, द्यौ = सावन दिन में, यः = एतत्, उक्तम् =जो यह कहा गया है।

अर्थ-

किसी नक्षत्र में रवि के सञ्चार काल से चौदह सावन दिन का जो अन्तिम तृतीयांश सावन दिन वह 'भशेष' है। इस तृतीयांश दिन को चौदह सावन दिन में घटाने पर शेष सावन दिन में रवि एक नक्षत्र भोगता है। रवि नक्षत्र के मध्य भाग में, अर्धाधिक भाग में, या अर्धाल्प भाग में जहाँ भी स्थित हो, उपर्युक्त नियम से गणना कर उससे प्रति नव नक्षत्र में एक सावन दिन यह अंश घटाने पर रवि के नक्षत्र योग का वास्तव सावन दिनमान होगा।

तिथि नक्षत्र में संस्कार विशेष

पक्षात् पञ्चदशाञ्चोर्ध्वं तद् भुक्तमिति निर्दिशेत्।
नवभिस्तूद्गतोंऽशः स्याद्युक्तांशो द्व्यद्रिकेन तु।।१३।।

पक्षात् पञ्चदशात् पञ्चदशतिथ्यात्मकादूर्ध्वं शुक्लपक्षावसाने इत्यर्थः। याजुषविंशश्लोकप्रकारेण योंऽशस्तिथिभांशः समागतः स नवभिरंशैरुद्गतो वर्धनीयस्तदा युक्तांशो वास्तवभांशः स्यात्। तद्भांशमानं च भुक्तमिति निर्दिशेत्

कथयेद्गणक इति शेषः। यदि नक्षत्रवशेन सावनदिनमपेक्षितं तदा द्वयद्रिकेन द्युना एकेन कुदिनेन तथाऽद्रिकेन सप्तकलामितेन प्रतिनक्षत्रसंबन्धि कुदिनं ज्ञेयमिति। अत्र याजुषविंशश्लोकत्रुटिर्वा प्रसिद्धत्वादत्र स श्लोक उपेक्षित आचार्येण।

अत्रोपपत्तिः-ससप्तैकमिति याजुषैकोनचत्वारिंशश्लोकोपपत्त्या तथा "नवकैरुद्गतोंऽशः स्याद्युक्तः सप्तगुणो भवेत् "-इति याजुष षोडशश्लोक भाष्यादिना स्फुटेति।।१३।।

अन्वय -

पक्षात् पञ्चदशात् ऊर्ध्वं नवभिः तु उद्गतोंऽशः युक्तांशः स्यात् तत् भुक्तमिति निर्दिशेत् द्वयद्रिकेन कुदिनं (ज्ञेयम्)

मञ्जुमती व्याख्या -

पक्षात् = पक्ष से, पञ्चदशात् = पन्द्रह तिथ्यात्मक से, ऊर्ध्वं = शुक्लपक्ष की समाप्ति पर, (समागत) नवभिः = नव अंश से, उद्गतः = बढ़ाये, युक्तांशः = जोड़ा गया अंश, तत् = वह भांशमान, भुक्तम् = भोगा जा चुका है, इति = ऐसा, निर्दिशेत् = निर्देश करे, द्वयद्रिकेन = एक तथा सात कलामित से (प्रति नक्षत्र सम्बन्धी भूमि दिन जाने)।

अर्थ-

पन्द्रह तिथ्यात्मक पक्ष से ऊपर अर्थात् शुक्लपक्ष के अवसान पर जो तिथिभांश प्राप्त हो उसे नव अंशों में जोड़े, युक्तांश वास्तव भांश होगा, उस भांशमान को भुक्त कहे, यदि नक्षत्र वश सावन दिन अपेक्षित हो तो एक कुदिन तथा सात कलामित प्रतिनक्षत्र सम्बन्धी कुदिन समझा जाय।

संक्षेप में नक्षत्रनाम

जौ द्रा गः खे श्वे ही रो षा-
श्विन्मूषकण्यः सू मा धा णः।
रो मृ (म्रे) घाः स्वापो जः कृ ष्यो
ह ज्ये ष्ठा इत्यृक्षा लिङ्गैः।।१४।।

याजुषाष्टादशश्लोकभाष्यादिना सर्वं स्फुटम्।।१४।।

अन्वय -

जौ..... इति लिङ्गै ऋक्षाः (प्रोक्ताः)।

मञ्जुमती व्याख्या -

जौ = अश्वयुजौ अर्थात् अश्विनी, द्रा = आर्द्रा, गः = भगः पूर्वाफाल्गुनी, खे = विशाखा, श्वे = उत्तराषाढ़ा, ही = उत्तराभाद्रपद्, रो = रोहिणी, षा = आश्लेषा, चित् = चित्रा, मू = मूल, षक = शतभिषक्, ण्यः = भरणी, सू = पुनर्वसू, मा = उत्तराफाल्गुनी, धा = अनुराधा, णः = श्रवण, रे = रेवती, मृ (म्रे) = मृगशिरा, घा = मघा, स्वा = स्वाती, पः = पूर्वाषाढा, जः = पूर्वाभाद्रपद, कृ = कृत्तिका, ष्यः = पुष्य, ह = हस्त, ज्ये = ज्येष्ठा, ष्ठा = धनिष्ठा, इति लिङ्गै = संकेतों से, ऋक्षाः = नक्षत्र कहे गये हैं।

अर्थ -

अश्विनी, आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, आश्लेषा, चित्रा, मूल, शतभिषक् भरणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, अनुराधा, श्रवण, रेवती, मृगशिरा, मघा, स्वाती, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, कृत्तिका, पुष्य, हस्त, ज्येष्ठा, धनिष्ठा नक्षत्र नाम संकेत से कहे गये हैं।

भांश से नक्षत्रानयन तथा पर्व में विशेष

जावाद्यंशैः समं विद्यात् पूर्वार्धे पर्व तूत्तरे।
भादानं स्याच्चतुर्दश्यां द्विभागेभ्योऽधिके यदि।।१५।।

याजुष सप्तदशश्लोकभाष्यादिना स्फुटम्।।१५।।

अन्वय -

पर्वसु अंशैः समं जावादि विद्यात् पूर्वार्धे पर्व उत्तरे द्विभागेभ्यः अधिके चदुर्दश्यां भादानं स्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या -

पर्वसु = पर्वों में, अंशैः = भांशों से, समं = समान, जावादि = अश्विनी आदि नक्षत्र, विद्यात् = जाने, पूर्वार्धे = मध्याह्न के पहले, पर्व = अमावस्यादि, उत्तरे = दिन के उत्तरार्ध में, द्विभागेभ्यः = द्विपादभाग से, अधिके = अधिक होने पर, चतुर्दश्याम् = चतुर्दशी में भांश ग्रहण करे।

अर्थ -

पर्व समय में भांश के तुल्य अश्विनी आदि नक्षत्रों को गणक जाने। मध्याह्न के पहले अमावस्यादि पर्व हो दिन के उत्तरार्ध में द्विपाद भाग से भांश के अधिक होने पर चतुर्दशी में ही पूर्व विधि से आगत भांश का पर्व के लिए ग्रहण करना चाहिए। दिन के दो भाग का अतिक्रमण कर यदि मध्याह्न के बाद पर्व हो तो उस दिन अमावस्या या पूर्णिमा का प्रारम्भ नहीं होगा, स्नानदानादि कार्य में उस दिन उदय काल में चतुर्दशी समझे। पूर्वविधि से आगत नक्षत्र का ग्रहण चतुर्दशी में करें।

नाडिकादि की परिभाषा

कला दश च विंशा स्याद् द्वे मुहूर्तस्य नाडिके।
तत्त्रिंशद् द्युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्।।१६।।

दश कला विंशा च एककलाविंशतिभागाधिका इत्यर्थः। शेषं याजुषाष्टत्रिंशश्लोक भाष्येण स्फुटम्।।१६।।

अन्वय –

दश कला विंशा च स्यात् मुहूर्त्तस्य द्वे नाडिके तत्रिंशत् द्यु कलानां तु त्र्यधिका षट्शती भवेत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

दशकला विंशा च = एक कला बीस भाग से अधिक, स्यात् = हो, मुहूर्त्तस्य = एक मुहूर्त्त के मध्य, द्वे नाडिके = दो नाडिका तत्रिंशत् = उस तीस मुर्हूर्त्त का, द्यु = भूदिन, कलानां = कलाओं का, त्र्यधिका षट्शती = छह सौ तीन संख्या होती है।

अर्थ -

एक के बीस भाग सहित दस कला बराबर एक नाडिका होती है, एक मुहूर्त्त में दो नाडिका होती है, तीस मुहूर्त्त का एक भूदिन तथा एक भूदिन में छह सौ तीन कलाएँ होती हैं।

पुनः-मुहूर्त्त आठक आदि की परिभाषा

नाडिके द्वे मुहूर्त्तस्तु पञ्चाशत्पलमाढकम्।
आढकात् कुम्भिका द्रोणः कुडवैर्वर्धते त्रिभिः।।१७।।

द्वे नाडिके एको मुहूर्त्तो भवति। आढकं तु पञ्चाशत्पलं भवति। आढकात् प्रसिद्धप्राचीनपरिभाषया कुम्भिका घटिका ज्ञेया। द्रोणश्च कुम्भिकातस्त्रिभिः कुडवैर्वर्धतेऽर्थात् कुम्भिकाप्रमाणात् त्रिभिः कुडवैरधिकं द्रोणप्रमाणं भवति। अतो द्रोणस्त्रिभिः कुडवैर्हीनो घटिका वा नाडिका भवतीति याजुषै-कोनचत्वारिंशश्लोकभाष्येण सर्वं स्फुटम्।।१७।।

अन्वय –

द्वे नाडिके मुहूर्त्तः तु आढकं पञ्चाशत् पलम् आढकात् कुम्भिका द्रोणः त्रिभिः कुडवैः वर्धते।

मञ्जुमती व्याख्या –

द्वे = दो, नाडिके = नाडिकाएँ, मुहूर्त्तः = एक मुहूर्त्त, आढकं = आढक, पञ्चाशत् = पचास, पलं = पल, आढकात् = आढक से, कुम्भिका = घटिका, त्रिभिः = तीन, कुडवैः = कुडव से, द्रोणः = द्रोण, वर्धते = कुम्भिका प्रमाण से अधिक होता है।

अर्थ –

दो नाडिका का एक मुहूर्त्त, पचास पल का एक आढक, आढक से कुम्भिका और द्रोण कुम्भिका से तीन कुडव अधिक होता है।

चन्द्र सूर्य के एक नक्षत्र में भूदिन कथन

ससप्तैकं भयुक् सोमः सूर्यो द्यूनि त्रयोदश।
नवमानि च पञ्चाहः काष्ठा पञ्चाक्षरा स्मृता।।१८।।

याजुषैकोनचत्वारिंशश्लोकभाष्यादिना स्फुटम्।।१८।।

अन्वय –

सोमः भयुक् ससप्तैकं सूर्यः त्रयोदश द्यूनि अहः पञ्च नवमानि पञ्चाक्षरा काष्ठा भवेत्।

मञ्जुमती व्याख्या –

सोमः = चन्द्रमा, भयुक् = नक्षत्रयुक्त, ससप्तैकं = सात कला अधिक एक, सूर्यः = सूर्य, त्रयोदश = तेरह, द्यूनि = रवि सावनदिन, अहः =दिन का, पञ्चनवमानि = पाँच बटा नव $^{५}/_{९}$, पञ्चाक्षरा = पाँच गुरु अक्षर उच्चारण समकाल, काष्ठा = काष्ठा (परिभाषित काल), भवेत् = होती है।

अर्थ -

चन्द्रमा जितने समय में नक्षत्र से युक्त होता है वह समय सात कला अधिक एक रवि सावन दिन होता है। अथांत् चन्द्रमः सात कला अधिक एक रवि सावन दिन में एक नक्षत्र भोग करता है। इसी प्रकार सूर्य जितने काल में एक नक्षत्र भोगता है वह काल तेरह सावन दिन तथा दिन का पाँच बटा नव $^{५}/_{९}$ भाग होता है। अर्थात् १३$^{५}/_{९}$ सावन दिन में सूर्य एक नक्षत्र भोगता है। पाँच गुरु अक्षरों के उच्चारण समकाल की एक काष्ठा होती है।

लग्नानयन और चन्द्र ऋतु साधन

श्रविष्ठाभ्यो गणाभ्यस्तान् प्राग् विलग्नान् विनिर्दिशेत्।
स्वार्क्षान्मासान् षडभ्यस्तान् विद्याच्चान्द्रमसानृतून्।।१९।।

गणो भगणः सप्तविंशतिस्तेन श्रविष्ठोदयतो ये इष्टकालभागास्तेऽभ्यस्ता गुणनीयास्तान् भांशान् श्रविष्ठाभ्यो धनिष्ठाभ्यो गणयित्वा प्राक्प्रागदिशि विलग्नान् भांशान् विनिर्दिशेत् कथयेद्गणक इति शेषः। स्वार्क्षान् स्वनाक्षत्रान् मासानेव षडभ्यस्तान् षड्गुणितान् चान्द्रमसान् चन्द्रसंबन्धिनो गणक ऋतून् विद्याज्जानीयादिति।

अत्रोपपत्तिः-अत्रैकस्य नक्षत्रस्य चतुर्विंशत्यधिकशतभागाः कृतास्तेंऽशा नक्षत्रांशा वा भांशा उच्यन्ते। एवं भदिनस्यापि चतुर्विंशत्यधिकशतमिता भागास्ते भदिनभागांशाः कथ्यन्ते। श्रविष्ठातो नाक्षत्रा ये इष्टकालभवा अंशा भागास्त एवेष्टकालांशा ज्ञेयाः। एकस्मिन् भदिने वा चतुर्विंशत्यधिकशतसमेषु भदिनभागेषु भवक्रैकभ्रमणेन प्रागदिशि सर्वेषां नक्षत्राणां वा २७ × १२४ भांशानामुदयोऽतोऽनुपातो यदि १२४ भदिनभागेषु २७ × १२४ नक्षत्रभागानामुदयास्तदेष्टभदिनभागेषु किं लब्धाः श्रविष्ठातो भांशा = $^{२७ \times १२४ \times \text{इभदिभां}}/_{१२४}$ = २७ × इभदिभां। अत उपपन्नं लग्नानयनम्। अत्र बार्हस्पत्यादीनां व्याख्यानं न साधु। कुत्रापि अभ्यस्तपदेन योगो न गृह्यत इति। चन्द्रैकभगणकालो हि नक्षत्रमास इति याजुषैकत्रिंशश्लोकेन स्फुटम्। एकस्मिन् चन्द्रभगणकाले च तत्षड्ऋतवोऽतो नक्षत्रमासाः षड्गुणास्तदृतवो भवन्तीति सर्वं निरवद्यम्।।१९।।

अन्वय -

गणः श्रविष्ठाभ्यः अभ्यस्तान् प्राक् विलग्नान् विनिर्दिशेत् स्वार्क्षान् मासान् षडभ्यस्तान् चान्द्रमसान् ऋतुन् विद्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या -

गणः = भगण सत्ताईस, श्रविष्ठाभ्यः = धनिष्ठादि नक्षत्रों से, अभ्यस्तान् = गुणित, प्राक् = पूर्व दिशा में, विलग्नान् नक्षत्रांशों को, विनिर्दिशेत् = कहे, स्वार्क्षान् = इष्ट नक्षत्रों को (महीनों को), षडभ्यस्तान् = छह से गुणित करे, चान्द्रमसान् = चन्द्र सम्बन्धी, ऋतून् = ऋतुओं को, विद्यात् = जाने।

अर्थ -

सत्ताईस भगण में से धनिष्ठा के उदय से जो इष्ट काल भाग हो गुणित किया जाय, उन भांशों को धनिष्ठा से गिनकर पूर्वदिशा में भांशों का निर्देश करे, स्वनाक्षत्रमासों को छह से गुणित करके चन्द्रसम्बन्धी ऋतुओं को जाने।

तिथिमान कथन-

अतीतपर्वभागेभ्यः शोधयेद्द्विगुणां तिथिम्।
तेषु मण्डलभागेषु तिथिनिष्ठां गतो रविः।।२०।।

याजुषद्वाविंशश्लोकभाष्यादिना स्फुटम्।।२०।।

अन्वय -

अतीत पर्वभागेभ्यः द्विगुणां तिथिं शोधयेत् तेषु मण्डलभागेषु रविः तिथि निष्ठां गतः।

मञ्जुमती व्याख्या -

अतीतपर्वभागेम्यः = सूर्योदय से गत पर्व भोग भाग से, द्विगुणां = दूनी की गयी, तिथिं = तिथि को, शोधयेत् = शोधित करे, तेषु = उनमें, मण्डलभागेषु = दिन रात वृत्त भागों में, रविः = सूर्य, तिथि निष्ठां = तिथिमान के अन्त को, गतः = प्राप्त (होता है)।

अर्थ -

सूर्योदय से बीते हुए पर्व के उन्नतांश जो एक सावन दिन में एक सौ चौबीस होते हैं, उनसे द्विगुणित तिथि को शोधित करे, शेष उन रात-दिन के वृत्त भागों में जब सूर्य आता है तब वह सूर्य तिथिमान के अन्त को प्राप्त करता है।

इष्टतिथि सम नक्षत्र में भकला आनयन प्रकार

याः पर्वभादानकलास्तासु सप्तगुणां तिथिम्।
प्रक्षिपेत् तत्समूहं तु विद्याद्भादानिकाः कलाः।।२१।।

याजुषैकविंशश्लोकभाष्यादिना सर्वं स्फुटम्। अत्र किञ्चित्पाठभेदो नार्थान्तरकर इति।।२१।।

अन्वय –

याः पर्वभादान कलाः तासु सप्तगुणतिथिः युक्ता ताः तिथि भादानिकाः कलाः विजानीयात्।

मञ्जुमती व्याख्या –

याः = जो, पर्वभादानकलाः = भांशग्रहण कला, तासु = उनमें, सप्तगुणतिथिः = सात से गुणित तिथि को, युक्ता = जोड़े, ताः = उन्हें, तिथि भादानिकाः = तिथि के भांश से ग्रहीत, कलाः = कलाएँ, विजानीयात् = समझे।

अर्थ –

पूर्व प्रकार से पर्व समय में जो भांश ग्रहण कला प्राप्त हुई, उसमें सात से गुणित तिथि को जोड़े, तिथि के समान गत नक्षत्र के होने पर ग्रहण करने योग्य कला समझे। यदि पर्व से गत तिथि संख्या समान ही नक्षत्र मान हो तब पर्व नक्षत्र ग्रहण कला में सात से गुणित तिथि को जोड़े।

मुहूर्त्तात्मक दिनमान कथन

यदुत्तरस्यायनतो गतं स्या
च्छेषं तु यद्दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेकषष्ट्या द्विगुणं विभक्तं
सद्वादशं स्याद्दिवसप्रमाणम्।।२२।।

याजुषचत्वारिंशश्लोकभाष्यादिना सर्वं स्फुटम्।।२२।।

अन्वय –

अयनतः उत्तरस्य यद्गतं स्यात् तथा दक्षिणतः अयनस्य शेषं तत् द्विगुणम् एक षष्ट्या विभक्तं सद्वादशं दिवसप्रमाणं स्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या –

अयनतः = अयन के प्रारम्भ से, उत्तरस्य =उत्तर के, यद् गतं = जो गत दिनमान हो, तथा = और, दक्षिणतः = दक्षिण से, अयनस्य = अयन का, शेषं =

शेष हो, तत् -उसको, द्विगुणम् = दो से गुणित, एकषष्ट्या = एकसठ से, विभक्तं = विभाजित, सद्वादशं = बारह सहित, दिवसप्रमाणं = दिनमान (मुहूर्त्तात्मक) स्यात् = हो।

अर्थ-

अयन के आरम्भ दिन से उत्तर अयन का जो गत भूमि दिनमान हो, तथा दक्षिणायन आरम्भ दिन से दक्षिणायन का जो गत भूमि दिनमान हो, उसे अयनान्तर्गत कुदिन मान से घटाकर जो शेष दिनमान बचे, उसे दो से गुणा कर गुणनफल में एकसठ से भाग देने पर और लब्ध में बारह जोड़ने से मुहूर्त्तात्मक दिनमान होगा।

ऋतु शेष अथवा अधिशेष

यदर्धं दिनभागानां सदा पर्वणि पर्वणि।
ऋतुशेषं तु तद्विद्यात् संख्यया सह पर्वणाम्।।२३।।

याजुषैकचत्वारिंशश्लोकभाष्यादिना सर्वं स्फुटम्।।२३।।

अन्वय -

पर्वणि पर्वणि सदा दिनभागानां यद् अर्धं तत् पर्वणां संख्यया सह ऋतु शेषं विद्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या -

पर्वणि पर्वणि = प्रत्येक पर्व में, सदा = हमेशा, दिनभागानां = चान्द्रदिन भागों का, यत् अर्धं = जो आधा शेष हो, पर्वणि = पर्वों की, संख्यया = गिनती के, सह = साथ, ऋतु शेषं = ऋतु शेष, विद्यात् = जाने।

अर्थ -

प्रत्येक पर्व में चान्द्र दिन भाग को जो आधा शेष उसे, चान्द्र सौर पर्वान्तर पर्वों की संख्या के साथ जोड़ने पर जो आये उसे इष्ट पर्व समय में रवि चन्द्र पर्वान्तर समान ऋतु शेष जानना चाहिए।

बेधोपाय –

इत्युपायसमुद्देशो भूयोऽप्येवं प्रकल्पयेत्।
ज्ञेयराशिं गताभ्यस्तं विभजेज्ज्ञानराशिना।।२४।।

याजुषद्विचत्वारिंशश्लोकभाष्यादिना सर्वं स्फुटम्।।२४।।

अन्वय -

इति उपाय समुद्देशः भूयोऽपि एवं प्रकल्पयेत् ज्ञेयराशिं ज्ञानराशिना गताभ्यस्तं विभजेत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

इति = इस प्रकार, उपायसमुद्देशः = बेध के उपाय का उपदेश, भूयोऽपि = फिर से, एवं = ऐसा, प्रकल्पयेत् = जाने, ज्ञेयराशिं = ज्ञेयराशि को, ज्ञानराशिना = ज्ञान राशि से, गताभ्यस्तं = गतपदार्थ द्वारा गुणित, विभजेत् = विभाजित करें।

अर्थ -

वेध से ज्ञातराशि में प्राप्त किसी पदार्थ को जानकर ज्ञेय राशि में उस पदार्थ को ले आने के लिए-ज्ञानराशि सम्बन्धी गतपदार्थ से गुणित ज्ञेय राशि को ज्ञान राशि से विभाजित करें-फल ज्ञेयराशि सम्बन्धी उस पदार्थ का मान होगा, इसी प्रकार ज्ञानराशि से पुनः पुनः सावनदिनादि जाने।

नक्षत्र देवता कथन-

अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रोऽदितिबृहस्पती।
सर्पाश्च पितरश्चैव भगश्चैवार्यमाऽपि च।।२५।।
सविता त्वष्ठाऽथ वायुश्चेन्द्राग्नी मित्र एव च ।
इन्द्रो निर्ऋतिरापो वै विश्वेदेवास्तथैव च।।२६।।
विष्णुर्वसवो वरुणोऽज एकपात् तथैव च।
अहिर्बुध्न्यस्तथा पूषा अश्विनौ यम एव च।।२७।।
नक्षत्रदेवता एता एताभिर्यज्ञकर्मणि।
यजमानस्य शास्त्रज्ञैर्नाम नक्षत्रजं स्मृतम्।।२८।।

याजुषस्य ३२-३४ श्लोकभाष्येण सर्वं स्फुटम्।।२५-२८।।

अन्वय -

अग्निः प्रजापतिः सोमः रुद्रः दितिः बृहस्पतिः सर्वाः च पितरः च एव भगः च एव अर्यमा अपि च सविता त्वष्टा अथ वायुः इन्द्रः अग्निः मित्र एव च, इन्द्रः निर्ऋतिः आपः वै विश्वेदेवाः तथा एव च विष्णुः वसवः वरुणः अजः, एकपात् तथा एव च अहिर्बुध्न्यः तथा पूषा अश्विनौ यम एव च। नक्षत्र देवताः एताः एताभिः यज्ञकर्मणि शास्त्रज्ञैः यजमानस्य नक्षत्रज्ञं नाम स्मृतम्।

अर्थ -

अग्नि, प्रजापति, सोम, रुद्र, दिति, बृहस्पति, सर्प, पितर, भग, अर्यमा, सविता, त्वाष्टा, वायु, इन्द्र, अग्नि, मित्र, इन्द्र, निर्ऋति, आप, विश्वेदेवा, विष्णु, वसव, वरुण, अज, एकपात्, अहिर्बुध्न्य, पूषा, अश्विनीकुमार, यम- ये नक्षत्र देवता हैं, इनसे यज्ञ कर्म में शास्त्रज्ञों ने यजमान का नक्षत्रनाम कहा है।

उपसंहार

इत्येतन्मासवर्षाणां मुहूर्त्तोदयपर्वणाम्।
दिनर्त्त्वयनमासानां व्याख्यानं लगधोऽब्रवीत्।।२९।।

याजुषोपान्तिमश्लोकभाष्येण स्फुटम्।।२९।।

अन्वय -

इति एतत् मासवर्षाणां मुहूर्त्तोदयपर्वणाम् दिनर्त्त्वयनमासानां लगधः व्याख्यानम् अब्रवीत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

इति = इस प्रकार, एतत् = यह, मासवर्षाणां = मास वर्षों का, मुहूर्त्तोदय पर्वणाम् = मुहूर्त्त-नक्षत्रोदय पर्वों का, दिनर्त्त्वयन मासानां = दिन-ऋतु-अयन-मासों का, लगधः = लगध नामक महात्मा, व्याख्यान = विस्तारपूर्वक, अब्रवीत = कहे हैं।

अर्थ -

इस प्रकार यह मास, वर्ष, मूहूर्त्त, नक्षत्रोदय, पर्व, दिन-ऋतु अयन-मास का महात्मा लगध ने विस्तारपूर्वक कथन किया है।

फलस्तुति

सोमसूर्यस्तृचरितं लोकं लोके च सन्ततिम्।
सोमसूर्यस्तृचरितं विद्वान् वेद विदश्नुते।।३०।।

याजुषत्रिचत्वारिंशश्लोकभाष्येण स्फुटम्। अत्र पूर्वोत्तरार्धयोर्वैपरीत्यं लेखकदोषत इति स्पष्टम्।।३०।।

अन्वय –

सोमसूर्य स्तृचरितं विद्वान् वेद, विद् सोमसूर्य स्तृ चरितं लोकं लोके सन्तति च अश्नुते।

मञ्जुमती व्याख्या -

सोमसूर्यस्तृचरितं = चन्द्रसूर्य नक्षत्र चार को, विद्वान् = जो विद्वान्, वेद = जानता है, सोम सूर्यस्तृ चरितम् = सोम सूर्य नक्षत्र चारवाले, लोकं = लोक को, लोके = संसार में, सन्ततिं = पुत्र पौत्रादिक प्रजा को, अश्नुते = प्राप्त करता है।

अर्थ-

जो विद्वान् चन्द्र-सूर्य-नक्षत्रों के चार को जानता है वह चन्द्र-सूर्य-नक्षत्र लोक को तथा पुत्र पौत्रादिक को प्राप्त करता है।

इष्ट विषुवत में तिथि आनयन विधि

विषुवत् तद्गुणं द्वाभ्यां रूपहीनं तु षड्गुणम्।
यल्लब्धं तानि पर्वाणि तदर्धं सा तिथिर्भवेत्।।३१।।

याजुषत्रयोविंशश्लोकभाष्यादिना सर्वं स्फुटम्। अत्र किञ्चित्पाठ-भेदस्तदर्थस्यैव दातेति न दोषाय।।३१।।

अन्वय –

विषुवत तत् द्वाभ्यां गुणं रूपहीनं तु षड्गुणं यत् लब्धं तानि पर्वाणि तदर्धं सा तिथिः भवेत्।

मञ्जुमती व्याख्या –

विषुवत् = समान दिन-रात का काल विषुवत् है, तत् = वह, द्वाभ्यां = दो से, गुणं = गुणित, रूपहीनं = एक कम, शेष को, षड्गुणम् = छह से गुणा करे, यतलब्धं = जो गुणनफल हो, तानि पर्वाणि = वे पर्व हैं, तदर्धं = उसका आधा, तिथिः = तिथि, भवेत् = होती है।

अर्थ –

समान दिन-रात काल विषुवत् को दो से गुणित कर एक घटाये, उसे छह से गुणित करे लब्ध पर्व होगा, उसका आधा भाग तिथि होगी।

किस युग का काल ज्ञान –

माघशुक्लप्रवृत्तस्य पौषकृष्णसमापिनः।
युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते।।३२।।

याजुषपञ्चमश्लोक भाष्येण स्फुटम्। अत्र किञ्चित्पाठभेदो न दोषायेति।।३२।।

अन्वय –

माघशुक्लप्रवृत्तस्य पौषकृष्णसमापिनः पञ्चवर्षस्य युगस्य काल-ज्ञानं प्रचक्षते।

मञ्जुमती व्याख्या –

माघशुक्लप्रवृत्तस्य = माघ शुक्ल प्रतिपद् को प्रवृत्त, पौषकृष्णसमापिनः = पौष कृष्ण अमावस्या को समाप्त होनेवाले, पञ्चवर्षस्य = पाँच वर्षवाले, युगस्य = युग का, कालज्ञानं = काल ज्ञान, प्रचक्षते =कहते हैं।

अर्थ-

माघशुक्ल प्रतिपद् को प्रवृत्त तथा पौषकृष्ण अमावस्या को समाप्त होनेवाले पाँच वर्ष के युग को काल ज्ञान कहते हैं।

दस विषुवत् की तिथियाँ

तृतीयायां नवम्यां च पौर्णमास्यां त्रिकद्विके।
द्वादश्यां विषुवान् प्रोक्तो द्वादश्यां दशमं भवेत्।।३३।।

३१ श्लोकोक्तक्रियाया उदाहरणरूपोऽयं श्लोकः। यथा यदि विषुवत = १ तदा तदुक्तमकारेण सपर्वतिथिमानम्।

= ६ (२ × १ - १) प + $^{६}/_{२}$ (२ × १ - १) ति = ६ पर्वाणि + ३ तिथयः। पर्वणां प्रयोजनाभावात् तृतीया तिथिरेव पठिता। एवमन्यास्तिथयः समायान्ति। अतस्तृतीयायां प्रथमो नवम्यां द्वितीयः पौर्णमास्यां तृतीयस्त्रिकद्विके षष्ठ्यां चतुर्थो द्वादश्यां पञ्चमश्च विषुवान् प्रोक्तआचार्यैरिति शेषः। एवं पुनस्तृतीयादावन्यानि विषुवन्ति भूत्वा द्वादश्यां तिथौ दशमं विषुवद्भवेदिति। अत्र बार्हस्पत्यादिव्याख्यानं न रुचिकरं तथात्र ''तृतीयां नवमीं चैव पौर्णमासीं त्रयोदशीम् ''-इत्यादिपाठोऽपि न साधुरिति।।३३।।

अन्वय -

तृतीयायां नवम्यां च पौर्णमास्यां त्रिकद्विके द्वादश्यां प्रोक्तः विषुवान् द्वादश्यां दशमं भवेत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

तृतीयायां = तृतीया में, नवम्यां = नवमी में, पौर्णमास्यां = पूर्णिमा में, त्रिकद्विके = छठ में, द्वादश्यां = द्वादशी में, प्रोक्तः = कहा गया, विषुवान् = विषुवत्, द्वादश्यां = द्वादशी में, दशमं = दसवाँ, भवेत् = होता है।

अर्थ -

तृतीया-नवमी, पौर्णमासी, छठ, द्वादशी में कहा गया विषुवत् क्रमशः द्वादशी में दसवाँ होता है, अर्थात् प्रोक्त तिथियों में दो बार होता है।

कब चतुर्दशी में यज्ञार्थ उपवास करें-

चतुर्दशीमुपवसथस्तथा भवे-
अथोदितो दिवसमुपैति चन्द्रमाः।।

यथोदितश्चन्द्रमाश्चतुर्दशीं दिवसमुपैति तथोपवसथो भवति।

अत्रैतदुक्तं भवति। यथा शुक्लद्वितीयादेः क्रमेणोदितश्चन्द्रश्चतुर्दशदिनं प्राप्नोति तथा सा चतुर्दशी यज्ञार्थं वेदोक्तविधिनोपवसथो यागपूर्वदिवसो भवति। अत्र मन्मते श्लोकोत्तरार्धस्य त्रुटिः। अत्र परम्परात उत्तरार्धस्यानुष्टुप्छन्दोऽर्धेन पूर्त्तिरिति न युक्तं छन्दसोर्भेदादिति सुज्ञैर्भृशं विचिन्त्यमिति।।

अन्वय -

यथा उदितः चन्द्रमाः चतुर्दशीं दिवसम् उपैति तथा उपवसथः भवेत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

यथा = जैसे, उदितः = शुक्ल पक्ष में उदित, चन्द्रमाः = चन्द्र, चतुर्दशीं = चतुर्दशी, दिवसं = दिन को, उपैति = प्राप्त करता है, तथा = वैसा, उपवसथः = उपवास, भवेत् = हो।

अर्थ -

जैसे शुक्ल पक्ष की द्वितीया आदि के क्रम से उदित चन्द्रमा चतुर्दशी तिथि के दिन को प्राप्त करता है वह चतुर्दशी यज्ञार्थ उपवास का यागपूर्व दिवस होता है।

द्वितीय वर्ष प्रवेशकाल कथन

माघशुक्लाह्निको भुङ्क्ते श्रविष्ठायां च वार्षिकीम्।।३४।।

माघशुक्लाह्निको द्वितीयमाघशुक्लप्रतिपत्तिथावाह्निकः कर्मकर्त्ता श्रविष्ठायां धनिष्ठायां सर्वां वार्षिकीमेकवर्षसंबन्धिना यज्ञक्रियां भुङ्क्तेऽश्नुते। तस्माद्दिनादन्यवर्षारम्भोऽतो द्वितीयवर्षाह्निकक्रियारम्भो भवतीत्यर्थः। अत्रापि मन्मते पूर्वार्धश्लोकस्य त्रुटिरिति वैदिकैर्भृशं विचिन्त्यमिति।।३५।।

अन्वय –

माघ शुक्लाह्निको श्रविष्ठायां च वार्षिकीम् भुङ्क्ते।

मञ्जुमती व्याख्या -

माघ शुक्लाह्निकः = दूसरी माघ शुक्ल प्रतिपद् तिथि को आह्निक कर्मकर्ता, श्रविष्ठायां = धनिष्ठा में, वार्षिकीम् = एक वर्ष सम्बन्धिनी यज्ञ क्रिया को, भुङ्क्ते = प्राप्त करता है।

अर्थ -

दूसरी माघ शुक्ल प्रतिपद् तिथि में आह्निक कर्म कर्ता धनिष्ठा में सभी एक वर्ष सम्बन्धी यज्ञक्रिया को भोगता है।

गणित प्रशंसा

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्यौतिषं मूर्धनि स्थितम्।।३५।।

यजुषचतुर्थश्लोकभाष्येण स्फुटम्। अत्र 'गणितं' स्थाने 'ज्यौतिषम्' इति पाठो न विशेषार्थप्रद इति।।३५।।

अन्वय -

यथा मयूराणां शिखा यथा नागानां मणयः तद्वत् वेदाङ्गशास्त्राणां मूर्धनि ज्यौतिषं स्थितम्।

मञ्जुमती व्याख्या -

यथा = जैसे, मयूराणां = मयूरों की, शिखा = चूडा, यथा = जैसे, नागानां = सर्पों की, मणयः = मणियाँ, तद्वत् = उसी प्रकार, वेदाङ्गशास्त्राणां = वेदाङ्ग शास्त्रों में, मूर्धनि = शिखर, ज्यौतिषं = ज्योतिष शास्त्र, स्थितम् = स्थित है।

अर्थ -

जैसे मयूर के सिर पर शिखा और जैसे सर्प के शिर पर मणि उसी प्रकार वेदाङ्ग शास्त्रों के शिर पर ज्योतिष शास्त्र स्थित है।

ज्योतिष के वेदाङ्गत्व में युक्ति

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः
कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं
यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञान्।।३६।।

याजुष तृतीयश्लोकभाष्येण सर्वं स्फुटम्।।३६।।

गुणरसाङ्कधरामितवत्सरेऽकृत निरीक्ष्य मतान्तरसंग्रहम्।
असितपौषदलाद्यसिते वरं रघुवरस्य बलेन सुधाकरः।।

इति सुधाकरभाष्यसहितमार्चज्यौतिषं समाप्तम्।

अन्वय –

हि वेदाः यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः यज्ञाश्च कालानुपूर्वा विहिताः तस्मात् इदं कालविधानशास्त्रम् यः ज्यौतिषं वेद स यज्ञान् वेद।

मञ्जुमती व्याख्या –

हि = क्योंकि, वेदाः = वेद, यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता = यज्ञ के लिए प्रवृत्त है, यज्ञाः = यज्ञ, कालानुपूर्वाः = कालानुसार, विहिताः = कहे गये हैं, तस्मात् = इस कारण, इदं = यह ज्योतिष, कालविधानशास्त्रम् = काल विधायक शास्त्र है, यः = जो, ज्यौतिषं = ज्योतिष को, वेद = जानता है, सः=वह, यज्ञान् = यज्ञों को, वेद = जानता है।

अर्थ –

यज्ञ के लिए ही वेद प्रवृत्त हैं और यज्ञ कालानुसार कहे गये हैं, इस कारण इस काल विधान शास्त्र ज्योतिष को जो जानता है वह यज्ञों को जानता है।

।। आथर्व ज्यौतिषम्।।

नत्वा साम्बं शिवं भक्त्या, श्रीगणेशं सरस्वतीम्।
आथर्वं ज्यौतिषं सम्यक्,भाषयात्र निबद्ध्यते।।१।।

काश्यप ब्रह्मसंवादे, सम्प्राप्तं ज्यौतिषं त्विदम्।
सान्वयं व्याकृतं कर्तुम्, चेष्टमानोऽस्मि सादरम्।।२।।

सन्दर्भ-काश्यप का प्रजापति से पृच्छा

अथ ब्रह्माणं स्वयंभुं (वं) गुरुं लोक पितामहम्।
ब्रह्मलोके सुखासीनं काश्यपः परिपृच्छति।।१।।

अन्वय-

अथ ब्रह्मलोके सुखसीनं लोकपितामहम् स्वयं भुवम् गुरुं ब्रह्माणं काश्यपः परिपृच्छति।

मञ्जुमती व्याख्या -

अथ = मङ्गलार्थक (आरम्भ में), ब्रह्मलोके = ब्रह्मलोक में, सुखासीनम् = सुखपूर्वक बैठे हुए, लोकपितामहम् = संसार के परमपिता, स्वयंभुवम् = स्वतः उत्पन्न, गुरुम् = सबसे महान् अतएव पूज्य, ब्रह्माणम् = ब्रह्माजी से, काश्यपः = कश्यपगोत्रीय काश्यप महर्षि, परिपृच्छति = अच्छी तरह पूछते हैं-(विधिपूर्वक पूछते हैं)।

हिन्दी भावार्थ-

मङ्गलाचरणपूर्वक ब्रह्मलोक में सुखपूर्वक बैठे हुए सम्पूर्ण चराचर संसार के परमपिता स्वतः (अपनी इच्छा से) उत्पन्न पूज्य ब्रह्मा जी से काश्यप महर्षि विधिपूर्वक पूछ रहे हैं।

सन्दर्भ-काश्यप का प्रश्न

किं प्रमाणं मुहूर्तानां रात्रौ वा यदि वा दिवा।
चन्द्रादित्य गतं सर्वं, तन्मे प्रब्रूहि पृच्छतः।।२।।

अन्वय-

रात्रौ वा यदि वा दिवा चन्द्रादित्यगतम् सर्वम् मुहूर्तानां प्रमाणं किम् ? तत् पृच्छतः मे प्रब्रूहि।

मञ्जुमती व्याख्या-

रात्रौ = रात्रि में, वा = अथवा, दिवा = दिन में, यदि वा = अथवा, चन्द्रादित्यगतम् = चन्द्रमा और सूर्य सम्बन्धी, सर्वम् = सम्पूर्ण, मुहूर्तानाम् = मुहूर्तों का (शुभाशुभ परिभाषित क्षणों का), प्रमाणम् = सबूत, किम् = क्या है ?, तत् = उस प्रमाण को, पृच्छतः = पूछनेवाले, मे = मुझसे, प्रब्रूहि = अच्छी भाँति से बतायें।

अर्थ-

हे पितामह! रात या दिन में चन्द्र और सूर्य से सम्बन्धित मुहूर्तों का प्रमाण क्या है? कृपया मुझ पूछनेवाले से अच्छी प्रकार से बतलायें।

सन्दर्भ-ब्रह्मा का काश्यप से कथन-

तस्य सुश्रूषमाणस्य काश्यपस्य महात्मनः।
प्रोवाच भगवान् सर्वं मुहूर्तज्ञानमुत्तमम्।।३।।

अन्वय-

भगवान् तस्य सुश्रूषमाणस्य महात्मनः काश्यपस्य-उत्तमम्-सर्वं मुहूर्तज्ञानम् प्रोवाच।

मञ्जुमती व्याख्या -

भगवान् = पितामह, तस्य = उस, सुश्रूषमाणस्य = सुनने की इच्छावाले, महात्मनः = महात्मा, काश्यपस्य = काश्यप से, उत्तमम् = श्रेष्ठ, सर्वम् = सम्पूर्ण, मुहूर्तज्ञानम् = मुहूर्तों के ज्ञान को, प्रोवाच = भली भाँति कहे।

हिन्दी-

उस सुनने की इच्छावाले महात्मा काश्यप से उत्तम सभी मुहूर्तों के ज्ञान को भगवान् पितामह ने भलीभाँति कहा।

सन्दर्भ – मुहूर्त (काल वेला) का कथन-

द्वादशाक्षि निमेषस्तु लवो नामाभिधीयते।
लवस्त्रिंशत् कलाज्ञेया कलात्रिंशत् त्रुटिर्भवेत्।।४।।

अन्वय-

द्वादशाक्षि निमेषः तु लवः नाम-अभिधीयते। त्रिंशत् लवः कलाज्ञेया त्रिंशत् कला त्रुटिः भवेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

द्वादशाक्षिनिमेषः = बारह बार आँख के पलक झपकने का समय, लवः नाम = लव नाम से, अभिधीयते = कहा जाता है। त्रिंशत् लवः = तीस लव, कला ज्ञेया = कला नाम से जानी जाय, त्रिंशत् कला = तीस कला, त्रुटिः = त्रुटि संज्ञावाली, भवेत् = होवे।

अर्थ-

बारह बार आँख की पलक के झपकने के समय को लव नाम से कहा जाता है, तीस लव की एक कला समझी जाय तथा तीस कला की एक त्रुटि हो।

त्रुटीनां तु भवेत् त्रिंशन्मुहूर्तस्य प्रयोजनम्।
द्वादशांगुलमुक्षेपं तस्य छाया प्रमाणतः।।५।।

अन्वय-

त्रुटीनां त्रिंशत् मुहूर्तस्य प्रयोजनम् भवेत् द्वादशांगुलम् उत्क्षेपम् तस्य छाया प्रमाणतः।

मञ्जुमती व्याख्या-

त्रुटीनाम् = त्रुटियों की, त्रिंशत् = तीस संख्या, मुहूर्तस्य = मुहूर्त का, प्रयोजनं = आवश्यकता, भवेत् = हो, द्वादशांगुलम् = बारह अंगुल, उत्क्षेपम् = (समतल भूमि में खड़ी खूँटी) ऊपर उठी खड़ी खूँटी, तस्य = उस उत्क्षेप की, छाया = प्रतिबिम्ब, प्रमाणतः = प्रमाण से।

हिन्दी -

तीस त्रुटियों का एक मुहूर्त होता है, जिसका ज्ञान बारह अंगुल परिमाणवाली लकड़ी समतल भूमि में ऊपर उठी हुई गाड़कर उसकी छाया से किया जाता है।

नवति षडंगुलाश्चैव प्रतीचीं तां प्रकाशयेत्।
पुरस्तात् सन्धिवेलायां मुहूर्तो रौद्र उच्यते।।६।।

अन्वय-

नवति षडंगुलाः च एव तां प्रतीचीं प्रकाशयेत् पुरस्तात् सन्धिवेलायां मुहूर्तः रौद्रः उच्यते।

मञ्जुमती व्याख्या-

नवतिषडंगुलाः = नब्बे + छह अंगुल = अर्थात् छानबे अंगुल (छाया), प्रतीचीम् = पश्चिम दिशा में, ताम् = उस छाया को, प्रकाशयेत् = प्रकाशित करती है,

पुरस्तात् = सामने, सन्धिवेलायाम् = रात और दिन के सन्धि काल में, मुहूर्तः = मुहूर्त, रौद्रः = रौद्रसंज्ञक, उच्यते = कहा जाता है।

हिन्दी-

प्रातःकाल सूर्योदय की सन्धि वेला में उस लकड़ी की छाया पश्चिम दिशा की ओर छानबे अंगुल की होगी उस सन्धि वेला के मुहूर्त को रौद्र मुहूर्त कहा जाता है।

श्वेतः षष्टिः समाख्यातो मैत्रोवै द्वादशांगुलः।
षट् सुसारभटोज्ञेयः सावित्रः पञ्चसुस्मृतः।।७।।

अन्वय-

षष्टिः श्वेतः समाख्यातः द्वादशांगुलः मैत्रः वै, षट् सुसारभटः ज्ञेयः पञ्च सावित्रः सुस्मृतः।

मञ्जुमती व्याख्या-

षष्टिः = साठ अंगुल की छाया, श्वेतः = श्वेत नाम का, समाख्यातः = मुहूर्त कहा जाता है, द्वादशांगुलः = बारह अंगुल की छाया, मैत्रः = मैत्र संज्ञक मुहूर्त, वै = निश्चित, षट् = छह, सुसारभटः = सुसारभट, ज्ञेयः = जानें, पञ्च = पाँच अंगुल की छाया, सावित्रः = सावित्र, सुस्मृतः = कहा गया है।

हिन्दी-

साठ अंगुल की छाया श्वेत नामक मुहूर्त, वारह अंगुल की छाया मैत्र नामक मुहूर्त, छह अंगुल की छाया सुसारभट नामक मुहूर्त और पाँच अंगुल की छाया सावित्र मुहूर्त कहा जाता है।

विशेष-नामित मुहूर्त एक दूसरे मुहूर्त के पूर्वतम समझा जाय।

चतुर्षु चैव वैराजस्त्रिषु विश्वावसुस्तथा।
मध्याह्ने चाभिजिन्नाम यस्मिन् छाया प्रतिष्ठति।।८।।

अन्वय-

चतुर्षु च एव वैराजः त्रिषु विश्वावसुः तथा च यस्मिन् मध्याह्ने छाया प्रतिष्ठति अभिजित् नाम।

मञ्जुमती व्याख्या -

चतुर्षु = चार अंगुल की छाया पर, च एव = तथा, वैराजः = वैराज नामक, त्रिषु = तीन अंगुल की छाया पर, विश्वावसुः = विश्वावसु नामक, तथा = और, यस्मिन् = जिस, मध्याह्ने = दोपहर समय में, छाया = शंकु का प्रतिबिम्ब, प्रतिष्ठति = स्थित होती है, अभिजित् नाम = अभिजित् नामक (मुहूर्त होता है)।

हिन्दी-

चार अंगुल की छाया पर वैराज नामक, तीन अंगुल की छाया पर विश्वावसु नामक तथा जिस मध्याह्न में छाया मूल में प्रतिष्ठित होती है उस समय को अभिजित् नामक मुहूर्त कहा जाता है।

प्राचीं वैगामिनीं छायां रौहिणस्त्रिषु वर्तते।
बलश्चतुर्षु विख्यातो विजयः पञ्चसु स्मृतः।।९।।

अन्वय-

त्रिषु प्राचीं वै गामिनीं छायां रौहिणः वर्तते चतुर्षु बलः विख्यातः पञ्चसु विजयः स्मृतः।

मञ्जुमती व्याख्या-

त्रिषु = तीन अंगुल पर, प्राचीम् = पूर्व दिशा में, वै = निश्चयपूर्वक, गामिनीम् जानेवाली, छायां = प्रतिबिम्ब को, रोहिणः = रोहिण नामक (मुहूर्त), वर्तते = होता है, चतुर्षु = चार अंगुल पर, बलः = बल नामक, विख्यातः = प्रसिद्ध है, पञ्चसु = पाँच अंगुल पर, विजयः = विजय, स्मृतः = कहा जाता है।

हिन्दी-

पूर्व दिशा में तीन अंगुल की छाया पर रोहिण नामक तथा चार अंगुल पर बल नामक तथा पाँच अंगुल पर विजय नामक मुहूर्त कहा गया है।

नैर्ऋतस्तु षडंगुल्यो वारुणो द्वादशांगुलः।
सौम्यः षष्ठिः समाख्यातो भगस्तु परमस्तथा।।१०।।

अन्वय-

षडंगुल्यः नैर्ऋतः द्वादशांगुलः वारुणः षष्ठिः सौम्यः तथा परमः भगः समाख्यातः।

मञ्जुमती व्याख्या-

षडंगुल्यः = छह अंगुल छाया, नैर्ऋतः = नैर्ऋत नामक, द्वादशांगुलः = बारह अंगुल तक, वारुणः = वारुण, षष्ठिः = साठ अंगुल तक, सौम्यः = सौम्य, तथा और परमः = एकसठ से छानबे अंगुल तक (सूर्यास्त पर्यन्त) भगः = भग नामक, समाख्यातः = कहा गया है।

हिन्दी-

छह अंगुल छाया तक नैर्ऋत नामक मुहूर्त, बारह अंगुल तक 'वारुण', साठ

अंगुल तक 'सौम्य' तथा सूर्यास्त पर्यन्त छानबे अंगुल छाया तक भग नाम का मुहूर्त कहा गया है।

ऐते मुहूर्ता व्याख्याता दशद्वौच तथा त्रयः।
अहन्येव तु विज्ञेया रात्रावपि न संशयः।।११।।

अन्वय-

एते दश द्वौ च तथा त्रयः मुहूर्ताः अहनि एव व्याख्याताः, तु रात्रौ अपि (तथैव) विज्ञेया संशयः न।

मञ्जुमती व्याख्या-

एते = ये, दश = दस, द्वौ च = और दो, तथा त्रयः = और तीन, मुहूर्ताः = मुहूर्त, व्याख्याताः = स्पष्ट कहे गये, अहनि एव = दिन में ही, रात्रौ अपि = रात में भी, विज्ञेया = ऐसा ही समझें, न संशयः = निःसन्देह।

हिन्दी-

ये दश, दो, तीन अर्थात् पन्द्रह मुहूर्त दिन में कहे गये हैं। इसी प्रकार रात में भी निश्चित समझें।

सन्दर्भ-मुहूर्तों का शुभ-अशुभ फल

अत ऊर्ध्वंतु सर्वेषामानुपूर्व्याच्छुभाशुभम्।
सर्व विस्तरशस्ताँश्च तन्मे निगदितः शृणु।।१२।।

अन्वय-

अतः उर्ध्वम् तु सर्वेषाम् आनुपूर्व्यात् शुभाशुभम् सर्वविस्तर शः तत् तान् च मे निग दतः शृणु।

मञ्जुमती व्याख्या-

अतः उर्ध्वम् = इसके बाद, तु = तो, सर्वेषाम् = सभी मुहूर्तों का, आनुपूर्व्यात् = क्रम से, शुभाशुभम् = शुभ-अशुभ, सर्वविस्तरशः = सम्पूर्ण विस्तार से, तत् तान् च = उन मुहूर्तों को, मे निगदितः = मुझे कहते हुए, शृणु = सुनो।

हिन्दी-

इसके बाद सभी पूर्वोक्त मुहूर्तों का शुभ-अशुभ पूर्ण विस्तार से उनको कहते हुए मुझको सुनो।

रौद्रे रौद्राणि कुर्वीत रुद्र कार्याणि नित्यशः।
यच्चरौद्रं भवेत् किञ्चित् सर्वमेतेन कारयेत्।।१३।।

अन्वय-

रौद्रे रौद्राणि रुद्रकार्याणि नित्यशः कुर्वीत, यच्च किञ्चित् रौद्रं भवेत् सर्वमेतेन कारयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

रौद्रे = रौद्र संज्ञावाले मुहूर्त में, रौद्राणि = भयंकर, रुद्र कार्याणि = रुद्र अर्थात् मारण सम्बन्धी प्रयोग, नित्यशः = नियमपूर्वक, कुर्वीत = करे, यच्च = जो भी, किञ्चित् = कुछ भी, रौद्रम् = क्रूर, भवेत् = हो, सर्वम् = सब, एतेन = इस मुहूर्त से, कारयेत् = कराये।

हिन्दी-

रौद्र मुहूर्त में नियमपूर्वक भयंकर मारणादि रुद्र कर्म करे। जो कुछ भी रुद्र हो सब इसी मुहूर्त में कराये।

श्वेते वासश्च स्नानं च ग्रामोद्यानं तथा कृषिः।
आरम्भाश्चात्रसिद्ध्यन्ति ये चार्थाश्चिन्तिताः क्वचित्।।१४।।

अन्वय-

अत्र श्वेते वासः च स्नानं च ग्रामोद्यानम् तथा कृषिः आरम्भाः च ये क्वचित् चिन्तिताः अर्थाः-सिद्ध्यन्ति।

मञ्जुमती व्याख्या-

अत्र = इस, श्वेते = श्वेत मुहूर्त में, वासः = वस्त्रधारण का कार्य, स्नानम् = नहान, ग्रामोद्यानम् = गाँव और बगीचा, तथा, कृषिः = खेती, आरम्भाः = प्रारम्भ किये गये, च = और, ये = जो, क्वचित् = कहीं, चिन्तिताः = सोचे गये, अर्थाः = प्रयोजन, सिद्ध्यन्ति = सिद्ध होते हैं।

हिन्दी-

इस श्वेत नामक मुहूर्त में नवीन वस्त्र धारण करना, स्नान करना, ग्राम बसाना, बगीचा लगाना, कृषि कार्य आरम्भ करना तथा और भी सोचे हुए कार्य सिद्ध होते हैं।

मैत्रे मैत्राणि कुर्वीत मित्रकार्याणि नित्यशः।
यच्चमैत्रं भवेत् किञ्चित् सर्वमेतेन कारयेत्।।१५।।

अन्वय-

मैत्रे मैत्राणि मित्रकार्याणि नित्यशः कुर्वीत। यत् च किञ्चित् मैत्रं भवेत् एतेन सर्वम् कारयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

मैत्रे = मैत्र संज्ञक मुहूर्त में, मैत्राणि = मित्र सम्बन्धी, मित्र कार्याणि = मैत्री सन्धि आदि कार्य, नित्यशः = निश्चित, कुर्वीत = करे। यत् च किञ्चित् = जो कुछ भी, मैत्रम् = मित्र सम्बन्धी कार्य, भवेत् = हो, एतेन = इस मुहूर्त से, सर्वम् = सब, कारयेत् = कराये।

हिन्दी-

मैत्र संज्ञक मुहूर्त में मित्र सम्बन्धी सभी मित्र कार्य सन्धि आदि निश्चित करे। जो कुछ भी मैत्री कार्य हो सभी इस मुहूर्त द्वारा सिद्ध होता है।

अभिचारं तु शत्रूणां कुर्यात् सारभटेन तु।
आत्मार्थे सुहृदर्थे वा नश्यन्ते तस्य शत्रवः।।१६।।

अन्वय-

सारभटेन तु आत्मार्थे सुहृदर्थे वा शत्रूणाम् अभिचारं कुर्यात् तस्य शत्रवः नश्यन्ते।

मञ्जुमती व्याख्या-

सारभटेन = सारभट मुहूर्त द्वारा, आत्मार्थे = अपने लिये, सुहृदर्थे = मित्र के लिए, वा = अथवा, अभिचारम् = अभिचार कर्म, कुर्यात् = करे, तस्य = उस कर्ता के, शत्रवः = वैरी, नश्यन्ते = नष्ट होते हैं।

हिन्दी-

सारभट मुहूर्त द्वारा अपने तथा अपने मित्रों के कल्याण के लिए शत्रुओं के सम्बन्ध में अभिचार कर्म करे। इस मुहूर्त में कर्ता के अभिचारिक प्रयोग से शत्रु नष्ट होते हैं।

सावित्रेण मुहूर्तेन देव कार्याणि कारयेत्।
यज्ञान्विवाहानु द्वाहांश्चूडोपनयनानि च।।१७।।

अन्वय-

सावित्रेण मुहूर्तेन देवकार्याणि यज्ञान् विवाहान् उद्वाहान् चूडोपनयनानि च कारयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

सावित्रेण = सावित्र नामक, मुहूर्तेन = मुहूर्त द्वारा, देवकार्याणि = देवता सम्बन्धी कार्य, यज्ञान् = यज्ञ, विवाहान् = विवाह, उद्वाहान् = सभी प्रकार का विवाह, चूडोपनयनानि = चूडा कर्म, जनेऊ, कारयेत् = कराये।

हिन्दी-

सावित्र नामक मुहूर्त द्वारा देव कार्य, यज्ञ, चूडा, जनेऊ सभी प्रकार का विवाह संस्कार कराये।

वैराजेन मुहूर्तेन राजा पौरुषमारभेत्।
वर्माणि पटदानानि शस्त्रकर्मच कारयेत्।।१८।।

अन्वय-

वैराजेन मुहूर्तेन राजा पौरुषम् आरभेत् वर्माणि पटदानानि शस्त्रकर्म च कारयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

वैराजेन मुहूर्तेन = वैराज नामक मुहूर्त द्वारा, राजा = नृप, पौरुषम् = पराक्रम, आरभेत् = आरम्भ करे। वर्माणि = कवच धारण, पटदानानि = वस्त्रदान, शस्त्रकर्म = शस्त्र सम्बन्धी निर्माण प्रयोग आदि, कारयेत् = कराये।

हिन्दी-

वैराज नामक मुहूर्त द्वारा राजा पराक्रम प्रारम्भ करे तथा कवच धारण, वस्त्र दान एवं शस्त्र कर्म (निर्माण-प्रयोग आदि) कराये।

विश्वावसौतु सर्वार्थानारम्भाश्चात्र कारयेत्।
सर्वेषां च द्विजातीनां स्वाध्यायोऽत्र प्रशस्यते।।१९।।

अन्वय-

विश्वावसौ तु सर्वार्थान् आरम्भान् च कारयेत्। अत्र सर्वेषां द्विजातीनां स्वाध्यायः प्रशस्यते।

मञ्जुमती व्याख्या-

विश्वावसौ = विश्वावसु संज्ञक मुहूर्त में, तु-तो, सर्वार्थान् = सभी प्रकार के अर्थ सिद्धि के कार्यों को, आरम्भान् च = और आरम्भों को, कारयेत् = कराये, सर्वेषाम् = सभी, द्विजातीनाम् = ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों का, स्वाध्यायः = अध्ययन, अत्र = इस मुहूर्त में, प्रशस्यते = प्रशंसित हैं।

हिन्दी-

विश्वावसु नामक मुहूर्त में सभी प्रकार के अर्थ सिद्धिवाले कार्यों को प्रारम्भ करे। सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजातियों का स्वाध्याय इस मुहूर्त में प्रशंसित है।

ब्रह्म क्षत्रिय वैश्यानां शूद्राणां चापि नित्यशः।
सर्वेषामेव वर्णानां योगो मध्यं दिनेऽभिजित्।।२०।।

अन्वय-

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानाम् शूद्राणामपि च नित्यशः सर्वेषामेव वर्णानाम् दिने मध्यम् अभिजित् योगः (भवति)।

मञ्जुमती व्याख्या-

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानाम् = ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों का, शूद्राणामपि च = और शूद्रों का भी, नित्यशः = निश्चित, सर्वेषामेव = सभी, वर्णानाम् = वर्णों का, दिने मध्यम् = दोपहर, अभिजित् योगः = अभिजित् मुहूर्त (श्रेष्ठ है)।

हिन्दी-

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी वर्णों के सम्बन्ध में मध्यदिन अभिजित् मुहूर्त श्रेष्ठ होता है (मेल-मिलाप आदि के विषय में)।

अभिजित्सर्वकामाय सर्वकामार्थसाधनः।
अर्थसञ्चय मानानामध्वानं गन्तुमिच्छताम्।।२१।।

अन्वय-

अभिजित् सर्वकामाय सर्व कामार्थसाधनः अर्थ सञ्चयमानानाम् अध्वानं गन्तुमिच्छताम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

अभिजित् = इस नाम का मुहूर्त, सर्वकामाय = सभी प्रकार की कामनाओं के लिए, सर्वकामार्थसाधकः = सभी वाञ्छित अर्थों का साधन (है), अर्थ सञ्चय मानानाम् = धन संग्रहियों का, अध्वानं गन्तुमिच्छताम् = यात्रा करनेवालों का (यह मुहूर्त मनोरथ सफल करता है)।

रौहिणेवापिता वृक्षा विल्व गुल्म लतास्तथा।
अरोगाः पुष्पवन्तश्च फलवन्तश्च नित्यशः।।२२।।

अन्वय-

रौहिणे वापिताः वृक्षाः विल्व गुल्मलताः तथा नित्यशः अरोगाः पुष्पवन्तः च फलवन्तः च (भवन्ति)।

मञ्जुमती व्याख्या-

रौहिणे = रौहिण मुहूर्त में, वापिताः = लगाये गये (बोये गये), वृक्षाः = वृक्ष, विल्वगुल्माः = बेल जड़वाले पौधे, लताः = लतर, तथा = और, अरोगाः = नीरोग, पुष्पवन्तः = फूलवाले, फलवन्तः = फलवाले (होते हैं)।

हिन्दी-

रौहिण मुहूर्त में लगाये गये या बोये गये वृक्ष-बेल जड़वाले पौधे और लताएँ नीरोग फूलवाले तथा फलवाले होते हैं।

बलेन तु बलं राजा स्वयमारुह्य योजयेत्।
योगः सम्पत्तितं कार्यं शत्रूंश्च विषमेजयेत्।।२३।।

अन्वय-

बलेन राजा तु स्वयम् आरुह्य बलं योजयेत्, योगः सम्पत्तितं कार्यम् शत्रून् च विषमे जयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

बलेन = बल नामक मुहूर्त द्वारा, राजा = नृप, तु = तो, स्वयम् = स्वतः, आरुह्य = सवारी पर आरूढ़ होकर, बलम् = सेना को, योजयेत् = जोड़े, योगः = बल संज्ञक मुहूर्त, सम्पत्तितम् कार्यम् = सम्पत्ति से किया हुआ, विषमे = संग्राम में, शत्रून् = शत्रुओं को, जयेत् = जीते।

हिन्दी-

बल नामक मुहूर्त द्वारा राजा स्वयं आरूढ़ होकर सेना को आक्रमण के लिए जोड़े, सम्पत्ति के अनुरूप संग्राम में इस मुहूर्त में आक्रमण शत्रु पर विजय प्रदान करता है।

विजयेन प्रयातस्य विजयो नात्र संशयः।
मंगलान्यत्र कुर्वीत शान्ति स्वस्त्ययनानि च।।२४।।

अन्वय-

विजयेन प्रयातस्य विजयः अत्र संशयः न, अत्र मङ्गलानि कुर्वीत शान्ति स्वस्त्ययनानि च (कुर्वीत)।

मञ्जुमती व्याख्या-

विजयेन = विजय नाम मुहूर्त से, प्रयातस्य = शत्रु के प्रति प्रमाण से, विजयः = जय होती है, अत्र = इसमें, संशयः = सन्देह, न = नही है। अन्त = विजय मुहूर्त में, मङ्गलानि = मङ्गल, शान्तिस्वस्त्ययनानि = शान्ति और स्वस्तिवाचन, कुर्वीत = करे।

हिन्दी-

विजय नामक मुहूर्त में प्रयाण करने से विजय लाभ होता है-इसमें सन्देह नहीं। इस विजय नामक मुहूर्त में शान्ति और स्वस्ति पाठ करना चाहिए।

नैर्ऋते घातयेत्सेनां परराष्ट्रं तु मर्दयेत्।
कर्त्तुः सम्पत्करो ह्येषः सर्व शत्रु निवर्हणः।।२५।।

अन्वय-

नैर्ऋते सेनां घातयेत् परराष्ट्रं तु मर्दयेत् एषः कर्तुः सम्पत्करः सर्व शत्रु निवर्हणः हि।

मञ्जुमती व्याख्या-

नैर्ऋते = नैर्ऋत मुहूर्त में, सेनाम् = शत्रुसेना को, घातयेत् = नष्ट करे, परराष्ट्रम् = शत्रुराष्ट्र को, तु = तो, मर्दयेत् = मसल दे, एषः = नैर्ऋत मुहूर्त, कर्तुः = आक्रमण करनेवाले की, सम्पत्करः = सम्पत्ति करनेवाला तथा-सर्व शत्रु निवर्हणः = सभी शत्रुओं को समाप्त करनेवाला, हि = क्योंकि (है)

हिन्दी-

नैर्ऋत मुहूर्त में शत्रुसेना को नष्ट करे-और शत्रु देश को मसल दे। यह मुहूर्त आक्रमण करने वाले का सम्पत्ति कारक तथा सभी शत्रुओं का क्योंकि समापक है।

वारुणेन मुहूर्तेन वारुणानि प्रवापयेत्।
गोधूमान्यव शालींश्च चणकांश्चोत्पलानिच।।२६।।

अन्वय-

वारुणेन मुहूर्तेन वारुणानि गोधूमान् यव शालीम् च चणकान् उत्पलानि च प्रवापयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

वारुणेन मुहूर्तेन = वारुण मुहूर्त से, गोधूमान् = गेहूँ, यवान् = जौ, शालीम् = धान, चणकान् = चना, उत्पलानि च = कमल, च = और, प्रवापयेत् = बोना चाहिए।

हिन्दी-

वारुण मुहूर्त द्वारा गेहूँ, जौ, धान, चना और कमल की बोआई करनी चाहिए।

सौम्ये सौम्यानि कुर्वीत सौम्य कार्याणि नित्यशः।
यच्च सौम्यं भवेत्किञ्चित् सर्वमेतेन कारयेत्।।२७।।

अन्वय-

सौम्ये सौम्यानि सौम्यकार्याणि नित्यशः कुर्वीत, यत् च किञ्चित् सौम्यं भवेत् एतेन सर्वम् कारयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

सौम्ये = सौम्य नामक मुहूर्त्त में, सौम्यानि = शुभ, सौम्यकार्याणि = शुभ काम, नित्यशः = सर्वदा, कुर्वीत् = करे, यत् च = और जो, किञ्चित् = कुछ भी, सौम्यम् = शुभ, भवेत् = हो।

हिन्दी-

सौम्य मुहूर्त में शुभ कार्य सर्वदा करना चाहिए। जो भी शुभ काम हो वह सब सौम्य मुहूर्त में करे या कराये।

सर्वासामिह नारीणां कन्यानां च विशेषतः।
सौभाग्यानि प्रयुञ्जीत भगे भीम पराक्रमे।।२८।।

अन्वय-

भीम पराक्रमे इह भगे सर्वासां नारीणां विशेषतः कन्यानाम् च सौभाग्यानि प्रयुञ्जीत।

मञ्जुमती व्याख्या-

भीम पराक्रमे = बलवान् पराक्रमवाले, इह भगे = यहाँ भग मुहूर्त में, नारीणाम् = महिलाओं का, विशेषतः = विशेषरूप से, कन्यानाम् = कुमारी बालिकाओं का, सौभाग्यानि = सौभाग्यकारक विवाह आदि, प्रयुञ्जीत = करना चाहिए।

हिन्दी-

बलवान पराक्रमवाले इस भग मुहूर्त्त में नारियों विशेषकर कुमारी कन्याओं का विवाह आदि सौभाग्यकारक संस्कार सम्पादित करना चाहिए।

भगेन वरयेत्कन्यां ब्राह्मणीं कुलवर्धिनीं।
भगेन वरिता कन्या नैव सान्यत्र गच्छति।।२९।।

अन्वय-

भगेन ब्राह्मणीम् कुलवर्धिनीम् कन्याम् वरयेत्, भगेन वरिता कन्या सा अन्यत्र न गच्छति।

मञ्जुमती व्याख्या-

भगेन = भग मुहूर्त के साथ, ब्राह्मणीम् = ब्राह्मण, कुल वर्धिनीम् = कुल को बढ़ानेवाली, कन्याम् = कुमारी को, वरयेत् = वरण करे, भगेन = भग मुहूर्त द्वारा, वरिता = वरण की गयी, सा कन्या = वह बालिका, अन्यत्र = और कहीं, न गच्छति = नहीं जाती है।

हिन्दी-

भग नामक मुहूर्त में ब्राह्मणी कुल को बढ़ानेवाली कन्या को वरण करना चाहिए। भग मुहूर्त द्वारा वरण की गयी कन्या पति को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाती।

सन्दर्भ -

मुहूर्त का फलाफल बतलाने के बाद करण निरूपण और उसका शुभाशुभ फल-

शुक्ल प्रतिपदि रात्रौ दिविपंचम्यां तथाष्टम्यां रात्रौ।
द्वादश्यामपि दिवा प्रथमं प्रतिपद्यते करणम्।।३०।।

अन्वय-

शुक्ल प्रतिपदि रात्रौ पञ्चम्याम् दिवि तथा अष्टम्यां रात्रौ द्वादश्यां दिवा प्रथमम् करणं प्रतिपद्यते।

मञ्जुमती व्याख्या-

शुक्ल प्रतिपदि = शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा में, रात्रौ = रात में, पञ्चम्याम् = पञ्चमी तिथि में, दिवि = दिन में, तथा = और, अष्टम्याम् = अष्टमी तिथि में, रात्रौ = रात में, द्वादश्याम् = द्वादशी तिथि में, दिवा = दिन में, प्रथमम् = पहला, करणम् = करण संज्ञक योग, प्रतिपद्यते = होता है।

हिन्दी-

शुक्ल पक्ष प्रतिपदा में रात में, पञ्चमी में दिन में और अष्टमी तिथि में रात में द्वादशी तिथि में दिन में पहला करण 'वव' होता है।

पौर्णमास्यां ववं रात्रौ तच्चतुर्थ्यां पुनर्दिवा।
तद्धि तत्सप्तम्यां रात्रौ तच्चैवैकादश्यां दिवा।।३१।।

अन्वय-

पौर्णमास्यां रात्रौ तत् चतुर्थ्यां पुनः दिवा तत् हि सप्तम्यां रात्रौ तत् च एकादश्याम् दिवा ववं नाम (करणं) भवति।

मञ्जुमती व्याख्या-

पौर्णमास्याम् = पूर्णमासी में, रात्रौ = रात में, तत् = वह, चतुर्थ्याम् = चतुर्थी में, पुनः = फिर, दिवा = दिन में, तत् हि = वह, सप्तम्याम् = सप्तमी में, रात्रौ = रात में, तत् च = और वह, एकादश्याम् = एकादशी में, दिवा = दिन में, ववं नाम = वव नामवाला (करण), भवति = होता है।

हिन्दी-

पौर्णमासी में रात में, चतुर्थी में पुनः दिन में, सप्तमी में रात में, एकादशी में दिन में वव नामवाला करण होता है।

सन्दर्भ-

किस तिथि को कौन–सा करण होगा–इसकी विधि बता रहे हैं।

तां तिथिं द्विगुणीकृत्य हीनमेकन्तु कारयेत्।
सप्तभिश्च हरेद् भागं शेषं करणमुच्यते।।

अन्वय-

तां तिथिम् द्विगुणीकृत्य एकम् तु हीनं कारयेत् सप्तभिः च भागं हरेत् शेषम् करणम् उच्यते।

मञ्जुमती व्याख्या-

तां तिथिम् = उस तिथि को, द्विगुणीकृत्य = दूना कर, एकम् एक संख्या, हीनम् = रहित, कारयेत् = करे, सप्तभिः = सात से, भागं हरेत् = भाग करे, शेषम् = बचा हुआ, करणम् = करण, उच्यते = कहा जाता है।

हिन्दी-

जिस तिथि में करण जानना हो, उस तिथि को शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से गिनकर जो संख्या मिले, उसे दूना कर फिर उसमें एक संख्या (१) घटा दे। जो शेष रहे, उसमें सात (७) का भाग दे, भाग देने पर जो शेष मिले उसको वव से विष्टि पर्यन्त क्रमशः करण समझे।

शुभाशुभ निबद्धानि करणानि निबोधत।
तानि तत्त्वेन विज्ञाय नापदं प्राप्नुयान्नरः।।३२।।

अन्वय-

शुभाशुभ निबद्धानि करणानि निबोधत नरः तानि तत्त्वेन विज्ञाय आपदम् न प्राप्नुयात्।

मञ्जुमती व्याख्या-

शुभाशुभनिबद्धानि = शुभ और अशुभ कहे गये, करणानि = करणों को, निबोधत = समझें, नरः = मनुष्य, तानि = उन करणों को, तत्त्वेन = वास्तव रूप से, विज्ञाय = जानकर, आपदम् = आपत्ति को, न = नहीं, प्राप्नुयात् = प्राप्त करे।

हिन्दी-

शुभ और अशुभ रूप से जुटे हुए करणों को समझें, मनुष्य उन्हें वास्तव रूप से जानकर आपत्ति को नहीं प्राप्त करता है।

एकादशभिः करणै मासः संप्रतिपद्यते।
ध्रुवाणि तत्र चत्वारि चराण्यन्यानि सप्त च।।३३।।

अन्वय-

एकादशभिः करणैः मासः संप्रतिपद्यते, तत्र चत्वारि ध्रुवाणि अन्यानि सप्त च चराणि (भवन्ति)

मञ्जुमती व्याख्या-

एकादशभिः = ग्यारह, करणैः = करणों से, मासः = एक महीना, संप्रतिपद्यते = पूरा होता है, तत्र = उन करणों में, चत्वारि = चार, ध्रुवाणि = ध्रुव संज्ञक, अन्यानि = और शेष, सप्त च = सात, चराणि = चर संज्ञक होते हैं।

हिन्दी-

ग्यारह करणों के साथ एक माह होता है। अर्थात् एक माह में ग्यारह करण होते हैं। इन करणों में चार ध्रुव संज्ञक तथा सात चर संज्ञक करण होते हैं।

सन्दर्भ-

चर संज्ञक करणों के नाम

ववं च वालवं चैव कौलवं तैतिलेति च।
गराजिर्वणिजं चैव विष्टिर्भवति सप्तमम्।।३४।।

अन्वय-

ववं च वालवं च एव कौलवं तैतिलः इति च गराजिः वणिजं च एव सप्तमम् विष्टिः भवति।

मञ्जुमती व्याख्या-

ववम् = वव, वालवम् = वालव, च एव = तथा कौलवम् = कौलव, तैतिलः = तैतिल, इति च = इस तरह, गराजिः = गर, वणिजम् = वणिज, च एव = (श्लोक के पाद पूरक शब्द) सप्तमम् = सातवाँ, विष्टिः = विष्टि (चर संज्ञक करण हैं)।

हिन्दी-

वव, वालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि ये सात चरसंज्ञक करण हैं।

सन्दर्भ -

ध्रुव संज्ञक करणों के नाम -

शकुनिं चतुष्पदं नागं चतुर्थं कौस्तुभं भवेत्।
एकैकस्यतु यत्कर्म तद्वक्ष्यामि पृथक् पृथक्।।३५।।

अन्वय-

शकुनिम् चतुष्पदम् नागम चतुर्थम् कौस्तुभं भवेत् एकैकस्य तु यत् कर्म तत् पृथक्-पृथक् वक्ष्यामि।

मञ्जुमती व्याख्या-

शकुनिम् = शकुनि, चतुष्पदम् = चतुष्पद, नागम् = नॉग, चतुर्थम् = चौथा, कौस्तुभम् = कौस्तुभ, भवेत् = होता है, एकैकस्य = एक-एक करण का, तु = तो, यत् कर्म = जो कर्म (है), तत् = उस कर्म को, पृथक् पृथक् = अलग-अलग, वक्ष्यामि = कहूँगा।

हिन्दी-

शकुनि, चतुष्पद, नाग, कौस्तुम ध्रुव संज्ञक करण हैं। इनमें एक-एक के कार्य को अलग-अलग कहूँगा।

विशेष-

वर्तमान ज्योतिष ग्रन्थों में कौस्तुभ के स्थान में किस्तुघ्न नाम मिलता है।

आद्यंतु शकुनिं नाम रात्रौ कृष्ण चतुर्दशीं।
आधाने हरणे चैव तथैव च पलायने।।
श्रुत्यानामथ योधानां पक्षिणां गृहपोषणे।
चिकित्सायां तु युद्धे च सर्वत्रैतत्प्रशस्यते।।३६।।

अन्वय-

आद्यं तु शकुनिं नाम रात्रौ कृष्ण चतुर्दशीं श्रुत्यानाम् आधाने योधानां हरणे तथा एव पलायने पक्षिणां गृहपोषणे चिकित्सायाम् तु युद्धे च एतत् सर्वत्र प्रशस्यते।

मञ्जुमती व्याख्या-

आद्यम् तु = प्रथम तो, शकुनिं नाम = शकुनि संज्ञक करण, कृष्ण चतुर्दशी = कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को, श्रुत्यानाम् = आभूषणों के, आधाने = धारण करने में, योधानाम् = योधाओं के, हरणे = अपहरण करने में, तथा एव = और, पलायने = भगाने में, पक्षिणाम् = पक्षियों के, गृह पोषणे = घर में पालने में, चिकित्सायाम् = इलाज करने में, युद्धे च = युद्ध करने में, एतत् = यह शकुनि करण, सर्वत्र = सब समय, प्रशस्यते = प्रशंसित है।

हिन्दी-

प्रथम कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को रात्रि में शकुनि नाम का करण हो तो आभूषणों के धारण करने में योधाओं के अपहरण और पलायन करने में पक्षियों के घर में पालन करने में डाक्टरी कराने में युद्ध में सर्वत्र प्रशंसित है।

भूततन्त्र बलिंदद्याच्छत्रूणां परघातकम्।
करणं चतुष्पदं नाम कृष्ण पञ्चदशीं दिवा।।३७।।

अन्वय-

दिवा कृष्ण पञ्चदशीं चतुष्पदं नाम करणम् (तत्र) शत्रूणां परघातकम् भूततंत्र वलिं दद्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या-

दिवा = दिन में, कृष्ण पञ्चदशीम् = कृष्ण पक्ष की अमावस्या को, चतुष्पदं नाम = चतुष्पद संज्ञक, करणम् = करण हो, शत्रूणाम् = शत्रुओं का, परघातकम् = परमघातक, भूततंत्र बलिम् = तान्त्रिक विधान से भूतों को बलि, दद्यात् = देनी चाहिए।

हिन्दी-

अमावस्या को दिन में जब चतुष्पद नाम का करण हो तब तांत्रिक विधि से भूतों को बलि देनी चाहिए। इससे शत्रुओं का सर्वनाश होता है।

चतुष्पदानां सर्वेषां हितं सर्वेषु कर्मसु।
श्राद्धमत्र च कुर्वीत प्रयतश्च भवेन्नरः।।३८।।

अन्वय-

सर्वेषु कर्मसु सर्वेषां चतुष्पदानाम् हितम्, अत्र श्राद्धं च कुर्वीत नरः प्रयतः च भवेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

सर्वेषु कर्मसु = सम्पूर्ण कार्यों में, सर्वेषाम् = सभी, चतुष्पदानाम् = चौपायों का, हितम् = हित, अत्र = इसमें, श्राद्धम् = पितृकर्म, कुर्वीत = करे, नरः = मनुष्य, प्रयतः = परम यत्नवान्, भवेत = होता है।

हिन्दी-

चतुष्पद नामक अमावस्या के दिन करण होने पर चौपायों से सम्बन्धित सभी कार्य हितकारी होते हैं और इसी करण में श्राद्ध करना चाहिए, मनुष्य इससे प्रयत्नवान् होता है।

सोदकानि च कार्याणि सर्वाण्येवाऽत्र कारयेत्।
कृष्णपञ्चदशीं रात्रौ नागकरणमुच्यते ।।३९।।

अन्वय-

अत्र सर्वाणि सोदकानि कार्याणि एव कारयेत् रात्रौ कृष्णपञ्चदशीं नागकरणम् उच्यते।

मञ्जुमती व्याख्या-

अत्र = दिन की अमावस्या के चतुष्पद करण में, सोदकानि = जलवाला, कार्याणि = तर्पण आदि, कारयेत् = कराये, रात्रौ = रात में, कृष्ण पञ्चदशीम् = कृष्ण पक्ष की अमावस्या को, नागकरणम् = नागसंज्ञक करण को, उच्यते = कहते हैं।

हिन्दी-

तर्पण आदि जलदान के सभी कार्य चतुष्पद नामक करण में दिन में अमावस्या को करे। अब जिस दिन अमावस्या को रात में नागकरण हो उस रात के कार्य को कहते हैं।

नष्टं दष्टं तथा बद्धं तदन्तमिति निर्दिशेत्।
यानि प्रसह्य कार्याणि प्रमथ्य हरणानि च।
तानि नागे प्रयुक्तानि सिद्धयन्ति फलवन्ति च।।४०।।

अन्वय-

नागे नष्टं दष्टं तथा बद्धं तदन्तम् इति निर्दिशेत् यानि प्रसह्य कार्याणि प्रमथ्य हरणानि च तानि प्रयुक्तानि फलवन्ति च सिद्धयन्ति।

मञ्जुमती व्याख्या-

नागे = नाग नामक करण में, नष्टम् = नाश करना, दष्टम् = काटना, तथा = और, बद्धम् = बाँधना, तदन्तम् = समापन, निर्दिशेत् = बतलाये, यानि = जो भी, प्रसह्य कार्याणि = बलात् कार्य, प्रमथ्य हरणानि = बलपूर्वक हरण, तानि = वे, प्रयुक्तानि = नागकरण में प्रयोग किये गये, फलवन्ति = फलवाले, सिद्धयन्ति = सिद्ध होते हैं।

हिन्दी-

नाग संज्ञक करण में नाश करना, काटना, बाँधना, समाप्त करना, बलात् कार्य और बलपूर्वक हरण कार्य का निर्देश करे। वे सब प्रयोग किये गये सफल और सिद्ध होते हैं।

शुक्ल प्रतिपदि दिवा कौस्तुभं करणं भवेत्।
वैश्वदेवमिति ख्यातं प्रशस्तं सर्व कर्मसु।।४१।।

अन्वय-

शुक्लप्रतिपदि, दिवा कौस्तुभं करणं भवेत् सर्व कर्मसु प्रशस्तं वैश्वदेवम् इति ख्यातं (भवेत्)।

मञ्जुमती व्याख्या-

शुक्ल प्रतिपदि = शुक्लपक्ष की प्रतिपदा में, दिवा = दिन में, कौस्तुभम् =

कौस्तुभ नामक, करणम् = करण, भवेत् = हो, सर्वकर्मसु = सभी कार्यों में, प्रशस्तम् = शोभन, वैश्वदेवम् = वैश्वदेव, इति = यह, ख्यातम् = प्रसिद्ध हो।

हिन्दी-

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को दिन में कौस्तुभ करण हो तो वह सभी कार्यों में प्रशस्त होता है और वह वैश्वदेव नामक विशेष योग रूप में प्रसिद्ध है।

ववेन ध्रुव कर्माणि क्षिप्राण्यपि च कारयेत्।
प्रस्थाने च प्रवेशे च तद्धि सर्वार्थ साधकम्।।४२।।

अन्वय-

ववेन ध्रुवकर्माणि क्षिप्राणि अपि कारयेत्, प्रस्थाने च प्रवेशे च तद्धि सर्वार्थ साधकम् (अस्ति)।

मञ्जुमती व्याख्या-

ववेन = वव नामक करण से, ध्रुवकर्माणि = स्थिर कार्य, क्षिप्राणि अपि = चर कार्य भी, कारयेत् = कराये, प्रस्थाने च = गमन करने में, प्रवेशे च = प्रवेश में, तत् हि = वव करण, सर्वार्थसाधकम् = सभी प्रयोजनों को सिद्ध करनेवाला है।

हिन्दी-

वव नामक करण में ध्रुव (स्थिर) एवम् क्षिप्र (चर) कार्य कराना चाहिए। यह करण गमन में और प्रवेश में सभी कार्यों को सिद्ध करता है।

वालवं ब्राह्मणानांतु सर्वारम्भेषु शोभनम्।
चूडोपनयने यज्ञे विवाहे भूति कर्मसु।।४३।।

अन्वय-

वालवं ब्राह्मणानाम् तु सर्वारम्भेषु चूडोपनयने यज्ञे विवाहे भूतिकर्मसु शोभनं (भवति)।

मञ्जुमती व्याख्या-

वालवम् = वालव नामक करण, सर्वारम्भेषु = सभी आरम्भिक कार्यों में, चूडोपनयने = चूडा कर्म और उपनयन कर्म में, यज्ञे = यज्ञ में, विवाहे = विवाह में, भूतिकर्मसु = ऐश्वर्य के कार्यों में, शोभनम् = शुभ, (भवति = होता है)।

हिन्दी-

वालव नाम का करण ब्राह्मणों के सभी आरम्भिक कार्य चूडा-उपनयन, यज्ञ, विवाह और ऐश्वर्य के कार्यों में शुभ होता है।

विशेष-

प्रस्तुत श्लोक में 'ब्राह्मणानाम् ' इस कथन के अनुसार ब्राह्मणेतर के लिए शुभ नहीं समझना चाहिए-'त्रयाणामपि वर्णानामनारम्भो विधीयते'।

अन्यत्र शोभने राज्ये शान्तिकं पौष्टिकं प्रति।
राजद्वारिकमारम्भं कारयेत् तैतिले दिने।।४४।।

अन्वय-

अन्यत्र तैतिले दिने शोभने राज्ये शान्तिकं पौष्टिकं प्रति राज द्वारिकम् आरम्भम् कारयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

अन्यत्र = दूसरे स्थान में, तैतिले दिने = दिन में तैतिल करण होने पर, शोभने राज्ये = अच्छे राज्य में, शान्तिकम् = शान्ति सम्बन्धी, पौष्टिकम् = पुष्टि सम्बन्धी, राजद्वारिकम् = राजा द्वारा, आरम्भम् = शुरुआत, कारयेत् = कराये।

हिन्दी-

दूसरे स्थान में दिन में तैतिल करण होने पर सुखी राज्य में शान्ति सम्बन्धी तथा पुष्टि सम्बन्धी कार्य का आरम्भ राजा द्वारा कराये।

मैत्र युक्तं तु यत्कर्म यच्चस्यात्सिद्धि कारकम्।
स्थावराणि च कार्याणि कौलवे तानि कारयेत्।।४५।।

अन्वय-

कौलवे मैत्र युक्तं तु यत्कार्यम् यत् च सिद्धिकारकम् स्यात् स्थावराणि च कार्याणि तानि कारयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

कौलवे = कौलव संज्ञक करण में, मैत्रयुक्तम् = मैत्री सम्बन्धी, यत् कार्यम् = जो कार्य हो, यत् च = जो कार्य, सिद्धिकारकम् = सिद्धिकारक हो, स्थावराणि = स्थिर, च = और, कार्याणि = कार्य, तानि = उसे, कारयेत् = कराये।

हिन्दी-

कौलव नामक करण में मित्रता सम्बन्धी कार्य और स्थिर कार्य तथा सिद्धि प्रदान करनेवाला कार्य कराना चाहिए।

राजद्वारिकमारम्भं कारयेत्तैतिले दिने।
एतद्धि करणं श्रेष्ठं नित्यं राज्ञोपसेविनाम्।।४६।।

अन्वय-

तैतिले दिने राजद्वारिकम् आरम्भं कारयेत् राज्ञोपसेविनाम् एतत् हि करणं नित्यं श्रेष्ठम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

तैतिले दिने = तैतिल नामक करण में, राजद्वारिकमारम्भम् = राजद्वार का आरम्भ, अथवा राजा द्वारा अन्य कार्य का आरम्भ, कारयेत् = कराये, एतत् हि = तैतिल करण, राज्ञोपसेविनाम् = राजा की सेवा करनेवालों के लिए, नित्यम् = सर्वदा, श्रेष्ठम् = श्रेष्ठ है।

हिन्दी-

तैतिल नामक करण में राजद्वार का आरम्भ कराये राजा की सेवा करनेवालों के लिए यह तैतिल करण नित्य श्रेष्ठ है।

अलंकारांश्च विविधान् दिव्यान्याभरणानि च।
अन्यच्चापि तथा युक्तं युक्तानान्तु पथिक्रिया।।४७।।

अन्वय-

विविधान् अलंकारान् दिव्यानि आभरणानि च अन्यत् अपि च तथा युक्तम् युक्तानाम् तु पथि क्रिया।

मञ्जुमती व्याख्या-

विविधान् = अनेक प्रकार के, अलंकारान् = आभूषण, दिव्यानि आभरणानि = सुन्दर गहनों का, अन्यत् अपि = और भी, तथा युक्तम् = उसके उचित, युक्तानाम् = उचित का, पथिक्रिया = यात्रा आदि (तैतिल करण में उचित है)

हिन्दी-

अनेक प्रकार के आभूषण एवं विविध प्रकार के गहने का निर्माण एवं धारण कार्य अन्य भी तथोचित कार्य और उचित की यात्रा के लिए तैतिल करण शुभ है।

गराजिनान्तु कुर्वीत यत्कर्म गृहमेधिनां।
पशूनां पोषणं चैव प्रयोज्यम् क्रयविक्रयम्।।४८।।

अन्वय-

गराजिनाम् तु गृहमेधिनां यत् कर्म पशूनां पोषणं क्रय-विक्रयम् च एव प्रयोज्यम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

गराजिनाम् = गर नामक करण में, गृहमेधिनाम् = गृहस्थों का, यत् कर्म =

जो कार्य, पशूनाम् = पशुओं का, पोषणम् = पालन, क्रय-विक्रयम् = खरीद बेच, प्रयोज्यम् = करना चाहिए।

हिन्दी-

गर नामक करण में गृहस्थों का कार्य पशुओं का पालन–पोषण, खरीद-बेच करना चाहिए।

गृहप्रवेशं वास्तूनां गृहाणां रोपणानि च।
विशेषेण तु कार्याणि कर्षणादीनि कारयेत्।।४९।।

अन्वय-

गृहप्रवेशं वास्तूनाम् गृहाणाम् रोपणानि विशेषेण तु कर्षणादीनि कार्याणि कारयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

गृह प्रवेशम् = गृह प्रवेश, वास्तूनाम् = वास्तुओं का, गृहाणाम् = घरों का, रोपणानि = आरम्भ, विशेषेण तु = विशेषकर, कर्षणादीनि = हल चलाना आदि, कारयेत् = कराये।

हिन्दी-

गर नामक करण में गृह प्रवेश, वास्तुकर्म, गृहारम्भ एवं विशेषकर हल आदि का चलाना शुभ होता है।

वणिजं वणिजानान्तु सर्वपण्येष्ट शोभनम्।
विक्रेतारिध्यते तत्र क्रेता तत्र न रिध्यते।।५०।।

अन्वय-

वणिजम् वणिजानाम् तु सर्व पण्येष्ट शोभनम्, तत्र विक्रेता रिध्यते तत्र क्रेता न रिध्यते।

मञ्जुमती व्याख्या-

वणिजम् = वणिज नामक करण, वणिजानाम् = बनियों के लिए, तु = तो, सर्व पण्यइष्ट शोभनम् = सभी विक्रेय वस्तुओं के लिए अभीष्ट और शोभन है, तत्र = वणिज करण में, विक्रेता = बेचनेवाला, रिध्यते = समृद्ध होता है, तत्र = उसमें, क्रेता = खरीदनेवाला, न = नहीं, रिध्यते = समृद्ध होता है।

हिन्दी-

वणिज नामक करण में बनियों के लिए सभी विक्रेय वस्तुएँ अभिलषित शोभन होती हैं। इस करण में बेचनेवाले को लाभ होता है किन्तु खरीदनेवाले को लाभ नहीं होता।

विष्टिना करणे कर्म न कुर्यान्नैव कारयेत्।
कृछ्रेणापि कृतं कर्म भवेदल्प फलोदयम्।।५१।।

अन्वय-

विष्टिना करणे कर्म न कुर्यात् नैव कारयेत् कृछ्रेण अपि कृतं कर्म अल्प फलोदयम् भवेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

विष्टिना करणे = विष्टि नामक करण में, कर्म = कोई शुभ कार्य, न कुर्यात् = न करे, न एव = न ही, कारयेत् = कराये, कृछ्रेण अपि = कष्ट से भी, कृतं कर्म = किया गया कार्य, अल्पफलोदयम् = बहुत कम फल देने वाला, भवेत् = हो।

हिन्दी-

विष्टि नामक करण में स्वयं ही किसी शुभ कार्य को न करे और किसी अन्य से भी न कराये। यदि कठिनता से कोई कार्य आरम्भ किया भी जाय तो उसका बहुत कम फल प्राप्त होगा।

यदि सिध्यति तत्कर्म विष्टिनातु कदाचन।
नतच्चिरं सशंकंतु शक्यं भोक्तुं सुरैरपि।।५२।।

अन्वय-

यदि तत्कर्म कदाचन विष्टिना सिद्ध्यति तत् चिरम् अशंकम् तु सुरैः अपि भोक्तुम् शक्यम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

यदि = अगर, तत्कर्म = वह कार्य, कदाचन = कभी कभार, विष्टिना = विष्टि नामक करण द्वारा, सिद्ध्यति = सिद्ध हो भी गया, तत् = वह, चिरम् = बहुत समय तक, सशंकम् = सन्देहपूर्वक, भोक्तुम् = भोगने के लिए, सुरैः अपि = देवताओं द्वारा भी, शक्यम् = सम्भव है।

हिन्दी-

यदि कदाचित् विष्टि नामक करण में किया हुआ कार्य सिद्ध भी हो गया, तो यह निःसन्देह है कि उस कार्य के फल को देवता भी अधिक दिन तक नहीं भोग सकते, क्योंकि वह स्थायी भी नहीं होता है।

आगतं धननाशाय आदौ कार्य विनाशिनी।
मध्ये प्राणहराज्ञेया विष्टिः पुच्छे ध्रुवं जयः।।५३।।

अन्वय-

विष्टिः आगतं धननाशाय आदौ कार्यविनाशिनी मध्ये प्राणहरा ज्ञेया पुच्छे जयः ध्रुवम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

विष्टिः = विष्टि नामक करण, आगतम् = आते-आते, धननाशाय = धन के नाश के लिए, आदौ = आरम्भ में, कार्यविनाशिनी = कार्य को नष्ट करनेवाला, मध्ये = विष्टि के मध्य में, प्राणहरा = प्राण हरण करनेवाला, ज्ञेया = जानना चाहिए, पुच्छे = अन्तिम भाग में, जयः = विजय, ध्रुवम् = निश्चित होता है।

हिन्दी-

विष्टि नामक करण आरम्भ से पूर्व धननाश, प्रारम्भ में कार्य नाशक, मध्य में प्राण हरण करनेवाला समझना चाहिए। अन्तिम भाग में विजय निश्चित है।

आगतंतु घटिका पंच वर्तमाने चतुर्दश।
मध्येचाष्टौ विजानीयाद् विष्टिपुच्छेत्रयः स्मृतः।।५४।।

अन्वय-

आगतम् तु पंचघटिका वर्तमाने चतुर्दश, मध्ये च अष्टौ विजानीयात् विष्टि पुच्छे त्रयः स्मृतः।

मञ्जुमती व्याख्या-

आगतम् तु = अगमन काल तो, पञ्चघटिका = आरम्भ की पाँच घटी, वर्तमाने = वर्तमान काल अर्थात् प्रारम्भ, चतुर्दश = चौदह घटी, मध्ये = मध्यकाल, अष्टौ = आगे की आठ घटी, विजानीयात् = समझे, विष्टि पुच्छे = विष्टि करण का अन्तिम भाग, त्रयः स्मृतः = तीन घटी होता है।

हिन्दी-

प्रारम्भ की पाँच घटी तक विष्टि नामक करण का आगमन काल चौदह घटी तक उसका वर्तमान काल फिर आठ घटी तक उसका मध्यकाल और अन्तिम तीन घटी उसकी पूँछ होती है।

शकुनस्य गरुत्मान्वै वृषभो वै चतुष्पदे।
नागस्य देवता नागाः कौस्तुभस्य धनाधिपः।।५५।।

अन्वय-

शकुनस्य गरुत्मान वै चतुष्पदे वृषभः नागस्य नागाः देवता कौस्तुभस्य धनाधिपः।

मञ्जुमती व्याख्या-

शकुनस्य = शकुनि नामक करण का, गरुत्मान् = गरुड़, चतुष्पदे = चतुष्पद की वृषभः = वृषभ, नागस्य = नाग करण का, देवता = स्वामी, नागाः = नाग, कौस्तुभस्य = कौस्तुभ (किंस्तुघ्न) का, धनाधिपः = कुबेर है।

हिन्दी-

शकुनि करण का स्वामी गरुड़, चतुष्पद करण का स्वामी वृषभ, नाग करण का देवता नाग, कौस्तुभ (किंस्तुघ्न) का स्वामी कुबेर है।

ववस्य देवता विष्णुर्वालवस्य प्रजापतिः।
कौलवस्य भवेत्सोमस्तैतिलस्य शतक्रतुः।।५६।।

अन्वय-

ववस्य विष्णुः वालवस्य प्रजापतिः कौलवस्य सोमः तैतिलस्य शतक्रतुः देवता भवेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

ववस्य = वव का, विष्णुः = विष्णु, वालवस्य = वालव का, प्रजापतिः = प्रजापति, कौलवस्य = कौलव का, सोमः = सोम, तैतिलस्य = तैतिल का, शतक्रतुः = इन्द्र, देवता = स्वामी, भवेत् = होता है।

हिन्दी-

वव का विष्णु, वालव का प्रजापति, कौलव का सोम, तैतिल का इन्द्र स्वामी (देवता) होता है।

गराजिर्वसुदेवत्यो मणिभद्रोऽथ वाणिजे।
विष्टेस्तु दैवतं मृत्युर्देवता परिकीर्तितः।।५७।।

अन्वय-

गराजिः वसुदेवत्यः अथ वाणिजे मणिभद्रः विष्टेः दैवतं तु मृत्युः देवता परिकीर्तितः।

मञ्जुमती व्याख्या-

गराजिः = गर नामक करण, वसुदेवत्यः = वासुदेव देवतावाला, वाणिजे = वणिज के देवता, मणिभद्रः = मणिभद्र, विष्टेः = विष्टि के, दैवतम् = देवता, मृत्युः देवता = मृत्युदेव, परिकीर्तितः = कहे गये हैं।

हिन्दी-

गर के देवता वासुदेव, वणिज के मणिभद्र, विष्टि के मृत्युदेव देवता कहे गये हैं।

सन्दर्भ-

विष्टि का विभिन्न तिथियों में भ्रमण।

कृत्रिरासदिवादरंभूत ्िवाशुचरष्ट दिवाहर पूर्णादिवा।
इतिविष्टिरहर्गण रात्रिचरानच कर्म भवेत् कृतमाशु शुभम्।।५८।।

अन्वय-

कृ० कृष्ण पक्षे त्रि, आस, दिवादर, भूतदिवा तथा च शु० शुक्लपक्षे चः, अष्ट दिवाहर, पूर्ण दिवा इति विष्टिः अहर्गण रात्रिचराः स्युः (एतासु) कृतं कर्म आशु शुभं न भवेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

कृ = कृष्ण पक्ष, त्रि = तीन, आस = अश्व = सात, दिवादर = दस, भूत दिवा = चौदह, शु० = शुक्लपक्ष, चः = चार, अष्ट = आठ, दिवाहर = ग्यारह, पूर्ण = पन्द्रह, विष्टिः = विष्टि करण भद्रा, अहर्गण = दिनपर्यन्त, रात्रिचर = रात्रिपर्यन्त विचरण करते हैं। कृतं = किया गया, कर्म = कार्य, आशु = शीघ्र, शुभं = शुभदायक, न = नहीं, भवेत् = होते हैं।

हिन्दी-

कृष्णपक्ष में तृतीया, सप्तमी, दशमी तथा चतुर्दशी को तथा शुक्लपक्ष में चतुर्थी, अष्टमी, एकादशी तथा पूर्णिमा को भद्रा दिन तथा रात्रि पर्यन्त विचरण करती है। इसमें किया गया कार्य शीघ्र शुभ फलदायक नहीं होता है।

विशेष-

ऋषि गर्ग का कथन है कि विष्टि करण में कोई भी कार्य प्रारम्भ न करे। यदि यत्नपूर्वक कार्य किया गया हो तो वह स्वल्प फल देनेवाला होता है।

विष्टिर्नामेह करणं येन कर्म न कारयेत्।
यत्नेनापि कृतं कर्म भवत्यल्प फलोदयम्।।

सन्दर्भ-

तिथि के अनुसार यात्रा का फल

आदौविसर्जयेत धीरः प्रस्थाने प्रथमां तिथिम्।
द्वितीया संप्रयातस्य सिद्धमर्थं विनिर्दिशेत्।।५९।।

अन्वय-

धीरः आदौ प्रस्थाने प्रथमां तिथिम् विसर्जयेत् द्वितीया संप्रयातस्य सिद्धम् अर्थम् विनिर्दिशेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

धीरः = बुद्धिमान् व्यक्ति, आदौ-प्रथम, प्रस्थाने = यात्रा में, प्रथमाम् = पहली अर्थात् प्रतिपदा, तिथिम् = तिथि को, विसर्जयेत् = छोड़ दे, द्वितीया = द्वितीया तिथि में, संप्रयातस्य = गमन करनेवाले का, सिद्धम् = सम्पन्न, अर्थम् = प्रयोजन, विनिर्दिशेत् = कहना चाहिए।

हिन्दी-

बुद्धिमान् व्यक्ति सर्वप्रथम यात्रा में प्रतिपदा तिथि का परित्याग करे, द्वितीया तिथि में यात्रा करनेवाले व्यक्ति का प्रयोजन सिद्ध होता है।

तृतीया क्षेममारोग्यं चतुर्थी मरणाद्भयम्।
पंचमी विजया श्रेष्ठा सा वै सर्वार्थ साधिका।।६१।।

अन्वय-

तृतीया क्षेमम् आरोग्यम् चतुर्थी मरणात् भयम् पञ्चमी विजया श्रेष्ठा सा वै सर्वार्थ साधिका।

मञ्जुमती व्याख्या-

तृतीया = तृतीया तिथि में यात्रा करने से, क्षेमम् = कुशल, आरोग्यम् = स्वास्थ्य, चतुर्थी = चतुर्थी तिथि में, मरणात् = मृत्यु से, भयम् = भय, पञ्चमी = पञ्चमी तिथि में, विजया श्रेष्ठा = सफलता, सा वै = वह तिथि, सर्वार्थ साधिका = सब प्रयोजन का साधक होती है।

हिन्दी-

तृतीया तिथि यात्रा में कुशल और स्वास्थ्य चतुर्थी मृत्यु से भय पञ्चमी सभी प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली यात्रा के लिए श्रेष्ठ है।

षष्ठीत्वं न लाभाय सप्तमीत्वन्न भाग्भवेत्।
अष्टमी रोगलाभाय नवम्यां न निवर्तते।।६१।।

अन्वय-

षष्ठीत्वं लाभाय न सप्तमीत्वम् न भाग्भवेत्। अष्टमी रोगलाभाय नवम्याम् न निवर्तते।

मञ्जुमती व्याख्या -

षष्ठीत्वम् = षष्ठी तिथि में यात्रा, लाभाय = लाभ के लिए, न = नहीं, सप्तमीत्वम् = सप्तमी, न = नहीं, भाग्भवेत् = अशुभ हो, अष्टमी = अष्टमी तिथि की यात्रा, रोगलाभाय = रोगदायी, नवम्याम् = नवमी तिथि में यात्रा, न निवर्तते = न लौटनेवाली होती है।

हिन्दी-

षष्ठी तिथि में यात्रा करने से हानि, सप्तमी की यात्रा अशुभ, अष्टमी की यात्रा रोगकारक और नवमी तिथि में यात्रा करनेवाला फिर लौटकर नहीं आता।

दशम्यां प्रस्थितो राजा भूमिलाभाय कल्पते।
एकादशी तु सर्वत्र प्रशस्ता सर्वकर्मसु।।६२।।

अन्वय-

दशम्यां प्रस्थितः राजा भूमिलाभाय कल्पते, एकादशी तु सर्वत्र सर्व कर्मसु प्रशस्ता।

मञ्जुमती व्याख्या-

दशम्याम् = दशमी तिथि में, प्रस्थितः = प्रस्थान करनेवाला, राजा = स्वामी, भूमिलाभाय = भूमि के लाभ के लिए, कल्पते = समर्थ होता है, एकादशी तु = एकादशी तिथि तो, सर्वत्र = सब जगह, सर्वकर्मसु = सभी कार्यों में, प्रशस्ता = शुभ है।

हिन्दी-

दशमी में प्रस्थान करनेवाला राजा आदि सभी को भूमि का लाभ होता है और एकादशी की यात्रा सर्वदा शुभ होती है।

द्वादशीत्वर्थनाशाय सन्धि कुर्यात् त्रयोदशी।
चतुर्दशी चलत्कर्म कौतुकान्यत्र कारयेत्।।६३।।

अन्वय-

द्वादशी तु अर्थनाशाय त्रयोदशी सन्धिं कुर्यात् चतुर्दशी चलत्कर्म अत्र कौतुकानि कारयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

द्वादशी = यात्रा में द्वादशी तिथि, तु = तो, अर्थनाशाय = धन-हानिकारी, त्रयोदशी = त्रयोदशी की यात्रा, सन्धिम् = मेल-मिलाप, कुर्यात् = करती है। चतुर्दशी = चतुर्दशी की यात्रा, चलत्कर्म = चर कार्य में, अत्र = चतुर्दशी तिथि में, कौतुकानि = कौतुक के कार्य, कारयेत् = कराया जाय।

हिन्दी-

द्वादशी तिथि में यात्रा करने से धननाश, त्रयोदशी में यात्रा मेल-मिलाप कराने- वाली, चतुर्दशी में यात्रा चर कार्यों में सफलता देनेवाली तथा इस तिथि में कौतुक वाले कार्य कराये जायँ।

अमावस्यां न यात्रा स्यात् पौर्णमास्यांतथा दिवा।
पौर्णमास्यां प्रयातस्य नसिद्धिस्तस्य जायते।।६४।।

अन्वय-

अमावस्यां यात्रा न स्यात् तथा पौर्णमास्याम् दिवा (यात्रा न स्यात्) पौर्णमास्यांप्रयातस्य तस्य सिद्धिः न जायते।

मञ्जुमती व्याख्या-

अमावस्याम् = अमावस्या तिथि को, यात्रा = प्रस्थान, न स्यात् = न हो, पौर्णमास्याम् = पूर्णमासी को, दिवा = दिन में, यात्रा न स्यात् = यात्रा न हो, पौर्णमास्याम् = पूर्णमासी में, प्रयातस्य = यात्रा करनेवाले, तस्य = उस व्यक्ति के, सिद्धिः = कार्य की सिद्धि, न जायते = नहीं होती।

हिन्दी-

अमावस्या तिथि में यात्रा न करे तथा पूर्णिमा तिथि में दिन में यात्रा न करे। पूर्णमासी तिथि में यात्रा करनेवाले व्यक्ति के कार्य की सिद्धि नहीं होती।

षडष्टौ नव चत्वारि पक्षछिद्राणि वर्जयेत्।
अपि नक्षत्रसम्पन्नां वर्जयेत्तु चतुर्दशीम्।।६५।।

अन्वय-

षड् अष्टौ नव चत्वारि पक्षछिद्राणि वर्जयेत् नक्षत्र सम्पन्नामपि चतुर्दशीम् वर्जयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

षड् = षष्ठी, अष्टौ = अष्टमी, नव = नवमी, चत्वारि = चतुर्थी, पक्ष छिद्राणि = पक्ष के छिद्र हैं, वर्जयेत् = यात्रा में वर्जित करे, नक्षत्र सम्पन्नामपि = शुभ नक्षत्र से सम्पन्न भी, चतुर्दशीम् = चतुर्दशी तिथि को, वर्जयेत् = यात्रा में छोड़ दे।

हिन्दी-

षष्टी, अष्टमी, चतुर्थी, नवमी तिथियाँ पक्ष छिद्र मानी गयीं हैं, इन्हें यात्रा में छोड़ दे। शुभ नक्षत्र से सम्पन्न भी चतुर्दशी तिथि को यात्रा में वर्जित करे।

सन्दर्भ– तिथि संज्ञा एवम् उनके फलादेश

नन्दाभद्रा जया रिक्ता पूर्णा पक्षस्तु पंचमी।
तिथयः पंच विज्ञेया पक्षयोरुभयोरपि।।६६।।

अन्वय-

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा पक्षस्तु पञ्चमी, उभयोः अपि पक्षयोः पञ्च तिथयः विज्ञेयाः।

मञ्जुमती व्याख्या-

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा = नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, पूर्णा संज्ञावाली पक्ष की, पञ्चमी = पञ्चमी तिथि, उभयोः = दोनों, पक्षयोः = पक्षों में, पञ्च = पाँच प्रकार की, तिथयः = तिथियाँ, विज्ञेयाः = समझें।

हिन्दी-

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा ये दोनों ही पक्षों की पन्द्रह-पन्द्रह तिथियों की पाँच संज्ञाएँ होती हैं।

नन्दा प्रतिपदं विद्यात्षष्ठीमेकादशीमपि।
द्वितीया सप्तमी भद्रा द्वादशी चोपपद्यते।।६७।।

अन्वय-

प्रतिपदम् षष्ठीम् एकादशीमपि नन्दा विद्यात् द्वितीया सप्तमी द्वादशी च भद्रा उपपद्यते।

मञ्जुमती व्याख्या-

प्रतिपदम् = प्रतिपदा को, षष्ठीम् = षष्ठी को, एकादशीमपि = एकादशी को भी, नन्दा = नन्दासंज्ञक, विद्यात् = जाने, द्वितीया = दूइज, सप्तमी = सप्तमी, द्वादशीमपि = द्वादशी को भी, भद्रा = भद्रा संज्ञा, उपपद्यते = होती है।

हिन्दी-

प्रतिपदा षष्ठी एकादशी तिथियों की नन्दा संज्ञा तथा द्वितीया, सप्तमी तथा द्वादशी तिथियों की भद्रा संज्ञा होती है।

तृतीया चाष्टमी चैव जया च स्यात् त्रयोदशी।
चतुर्थी नवमी रिक्ता तथैव चतुर्दशी।।६८।।

अन्वय-

तृतीया च अष्टमी च एव त्रयोदशी जया स्यात् चतुर्थी नवमी चतुर्दशी तथैव रिक्ता।

मञ्जुमती व्याख्या-

तृतीया = तीज, अष्टमी = अष्टमी तिथि, त्रयोदशी = त्रयोदशी तिथि,

जया = जया संज्ञावाली, स्यात् = हो, चतुर्थी = चौथ, नवमी = नवमी तिथि, चतुर्दशी = चतुर्दशी तिथि, तथैव = उसी प्रकार, रिक्ता = रिक्ता संज्ञा वाली हो।

हिन्दी -

तीज, अष्टमी, त्रयोदशी तिथियाँ जया संज्ञावाली तथा चौथ, नवमी तथा चतुर्दशी तिथियाँ रिक्ता संज्ञावाली होती हैं।

पञ्चमी दशमी पूर्णा तथा पञ्चदशीति च।
तिथयोह्येषु वारेषु सिद्धार्थास्तत्रतच्छृणु।।६९।।

अन्वय-

पञ्चमी दशमी तथा पञ्चदशी इति च पूर्णा तिथयः हि एषु वारेषु सिद्धार्थाः तत् शृणु।

मञ्जुमती व्याख्या-

पञ्चमी = पञ्चमी तिथि, दशमी = दशमी तिथि, पञ्चदशी = पन्द्रहवीं तिथि, इति च = ये सब, पूर्णा = पूर्णा संज्ञावाली होती हैं, हि = क्योंकि, एषु वारेषु = जिन दिनों में, तिथयः = तिथियाँ, सिद्धार्थाः = सिद्ध अर्थवाली होती हैं, तत् = उन्हें, शृणु = सुनो।

हिन्दी-

पञ्चमी, दशमी, अमावस्या व पूर्णिमा पूर्णा संज्ञक तिथियाँ हैं। जिन दिनों में ये तिथियाँ सिद्ध अर्थवाली होती हैं, उन्हें सुनो।

नन्दा भृगौ सोमसुते च भद्रा भौमे जया सूर्यसुते च रिक्ता।
पूर्णा गुरौ पंचसु पंच एते जयावहाः सर्वफलप्रदाश्च।।७०।।

अन्वय-

भृगौ नन्दा सोमसुते च भद्रा भौमे जया सूर्यसुते रिक्ता गुरौ पूर्णा पञ्चसु एते पञ्च जयावहाः सर्वफलप्रदाः च।

मञ्जुमती व्याख्या-

भृगौ = शुक्रवार में, नन्दा = नन्दा संज्ञक तिथियाँ, सोमसुते = बुधवार में, भद्रा = भद्रा संज्ञावाली तिथियाँ, भौमे = मङ्गलवार में, जया = जया संज्ञावाली तिथियाँ, सूर्यसुते = शनिवार में, रिक्ता = रिक्ता संज्ञावाली तिथियाँ, गुरौ = गुरुवार में, पूर्णा = पूर्णा संज्ञावाली तिथियाँ, पञ्चसु = पाँचों में, एते पञ्च = ये पाँच, जयावहाः = जयवाली, सर्वफलप्रदाः = सब अच्छे फल देनेवाली हैं।

हिन्दी-

शुक्रवार को नन्दा, बुधवार को भद्रा, मङ्गलवार को जया, शनिवार को रिक्ता, गुरुवार को पूर्णा पाँचों में ये पाँच विजय और सम्पूर्ण फलों को देनेवाली होती हैं।

सर्व युग्मं छिद्र माहुस्तिथिज्ञाः
सामावस्या न द्वितीया दशम्यौ।
कुज श्रेष्ठं तत्रजाग्रं तृतीया,
सर्वारम्भा वर्जनीया नवम्याम्।।७१।।

अन्वय-तिथिज्ञाः सर्वयुग्मं छिद्रमाहुः सामावस्या द्वितीयादशम्यौ न (शोभनौ) कुजश्रेष्ठं तत्रजाग्रं तृतीया नवम्यां सर्वारम्भाः वर्जनीयाः।

मञ्जुमती व्याख्या-

तिथिज्ञा = तिथियों के ज्ञाता, सर्वयुग्मम् = सभी सम (जोड़ी) तिथियों को, छिद्रम्-सदोष, आहुः = कहते हैं, सामावस्या = वह अमावस्या तिथि, द्वितीया दशम्यौ = दूइज और दशमी तिथि, न = नहीं (शुभ), कुज श्रेष्ठम् = मङ्गलवार अच्छा तत्रजाग्रं तृतीया = उसमें प्रथम तृतीया तिथि हो, नवम्याम् = नवमी तिथि में, सर्वारम्भाः = सब प्रकार के कार्यों का आरम्भ, वर्जनीयाः = वर्जित करे।

हिन्दी-

सम अर्थात् युग्म तिथियों को तिथियों के ज्ञानी ज्योतिषी लोग दोषयुक्त कहते हैं, अमावस्या, द्वितीया और दशमी शुभ नहीं हैं, यदि तृतीया को मङ्गलवार हो तो वह शुभ होती है। नवमी तिथि सभी कार्यों में त्याज्य है।

नन्दायां भक्ष्यभोज्यानि भूषणानि वरस्त्रियः।
आनन्दं चैव कुर्वीत मनः प्रियतमानि च।।७२।।

अन्वय-

नन्दायां भक्ष्यभोज्यानि भूषणानि वरस्त्रियः आनन्दम् च एव मनः प्रियतमानि च कुर्वीत।

मञ्जुमती व्याख्या-

नन्दायाम् = नन्दा अर्थात् प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी तिथि में, भक्ष्यभोज्यानि = खाने-पीने की वस्तुओं को, भूषणानि = गहनों को, वरस्त्रियः = श्रेष्ठ अंगनाओं को, आनन्दम् = प्रसन्नता को, मनः प्रियतमानि च = मन को परमप्रिय लगनेवाले कार्यों को, कुर्वीत् = करना चाहिए।

हिन्दी-

नन्दा अर्थात् प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी तिथियों में खाना, पीना, गहना, सुन्दर स्त्रियाँ आनन्द और मन को प्रिय लगनेवाला कार्य करें।

भद्रायां भद्रकार्याणि यानि योग्यासनानि च।
स्वस्तिवाचन कर्माणि कारयेदारभेत च।।७३।।

अन्वय-

भद्रायां भद्रकार्याणि यानि योग्यासनानि च स्वस्तिवाचन कर्माणि कारयेत् आरभेत् च।

मञ्जुमती व्याख्या-

भद्रायाम् = भद्रातिथियों अर्थात् द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथि में, भद्रकार्याणि = सुन्दर कार्य, यानि च = और जो, योग्यासनानि = उचित आसन अर्थात् पद ग्रहण, स्वस्तिवाचन कर्माणि = स्वस्तिवाचन और माङ्गलिक कार्य, कारयेत् = कराये, आरभेत् च = और आरम्भ करे।

हिन्दी-

भद्रा तिथियों अर्थात् द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी में मङ्गल कार्य पद ग्रहण मांगलिक पाठ करना और कराना चाहिए।

जयायां योजयेत्सेनां वणिजः क्षिप्रकारिणः।
पण्यविक्रयणं कुर्युः शस्त्रकर्म च कारयेत्।।७४।।

अन्वय-

जयायाम् सेनां योजयेत् क्षिप्रकारिणः वणिजः पण्यविक्रयणं कुर्युः शस्त्र कर्म च कारयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

जयायाम् = जया तिथियों में अर्थात् तीज, अष्टमी और त्रयोदशी में, सेनाम् = सेना को, योजयेत् = संगठित करे, आक्रमण में लगाये, क्षिप्रकारिण = शीघ्रता करनेवाले, वणिजः = व्यापारी वर्ग, पण्यविक्रयणम् = बेचनेवाली वस्तुओं का विक्रय, कुर्युः = करें, शस्त्र कर्म च = शस्त्रों का निर्माण सञ्चालन कर्म, कारयेत् = करें, करायें।

हिन्दी-

जया तिथियों अर्थात् तीज, अष्टमी और त्रयोदशी में सेना का संगणन और सञ्चालन करे, शीघ्रकारी व्यापारी बेचने वाली वस्तुओं को बेचें तथा शस्त्रों का निर्माण प्रयोग किया जाय।

रिक्तायां वर्जयेन्नित्यं तिथौ तिथि विचक्षणः।
ध्रुवाणि सर्वकार्याणि स्थावराणि चराणि च।।७५।।

अन्वय-

तिथि विचक्षणः रिक्तायां तिथौ ध्रुवाणि स्थावराणि चराणि च सर्व कार्याणि नित्यं वर्जयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

तिथि विचक्षणः = तिथियों के जानकार, रिक्तायां तिथौ = रिक्ता अर्थात् चौथ, नवमी और चतुर्दशी तिथियों में, ध्रुवाणि = नियत, स्थावराणि = स्थिर, चराणि = अस्थिर, सर्वकार्याणि = सभी काम, नित्यम् = हमेशा, वर्जयेत् = न करे।

हिन्दी-

तिथियों को जाननेवाला, रिक्ता अर्थात् चौथ, नवमी और चतुर्दशी तिथियों में निश्चय ही सभी स्थिर अथवा अस्थिर कार्य सर्वदा कथमपि न करे।

पूर्णायां सेतुबन्धांश्च कोष्ठान् कोशांश्च कारयेत्।
वाहनानि च पोषे च रथयानानि कारयेत्।।७६।।

अन्वय-

पूर्णायाम् सेतुबन्धान् च कोष्ठान् कोशान् च वाहनानि पोषे च रथयानानि कारयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

पूर्णायाम् = पूर्णा अर्थात् पञ्चमी, दशमी और पूर्णमासी (अमावस्या) तिथियों में, सेतुबन्धान् = पुल बाँधना, च = और, कोष्ठान् = घर, कोशान् = कोशगृह, वाहनानि = सवारी, पोषे च = पोषण करने में, रथयानानि = रथ, मोटर गाड़ी, कारयेत् = करे।

हिन्दी-

पूर्णा तिथियों में अर्थात् पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा या अमावस्या तिथियों में पुल बाँधना, घर और कोषागार का निर्माण और पोषण तथा वाहन और रथ सवारी का निर्माण और खरीददारी करें।

एवमेवत्रिरभ्यस्तं पक्षेण परिवर्जयेत् ।
ज्योतिःशास्त्र प्रयुक्तानां कर्मणां फलदं भवेत्।।७७।।

अन्वय-

एवमेव ज्योतिःशास्त्र प्रयुक्तानां कर्मणाम् त्रिरभ्यस्तं पक्षेण परिवर्जयेत् (ततः) फलदं भवेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

एवमेव = इस प्रकार, ज्योतिःशास्त्र प्रयुक्तानाम् = ज्योतिषशास्त्र में प्रयुक्त, कर्मणाम् = कार्यों का, त्रिरभ्यस्तम् = तीन से अभ्यस्त, पक्षेण = एक पक्ष में, वर्जयेत् = न करे, ततः = तब, फलदम् = फल देनेवाला, भवेत् = हो।

हिन्दी-

इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र में प्रयुक्त कार्यों में तीन से अभ्यस्त अर्थात् एक पक्ष में तीन कार्य नहीं करना चाहिए।

ऋतुक्षये चन्द्रमसः च पक्षक्षये ज्योतिषि संग्रहे च।
नक्षत्रवर्गेषु विगर्हितेषु यात्राविधानं न वदन्ति तज्ज्ञाः।।७८।।

अन्वय-

ऋतुक्षये चन्द्रमसः (क्षये) च पक्षक्षये ज्योतिषि संग्रहे च नक्षत्रवर्गेषु विगर्हितेषु च तज्ज्ञाः यात्राविधानं न वदन्ति।

मञ्जुमती व्याख्या-

ऋतुक्षये = ऋतुओं के क्षय में, चन्द्रमसः = चन्द्रमा के क्षय में, पक्षक्षये = पक्ष के क्षय में, ज्योतिषि संग्रहे च = ग्रहों के इकट्ठा होने पर, और, नक्षत्रवर्गेषु = नक्षत्र वर्ग के, विगर्हितेषु = निन्दित होने पर, तज्ज्ञाः = ज्योतिष विद्या के विद्वान्, यात्राविधानम् = यात्रा के विधान को, न = नहीं, वदन्ति = बतलाते हैं।

हिन्दी-

ऋतुक्षय, चन्द्रमा के क्षय तथा पक्षक्षय और कई ग्रहों के एक राशि में एकत्रित होने पर और निन्दित नक्षत्रों में ज्योतिष विद्या के विद्वान् यात्रा विधान नहीं बतलाते हैं।

पक्षक्षयस्तु यः प्रोक्तः कियन्तं कालमादिशेत्।
एकादश्यां व्यतीतायां विज्ञेयः पक्ष संक्षयः।।७९।।

अन्वय-

यः पक्ष क्षयः प्रोक्तः (सः) कियन्तम् कालम् आदिशेत्? एकादश्याम् व्यतीतायाम् पक्ष संक्षयः विज्ञेयः।

मञ्जुमती व्याख्या-

यः = जो, पक्षक्षयः = पक्षक्षय, प्रोक्तः = कहा गया है, (वह) कियन्तम् = कितने, कालम् = समय तक, आदिशेत् = कहना चाहिए? एकादश्याम् = एकादशी के, व्यतीतायाम् = बीतने पर, पक्षसंक्षयः = पक्षक्षय, विज्ञेयः = जाने।

हिन्दी-

जो पक्षक्षय कहा जा चुका है वह कितने समय से कहा जाय ? तो एकादशी के बीतने पर पक्षक्षय समझे।

सन्दर्भ- ग्रहों के अस्त होने पर फलाफल

शुक्रो धनक्षयं कुर्याद् बुद्धिमोहं बृहस्पतिः।
लोहिताङ्गो महाव्याधिं कुर्याच्चैव न संशयः।।८०।।

अन्वय-

शुक्रः धनक्षयम्, बृहस्पतिः बुद्धिमोहम् कुर्यात् लोहिताङ्गः महाव्याधिम् च एव कुर्यात् न संशयः।

मञ्जुमती व्याख्या-

शुक्रः = शुक्र, धनक्षयम् = धननाश, बृहस्पतिः = गुरु, बुद्धिमोहम् = मतिभ्रम, कुर्यात् = करे, लोहिताङ्गः = मङ्गल, महाव्याधिम् = महारोग, च एव कुर्यात् = करें, न संशयः = इसमें सन्देह नहीं।

हिन्दी-

शुक्रास्त में शुभ कार्य करने से धननाश, बृहस्पति के अस्त होने पर शुभ कार्य करने से मतिभ्रम, मङ्गल के अस्त होने पर शुभ कार्य करने से महारोग होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

बंधुपक्षक्षयं सूर्यो भयं सोमस्तथैव च।
आत्मरक्षांतु नक्षत्रं तिथिः स्यादर्थ साधकी।।८१।।

अन्वय-

सूर्यः बंधुपक्षक्षयम् तथैव च सोमः भयम्, नक्षत्रम् आत्मरक्षां तु, तिथिः अर्थसाधकी स्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या-

सूर्यः = सूर्य, बंधुपक्षक्षयम् = बन्धुपक्ष का क्षय, सोमः = चन्द्रमा, भयम् = भय, नक्षत्रम् = नक्षत्र, आत्मरक्षम् = आत्मरक्षा, तु = तो, तिथिः = तिथि, अर्थसाधकी = अर्थसाधन करनेवाली स्यात् = हो।

हिन्दी-

सूर्यास्त अर्थात् सन्ध्या समय शुभ कार्य करने से बंधु पक्षक्षय, चन्द्रमा के अस्त होने पर भय होता है, नक्षत्र आत्मरक्षा और तिथि कार्य को सम्पन्न करनेवाली है।

करणे कार्यनिष्पत्तिः मुहूर्ते लाभमादिशेत्।
चतुर्भिः कारयेत् कर्म सिद्धि हेतोर्विचक्षणः।।८२।।

अन्वय-

करणे कार्यनिष्पत्तिः मुहूर्ते लाभम् आदिशेत् विचक्षणः सिद्धि हेतोः चतुर्भिः कर्म कारयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

करणे = शुभकरण में, कार्यनिष्पत्तिः = कार्य की सम्पन्नता, मुहूर्ते = शुभ मुहूर्त में, लाभम् = लाभ, आदिशेत् = कहें, विचक्षणः = विद्वान् ज्योतिषी, सिद्धिहेतोः = सफलता के निमित्त, चतुर्भिः = चार अर्थात् नक्षत्र, तिथि, करण और मुहूर्त इन चारों द्वारा, कर्म = शुभ कार्य, कारयेत् = करे, कराये।

हिन्दी-

शुभ करण में कार्य आरम्भ करने से सिद्धि होती है और शुभ मुहूर्त में कार्य करने से लाभ होता है, बुद्धिमान् ज्योतिषी करण, तिथि, नक्षत्र और मुहूर्त चारों को देखकर कार्य करे और कराये।

तिथि नक्षत्रकरणं मुहूर्तो नेति नित्यशः।
नक्षत्रस्य हि दूरत्वात्त्रिभिः कर्म समारभेत्।।८३।।

अन्वय-

तिथि नक्षत्र करणं मुहूर्तो नित्यशः न इति नक्षत्रस्य दूरत्वात् हि त्रिभिः कर्म समारभेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

तिथिनक्षत्रकरणम् = तिथि नक्षत्र और करण, मुहूर्तः = लग्न, नित्यशः = हमेशा, न = नहीं मिलते, इति = इसलिए, नक्षत्रस्य = नक्षत्र के, दूरत्वात् = दूर होने से, त्रिभिः = तीन से अर्थात् तिथि, नक्षत्र और करण द्वारा, कर्म = शुभ कार्य, समारभेत् = आरम्भ करे।

हिन्दी-

तिथि, नक्षत्र, करण और लग्न हमेशा शुभ नहीं मिलते, नक्षत्र के दूर होने पर तीन अर्थात् तिथि, करण और मुहूर्त को शुभ देखकर शुभ कार्य करें।

नक्षत्रेण करणेन मुहूर्तेनेति नित्यशः।
नक्षत्रस्य च दूरत्वाद् द्वाभ्यां कर्म समारभेत्।।८५।।

अन्वय-

नक्षत्रेण करणेन मुहूर्तेन न इति नित्यक्षः, नक्षत्रस्य च दूरत्वात् द्वाभ्याम् कर्म समारभेत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

नक्षत्रेण = नक्षत्र से, करणेन = करण से, मुहूर्तेन = मुहूर्त से, न = नहीं, नित्यशः = हमेशा, नक्षत्रस्य = नक्षत्र के, दूरत्वात् = दूर होने के कारण, द्वाभ्याम् = दो से, कर्म = शुभ कार्य, समारभेत् = आरम्भ करे।

हिन्दी-

नक्षत्र, करण और मुहूर्त हमेशा शुभ नहीं मिलते, नक्षत्र दूर होने के कारण दो अर्थात् करण और मुहूर्त जब शुभ हों तो भी शुभ कार्य आरम्भ करे।

करणेन मुहूर्तेन त्वरमाणस्तु बुद्धिमान्।
करणस्याति दूरत्वान्मुहूर्तेनैव कारयेत्।।८५।।

अन्वय-

करणेन मुहूर्तेन त्वरमाणः बुद्धिमान् करणस्य अति दूरत्वात् मुहूर्तेन एव कारयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

करणेन = करण से, मुहूर्तेन = मुहूर्त से, त्वरमाणः = शीघ्रतावाला, बुद्धिमान् = ज्ञानी व्यक्ति, करणस्य = करण के, अति दूरत्वात् = दूर पड़ने के कारण, मुहूर्तेन = मुहूर्त से ही, कारयेत् = शुभ कार्य करे-कराये।

हिन्दी-

करण-मुहूर्त द्वारा कार्य के लिए शीघ्रतावाला बुद्धिमान् करण के अति दूर पड़ने के कारण शुभ मुहूर्त में शुभ कार्य प्रारम्भ करे।

मुहूर्तेन कृतं कर्म सिद्ध्यते नात्र संशयः।
दूरस्थस्य मुहूर्तस्य क्रिया च त्वरिता यदि।।८६।।

अन्वय-

मुहूर्तेन कृतं कर्म सिद्ध्यते अत्र संशयः न दूरस्थस्य मुहूर्तस्य यदि क्रिया च त्वरिता।

मञ्जुमती व्याख्या-

मुहूर्तेन = शुभ मुहूर्त द्वारा, कृतम् = किया गया, कर्म = कार्य, सिद्ध्यते = सम्पन्न होता है, अत्र = इसमें, संशयः = सन्देह, न = नहीं, दूरस्थस्य = लम्बे समय स्थित, मुहूर्तस्य = मुहूर्त के, यदि = अगर, क्रिया = कार्य, च = तथा, त्वरिता = शीघ्र (हो)।

हिन्दी-

शुभ मुहूर्त में किया गया कार्य सम्पन्न होता है-इसमें सन्देह नहीं, यदि मुहूर्त अधिक समय आगे हो और कार्य शीघ्र करना हो तो –

द्विजपुण्याहघोषेण कृतं स्यात्सर्व साम्पदम्।
नक्षत्रस्य मुहूर्तस्य तिथेश्च करणस्य च।।८७।।

अन्वय-

द्विज पुण्याह घोषेण नक्षत्रस्य मुहूर्तस्यतिथेः च करणस्य च सर्वसाम्पदं कृतं स्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या-

द्विज पुण्याह घोषेण = ब्राह्मणों द्वारा पुण्याह वाचन से, नक्षत्रस्य = नक्षत्र का, मुहूर्तस्य = मुहूर्त का, तिथेः = तिथि का, करणस्य = करण का, सर्वसाम्पदम् = सर्वसम्पत्ति कारक, कृतम् = कर्म, स्यात् = हो।

हिन्दी-

ब्राह्मणों द्वारा पुण्याह वाचन कराकर जो कार्य किया जाय, उसमें नक्षत्र, मुहूर्त, तिथि और करण का शुभ गुण स्वयं प्राप्त हो जाता है, और वह सर्वसम्पत्ति कारक होता है।

चतुर्विधस्य ज्ञानस्य शकुनो दण्डनायकः।
शकुनः पवनश्चैव मनः परजनस्तु वा।।
यस्यैतान्यनुकूलानि सिद्धिरेव न संशयः।
न तत्र बलवती तारा यत्रेन्दुर्बलवत्तरः।।८८।।

अन्वय-

चतुर्विधस्य ज्ञानस्य शकुनः दण्डनायकः शकुनः पवनः च मनः परिजनः तु वा यस्य एतानि अनुकूलानि सिद्धिः एव संशयः न तत्र बलवती तारा न यत्र इन्दुः बलवत्तरः।

मञ्जुमती व्याख्या-

चतुर्विधस्य = चार प्रकार के, ज्ञानस्य = ज्ञान का अर्थात् तिथि, नक्षत्र, करण, मुहूर्त के ज्ञान का, शकुनः = सगुन, दण्डनायकः = प्रशासक (है), शकुनः = सगुन, पवनः = स्वर, मनः = चित्त, परिजनः = कुटुम्बी जन, यस्य = जिसके, एतानि = इतने, अनुकूलानि = अनुकूल हों, (उसकी) सिद्धिः = कार्य सफलता, न संशयः = सन्देह नहीं, यत्र = जहाँ, इन्दुः = चन्द्रमा, बलवत्तरः = बलवान् हो, तत्र = वहाँ, बलवती = बलवान्, तारा = तारा, न = नहीं आवश्यक है।

हिन्दी-

चार प्रकार का ज्ञान अर्थात् तिथि, नक्षत्र, करण, मुहूर्त को ज्ञान का नियामक शकुन होता है, शकुन, स्वर, मन की प्रसन्नता और परिवारी जनों का सहयोग। किसी भी यात्रा आदि शुभ कार्य के लिए अनुकूल हो तो सिद्धि होगी इसमें सन्देह नहीं। जब चन्द्रमा बलवान् हो तब तारा के बलवान् होने की आवश्यकता नहीं होती।

नहि भर्तृस्थिता नारी क्वचित् स्वातन्त्र्यमर्हति।
न कृष्णपक्षे शशिनः प्रभावस्तारा बलं तत्र विचार्यदेयम्।।८९।।

अन्वय-

भर्तृस्थिता नारी क्वचित् स्वातन्त्र्यम् न अर्हति कृष्णपक्षे शशिनः प्रभावः न तत्र विचार्य ताराबलं देयम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

भर्तृस्थिता = पति के अधीन, नारी = स्त्री, क्वचित् = कहीं भी, स्वातन्त्र्यम् = स्वतन्त्रता, न = नहीं, अर्हति = योग्य होती है, कृष्णपक्षे = कृष्ण पक्ष में, शशिनः = चन्द्रमा का, प्रभावः = असर, न = नहीं होता, तत्र = कृष्ण पक्ष में, विचार्य = विचारकर, ताराबलम् = ताराबल, देयम् = देना चाहिए।

हिन्दी-

जैसे पति के अधीन स्त्री कहीं भी स्वतन्त्र नहीं होती, कृष्ण पक्ष में उसी प्रकार चन्द्रमा का कोई प्रभाव नहीं होता। अतः कृष्ण पक्ष में विचारकर तारा बल देना चाहिए।

विदेश जाते विकले चपत्यौ सर्वाणि कार्याणि करोति पत्नी।
तिथिरेक गुणा प्रोक्ता नक्षत्रं च चतुर्गुणम्।।९०।।

अन्वय-

पत्यौ विदेशजाते विकले च पत्नी सर्वाणि कार्याणि करोति, एक गुणातिथिः चतुर्गुणम् नक्षत्रम् च प्रोक्तम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

पत्यौ = पति के, विदेश जाते = परदेश जाने पर, विकले च = बीमार या मृत होने पर, पत्नी = पत्नी, सर्वाणि = सम्पूर्ण, कार्याणि = कार्य, करोति = करती है, तिथिः = प्रतिपदा आदि तिथियाँ, एक गुणा = एक गुना (तथा) नक्षत्रम् = नक्षत्र, चतुर्गुणम् = चार गुना, प्रोक्तम् = कहे गये हैं।

हिन्दी-

जैसे पति के विदेश जाने पर या बीमार अथवा मर जाने पर पत्नी सभी कार्यों को करती है। उसी प्रकार चन्द्रमा के कृष्ण पक्ष में न रहने पर तिथि एक गुना तथा नक्षत्र चौगुना शुभदायी कहा गया है। अर्थात् तिथि का एक गुण और नक्षत्र का चार गुण मान्य होता है।

विशेष-कहा भी गया है-'शुक्ले चन्द्रबलं ग्राह्यम् कृष्णे ताराबलं तथा' अर्थात् शुक्ल पक्ष में चन्द्रबल और कृष्ण पक्ष में ताराबल ग्रहण करना चाहिए।

वारश्चाष्ट गुणः प्रोक्तः करणं षोडशान्वितम्।
द्वात्रिंशत् गुणयोगश्च ताराषष्टि समन्विता।।९१।।

अन्वय-

वारः च अष्टगुणः प्रोक्तः करणम् षोडशान्वितम् योगः द्वात्रिंशत् गुणः च तारा षष्टि समन्विता (भवति)।

मञ्जुमती व्याख्या-

वारः = दिन, अष्ट गुणः = आठ गुणवाला, प्रोक्तः = कहा गया है, करणम् = करण, षोडशान्वितम् = सोलह गुणयुक्त होता है, योगः = योग, द्वात्रिंशत गुणः च = बत्तीस गुणवाला, तथा तारा = तारा, षष्टि समन्विता = साठ गुणवाली होती है।

हिन्दी-

वार (दिन) का आठ गुना फल, करण का सोलह गुना फल, योग का बत्तीस गुना फल, तारा का साठ गुना फल होता है।

चन्द्रः शतगुणः प्रोक्तस्तस्माच्चन्द्र बलाबलम्।
समीक्ष्य चन्द्रस्य बलाबलानि ग्रहाः प्रयच्छन्ति शुभाशुभानि।
मनः समेतानि यथेन्द्रियाणि कर्माण्यथा यान्ति न केवलानि।।९२।।

अन्वय-

चन्द्रः शतगुणः प्रोक्तः तस्मात् चन्द्र बलाबलम् समीक्ष्य चन्द्रस्य बलाबलानि ग्रहाः शुभाशुभानि प्रयच्छन्ति यथा मनः समेतानि इन्द्रियाणि कर्माणि यान्ति यथा केवलानि न (यान्ति)।

मञ्जुमती व्याख्या -

चन्द्रः = चन्द्रमा, शतगुणः = सौ गुना, प्रोक्तः = कहा गया है, तस्मात् = इस कारण, चन्द्रबलम् = चन्द्रमा के बल को, समीक्ष्य = अच्छी तरह विचारकर, चन्द्रस्य बलाबलनिग्रहाः = चन्द्रमा के बल और निर्बलत्व के नियामक तत्त्व,

शुभाशुभानि = शुभ और अशुभ, प्रयच्छन्ति = प्रदान करते हैं, यथा = जैसे मनः समेतानि = मनसहित, इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ, कर्माणि = अपने-अपने विषयों को, यान्ति = प्राप्त करती हैं, केवलानि = मनरहित इन्द्रियाँ, न = नहीं।

हिन्दी-

मुहूर्त में चन्द्रमा का फल सौ गुना होता है, इसलिए चन्द्रमा का बलाबल अवश्य देखना चाहिए क्योंकि अन्य ग्रह भी चन्द्रमा के बलाबल के अनुसार ही शुभ या अशुभ फल देते हैं। जिस प्रकार दशों इन्द्रियाँ मन से युक्त होकर ही कार्य अर्थात् अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त होती हैं, केवल इन्द्रियाँ कभी भी अपने विषयों में प्रवृत्त नहीं होतीं इसी प्रकार ग्रहों में चन्द्रमा को मन कहा गया है। अतः चन्द्रमा के बिना दूसरे ग्रह कुछ भी फल नहीं देते।

सन्दर्भ- वारों के अनुसार कार्यों का निरूपण

आदित्यः सोमोभौमश्च तथा बुधबृहस्पतिः।
भार्गवः शनैश्चरश्चैव एते सप्तदिनाधिपाः।।९३।।

अन्वय-

आदित्यः सोमः भौमः च तथा बुध बृहस्पतिः भार्गवः शनैश्चरः च एव सप्त दिनाधिपाः (सन्ति)।

मञ्जुमती व्याख्या-

आदित्यः = सूर्य, सोमः = चन्द्र, भौमः = मङ्गल, च तथा = और, बुधः = बुध, बृहस्पतिः = गुरु, भार्गवः = शुक्र, शनैश्चरः = शनि, च एव = और ही, सप्त दिनाधिपा = सात दिन के स्वामी (हैं)।

हिन्दी-

सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि ये सात दिन के स्वामी हैं।

नृपाभिषेकं नृपतिप्रयाणं नृपस्य कार्यं नृपदर्शनं च।
यच्चाग्नि कार्यं भुवि किञ्चिदुक्तं तत्सर्वमादित्य दिने प्रशस्तम्।।९४।।

अन्वय-

नृपाभिषेकं नृपतिप्रयाणं नृपस्य कार्यम् नृपदर्शनम् च यत् च अग्निकार्यम् भुवि किञ्चित् उक्तम् तत्सर्वम् आदित्यदिने प्रशस्तम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

नृपाभिषेकम् = राज्य का अभिषेक, नृपतिप्रमाणम् = राजा की यात्रा, नृपस्य कार्यम् = राजा का कार्य, नृपदर्शनम् = राजा का दर्शन, यत् च = और जो, भुवि = पृथिवी पर, किञ्चित् = कोई भी, अग्निकार्यम् = अग्नि सम्बन्धी कार्य, उक्तम् =

कहा गया है, तत्सर्वम् = वह सब, आदित्यदिने = रविवार में, प्रशस्तम् = अच्छा होता है।

हिन्दी-

राजा का अभिषेक, राजा की यात्रा, राजा का कार्य, राजा का दर्शन और जो भी पृथिवी पर हवन आदि अग्निकार्य कहा गया है वह सब रविवार में शुभ होता है।

पानं रसानां मधुसोमपानं सौभाग्यकर्माण्यनुलेपनानि।
क्षेत्रेऽथबीजानिवपेत वृक्षान् सोमस्य कुर्याद्दिवसेविधिज्ञः।।९५।।

अन्वय-

विधिज्ञः सोमस्यदिवसे रसानां पानं मधुसोमपानम् सौभाग्यकर्माणि अनुलेपनानि अथ क्षेत्रे बीजानि वृक्षान् वपेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

विधिज्ञः = विधि के ज्ञाता, सोमस्य दिवसे = सोमवार के दिन, रसानां पानम् = रसों का पान, मधुसोमपानम् = मधु और सोम का पान; सौभाग्यकर्माणि = शृङ्गार की वस्तुओं का धारण, अनुलेपनानि = उपटन लगाना, क्षेत्रे = खेत में, बीजानि = बीज डालना, वृक्षान् = पेड़ लगाना, वपेत = रोपे।

हिन्दी-

विधि को जाननेवाला विद्वान् सोमवार में रसपान, मधु और सोमपान, शृङ्गारिक वस्तुओं का धारण, उबटन आदि का लेपन, खेतों में बीज वपन, वृक्षारोपण करे।

भेदाभिघातो नगरे पुरे वा सेनापतित्वं च तथैव राज्ये।
व्यायामशस्त्राभ्यसनं च चौर्यं भूमेः सुतस्याह्नि सदा प्रशस्तम्।।९६।।

अन्वय-

भूमेः सुतस्याह्नि नगरे पुरे वा भेदाभिघातः तथैव च राज्ये सेनापतित्वम् व्यायाम शस्त्राभ्यसनम् च चौर्यम् सदा प्रशस्तम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

भूमेः सूतस्याह्नि = मङ्गलवार में, नगरे = नगर में, पुरे वा = पुर में, भेदाभिघातः = भेदनीति द्वारा प्रहार, तथैव च = वैसे ही, राज्ये = राज्य में, सेनापतित्वम् = सेनापति पद पर नियुक्ति, व्यायामशस्त्राभ्यसनम् = व्यायाम और शस्त्र सञ्चालन का अभ्यास, चौर्यम् = चोरी का कार्य, सदा प्रशस्तम् = सर्वदा शुभ है।

हिन्दी-

मङ्गलवार में नगर या पुर में भेदनीति द्वारा प्रहार उसी प्रकार राज्य में सेनापति

पद पर नियुक्ति, व्यायाम शस्त्र सञ्चालन, चोरी का कार्य सर्वदा प्रशस्त होता है।

द्यूत प्रवेशोरणकारणार्थं कन्याप्रियार्थं रिपुसन्धिकार्यम्।
भिन्नेऽथमैत्रे प्रतिसंधिकार्यं क्षिप्रं प्रशंसन्ति दिने बुधस्य।।९७।।

अन्वय-

बुधस्य दिने द्यूतप्रवेशः रणकारणार्थम् कन्या प्रियार्थम् रिपुसन्धिकार्यम् अथ भिन्ने मैत्रे प्रतिसन्धिकार्यम् क्षिप्रं प्रशंसन्ति।

मञ्जुमती व्याख्या-

बुधस्य दिने = बुधवार में, द्यूतप्रवेशः = जूआ खेलने का आरम्भ, रणकारणार्थम् = युद्ध करने के लिए, कन्याप्रियार्थम् = कन्या के विवाह के लिए, रिपुसन्धिकार्यम् = शत्रु से सन्धि कार्य, अथ = और, मैत्रे भिन्ने = मित्रता के टूटने पर, प्रतिसन्धि कार्यम् = पुनः मेल–मिलाप, क्षिप्रम् = शीघ्र, प्रशंसन्ति = प्रशंसा करते हैं।

हिन्दी-

बुधवार में जूआ खेलना, युद्ध करना, कन्या के विवाह आदि प्रिय कार्य का करना, शत्रु एवं रूठे मित्र के साथ पुनः सन्धि करना शुभ होता है।

स्वाध्यायदेवार्चनवेश्मकार्यं संस्कारदीक्षां च तथायतीनाम्।
वस्त्राणिदाराप्रियभूषणानि कुर्यात् कृषिं देवगुरोर्दिने च।।९८।।

अन्वय-देवगुरोः दिने स्वाध्यायदेवार्चनवेश्मकार्यम् यतीनां संस्कारदीक्षाम् च वस्त्राणि दाराप्रियभूषणानि कृषिम् च कुर्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या-

देवगुरोः = बृहस्पति के, दिने = दिन में, स्वाध्याय देवार्चनवेश्म कार्यम् = अध्ययन का आरम्भ, देवपूजन, गृह निर्माण, यतीनाम् = महात्माओं का, संस्कारदीक्षाम् = संस्कार तथा मन्त्र ग्रहण करना, वस्त्राणि = वस्त्र धारण करना, दाराप्रियभूषणानि = औरतों के प्रिय गहनों को खरीदना, कृषिम् च = और खेती करना, कुर्यात् = किया जाय।

हिन्दी-

गुरुवार में अध्ययन आरम्भ, देव पूजन, गृह निर्माण, महात्माओं का दीक्षा संस्कार, वस्त्र और अंगनाओं का भूषण तथा कृषि कार्य करना उत्तम है।

अश्वप्रवाहं प्रथमं प्रशस्तं योगप्ररोहो गजरोहणं च।
कन्याप्रदानं क्रयविक्रयौ च तेषां सदा शुक्रदिने प्रशस्तम्।।९९।।

अन्वय-

शुक्र दिने प्रथमम् अश्वप्रवाहम् योगप्ररोहः गजरोहणम् च प्रशस्तम् कन्याप्रदानम् क्रयविक्रयौ च तेषाम् सदा प्रशस्तम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

शुक्रदिने = शुक्रवार में, प्रथमम् = पहले पहल, अश्व प्रवाहम् = घोड़सवारी, योगप्ररोहः = योगारूढ़ होना, गजरोहणम् च = हाथी पर चढ़ना, कन्या प्रदानम् = कन्यादान करना, क्रय विक्रयौ च = खरीदना और बेचना, तेषाम् = उनका, सदा = हमेशा, प्रशस्तम् = अच्छा है।

हिन्दी-

शुक्रवार में प्रथम अश्वारोहण, योगारूढ़ होना, गजारोहण शुभ है, कन्यादान, खरीद-बेचें, उनके लिए सदा अच्छा होता है।

स्थाप्यं च कर्म ऋतुभिश्च यूपो गृहप्रवेशो गजबन्धनं च।
ग्रामेऽथवासो नगरे पुरे वा शनैश्चरे सर्वमिदं प्रशस्तम्।।१००।।

अन्वय-

शनैश्चरे ऋतुभिः स्थाप्यं कर्म यूपः गृह प्रवेशः गजबन्धनम् च अथ ग्रामे नगरे पुरे वा वासः इदम् सर्वम् प्रशस्तम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

शनैश्चरे = शनिवार में, ऋतुभिः = ऋतुओं द्वारा, स्थाप्यम् = स्थापित योग्य, कर्म = कार्य, यूपः = स्तम्भस्थापन, गृहप्रवेशः = गृहप्रवेश, गजबन्धनम् = हाथी बाँधना, च अथ = और, ग्रामे = गाँव में, नगरे = नगर में, पुरे = पुर में, वा = अथवा, वासः = निवास, इदम् सर्वम् = यह सब, प्रशस्तम् = शुभ है।

हिन्दी-

शनिवार में ऋतुओं के अनुकूल स्थापना करना, खम्भे आदि गड़वाना, गृह प्रवेश, हाथी बाँधना, गाँव, नगर, पुर में निवास करना यह सब शुभ है।

आत्म कर्म गुणं श्रेष्ठं पुरुषं पुरुषं प्रति।
अल्प ग्रन्थं महार्थं च प्रवक्ष्यामि भृगोर्मतम्।।१०१।।

अन्वय-

पुरुषं पुरुषं प्रति आत्मकर्म गुणं श्रेष्ठम् अल्पग्रन्थम् महार्थम् च भृगोः मतम् प्रवक्ष्यामि।

मञ्जुमती व्याख्या-

पुरुषम् पुरुषम् प्रति = प्रत्येक पुरुष के, आत्मकर्म = अपने कार्य, गुणम् = गुण, श्रेष्ठम् = श्रेष्ठ को, अल्पग्रन्थम् = छोटे ग्रन्थ, महार्थम् च = महान् अर्थ को, भृगोः = भृगु के, मतम् = मत को, प्रवक्ष्यामि = कहता हूँ।

हिन्दी-

प्रत्येक मनुष्य के शुभ कर्म एवम् गुणों का वर्णन इस छोटे से ग्रन्थ में जो कि महान् अर्थवाला है, कहा जा रहा है-यह महर्षि भृगु जी का मत है।

सन्दर्भ- नक्षत्रों की संज्ञा तथा वर्गीकरण

पृथक् पुरुषविज्ञेयं नक्षत्राणां शुभाशुभम्।
आत्म सम्पत् करं ज्ञेयमात्मानमृद्धिमिच्छताम्।।१०२।।

अन्वय-

नक्षत्राणां शुभाशुभम् पृथक् पुरुषविज्ञेयम् आत्मसम्पत्करम् ज्ञेयम् आत्मानम् ऋद्धिमिच्छताम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

नक्षत्राणाम् = नक्षत्रों का, शुभाशुभम् = शुभ और अशुभ, पृथक् = अलग-अलग, विज्ञेयम् = जानना चाहिए, आत्मसम्पत्करम् = अपनी उन्नति करनेवाला, ज्ञेयम् = जाने, आत्मानम् = अपने आपको, ऋद्धिम् = समृद्ध, इच्छताम् = चाहनेवाले।

हिन्दी-

प्रत्येक नक्षत्र का शुभ और अशुभ फल जानकर कार्य आरम्भ करने से लाभ होता है। अतः जो अपनी उन्नति चाहें, उन्हें उचित है कि अपने को समृद्ध बनानेवाले नक्षत्रों का ज्ञान अवश्य कर लें।

नवानां त्रिक् वर्णानामाधाने जन्मकर्मणि।
अधमोत्तमवर्गेषु संवदन्तीह भागशः।।१०३।।

अन्वय-

इह आधाने जन्मकर्मणि अधमोत्तमवर्गेषु नवानां त्रिक् वर्णानाम् भागशः संवदन्ति।

मञ्जुमती व्याख्या-

इह = नक्षत्रों के विषय में, आधाने = गर्भाधान में, जन्मकर्मणि = जन्म और कर्म में, अधमोत्तमवर्गेषु = अधम, मध्यम, उत्तम वर्गों में, नवानाम् = नव का, त्रिक्वर्णानाम् = तीन-तीन वर्णों का, भागः = अलग-अलग, संवदन्ति = समानता है।

हिन्दी-

सत्ताईस नक्षत्रों का वर्गीकरण उत्तम, मध्यम एवं अधमादि वर्गों के अनुसार किया जा रहा है, ये ही नक्षत्र गर्भाधान जन्म आदि कर्मों के समय देखना चाहिए।

जन्मसंपद्विपत्क्षेम्यः प्रत्वरः साधकस्तथा।
नैधनो मित्र वर्गश्च परमो मैत्रएव तु ।।१०४।।

अन्वय-

जन्म संपत् विपत् क्षेम्यः प्रत्वरः तथा साधकः नैधनः मित्रवर्गश्च परमः मैत्र एव तु।

मञ्जुमती व्याख्या-

जन्म = जन्म, संपत् = संपत्, विपत् = विपत्, क्षेम्यः = क्षेम्य, प्रत्वरः = प्रत्वर, तथा = और, साधकः = साधक, नैधनः = नैधन, मित्र वर्गश्च = मित्र वर्ग, परमः मैत्रः = परम मैत्र, एव तु = ही।

हिन्दी-

नक्षत्रों की संज्ञा का विभाजन जन्म, संपत्कर, विपत्कर, क्षेम्य, प्रत्वर, साधक, नैधन, मित्र और परम मैत्र है।

दशमं जन्म नक्षत्रात् कर्म नक्षत्रमुच्यते।
एकोनविंशतिचैव गर्भाधानकमुच्यते।।१०५।।

अन्वय-

जन्मनक्षत्रात् दशमं नक्षत्रम् कर्म उच्यते, एकोनविंशतिः च एव गर्भाधानकम् उच्यते।

मञ्जुमती व्याख्या-

जन्मनक्षत्रात् = जन्म नक्षत्र से, दशमं नक्षत्रम् = दसवाँ नक्षत्र, कर्म = कर्म, उच्यते = कहा जाता है, एकोनविंशतिः च एव = उन्नीसवाँ नक्षत्र, गर्भाधानकम् = गर्भाधानक नक्षत्र है।

हिन्दी-

जन्म नक्षत्र से जो दसवाँ नक्षत्र है वह कर्म संज्ञक है और जन्म नक्षत्र से उन्नीसवाँ नक्षत्र गर्भाधान संज्ञक होता है।

द्वितीयमेकादशमं विंशतिः सम्पत्करोगणः।
तृतीयमेकविंशं तु द्वादशं तु विपत्करम्।।१०६।।

अन्वय-

द्वितीयम् एकादशमम् विंशतिः सम्पत्करः गणः। तृतीयम् द्वादशम् एकविंशं तु विपत्करम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

द्वितीयम् = दूसरा, एकादशमम् = ग्यारहवाँ, विंशतिः = बीसवाँ, संपत्करः गणः = संपत्करगण है, तृतीयम् = तीसरा, द्वादशम् = बारहवाँ, एकविंशं तु = इक्कीसवाँ, विपत्करम् = विपत्कर गण है।

हिन्दी-

दूसरा, ग्यारहवाँ और बीसवाँ नक्षत्र धनलाभ करानेवाला संपत्कर गण है और तीसरा, बारहवाँ, इक्कीसवाँ विपत्कर गण है।

क्षेम्यं चतुर्थं द्वाविंशं भवेद्यच्च त्रयोदशम्।
प्रत्वरं पञ्चमं विद्यात्त्रयोविंशं चतुर्दशम्।।१०७।।

अन्वय-

चतुर्थम् त्रयोदशम् यत् च द्वाविंशम् क्षेम्यं भवेत् पञ्चमम् चतुर्दशम् त्रयोविंशम् प्रत्वरं विद्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या-

चतुर्थम् = चौथा, त्रयोदशम् = तेरहवाँ, यत् च = और जो, द्वाविंशम् = बाईसवाँ नक्षत्र, क्षेम्यम् = क्षेम्य गणवाला, भवेत् = हो, पञ्चमम् = पाँचवाँ, चतुर्दशम् = चौदहवाँ, त्रयोविंशम् = तेईसवाँ, प्रत्वरम् = प्रत्वर नामक गण, विद्यात् = समझे।

हिन्दी-

जन्मनक्षत्र से चौथा, तेरहवाँ और बाईसवाँ नक्षत्र क्षेम्य गण का तथा पाँचवाँ, चौदहवाँ तथा तेईसवाँ नक्षत्र प्रत्वर नामक गण है।

साधकं तु चतुर्विंशं षष्ठं पञ्चदशं च यत्।
नैधनं पञ्चविंशं तु षोडशं सप्तमं तथा।।१०८।।

अन्वय-

षष्ठम् पञ्चदशम् यत् च चतुर्विंशम् = साधकम् सप्तमम् षोडशम् तथा पञ्चविंशम् तु नैधनम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

षष्ठम् = छठा, पञ्चदशम् = पन्द्रहवाँ, यत् च = और जो, चतुर्विंशम् = चौबीसवाँ, साधकम् = साधक गण, सप्तमम् = सातवाँ, षोडशम् = सोलहवाँ, पञ्चविंशम् = पच्चीसवाँ, तथा, नैधनम् = नैधन गण हैं।

हिन्दी-

छठा पन्द्रहवाँ और चौबीसवाँ नक्षत्र साधक गण तथा सातवाँ, सोलहवाँ और पच्चीसवाँ नैधन गण हैं।

मैत्रे सप्तदशं विद्यात् षडविंशतिश्चाष्टमम्।
सप्तविंशपरं मैत्रं नवमष्टादशं च यत्।।१०९।।

अन्वय-

सप्तदशम् अष्टमम् षड्विंशतिः च मैत्रे विद्यात् नवम् अष्टादशम् च यत् सप्तविंश परं मैत्रम् (विद्यात्)।

मञ्जुमती व्याख्या-

सप्तदशम् = सत्रहवाँ, अष्टमम् = आठवाँ, षड्विंशतिः च = छब्बीसवाँ, मैत्रे = मैत्र गण में, विद्यात् = जाने, नवम = नववाँ, अष्टादशम् = अठारहवाँ, च यत् = और जो, सप्तविंश = सत्ताईसवाँ, परम् मैत्रम् = परम मैत्र (जाने)।

हिन्दी-

आठवाँ, सत्रहवाँ और छब्बीसवाँ नक्षत्र मैत्रगण में तथा नववाँ, अठारहवां और सत्ताईसवाँ नक्षत्र परममैत्र गण में जाने।

नव नक्षत्रके वर्गे प्रथमं तृतीयं तु वर्जयेत्।
पञ्चमं सप्तमं चैव शेषैः कार्याणि कारयेत्।।११०।।

अन्वय-

नव नक्षत्रके वर्गे प्रथमं तृतीयम् पञ्चमम् सप्तमम् च एव वर्जयेत् शेषैः कार्याणि कारयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

नव नक्षत्रके वर्गे = उक्त नौ नक्षत्रों के गणों में से, प्रथमम् = पहला, तृतीयम् = तीसरा, पञ्चमम् = पाँचवाँ, सप्तमम् = सातवाँ गण का नक्षत्र, वर्जयेत् = शुभ काम में छोड़ दे, शेषैः = शेष गणों के नक्षत्रों द्वारा, कार्याणि = शुभ कार्य, कारयेत् = करे, कराये।

हिन्दी -

नौ नक्षत्र वर्गों में प्रथम, तृतीय, पाँचवाँ, सातवाँ नक्षत्र वर्ग शुभ काम में छोड़ दे और शेष नक्षत्र वर्ग में शुभ काम करे कराये।

आधाने जन्मकर्मादौ ज्ञेयान्येतानि पूर्वशः।
त्रिनक्षत्राः नवगणास्तेषां कर्मफलं शृणु।।१११।।

अन्वय-

आधाने जन्म कर्मादौ एतानि पूर्वशः ज्ञेयानि, त्रिनक्षत्राः नवगणाः तेषाम् कर्मफलम् शृणु।

मञ्जुमती व्याख्या-

आधाने = गर्भाधान में तथा, जन्मकर्मादौ = जन्म कर्म आदि विषयों में, एतानि = इन नक्षत्रों को, पूर्वशः = क्रम से, ज्ञेयानि = समझे, त्रिनक्षत्राः नवगणाः = तीन नक्षत्रों के नवगण, तेषाम् = उनका, कर्मफलम् = कर्मफल, शृणु = सुनें।

हिन्दी-

गर्भाधान एवम् जन्म कर्म आदि संस्कारों के विषय में पहले जो नौ गण कहे गये हैं (अर्थात् तीन-तीन नक्षत्रों का एक-एक गण होता है इस प्रकार सत्ताईस नक्षत्रों के नौ गण बनते हैं) इन गणों का शुभाशुभ फल एवं उनमें करने योग्य कार्यों को सुनो।

आधाने जन्मनक्षत्रे नैधने प्रत्वरेषु च।
प्रवासे प्राणसंदेहः क्षुरःकर्म च वर्जयेत्।।११२।।

अन्वय-

आधाने जन्मनक्षत्रे नैधने प्रत्वरेषु च प्रवासे प्राणसन्देहः क्षुरः कर्म च वर्जयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

आधाने = आधानसंज्ञक में, जन्मनक्षत्रे = जन्म नक्षत्र में, नैधन = नैधनगण में, प्रत्वरेषु = प्रत्वर गण में, प्रवासे = यात्रा करने में, प्राणसन्देहः = प्राण जाने का संशय बना रहता है, क्षुरकर्म च = बाल बनवाना भी, वर्जयेत् = वर्जित करे।

हिन्दी-

आधान संज्ञक गण के नक्षत्रों में, जन्म नक्षत्र में नैधन और प्रत्वर गण के नक्षत्रों में यात्रा करने में प्राण जाने का संशय होता है। उक्त नक्षत्र गणों में क्षौर कर्म भी न करे।

पराजयं प्रवासं च विवादं गृहकर्म च।
वर्जयेन्मङ्गलं कार्यं शान्तिस्वस्त्ययनानि च।।११३।।

अन्वय-

पराजयम् प्रवासम् च विवादम्, गृहकर्म च शान्तिस्वस्त्ययनानि मङ्गलम् कार्यम् वर्जयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

पराजयम् = पराजय, प्रवासम् = परदेशगमन, विवादम् = झगड़ा (कराने-वाले पूर्वोक्त नक्षत्र गणों में), गृहकर्म = घर निर्माण, शान्तिस्वत्स्त्ययनानि = शान्तिकर्म एवम् स्वस्तिवाचन आदि, मङ्गलम् = शुभ, कार्यम् = कार्य, वर्जयेत् = वर्जित करे।

हिन्दी-

आधान, जन्म नक्षत्र, नैधन, प्रत्वर संज्ञक गणों के नक्षत्रों में गृह निर्माण, शान्ति और स्वरस्तेन तथा माङ्गलिक कार्य न करें क्योंकि इनमें यह कार्य करने से प्रवास और विवाद जैसे विघ्न प्राप्त होंगे।

क्षौरं विवाहं भैषज्यं यात्रां सेनां न योजयेत्।
सर्वमंगलकार्येषु त्रिषु कर्म विवर्जयेत्।।११४।।

अन्वय-

क्षौरम् विवाहम् भैषज्यम् यात्राम् सेनाम् न योजयेत् सर्वमङ्गलकार्येषु त्रिषुकर्म विवर्जयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

क्षौरम् = केशवपन, विवाहम् = विवाह, भैषज्य = ओषधिसम्बन्धी कार्य, यात्राम् = यात्रा, सेनाम् = सेना को, न = नहीं, योजयेत् = योजना बनाये, सर्वमङ्गलकार्येषु = सभी शुभ कार्यों में, त्रिषु = आधान, नैधन और प्रत्वर गणों में, कर्म = शुभकाम, विवर्जयेत् = विशेष रूप से वर्जित करे।

हिन्दी-

आधान, नैधन और प्रत्वर संज्ञक गणों के नक्षत्रों में बाल बनवाना, विवाह रचना, ओषधि सम्बन्धी कार्य, यात्रा और सेना की योजना न करे। इनमें विशेष रूप से शुभ काम वर्जित करे।

विद्यारम्भं तपोदानं मार्जनं भेषजक्रिया।
मरणं च सुभृत्यानां कुर्यात्सम्पत्करे गणे।।११५।।

अन्वय-

सम्पत्करे गणे विद्यारम्भम् तपोदानम् मार्जनम् भेषजक्रिया सुभृत्यानाम् मरणम् च कुर्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या-

सम्पत्करे गणे = सम्पत्कर गण में, विद्यारम्भम् = विद्यारम्भ, तपोदानम् = तपस्या और दान, मार्जनम् = मार्जन कार्य, भेषज क्रिया = ओषधि सम्बन्धी कार्य, सुभृत्यानाम् = नौकरों का, मरणम् = पालन-पोषण, कुर्यात् = करे।

हिन्दी -

सम्पत्कर गण में विद्यारम्भ, तपस्या, दान, मार्जन, ओषधि सेवन और नौकरों का पालन आरम्भ करें।

अनृतधर्मसंयुक्तं शत्रूणां चाभिचारिकम्।
विपत्करगणे कुर्यात् प्रहरे कार्यसाधके।।११६।।

अन्वय-

विपत्कर गणे प्रहरे कार्यसाधके अनृतधर्मसंयुक्तं शत्रूणाम् आभिचारिकम् कुर्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या-

विपत्करगणे = विपत्कर नामक गण में, प्रहरे कार्यसाधके = कार्यसाधक प्रथम प्रहर में, अनृतधर्मसंयुक्तम् = झूठ और अधर्म से युक्त, च = और, शत्रूणाम् = शत्रु के सम्बन्ध में, आभिचारिकम् = आभिचारिक कार्य, कुर्यात् = करे।

हिन्दी-

प्रथम प्रहर में कार्य साधक विपत्करगणवाले नक्षत्रों में झूठ और अधर्म से युक्त शत्रुओं के नाश के विषय में आभिचारिक कर्म करे।

क्षेम्येऽध्वानं प्रपद्येत गोप्यार्थांश्चात्र गोपयेत्।
वाहनानि च पोषेत बहुशोऽर्थांश्च योजयेत्।।११७।।

अन्वय-

क्षेम्ये अध्वानम् प्रपद्येत् गोप्यार्थान् च अत्र गोपयेत् वाहनानि च पोषेत बहुशः अर्थान् च योजयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

क्षेम्ये = क्षेम्य संज्ञक गण के नक्षत्रों में, अध्वानम् = यात्रा, प्रपद्येत् = करे, गोप्यार्थान् च = छिपाकर रखे जानेवाले धनों को, गोपयेत् = छिपाकर सुरक्षित रखे,

वाहनानि = सवारियों को, पोषेत = पुष्ट करे। बहुशः = बहुत से, अर्थान् = धनों को, योजयेत् = विभिन्न कार्यों में लगाये।

हिन्दी-

क्षेम्य संज्ञक गण के नक्षत्रों में यात्रा करे, सुरक्षा के योग्य धन को सुरक्षित करे, वाहनों को पुष्ट करे, बहुत-से धनों को विभिन्न योजनाओं में योजित करे।

प्रत्वरे तु न कर्त्तव्याः सर्वारम्भाः कदाचन।
दुर्गं च न प्रवेष्टव्यं न च किञ्चित् समाचरेत्।।११८।।

अन्वय-

प्रत्वरे कदाचन सर्वारम्भाः न कर्त्तव्याः दुर्गम् च न प्रवेष्टव्यम् न च किञ्चित् समाचरेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

प्रत्वरे = प्रत्वर नामक गण के नक्षत्रों में, कदाचन = कभी भी, सर्वारम्भाः = सभी शुभ कार्यों का आरम्भ, न = नहीं, कर्त्तव्याः = करना चाहिए, दुर्गम् च = और किला में, न प्रवेष्टव्यम् = प्रवेश न करे, न च किञ्चित् = और नहीं कुछ, समाचरेत् = करे।

हिन्दी-

प्रत्वर संज्ञक गण के नक्षत्रों में कभी भी शुभ कार्य का आरम्भ न करे और किला आदि भवनों में प्रवेश न करे और कुछ भी शुभ कार्य न करे।

असाध्यान्यपि कार्याणि साधयेत्साधके गणे।
सर्वार्थास्तस्य सिध्यन्ति न चानर्थान्समश्नुते।।११९।।

अन्वय-

साधकेगणे असाध्यानि अपि कार्याणि साधयेत् तस्य सर्वार्थाः सिद्ध्यन्ति न च अनर्थान् अश्नुते।

मञ्जुमती व्याख्या-

साधकेगणे = साधक संज्ञक गण के नक्षत्रों में, असाध्यानि = असम्भव या कठिन, कार्याणि = कार्य, साधयेत् = साधे, तस्य = उसके, सर्वाणि कार्याणि = सभी कार्य, सिद्ध्यन्ति = सिद्ध होते हैं, न च = और नहीं, अनर्थान् = संकटों को, अश्नुते = आस्वादित करता है।

हिन्दी-

साधक संज्ञक गण के नक्षत्रों में असाध्य–से–असाध्य कार्य भी सिद्ध होते हैं, इसमें सभी प्रयोजन सिद्ध होते हैं, व्यक्ति इन नक्षत्रों में कार्य कर कभी संकट का आस्वादन नहीं करता।

नैधने तु न गन्तव्यं येषु जाताश्च शत्रवः।
तेभ्योरक्षेत चात्मानमत्यन्तं च न विश्वसेत्।।१२०।।

अन्वय-

नैधने तु न गन्तव्यम् येषु शत्रवः जाताः, तेभ्यः आत्मानम् रक्षेत च न अत्यन्तं विश्वसेत्।

मञ्जुमती व्याख्या -

नैधने = नैधन संज्ञक गण में, न = नहीं, गन्तव्यम् = यात्रा करे, येषु = जिन नैधन संज्ञक गण के नक्षत्रों में, शत्रवः = शत्रु, जाताः = उत्पन्न होते हैं, तेभ्यः = उनसे, आत्मानम् = अपने आपको, रक्षेत् = सुरक्षित करे, न = नहीं, अत्यन्तम् = बहुत अधिक, विश्वसेत् = किसी का विश्वास करे।

हिन्दी-

नैधन संज्ञक गणवाले नक्षत्रों में यात्रा न करे जिनमें शत्रु उत्पन्न होते हैं, उन शत्रुओं से अपनी रक्षा करे, किसी का इन नक्षत्रों में अत्यन्त विश्वास न करे अर्थात् सावधान रहे।

मैत्रे विवाहानुद्वाहांश्चूडोपनयनानि च।
कुर्यात्परममैत्रे तु यतस्तम्भनमत्मकम्।।१२१।।

अन्वय-

मैत्रे विवाहान् उद्वाहान् चूडोपनयनानि च कुर्यात् परम मैत्रे यत् अस्तम्भनात्मकम् कुर्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या-

मैत्रे = मैत्रगणवाले नक्षत्रों में, विवाहान् = विवाह, उद्वाहान् = गौना, चूडोपनयनानि = चूडा कर्म और जनेऊ संस्कार, कुर्यात् = करे, परममैत्रे तु = परममैत्रगण में, यत् = जो, अस्तम्भनात्मकम् = चर कार्य है, कुर्यात् = करे।

हिन्दी-

मैत्र संज्ञक गणवाले नक्षत्रों में विवाह, गौना, चूडासंस्कार, उपनयन संस्कार करना चाहिए, परम मैत्र संज्ञक गण के नक्षत्रों में अस्थिर या चर कार्य करना चाहिए।

परं परम मैत्रे तु नरो यद्यदभिलषेत्।
प्राप्नुयादर्थसिद्धिः स्यात् क्षिप्रमेव न संशयः।।१२२।।

अन्वय-

परम् परम मैत्रे तु नरः यत् यत् अभिलषेत् प्राप्नुयात् क्षिप्रम् एव अर्थसिद्धिः स्यात् न संशयः।

मञ्जुमती व्याख्या-

परम् = किन्तु, परम मैत्रे = परम मैत्रवाले नक्षत्रों में, नरः = मनुष्य, यत् यत् = जो भी, अभिलषेत् = इच्छा करे, प्राप्नुयात् = प्राप्त करे, अर्थसिद्धि = प्रयोजन सफल, स्यात् = हो, क्षिप्रम् एव = शीघ्र ही, न संशयः = सन्देह नहीं।

हिन्दी-

किन्तु परम मैत्र गणवाले नक्षत्रों में मनुष्य जो कुछ चाहे, पाये, शीघ्रतापूर्वक विना सन्देह प्रयोजन सिद्ध हो।

ग्रहोल्काशनिर्घातैः कम्पैर्दाहैश्च पीडयेत्।
यद्यद्भयं भवति तत्तत् प्रवक्ष्याम्यशेषतः।।१२३।।

अन्वय-

ग्रहोल्काशनि र्घातैः कम्पैः दाहैः च पीडयेत् यत् यत् भयं भवति तत् अशेषतः प्रवक्षामि।

मञ्जुमती व्याख्या-

ग्रहोल्काशनिर्घातैः = ग्रह उल्कापात वज्र प्रहार से, कम्पैः = वायु से, दाहैः = आग से, पीडयेत् = पीडित करे, यत् यत् = जो भी, भयं भवति = डर होती है, तत् = उसको, अशेषतः = पूर्णरूप से, प्रवक्ष्यामि = कहूँगा।

हिन्दी-

ग्रह उल्कापात वज्र प्रहार आँधी-तूफान अग्निदाह से पीड़ा और भी जो-जो भयंकर होता है-उसे पूर्णरूप से कहूँगा।

आधाने विद्रवन्त्यर्था व्याधयो जन्मनि ध्रुवम्।
न च सिध्यन्ति कार्याणि कदाचिद् दशमे हते।।१२४।।

अन्वय-

आधाने अर्थाः विद्रवन्ति जन्मनि व्याधयः ध्रुवम्-दशमे हते कदाचित् कार्याणि न सिद्ध्यन्ति।

मञ्जुमती व्याख्या-

आधान संज्ञक गणवाले नक्षत्रों में, अर्थाः = अर्थ, विद्रवन्ति = नष्ट होते हैं, जन्मानि = जन्म संज्ञक गणवाले नक्षत्रों में, व्याधयः = रोग, ध्रुवम् = निश्चित, दशमे = दशम के, हते = हत होने पर, कदाचित् = कभी भी, कार्याणि = कार्य, न सिद्ध्यन्ति = नहीं सिद्ध होते हैं।

हिन्दी-

आधान संज्ञावाले नक्षत्रों में शुभ कार्य नष्ट होते हैं, जन्म संज्ञावाले नक्षत्रों में शुभ कार्य करने से निश्चित तौर पर व्याधियाँ होती हैं, दशम के हत होने पर कभी भी कार्य सिद्ध नहीं होता है।

सम्पत्करे हते हानिर्वृद्धिश्चैव विपत्करे।
क्षेम्ये हते न प्रवसेत् साधकेऽर्थान्न साधयेत्।।१२५।।

अन्वय-

सम्पत्करे हते हानिः विपत्करे वृद्धिः क्षेम्येहते न प्रवसेत् साधके अर्थान् न साधयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

सम्पत्करे = सम्पत्कर नामवाले नक्षत्रों के, हते = हत होने पर, हानिः = कार्य करने से हानि, विपत्करे = विपत्कर नामवाले नक्षत्रों में, वृद्धिः = वृद्धि, क्षेम्ये हते = क्षेम्य नामक नक्षत्रों के हत होने पर, न प्रवसेत् = यात्रा न करे, साधके = साधक नामक नक्षत्रों में, अर्थान् = कार्यों को, न साधयेत् = न सम्पन्न करे।

हिन्दी-

सम्पत्कर गणवाले नक्षत्रों के हत होने पर शुभ कार्य प्रारम्भ करने से हानि तथा विपत्कर गण के नक्षत्रों के हत होने पर कार्य करने से वृद्धि होती है तथा क्षेम्य नामक गण के पात्रों के हत होने पर यात्रा न करे और साधक गण के नक्षत्रों के हत होने पर शुभ कार्य न साधे।

प्रत्वरे तु हते विघ्नान् महारोग प्रणाशनम्।
नैधनेन हते विघ्नान् महानरिवधो भवेत्।।१२६।।

अन्वय-

प्रत्वरे हते तु विघ्नान् महारोगप्रणाशनम् नैधनेन हते विघ्नान् महान् अरिवधः भवेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

प्रत्वरे = प्रत्वर संज्ञक गण के नक्षत्रों में, विघ्नान् = बाधाओं के, हते = नष्ट होने पर, महारोगप्रणाशनम् = बड़े रोगों का विनाश, नैधनेन = नैधन संज्ञक गण के नक्षत्रों में, विघ्नान् = विघ्नों के, हते = नष्ट होने पर, महान् अरिवधः = अधिक शत्रुवध, भवेत् = हो।

हिन्दी-

प्रत्वर गण के नक्षत्रों में विघ्नों के नष्ट होने पर बड़े रोग का विनाश होता है। तथा नैधन संज्ञक गण के नक्षत्रों में बाधाओं के नष्ट होने पर महान् शत्रुवध होता है।

मित्र वर्गाश्च मैत्रे तु न भवन्ति यथा पुरा।
हते परम मैत्रे तु मनोनित्यं न तुष्यति।।१२७।।

अन्वय-मैत्रे तु मित्रवर्गाः यथा पुरा न भवन्ति परम मैत्रे हते तु नित्यं मनः न तुष्यति।

मञ्जुमती व्याख्या-

मैत्रे = मैत्रागण के हत होने पर, मित्रवर्गाः = मित्र वर्ग, यथा पुरा = पहले के समान मित्र नहीं होता, परम मैत्रे = परम मैत्र के, हते = नष्ट होने पर, तु = तो, नित्यम् = सदा, मनः = मन, न तुष्यति = नहीं सन्तुष्ट होता है।

हिन्दी-

मैत्र संज्ञक गण के नक्षत्रों के हत होने पर मित्र वर्ग पहले के समान नहीं होता अर्थात् मैत्री खराब हो जाती है, परम मैत्रे गण के नक्षत्रों के हत होने पर नित्य ही मन संतुष्ट नहीं होता है।

यद्यत्पीड्यते नक्षत्रं यस्मिन्यस्मिन्यदा गणे।
तत्तत्कर्म न कुर्वीत पुरस्ताद् यत्प्रणोदितम्।।१२८।।

अन्वय-

यदा यस्मिन् यस्मिन् गणे यत् यत् नक्षत्रम् पीड्यते पुरस्तात् यत्प्रणोदितम् तत् तत् कर्म न कुर्वीत।

मञ्जुमती व्याख्या-

यदा = जब, यस्मिन् यस्मिन् = जिस जिस, गणे = गण में, यत् यत् = जो-जो, नक्षत्रम् = नक्षत्र, पीड्यते = हत हो, पुरस्तात् = सामने, यत् प्रणोदितम् = जो कहा गया है, तत् कर्म = वह कार्य, न कुर्वीत = न करे।

हिन्दी-जब जिस-जिस गण में जो-जो नक्षत्र हत हो सामने जो कहा गया है वह कार्य न करे।

वर्गान्तं यत्तु नक्षत्रं वर्गाद्यं यत्पुनर्भवेत्।
आनुपूर्व्येण वर्गाणामेवं ते नवकास्त्रयः।।१२९।।

अन्वय-

यत् वर्गान्तं नक्षत्रम् यत् पुनः वर्गाद्यम् भवेत् एवम् वर्गाणाम् आनुपूर्व्येण ते त्रयः नवकाः।

मञ्जुमती व्याख्या-

यत् = जो, वर्गान्तम् = वर्ग के अन्त में, नक्षत्रम् = नक्षत्र, यत् पुनः = जो पुनः, वर्गाद्यम् = वर्ग के आदि में, भवेत् = हो, एवम् = इस प्रकार, वर्गाणाम् = वर्गों के, आनुपूर्व्येण = क्रम से, ते = वे, भयः = तीन-तीन, नवकाः = नौ गण हों।

हिन्दी-

जो वर्गान्त नक्षत्र वह पुनः वर्गादि हो इस प्रकार क्रम से उन तीन-तीन नक्षत्रों के नौ वर्ग होते हैं।

सन्दर्भ-रजस्वला नियम-विधान

ब्राह्मणी त्रयोदशाहं स्नातापुष्पमधारयत्।
क्षत्रिणी द्वादशाहंतु वैश्येत्येकादशस्तथा।।१३०।।

अन्वय-

ब्राह्मणी पुष्पम् अधारयत् त्रयोदशाहम् स्नाता क्षत्रिणी तु द्वादशाहम् तथा वैश्या एकादश इति।

मञ्जुमती व्याख्या-

ब्राह्मणी = ब्राह्मण स्त्री, पुष्पम् अधारयत् = रजस्वला हुई, त्रयोदशाहम् = तेरहवें दिन, स्नाता = स्नान करे, क्षत्रिणी = क्षत्रिय स्त्री, द्वादशाहम् = बारहवें दिन, तथा, वैश्या = वैश्य स्त्री, एकादश = ग्यारहवें दिन स्नान करे।

हिन्दी-

ब्राह्मण स्त्री रजस्वला हो तो तेरहवें दिन, क्षत्रिय स्त्री बारहवें दिन तथा वैश्य स्त्री ग्यारहवें दिन स्नान करे।

शूद्रीणामपि सर्वासां दश रात्रौ विधीयते।
वर्णक्रमेण नारीणामेष पुष्पविधिः स्मृतः।।१३१।।

अन्वय-

सर्वासां शूद्रीणाम् दश रात्रौ विधीयते, नारीणां वर्णक्रमेण एषः पुष्प विधिः स्मृतः।

मञ्जुमती व्याख्या -

सर्वासाम् = सभी, शूद्रीणाम् = शूद्र स्त्रियों का, दशरात्रौ = दसवें दिन स्नान, विधीयते = विधान है, एवम् = इस प्रकार, नारीणाम् = नारियों का, वर्णक्रमेण = वर्ण क्रम से, पुष्पविधिः = रजस्वला विधान, स्मृतः = कहा गया है।

हिन्दी-

शूद्र स्त्रियों को रजस्वला होने के दसवें दिन स्नान करना विहित है। इस प्रकार स्त्रियों के वर्णक्रम से रजस्वला विधान कहा गया है।

भूमौस्तीर्णेषु दर्भेषु नियता ब्रह्मचारिणी।
स्वपेत् पुष्पमासाद्यत्र्यहं भुक्तेऽनलंकृता।।१३२।।

अन्वय-

भूमौ स्तीर्णेषु दर्भेषु नियता ब्रह्मचारिणी पुष्पमासाद्य स्वपेत् त्र्यहम् अनलङ्कृता भुक्ते।

मञ्जुमती व्याख्या -

भूमौ = भूमि पर, स्तीर्णेषु = बिछे हुए, दर्भेषु = कुशों पर, नियता = निश्चित रूप से, ब्रह्मचारिणी = ब्रह्मचारी होकर, पुष्पम् आसाद्य = रजस्वला होकर, स्वपेत् = सोये, त्र्यहम् = तीन दिन, अनलंकृता = अलङ्कारों से हीन होकर, भुक्ते = भोजन करे।

हिन्दी-

पृथिवी पर कुश बिछाकर रजस्वला स्त्री सोये, तीन दिन तक अलङ्कारों से रहित होकर भोजन करे।

हस्तयोर्भूतले वापि पर्णेवाप्यशनं मतम्।
नारी पुष्पवती पुष्पंगन्धांश्चैव न धारयेत्।।१३३।।

अन्वय -

हस्तयोः भूतले वापि पर्णे वापि अशनम् स्मृतम् पुष्पवती नारी पुष्पं गन्धान् च न धारयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

हस्तयोः = हाथों पर, भूतले = भूमि पर, वापि = अथवा, पर्णे = पत्तल पर, वापि = अथवा, अशनम् = भोजन करना, स्मृतम् = कहा गया है, पुष्पवती = रजस्वला, नारी = स्त्री, पुष्पम् = फूल, गन्धान् = सुगन्धित इत्र तेल आदि, न धारयेत् = नहीं धारण करे।

हिन्दी-

हाथों पर, जमीन पर अथवा पत्तल पर भोजन करे, रजस्वला स्त्री फूल और सुगन्ध धारण न करे।

ऋतुकाले तु नारीणां नान्यत् पुरुषदर्शनम्।
संभाषं न च कुर्वीत यदीच्छेत् संततिं शुभाम्।।१३४।।

अन्वय-

ऋतुकाले तु नारीणाम् अन्यत् पुरुषदर्शनम् न न च संभाषं कुर्वीत-यदि शुभां सन्ततिम् इच्छेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

ऋतुकाले = रजस्वला समय में, नारीणाम् = स्त्रियों को, अन्यत् = अन्य, पुरुषदर्शनम् = पुरुष का दर्शन, न = नहीं, न च = और नहीं, सम्भाषम् = बोल चाल, कुर्वीत = करनी चाहिए, यदि = यदि, शुभाम् = कल्याणकारी, सन्तति = सन्तान, इच्छेत् = चाहे।

हिन्दी-

यदि कल्याणकारी सन्तान चाहे तो ऋतुकाल में नारियाँ किसी पुरुष का दर्शन एवं उनसे सम्भाषण न करें।

भ्रातरं पितरं पुत्रं मातुलं श्वसुरं गुरूम्।
न संभाषितुमिच्छेत् न च स्यादुपवेशनम्।।१३५।।

अन्वय-

भ्रातरम् पितरम् पुत्रम् मातुलम् श्वसुरम्, गुरुम् संभाषितुम् न इच्छेत् न च उपवेशनम् स्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या-

भ्रातरम् = भाई से, पितरम् = पिता से, पुत्रम् = पुत्र से, मातुलम् = मामा से, श्वसुरम् = ससुर से, गुरुम् = गुरु से, संभाषितुम् = बोलने की, न = नहीं, इच्छेत् = इच्छा करे, न च = न ही और, उपवेशनम् = पास में बैठना, स्यात् = हो।

हिन्दी-

भाई, पिता, पुत्र, मामा, ससुर, गुरु से सम्भाषण की इच्छा न करे न ही उनके समीप बैठने की इच्छा करें।

यादृशेन हि भावेन संभाषन्ती समाचरेत्।
तादृशो जायते गर्भस्तस्माद् रक्षेत् रजस्वलाम्।।१३६।।

अन्वय-

यादृशेन भावेन हि संभाषन्ती समाचरेत् तादृशः गर्भः जायते तस्मात् रजस्वलाम् रक्षेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

यादृशेन = जिस प्रकार के, भावेन = भाव से, हि = ही, संभाषन्ती = सम्भाषण करती हुई रजस्वला स्त्री, समाचरेत् = आचरण करती है, तादृशः = उसी प्रकार का, गर्भः = गर्भ, जायते = होता है, तस्मात् = इस कारण, रजस्वलाम् = रजस्वला को, रक्षेत् = सबसे बचाकर रखे।

हिन्दी-

जिस प्रकार के भाव से सम्भाषण करती हुई रजस्वला स्त्री आचरण करती है, उसी प्रकार का उसे गर्भ उत्पन्न होता है। इसलिए सबसे पृथक् रजस्वला को रखे।

रजसा विप्लुता नारी द्विजस्य ह्युपसेविनः।
प्रज्ञा तेजोबलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते।।१३७।।

अन्वय-

रजसा विप्लुता नारी उपसेविनः द्विजस्य प्रज्ञा तेजः बलम् चक्षुः आयुः च एव प्रहीयते।

मञ्जुमती व्याख्या-

रजसा = रज से, विप्लुता = तर, नारी = स्त्री द्वारा, उपसेविनः = सेवित, द्विजस्य = ब्राह्मण की, प्रज्ञा = बुद्धि, तेजः = तेज, बलम् = बल, चक्षुः = आँख, आयुः = आयु, च एव = निश्चय ही, प्रहीयते = क्षीण होती है।

हिन्दी-

रजोधर्मवाली स्त्री से सेवित द्विजाति वर्ग की बुद्धि, तेज, बल, आँख और आयु क्षीण हो जाती है।

तां विवर्जयतस्तस्य रजसा सम्विप्लुताम्।
प्रज्ञातेजोबलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्धते।।१३८।।

अन्वय-

रजसा सम्विप्लुताम् ताम् वर्जयतः तस्य प्रज्ञा तेजः बलम् चक्षुः आयुः च एव प्रवर्धते।

मञ्जुमती व्याख्या-

रजसा = रजो धर्म से, संविप्लुताम् = तर, ताम् = रजस्वला को, वर्जयतः = छोड़े हुए, तस्य = उस द्विजाति वर्ग की, प्रज्ञा = बुद्धि, तेजः = तेज, बलम् = बल, चक्षुः = आँख, आयुः = आयु, च एव = तथा, प्रवर्धते = बढ़ती है।

हिन्दी-

रजोधर्म से तरबतर उस रजस्वला का परिहार करनेवाले द्विजाति वर्ग की बुद्धि, तेज, बल, आँख और आयु बढ़ती है।

निष्ठीवितागौरिव मन्दचारी तंद्री प्रहृष्टा हृदयव्यथा च।
तृप्तिस्तु बीजग्रहणेचयोन्यांगर्भस्य सद्योनिगतस्य लिंगम्।।१३९।।

अन्वय-

निष्ठीविता गौः इव मन्दचारी तन्द्री प्रहृष्टा हृदय व्यथा च योन्याम् बीजग्रहणे च तृप्तिः तु सत् योनि गतस्य गर्भस्य लिङ्गम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

निष्ठीविता = पागुर या रौंध करती हुई, गौः इव = गाय के समान, च मन्दचारी = धीरे-धीरे चलनेवाली, तन्द्री = अलसायी हुई, प्रहृष्टा = प्रसन्न, हृदयव्यथा च = हृदय में पुत्र के लिए व्यथावाली, स्त्री के, योन्याम् = योनि में, बीजग्रहणे = वीर्य ग्रहण में, तृप्तिः = सन्तुष्टि, सत् योनिगतस्य = शोभन योनि में प्राप्त, गर्भस्य = गर्भ का, लिङ्गम् = चिह्न है।

हिन्दी-

पागुर करती हुई गाय के समान मन्द-मन्द चलनेवाली अलसायी हुई प्रसन्न पुत्र के लिए हृदय में व्यथावाली स्त्री की योनि में वीर्य ग्रहण करने में सन्तुष्टि सत् योनि में प्राप्त गर्भ का चिह्न होता है।

षष्ठे संभवते गर्भस्तद् वै षष्ठः प्रशस्यते।
अर्द्धै चक्षुनिष्पत्ति स्त्रिभिर्मासैस्तु जायते।।१४०।।

अन्वय-

षष्ठे गर्भः संभवते तत् वै षष्ठः प्रशस्यते त्रिभिः अर्द्धै च मासैः चक्षु निष्पत्तिः जायते।

मञ्जुमती व्याख्या-

षष्ठे = छठे दिन, गर्भः = गर्भ, संभवते = ठहरता है, तत् वै = वह, षष्ठः = छठा दिन, प्रशस्यते = प्रशंसित है, त्रिभिः = तीन, तथा अर्धै = आधे, मासैः = महीने से, चक्षुनिष्पत्तिः = आँख निष्पन्न, जायते = होती है।

हिन्दी-

छठे दिन गर्भ ठहर जाता है इस कारण छठा दिन महत्त्वपूर्ण है। साढ़े तीन महीने में आँख निष्पन्न हो जाती है। गर्भस्थ शिशु की।

ऋतुः स्वाभाविकस्त्रीणां रात्रयः षोडशः स्मृताः।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सिद्धिगर्हितैः।।१४१।।

अन्वय-

स्त्रीणाम् ऋतुः स्वाभाविकः षोडशः रात्रयः स्मृताः सिद्धिगर्हितैः चतुर्भिः इतरैः अहोभिः सार्धम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

स्त्रीणाम् = नारियों का, ऋतुः = रजस्वला होना, स्वाभाविकः = सामान्य है, षोडशः = सोलह, रात्रयः = रातें, स्मृताः = रजस्वला की कही गयी हैं, सिद्धिगर्हितैः = सफलता में निन्दित, चतुर्भिः = रजोधर्म के चार दिन बाद, इतरैः = अन्य, अहोभिः सार्धम् = दिन द्वारा।

हिन्दी-

स्त्रियों का ऋतुकाल स्वाभाविक है, ऋतुकाल सोलह रातों का कहा गया है। रजोधर्म के चार दिन सन्तति की सफलता में निन्दित हैं, उनसे भिन्न दिनों में गर्भाधान करे।

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी तु या।
त्रयोदशीच शेषास्युः प्रशस्ताः दशरात्रयः।।१४२।।

अन्वय-

तासाम् आद्याः चतस्रः तु निन्दिता या एकादशी त्रयोदशी च शेषाः दशरात्रयः प्रशस्ताः स्युः।

मञ्जुमती व्याख्या-

तासाम् = उन सोलह रातों में, आद्याः = आरम्भ की, चतस्रः = चार रातें, निन्दिताः = निन्दित हैं, या एकादशी = जो ग्यारहवीं रात, त्रयोदशी च = तेरहवीं रात, शेषाः = इन छह रातों के बाद, दशरात्रयः = दस रातें, प्रशस्ताः = गर्भाधान में प्रशस्त हैं।

हिन्दी-

रजस्वला की सोलह रातों में प्रारम्भ की चार तथा ग्यारहवीं और तेरहवीं रात निन्दित हैं। शेष दस रातें गर्भाधान के लिए प्रशस्त हैं।

युग्मासु पुत्राः जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद् युग्मासुपुत्रार्थी संविशेदार्तवेस्त्रियाम्।।१४३।।

अन्वय-

युग्मासु रात्रिषु पुत्राः अयुग्मासु स्त्रियः जायन्ते तस्मात् स्त्रियाम् आर्तवे पुत्रार्थी युग्मासु संविशेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

युग्मासु = दो से विभाजित होनेवाली समरात्रि में, रात्रिषु = रातों में, पुत्राः = पुत्र, अयुग्मासु = विषमरातों में, स्त्रियः = कन्याएँ, जायन्ते = उत्पन्न होती हैं, तस्मात् = इस कारण, आर्तवे = ऋतुकाल में, पुत्रार्थी = पुत्र का इच्छुक, युग्मासु = सम रातों में, संविशेत् = पत्नी के साथ सहवास करें।

हिन्दी-

सम संख्यावाली रातों और विषम संख्यावाली रातों में सहवास करने से क्रमशः पुत्र और पुत्री उत्पन्न होते हैं। इस कारण पुत्र की अभिलाषावाला पुरुष सम संख्यावाली रातों में पत्नी के साथ सहवास करे।

पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियः।
समेपुमान् पुंस्त्रियोवा क्षीणे चाल्पे विपर्ययः।।१४४।।

अन्वय-

पुंसः अधिके शुक्रे पुमान् स्त्रियः अधिके स्त्री समे पुमान् पुंस्त्रियो वा क्षीणे अल्पे च विपर्ययः।

मञ्जुमती व्याख्या-

पुंसः = पुरुष के, अधिके = अधिक, शुक्रे = वीर्य होने पर, पुमान् = पुरुष, स्त्रियः = स्त्री के, अधिके = अधिक शुक्र अर्थात् वीर्य के होने पर, स्त्री = कन्या, समे = समान होने पर, पुमान् = पुरुष, पुंस्त्रियो वा = अथवा पुरुष-कन्या, क्षीणे = वीर्य के क्षीण होने पर, अल्पे च = कम होने पर, विपर्ययः = उलटा अर्थात् कन्या की संभावना अधिक होगी।

हिन्दी-

पुरुष के वीर्य की अधिकता में पुत्र और स्त्री के वीर्याधिक्य में पुत्री तथा दोनों के वीर्य के समान होने पर कभी पुत्र कभी पुत्री, दोनों में किसी के वीर्य के क्षीण और अल्प होने पर विपर्यय अर्थात् दोनों में जिसका अधिक होगा वैसा होगा या गर्भ ही नहीं ठहरेगा।

चतुर्थ्यां जायते पुत्रोऽल्पायुर्गुण वर्जितः।
विद्याचार परिभ्रष्टो दरिद्रः क्लेशभाजनः।।१४५।।

अन्वय-

चतुर्थ्याम् अल्पायुः गुणवर्जितः विद्याचारपरिभ्रष्टः दरिद्रः क्लेशभाजनः पुत्रः जायते।

मञ्जुमती व्याख्या-

चतुर्थ्याम् = चौथी रात में गर्भाधान होने पर, अल्पायु = कम उम्रवाला, गुणवर्जितः = गुणहीन, विद्याचार परिभ्रष्टः = विद्या और आचरहीन, दरिद्रः = दरिद्र, क्लेशभाजनः = दुःखी, पुत्रः = पुत्र, जायते = उत्पन्न होता है।

हिन्दी-

चौथी रात में गर्भाधान से उत्पन्न पुत्र अल्पायु, गुणहीन, विद्या और आचरणहीन, दरिद्र और दुःखी होता है।

पञ्चम्यां पुत्रिणी नारी षष्ठ्यां पुत्रस्तु पुत्रवान्।
सप्तम्यां प्रजां कन्यामष्टम्यामीश्वरः सुतः।।१४६।।

अन्वय-

पञ्चम्याम् नारी पुत्रिणी षष्ठ्याम् पुत्रवान् पुत्रः सप्तम्याम् कन्यां प्रजाम् अष्टम्याम् सुतः ईश्वरः।

मञ्जुमती व्याख्या-

पञ्चम्याम् = पाँचवीं रात में गर्भाधान होने पर, नारी = स्त्री, पुत्रिणी = कन्यावाली, षष्ठ्याम् = छठी रात में, पुत्रवान् = पुरुष, पुत्रः = पुत्र, सप्तम्याम् = सातवीं रात में, कन्याम् = कन्या, प्रजाम् = सन्तति को, अष्टम्याम् = आठवीं रात में, सुतः = पुत्र, ईश्वरः = भाग्यवान् होता है।

हिन्दी-

पाँचवीं रात में गर्भाधान से पुत्री, छठी रात में पुत्र, सातवीं रात में कन्या तथा आठवीं रात में गर्भाधान होने पर भाग्यवान् पुत्र प्राप्त होता है।

नवम्यां सुभगा नारी दशम्यां प्रवरः सुतः।
एकादश्यामधर्मा स्त्री द्वादश्यां पुरुषोत्तमः।।१४७।।

अन्वय-

नवम्याम् सुभगा नारी दशम्याम् प्रवरः सुतः एकादश्याम् अधर्मा स्त्री द्वादश्याम् उत्तमः पुरुषः।

मञ्जुमती व्याख्या-

नवम्याम् = नौवीं रात में, सुभगा नारी = सुन्दर कन्या, दशम्याम् = दसवीं रात में, प्रवरः = श्रेष्ठ, सुतः = पुत्र, एकादश्याम् = ग्यारहवीं रात में, अधर्मा स्त्री = अधर्माचरण करनेवाली कन्या, द्वादश्याम् = बारहवीं रात में, उत्तमः = श्रेष्ठ, पुरुषः = पुत्र उत्पन्न होता है।

हिन्दी-

नौवीं रात में गर्भाधान से सुन्दर कन्या, दसवीं रात में श्रेष्ठ पुत्र, ग्यारहवीं रात में धर्म विरुद्ध आचरणवाली कन्या तथा बारहवीं रात में गर्भाधान होने पर उत्तम पुत्र प्राप्त होता है।

त्रयोदश्यां सर्व शठापापा वर्णसंकरकारिणी।
जायते सर्व दुष्टा स्त्री दुःखशोकभयप्रदा।।१४८।।

अन्वय-

त्रयोदश्याम् सर्वशठा पापा वर्णसंकरकारिणी सर्वदुःखशोकभयप्रदा स्त्री जायते।

मञ्जुमती व्याख्या-

त्रयोदश्याम् = तेरहवीं रात में गर्भाधान होने पर, सर्वशठा = मूर्ख, पापा = पापाचरणवाली, वर्णसंकरकारिणी = वर्णसंकर सन्तान उत्पन्न करनेवाली, सर्वदुष्टा = सबसे दुष्ट, दुःखशोकभयप्रदा = दुःख शोक और भय देनेवाली, स्त्री = कन्या जायते = उत्पन्न होती है।

हिन्दी-

तेरहवीं रात में गर्भाधान से मूर्ख, पापी, वर्णसंकर सन्तान पैदा करनेवाली सबसे दुष्ट, दुःख, शोक और भय देनेवाली कन्या उत्पन्न होती है।

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च शासितात्मा तपोनिधिः।
जायते च चतुर्दश्यां पितेव जगतः पतिः।।१४९।।

अन्वय-

चतुर्दश्याम् पिता इव जगतः पतिः धर्मज्ञः च कृतज्ञः च शासितात्मा तपोनिधिः जायते।

मञ्जुमती व्याख्या-

चतुर्दश्याम् = चौदहवीं रात में गर्भाधान करने से, पिता इव = पिता के समान, जगतः = संसार का, पतिः = स्वामी, धर्मज्ञः = धर्म को जाननेवाला, कृतज्ञः = उपकार को माननेवाला, शासितात्मा = अपने ऊपर नियन्त्रण रखनेवाला, तपोनिधि = तपस्वी, जायते = उत्पन्न होता है।

हिन्दी-

चौदहवीं रात में गर्भाधान होने पर पिता के समान जगत का स्वामी धर्मज्ञ, कृतज्ञ, स्वयं पर नियन्त्रण करनेवाला, तपोनिधि पुत्र उत्पन्न होता है।

राजपत्नी महाभागा राजवशं गताः स्त्रियाः।
जायन्ते पञ्चदश्यां तु बहुभोगा पतिव्रता।।१५०।।

अन्वय-

पञ्चदश्याम् तु राजपत्नी महाभागा राजवशम् गताः बहुभोगाः पतिव्रताः जायन्ते।

मञ्जुमती व्याख्या-पञ्चदश्याम् तु = पन्द्रहवीं रात में गर्भाधान से, राजपत्नी = राजा की पत्नी, महाभागा = बहुत भाग्यवान्, राजवशंगताः = राजा के वश में प्राप्त, बहुभोगा = श्रेष्ठ भोगवाली, पतिव्रताः = पतिपरायण, जायन्ते = कन्याएँ उत्पन्न होती हैं।

हिन्दी-

पन्द्रहवीं रात में गर्भाधान होने पर राजपत्नी महाभाग्यवान् राजा के वश में रहनेवाली बहुत भोग भोगनेवाली पतिव्रता कन्या उत्पन्न होती है।

विद्यालक्षणसम्पन्नः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
आधारः सर्वभूतानां षोडस्यां यः प्रजायते।।१५१।।

अन्वय-

षोडस्यां यः प्रजायते (सः) विद्यालक्षणसम्पन्नः सत्यवादी जितेन्द्रियः सर्वभूतानाम् आधारः (भवति)।

मञ्जुमती व्याख्या-

षोडस्याम् = सोलहवीं रात में गर्भाधान करने पर, यः = जो, प्रजायते = उत्पन्न होता है वह, विद्यालक्षणसम्पन्नः = विद्वान्, सत्यवादी = सच बोलनेवाला, जितेन्द्रियः = इन्द्रियों पर काबू रखनेवाला, सर्वभूतानाम् = सभीं प्राणियों का, आधारः = आधार पुत्र होता है।

हिन्दी-

सोलहवीं रात में गर्भाधान होने पर विद्वान् सत्यवादी जितेन्द्रिय सभी प्राणियों का पालन-पोषण करनेवाला पुत्र उत्पन्न होता है।

कन्या तु विकले ज्ञेया युग्मे भवति मानवः।
तृतीया संततिर्यस्य तदरक्षेत् कुलदूषकम्।।१५२।।

अन्वय-

विकले कन्या ज्ञेया युग्मे मानवः भवति, यस्य तृतीया सन्ततिः तत् कुलदूषकम् अरक्षेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

विकले = विषम संख्यावाली रातों में गर्भाधान होने पर, कन्या ज्ञेया = कन्या उत्पन्न होगी, युग्मे = सम संख्यावाली रातों में गर्भाधान से, मानवः = पुत्र, भवति = होता है, तृतीया = तीसरे प्रकार की, यस्य = जिसकी, सन्ततिः = सन्तान हो, तत् = वह, कुलदूषकम् = वंशदूषक, अरक्षेत् = रक्षा के योग्य नहीं है।

हिन्दी-

विषम रातों में गर्भाधान से कन्या तथा सम रातों में गर्भाधान से पुत्र होता है। तीसरे प्रकार की सन्तति अर्थात् हिंजड़ा जिसे उत्पन्न हो तो वह कुल दूषक है। अतः उससे बचे।

सप्तमे मृयते जन्तुस्तन्मुहूर्तमपि वर्जयेत्।
स्नातायां दशमी तस्यां श्राद्धं तत्र विवर्जयेत्।।१५३।।

अन्वय-

सप्तमे जन्तुः मृयते तत् मुहूर्तमपि वर्जयेत् स्नातायाम् तस्याम् दशमी तत्र श्राद्धं विवर्जयेत्।

मञ्जुमती व्याख्या-

सप्तमे = सातवीं रात में गर्भाधान से, जन्तुः = जन्मवाले की, मृयते = मृत्यु हो जाती है, तत् = इस कारण, मुहूर्तमपि = इस मुहूर्त को भी, वर्जयेत् = छोड़ दे, स्नातायाम् = रजोनिष्पत्तिवाली, तस्याम् = स्त्री में, दशमी = दसवीं रात में, तत्र = उस दसवीं रात में गर्भाधान से उत्पन्न पुत्र, श्राद्धम् = पितृकर्म, विवर्जयेत् = छोड़ देता है।

हिन्दी-

सातवीं रात में गर्भाधान से उत्पन्न सन्तति अल्पायु होती है, अतः सातवीं रात छोड़ दे। दसवीं रात में उत्पन्न पुत्र श्राद्ध आदि पितृकर्म नहीं करता। अतः दसवीं रात भी गर्भाधान के उचित नहीं है। अतः इसे भी त्याग दे।

अंगादंगसंभूतं स्वमंगमधितिष्ठति।
पिता पुत्रत्वमापन्नो जायतेम्रियतेपि वा।।१५४।।

अन्वय-

अंगात् अंगसंभूतम् स्वमङ्गम् अधितिष्ठति, पिता पुत्रत्वम् आपन्नः जायते मृयते अपि वा।

मञ्जुमती व्याख्या-

अंगात् = पिता के अंग से, अंगसंभूतम् = सन्तति का अंग बनता है, स्वमङ्गम् = पिता सन्तति रूप में अपने ही अंग को, अधितिष्ठति = प्राप्त होता है, पिता = जनक, पुत्रत्वम् = सन्तति भाव को, आपन्नः = प्राप्त होकर, जायते = उत्पन्न होता है, मृयते = मरता है, अपि वा = अथवा।

हिन्दी-

पिता के अंग से ही सन्तति का अंग उत्पन्न होता है, सन्तति रूप में पिता अपने ही अंग का अधिष्ठान करता है। पुत्रत्व को प्राप्त किया हुआ पिता ही जीवित अथवा मृत होता है, जैसा कहा है-'आत्मा वै जायते पुत्रः'।

एवमेव त्रिभिर्भावैः सन्ततिश्च पुनः पुनः।
अच्छिन्नो दैवतस्तं तु प्रजा तस्मात् प्रजायते।।१५५।।

अन्वय-

एवमेव त्रिभिः भावैः सन्ततिः च पुनः पुनः अच्छिन्नः दैवतः तंतु तस्मात् प्रजा प्रजायते।

मञ्जुमती व्याख्या-

एवमेव = इसी प्रकार, त्रिभिः भावैः = पुत्र-कन्या और क्लीव रूपों से, सन्ततिः = सन्तान, च पुनः = पुनः-पुनः, दैवतः = भाग्य से, अच्छिन्नः = अविच्छिन्न-निरन्तर, तंतु = परम्परा, तस्मात् = उससे, प्रजा = सन्तति, प्रजायते = उत्पन्न होती है।

हिन्दी-

इस प्रकार पुत्र, कन्या तथा क्लीव तीन रूपों में पुनः-पुनः सन्तति उत्पन्न होती है, भाग्य से प्रजा तन्तु अविच्छिन्न होती है, उसी से सन्तति उत्पन्न होती है।

पतिसंयोगकाले तु कन्या विघ्नं करोति या।
अपुंस्त्वं लभते जन्म यत्र यत्रोपजायते।।१५६।।

अन्वय- पतिसंयोगकाले या कन्या विघ्नं करोति, (सा) यत्र यत्र उपजायते अपुंस्त्वम् जन्म लभते।

मञ्जुमती व्याख्या-

पतिसंयोगकाले = पति के मिलन वेला में, या कन्या = जो पत्नी, विघ्नम् = बाधा, करोति = करती है, (वह) यत्र यत्र = जिस-जिस योनि में, उपजायते = उत्पन्न होती है, अपुंस्त्वम् = पुरुष के अभाववाला, जन्म = पैदाइश, लभते = प्राप्त करती है।

हिन्दी-

पति के मिलन समय में जो पत्नी बाधा उत्पन्न करती है वह जिस-जिस योनि में पुनः जन्म ग्रहण करती है उस-उस जन्म में पुरुष का अभाव प्राप्त करती है।

धर्मार्थकामयुक्तानि क्रूराणि मृदूनि च।
सिद्ध्यर्थं योनियोगेषु कुर्यात्कर्माणि नित्यशः।।१५७।।

अन्वय-

धर्मार्थकामयुक्तानि क्रूराणि मृदूनि च कर्माणि सिद्ध्यर्थयोनियोगेषु नित्यशः कुर्यात्।

मञ्जुमती व्याख्या-

धर्मार्थकामयुक्तानि = धर्म, अर्थ और काम से युक्त, क्रूराणि = कठोर, मृदूनि च = और कोमल, कर्माणि = कर्म, सिद्ध्यर्थयोनियोगेषु = अर्थसिद्धि के निमित्त योगों में, नित्यशः = सदा, कुर्यात् = करे।

हिन्दी-

धर्म, अर्थ और काम से युक्त कठोर अथवा कोमल कर्म अर्थ सिद्धि के निमित्त योगों में नित्य करना चाहिए।

एवं नक्षत्रयोगेषु त्रिषु कर्म समारभेत्।
धर्मार्थ कर्मणामर्थे स्वकर्म फलमश्नुंते।।१५८।।

अन्वय-

एवम् त्रिषु नक्षत्रयोगेषु कर्म समारभेत् धर्मार्थकर्मणाम् अर्थे स्वकर्मफलम् अश्नुते।

मञ्जुमती व्याख्या-

एवम् = इस प्रकार, त्रिषु = धर्म, अर्थ, काम के विषय में, नक्षत्रयोगेषु = शुभ नक्षत्र और योग में, कर्म = कार्य, समारभेत् = आरम्भ करे, धर्मार्थकर्मणाम् = धर्म, अर्थ, काम के, अर्थे = प्रयोजन में, स्वकर्मफलम् = अपने कर्म के फल को, अश्नुते = आस्वादित करता है।

हिन्दी-

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम के विषय में शुभ नक्षत्र और योग में कार्य आरम्भ करे। धर्म, अर्थ, काम के प्रयोजन में मनुष्य अपने कर्मफल को भोगता है।

शान्तिभिश्च तथान्यच्चोपवासैर्व्रतादिभिः।
येऽर्चयन्ति महात्मानं सर्वं प्रशमयन्ति ते।।१५९।।

अन्वय-

शान्तिभिः च तथा अन्यत् च उपवासैः व्रतादिभिः ये महात्मानम् अर्चयन्ति ते सर्वम् प्रशमयन्ति।

मञ्जुमती व्याख्या-

शान्तिभिः = शान्तिक कर्मों से, च तथा अन्यत् च = और, उपवासै = निराहार, व्रतादिभिः = व्रत आदि द्वारा, ये = जो लोग, महात्मानम् = महात्माओं को, अर्चयन्ति = पूजते हैं, ते = वे, सर्वम् = सभी अशुभों को, प्रशमयन्ति = शान्त करते हैं।

हिन्दी-

शान्तिक, पौष्टिक, उपवास, व्रतादि द्वारा जो लोग महात्माओं की पूजा करते हैं वे सभी अशुभों को शान्त कर देते हैं।

उपवासैर्गवांदानैस्तर्पणैश्च मनीषिणाम्।
ग्रहनक्षत्रजाः दोषाः प्रशाम्यन्तीह देहिनाम्।।१६०।।

अन्वय-

उपवासैः गवांदानैः मनीषिणाम् तर्पणैः च देहिनाम् ग्रहनक्षत्रजाः दोषाः इह प्रशाम्यन्ति।

मञ्जुमती व्याख्या-

उपवासैः = उपवास से, गवांदानैः = गोदान से, मनीषिणाम् = महात्माओं के, तर्पणैः = तृप्ति से, देहिनाम् = मनुष्यों के, ग्रहनक्षत्रजाः = ग्रह नक्षत्र से उत्पन्न, दोषाः = अरिष्ट या अशुभ, इह = इस लोक में, प्रशाम्यन्ति = शान्त हो जाते हैं।

हिन्दी-

उपवास से, गोदान से तथा महात्माओं के तृप्त होने से इस लोक में मनुष्यों के सभी ग्रह नक्षत्र से उत्पन्न अशुभ शान्त हो जाते हैं।

नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव देवता पितरो द्विजाः।
पूजिता प्रतिपूज्यन्ते निर्दहन्त्यपमानिताः।।१६१।।

अन्वय-

नक्षत्राणि ग्रहाः देवताः पितरः द्विजाः च एव पूजिताः प्रतिपूज्यन्ते अपमानिताः निर्दहन्ति।

मञ्जुमती व्याख्या-

नक्षत्राणि = नक्षत्र, ग्रहाः = नवग्रह, देवता = देव, पितरः = पितर, द्विजाः = ब्राह्मण, पूजिताः = पूजा किये गये, प्रतिपूज्यन्ते = प्रति पूजा करते हैं, अपमानिताः = तिरस्कृत किये गये, निर्दहन्ति-सर्वनाश करते हैं।

हिन्दी-

नक्षत्र, ग्रह, देवता, पितर, ब्राह्मण पूजित होकर पूजा करनेवाले को भी पूजित करते हैं और अपमानित होने पर, अपमानित करनेवाले का सर्वनाश करते हैं।

आत्मज्योतिषभित्युक्तं स्वयमुक्तं स्वयं भुवा।
तत्त्वतः पृच्छमानस्य काश्यपस्य महात्मनः।।१६२।।

अन्वय-

महात्मनः काश्यपस्य पृच्छमानस्य तत्त्वतः स्वयंभुवा आत्मज्योतिषम् इति उक्तम् स्वयम् उक्तम्।

मञ्जुमती व्याख्या-

महात्मनः = महात्मा, काश्यपस्य = काश्यप के, पृच्छमानस्य = पूछने पर, तत्त्वतः = यथार्थ, स्वयंभुवा = ब्रह्मा ने, आत्मज्योतिषम् इति उक्तम् = आत्मज्योतिष यह प्रसिद्ध, स्वयम् = अपने आप, उक्तम् = कहा।

हिन्दी-

महात्मा काश्यप के पूछने पर यथार्थ इस आत्मज्योतिष को ब्रह्मा ने तत्त्वतः कहा।

य इदं पठते विप्रो विधिवच्च समाहितः।
यथोक्तं लभते सर्वमाम्नायविधिदर्शनात्।।१६३।।

अन्वय-

यः विप्रः समाहितः इदम् विधिवत् पठते आम्नाय विधिदर्शनात् यथोक्तम् सर्वं लभते।

मञ्जुमती व्याख्या-

यः = जो, विप्रः = वेदपाठी ब्राह्मण, समाहितः = शान्तचित्त, इदम् = इस आथर्व ज्योतिष को, विधिवत् = विधिपूर्वक गुरुमुख से, पठते = पढ़ता है, वह,

आम्नाय विधिदर्शनात् = वेद के विधान के दर्शन से, यथोक्तम् = यहाँ जो कुछ कहा गया है, सर्वम् = सब कुछ, लभते = प्राप्त करता है।

हिन्दी-

जो वेदपाठी ब्राह्मण शान्तचित्त होकर इस आथर्वज्योतिष को विधिपूर्वक गुरु के चरण में बैठकर पढ़ता है वह वेद के विधान के दर्शन से यथोक्त सब कुछ प्राप्त करता है।

चतुर्थ्यामाश्विने शुक्ले गुरौ सायं निशामुखे।
तीर्थराजे प्रयागेऽस्मिन् पूर्णाभूदिति मे कृतिः।।
काश्यप ब्रह्मसंवादे लब्ध याथर्वजं त्विदम्
ज्योतिषं सर्वबोधार्थम् व्याख्यया योजितम् मया।।१।।

काश्यप ब्रह्म संवाद से
हुआ प्रकाशित ज्ञान
आथर्व ज्योतिष का विशद-
प्रस्तुत है मञ्जुमती व्याख्यान।।२।।

लोक का उपकार इससे
यदि भला कुछ हो सके।
तो मेरा यह श्रम सफल,
सचमुच जगत में हो सके।।३।।

इति

□□

अध्याय १

वैदिक साहित्य में कालमान

वैदिक साहित्य सम्पूर्ण विश्ववासियों की अमूल्य निधि है। यह अत्यधिक विस्तृत एवं व्यावहारिक है। प्रयोगात्मक दृष्टि से वैज्ञानिकों की अनुसन्धानिक उत्सुकता की शान्ति के लिए इसमें पर्याप्त भण्डार है। मानवमात्र के कल्याण की इसमें अपरिमित शक्ति है। सम्पूर्ण सृष्टि में जो कुछ श्रेय, प्रेय, हेय, उपादेय आदि हैं सब कुछ वेद में ही स्थित हैं। वेद अत्यन्त रहस्यात्मक हैं। वेद सूत्रात्मक शैली में मन्त्रों में उपनिबद्ध हैं। वेदों के रहस्यों को उद्घाटित करने के लिए प्राचीन काल से ही न जाने कितने विद्वान्, कर्मकाण्डी, वैयाकरण, इतिहासज्ञ एवं आचार्यों ने प्रयत्न किये तथापि यह आज भी उतने ही रहस्यमय बने हुए हैं। प्राचीन काल से ही इनके गम्भीर मन्त्रों की व्याख्या अनेक सम्प्रदाय के विद्वानों ने अपनी दृष्टि से किया है और आज भी मन्त्रों के अर्थ को समझने तथा समझाने के लिए अनेक शैली का प्रचलन है और प्रत्येक शैली एक नवीन अर्थ को प्रकट करती है। वेद परमात्मा के निःश्वास हैं। जैसे परमात्मा को अनादि, अनन्त, अखण्ड एवं अनिर्वचनीय कहा गया है ठीक यही कथन वेदों के लिए भी उतना ही प्रामाणिक है। "पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति।" अथर्ववेद १०।८।३२ का यह कथन ही वेदों की अनादि एवं अनन्तता का द्योतक है। 'अनन्तो वै वेदाः' इस श्रुतिवाक्य से ही स्पष्ट है कि वेदराशि अनन्त है। इसे पूर्वकाल में भगवान् वेदव्यास जी ने प्राणियों की बुद्धि की जड़ता मान्द्यता का अनुभव करते हुए ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के रूप में चार भाग किये। इसी से व्यास जी वेदव्यास के नाम से जाने गये। व्यास जी ने यह विभाग त्रेतायुग में किया अतः वेदों को त्रयी नाम से जाना गया। यह उल्लेख महाभारत के शान्तिपर्व में आया है – ततस्त्रेता युगं नाम त्रयी यत्र भविष्यति। संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् ये सभी वैदिक साहित्य हैं यद्यपि वेदाङ्ग भी वैदिक साहित्य के ही अन्तर्गत कहे गये हैं। वेदाङ्गों में ज्योतिष शास्त्र भी नेत्र रूप में परिगणित है तथापि यहाँ वेदाङ्गातिरिक्त संहितादि द्वारा ही ज्योतिष का विवेचन करना इस ग्रन्थ का उद्देश्य है।

वेद अध्यात्म के साथ व्यवहार का, परलोक के साथ इहलोक का, पुरातन के साथ अद्यतन का, देश के साथ काल का सामञ्जस्य मन्त्रों द्वारा प्रस्तुत करता है। वेद का सर्वाधिक श्लाघनीय पक्ष यज्ञ है। यज्ञ ही मानव को मानवता का पाठ सिखाता

है। यज्ञ की सफलता समुचित मन्त्र प्रयोग (कर्मकाण्ड) से ही नहीं, बल्कि उचित काल (समय) में ही करने से होती है। ज्योतिष शास्त्र को काल विधान शास्त्र भी कहा गया है। वेदों में ज्योतिषी के लिए नक्षत्रदर्श तथा गणक शब्द प्रयुक्त हुआ है। काल के तीन भेद भूत, वर्तमान एवं भविष्य हैं।

काल के समस्त खण्डों कल्प, मन्वन्तर, महायुग, युग संवत्सर (वर्ष), यान (अयन), ऋतु, मास, क्षयमास, अधिक मास, तिथि, वार, दिनमान, रात्रिमान, मुहूर्त, तारा, नक्षत्र, ग्रहण, सूर्यादि ग्रह तथा राशि का प्रयोग वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है जिनका विवेचन क्रमशः इस प्रकार है।

ज्योतिष शास्त्र की मान्यता के अनुसार कालखण्ड की सबसे सूक्ष्म इकाई त्रुटि है तथा सबसे दीर्घकाल को कल्प के नाम से कहा गया है। वेदों में कल्प शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है किन्तु यह कहना कि वह कालमान के लिए ही प्रयुक्त है समीचीन नहीं होगा।

अक्षराजाय कितवं कृतायादि नवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधि कल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवे। (यजुर्वेद ३०।१८)

कल्प– एक ब्रह्माण्ड की रचना से उसके विनाश तक की आयु का नाम है। कल्प का एक अर्थ कल्पसूत्र भी है। कल्प छह वेदाङ्गों में से एक है। कौन सा यज्ञ किसलिए, किस विधि–विधान से किया जाय इसका वर्णन कल्पसूत्रों में मिलता है। कल्प के साथ मन्वन्तर का भी प्रयोग कालमान के लिए वेदों में वर्णित नहीं है। चार युगों के योग को महायुग कहा जाता है। ब्रह्मा का एक दिन एक हजार महायुगों का होता है उसे ही कल्प कहते हैं और एक कल्प में १४ मन्वन्तर होते हैं अर्थात् एक मनु का काल लगभग ७१ महायुग होता है।

युग – युग शब्द का प्रयोग वेदों में अनेक बार हुआ है किन्तु उसका अर्थ आज की भाँति प्रचलित युगमान के अनुसार नहीं प्रतीत होता। यहाँ दिग्दर्शन मात्र के लिए वैदिक साहित्य में प्रयुक्त युग शब्द का परिचय दिया जा रहा है।

तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम विभ्रत्।

(ऋग्वेद १।१०३।४)

यहाँ युग का प्रयोग एक पीढ़ी के लिए किया गया है।

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः।। (ऋग्वेद १।१५८।६)

यहाँ युग का प्रयोग वर्ष के लिए हुआ है। शंकर बालकृष्ण दीक्षित के अनुसार सायणाचार्य के मत से यहाँ युग का अर्थ सत्य, त्रेता आदि युग मानना चाहिए। किन्तु इतना तो निश्चित ही है कि वेदों में युग एक दीर्घकाल के लिए प्रयुक्त होता था। यथा–

अश्वो न कुशिकेभिर्युगे युगे। (ऋग्वेद ३।२६।३)

मनुष्या युगानि। (ऋग्वेद १।१९२।११)

त्वामग्ने युगे युगे दधिरे देवासः। (ऋग्वेद ६।१५।८)

युगे युगे विदथ्यम् । (ऋग्वेद ६।८।५)

देवानां पूर्व्ये युगे। (ऋग्वेद १०।७२।२)

पितरो युगे युगे क्षेमकामासः। (ऋग्वेद १०।९४।१२)

यया युगवर त्रया नह्यन्ति। (ऋग्वेद१०।६०।८)

नाहुषा युगाः। (ऋग्वेद ५।७३।३)

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। (ऋग्वेद १०।९७।१)

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः। (अथर्ववेद ८।२।२१)

वेदों में युग शब्द का प्रयोग निश्चित ही कालमान के लिए हुआ है भले ही यह निर्णय न किया जा सके कि युगमान कितना था किन्तु कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग का वर्णन स्पष्ट रूप से ऐतरेय ब्राह्मण में आया है जहाँ इन्द्र ने रोहित को उपदेश किया है –

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्।।

अर्थात् कलियुग सोया हुआ है और द्वापर जगा हुआ रहता है। त्रेतायुग उठा हुआ रहता है और सत्ययुग चलता रहता है। इस कथन से ही स्पष्ट हो जाता है कि कलियुग, द्वापर, त्रेता और सत्ययुग उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होते हैं।

आर्च ज्योतिष में पाँच संवत्सरों के योग को एक युग माना गया है। इसका आरम्भ उत्तरायण में माघ मास के धनिष्ठा नक्षत्र से होता था। इसमें ६० सौरमास, ६२ चान्द्रमास, २ अधिमास, ६७ नाक्षत्रमास, १८३० सावन दिन, १८६० तिथियाँ ३० क्षयतिथि और १८०९ नक्षत्र होते थे। इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

संवत्सर	उत्तरायणारम्भ		दक्षिणायनारम्भ	
	तिथि	चन्द्र नक्षत्र	तिथि	चन्द्र नक्षत्र
संवत्सर	माघ शुक्ल प्रतिपदा	धनिष्ठा	श्रावण शुक्ला सप्तमी	चित्रा
परिवत्सर	माघ शुक्ल त्रयोदशी	आर्द्रा	श्रावण कृष्ण चतुर्थी	पूर्वाभाद्रपद
इदावत्सर	माघ कृष्ण दशमी	अनुराधा	श्रावण शुक्ल प्रतिपदा	आश्लेषा
अनुवत्सर	माघ शुक्ल सप्तमी	अश्विनी	श्रावण शुक्ल त्रयोदशी	पूर्वाषाढ़
इद्वत्सर	माघ कृष्ण चतुर्थी	उत्तरा फाल्गुनी	श्रावण कृष्ण दशमी	रोहिणी

वेदाङ्ग ज्योतिष के अनुसार उत्तरायण के आरम्भ में सूर्य धनिष्ठा नक्षत्र में रहता था और दक्षिणायन के आरम्भ में आश्लेषा के मध्य में रहता था। उत्तरायण का आरम्भ माघ मास के शुक्ल पक्ष से तथा दक्षिणायन का आरम्भ श्रावण मास के शुक्ल पक्ष से होता था। किन्तु वर्तमान समय में यह घटित नहीं है।

संवत्सर – युग से छोटा दूसरा कालमान संवत्सर है। इसी को वर्ष भी कहते हैं। वर्ष के अर्थ में वेदों में संवत्सर, समा, शरद्, हेमन्त तथा हायन शब्दों का प्रयोग मिलता है। वेदों में संवत्सर को महान् एवं प्रजापति कहा गया है। गोपथ ब्राह्मण का कथन है कि संवत्सर अधिदेव और अध्यात्म होकर प्रतिष्ठित है। जो इस बात को जानता है वह प्रजावान् होकर प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

सा वा एष संवत्सरोऽधिदैवं चाध्यात्मं च प्रतिष्ठितः स य एवमेतत् संवत्सरमधिदैवं चाध्यात्मं च प्रतिष्ठितम् वेद प्रतिष्ठति प्रतितिष्ठति प्रजया पशुभिर्य एवं वेद स वा एष संवत्सरः। (गोपथ ब्राह्मण : पूर्व भाग : प्रकरण ४ : कण्डिका ११)

यह संवत्सर बृहती (छन्द) से सम्पृक्त है। बृहती के ३६ वर्ण होते हैं। जो यह जानता है वह संवत्सर स्वरूप है।

संवत्सर महान् सुपर्ण (पक्षी) है। जिस दिन दिनरात्रि समान होते हैं उसे विषुव दिन कहते हैं। उसके पूर्व के छः मास सुपर्ण के दक्षिण पक्ष हैं और बाद के छ मास वाम पक्ष हैं। विषुव संवत्सर की आत्मा है और बारह मास उसके पसीने हैं। पुरुष संवत्सर है। उसके दो पाद दिन-रात्रि हैं, नख नक्षत्र हैं और अन्य अंग यज्ञ हैं। पुरुष एक है और संवत्सर एक है अर्थात् संवत्सर पुरुष (ईश्वर) का शरीर है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी संवत्सर को साक्षात् प्रजापति कहा गया है –

प्रजापतिः संवत्सरो महान् कः। (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१०।१)

वैदिक साहित्य में सम्पूर्ण कालमान प्राकृतिक है। वेदों में शरद्, हेमन्त आदि अनेक बार प्रयुक्त हुए हैं। गोपथ ब्राह्मण में वर्ष अर्थ में हायन शब्द का प्रयोग हुआ है जबकि वाजसनेयि संहिता में वर्ष के लिए समा शब्द आया है।

कुर्वन्नेवेहकर्माणि जिजीविषे शतं समाः।

वेदों में जिस वर्ष का उल्लेख प्राप्त होता है वह सौर वर्ष है। सूर्य क्रान्तिवृत्त के किसी बिन्दु से चलकर पुनः जितने समय में वहाँ आता है उसे एक सौर वर्ष कहा जाता है। चन्द्रमा इतने समय में १२ बार पूर्ण हो जाता है इसीलिए १२ मास माने जाते हैं। सूर्य जहाँ से चलता है उस बिन्दु में भी थोड़ी गति है। वह एक वर्ष में लगभग ५० विकला पीछे खिसक जाता है अतः सूर्य वहाँ ५० विकला पूर्व पहुंच जाता है। इसी को अयन के नाम से जाना जाता है। एक वर्ष में १२ मास, ३६० दिन तथा ३६० रात्रियाँ होती हैं। इसका वर्णन ऋग्वेद में स्पष्टतया उल्लिखित है –

द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परिद्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्तशतानि विंशतिश्च तस्थुः।।

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत्।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः।।

(ऋग्वेद १।१६४।११, १।१६४।४८)

अर्थात् सूर्य का १२ अरोंवाला चक्र द्युलोक के चारों ओर सतत भ्रमण करते हुए भी नष्ट नहीं होता है। हे अग्नि! इस पर पुत्रों के ७२० जोड़े आरूढ़ रहते हैं।

बारह परिधि, एक चक्र और तीन नाभि इसे कौन जानता है उस चक्र में शंकु की तरह ३६० चंचल अरे लगे हुए हैं।

तैत्तिरीय संहिता में ३६० दिन एवं ३६० रात्रियों का उल्लेख है।

तस्य त्रीणि शतानि षष्टिश्च स्तोत्रीयास्तावतीः संवत्सरस्य रात्रयः।

(तैत्तिरीय संहिता ७।५।१)

यान (अयन) संवत्सर से छोटे कालमान को वैदिक साहित्य में यान, जिसे बाद में अयन के नाम से जाना गया, कहते हैं। यह यान दो भागों में विभक्त है – १. देवयान २. पितृयान। यान का अर्थ है वाहन अथवा मार्ग। वर्ष में दिन और रात्रि दो बार बराबर होते हैं। वैदिक साहित्य में इसे ही विषुव कहा है। आजकल इसे मेष और तुला संक्रान्ति कहा जाता है। सूर्य की मेष से तुला की स्थिति में दिनमान ३० घटी के

आसपास रहता है। वेद इसी को देवयान तथा आधुनिक ज्योतिष इसे उत्तर गोल कहता है। शेष ६ मासों में दिनमान ३० घटी से कम होता है। वेद इसी को पितृयान कहते हैं जिसे आधुनिक ज्योतिष में दक्षिण गोल कहा गया है। यजुर्वेद में ऋषि कहता है कि सोम के योग्य तथा अग्नि जिसके दहन का आस्वादन करता है वे हमारे पितर देवताओं में गमन योग्य देवयान मार्ग से आवें। वे यज्ञ में स्वधा से प्रसन्न होकर हमें उपदेश देते हुए रक्षा करें।

आ यन्तु नः पितरः सोम्यसोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्।।

(यजुर्वेद १९।५८)

तैत्तिरीय ब्राह्मण १।२।३ के अनुसार दोनों यान एक गृह के दो पाख हैं।

यथा वै पुरुष एवं विषुवान्। यथा तस्य दक्षिणोऽर्धस्तथोत्तरः।
यथा शालायै पक्षसी एवं संवत्सरस्य पक्षसी।।

ऋतु – अयन से छोटा कालमान ऋतु है। वैदिक साहित्य में ६ ऋतुओं का सर्वत्र उल्लेख है। सामवेद का मन्त्र द्रष्टव्य है।

वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यो वर्षाण्यनु शरदो
हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः।। (सामवेद पूर्व ६।४।२)

तैत्तिरीय ब्राह्मण में वसन्त ऋतु को संवत्सर का सिर अर्थात् प्रथम ऋतु माना गया है।

तस्य ते (संवत्सरस्य) वसन्तः शिरः। ग्रीष्मो दक्षिणः पक्षः। वर्षा पुच्छं। शरदुत्तरः पक्षः हेमन्तो मध्यम।

(तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१०।४।९)

ऐतरेय ब्राह्मण १।१।१ में पाँच ऋतुओं का उल्लेख है। वहाँ हेमन्त और शिशिर को एक साथ अन्तर्भाव कर लिया गया है।

सप्तदशो वै प्रजापतिर्द्वादश मासाः पञ्चर्तवो हेमन्त शिशिरयोः
समानेन तावान् संवत्सरः संवत्सरः प्रजापतिः।।

अर्थात् प्रजापति सत्रह हैं। बारह महीने और पाँच ऋतुएँ हैं। हेमन्त और शिशिर दोनों के समान होने से (उन्हें एकीकृत करके पाँच ऋतुएँ कही गयी हैं) इतना काल संवत्सर (वर्ष) का होता है। और प्रजा का पालन करने से संवत्सर प्रजापति हैं।

मास – ऋतु से छोटे कालमान को मास कहा गया है। वैदिक साहित्य में सारे कालमान प्राकृतिक हैं। चैत्र मास में सूर्यास्त के पश्चात् पूर्वी क्षितिज पर चित्रा नक्षत्र उदित होता है तथा सम्पूर्ण रात्रि दृष्टिगोचर भी होता है। चैत्र मास की पूर्णिमा चित्रा नक्षत्र में होती है। इसी कारण इस मास को वैदिक साहित्य में चित्रा पूर्णमासी कहा है। शेष वैशाख आदि मासों को विशाखा पूर्णमासी, ज्येष्ठा पूर्णमासी, अषाढ़ा पूर्णमासी, श्रावण पूर्णमासी आदि नाम रखे गये हैं। इन्हीं नामों को परवर्ती काल में चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण आदि कहा जाने लगा। चूँकि चन्द्रमा एक सौर वर्ष में १२ बार पूर्ण होता है अतः ऋषियों में १ संवत्सर में १२ मास माने हैं। एक चान्द्रमास लगभग २९ दिन का होता है अतः एक चान्द्रवर्ष लगभग ३५४ दिन का होगा किन्तु सौरवर्ष लगभग ३६५ दिनों का होता है। दोनों में लगभग ११ दिनों का अन्तर पड़ता है। यही अन्तर तीन वर्षों में ३२, ३३ दिनों का एक मास के तुल्य हो जाता है। इसी को अधिक मास या पुरुषोत्तम मास कहा जाता है। तैत्तिरीय संहिता ४।४।११ में इन नामों का उल्लेख ऋतुओं के साथ मिलता है –

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू। शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू।
नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू। इषश्चोर्जश्च शारदावृतू।
सहश्च सहस्यश्च हैमान्तिकावृतू । तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू।।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी इनका नाम अलग ढंग से वर्णित है –

अरुणोऽरुणरजाः पुण्डरीको विश्वजित् अभिजित् आर्द्रः
पिन्वमानोऽन्नवान् रसवान् इरावान् सर्वौषधः संभरो महस्वान्।।

(तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१०।१)

बारह मासों के वैदिक नाम इस प्रकार हैं –

१. चैत्र	मधु	अरुण	बाज
२. वैशाख	माधव	अरुणरज	प्रसव
३. ज्येष्ठ	शुक्र	पुण्डरीक	अपिज
४. आषाढ़	शुचि	विश्वजित्	क्रतु
५. श्रावण	नभ	अभिजित्	वसु
६. भाद्रपद	नभस्य	आर्द्र	अहर्पति
७. आश्विन	इष	पिन्वमान्	मुग्धाह्व

८. कार्तिक	ऊर्ज	अन्नवान्	वैनंशिन
९. मार्गशीर्ष	सह	रसवान्	आत्यायन
१०. पौष	सहस्य	इरावान्	भौवन
११. माघ	तप्य	सर्वौषध	भुवनपति
१२. फाल्गुन	तपस्य	संभर	अधिपालक
१३. अधिकमास	मलिम्लुच	महस्वान्	प्रजापति

तेरहवें अधिकमास के सन्दर्भ में ऋग्वेद १।२५।८ का मन्त्र द्रष्टव्य है जिसमें कहा गया है कि वे धृतनियम वरुण, प्रजाओं के उपयोगी बारह मासों को तथा तेरहवें अधिकमास को भी जानते हैं।

वेदमासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः । वेदा य उपजायते।।

अथर्ववेद ५।६।४ में अधिकमास को देवराज इन्द्र का गृह कहा गया है–

त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः।

पक्ष – मास से छोटा कालमान पक्ष है। यह लगभग १५ दिनों का होता है। वैदिक साहित्य में इसका वर्णन मिलता है। पक्षों को वेद में अर्धमास नाम से कहा गया है।

यो ह वा अर्धमासानां नामधेयानि वेद।

अथर्ववेद के सृष्टिप्रकरण में पक्ष शब्द का स्पष्टतः उल्लेख है।

मासो वै प्रजापतिः। तस्य कृष्णपक्ष एव रविः शुक्ल प्राणः।

तिथि – पक्ष से छोटा कालमान तिथि है। बह्वृच ब्राह्मण में तिथि शब्द का प्रयोग हुआ है जो इस प्रकार है–

यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथिः।

अर्थात् जिसमें चन्द्रमा उदित एवं अस्त होता है उसे तिथि कहते हैं। सूर्य एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक १ अंश चलता है और चन्द्रमा १३ अंश। जितने समय में दोनों में १२ अंश का अन्तर होता है वही एक तिथि का मान है। सम्भव है कि वेद काल में तिथि शब्द का विशेष प्रचार न रहा हो किन्तु पूर्णिमा एवं अमावस्या के लिए पञ्चदशी शब्द का प्रयोग तैत्तिरीय ब्राह्मण में आया है।

चन्द्रमा वै पञ्चदशः। एष हि पञ्चदश्यामपक्षीयते।
पञ्चदश्यामापूर्यते ।। (तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।१०)

अर्थात् पञ्चदशी में चन्द्रमा क्षीण होता है तथा पञ्चदशी में पूर्ण होता है। इस पञ्चदशी से ज्ञात होता है कि उस समय प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया आदि नाम प्रचलित रहे होंगे। ये पहले प्रथम आदि रात्रियों की वाचक रही होंगी बाद में तिथि वाचक हो गयी होंगी। साम विधान ब्राह्मण में भी कृष्ण चतुर्दशी, कृष्ण पंचमी तथा शुक्ल चतुर्दशी शब्द प्रयुक्त हैं। शतपथ ब्राह्मण में अष्टका तथा उदृष्ट शब्द आये हैं जो अष्टमी एवं प्रतिपदा के वाचक प्रतीत होते हैं। ऋग्वेद में दर्श पौर्णमास यज्ञ का उल्लेख है। दर्श शब्द अमावस्या के लिए प्रयुक्त है। वेदों में चतुर्दशी से युत अमावस्या को सिनीवाली तथा प्रतिपदा से युत होने पर कुहू इसी प्रकार चतुर्दशी से युत पूर्णिमा को अनुमति तथा प्रतिपदा से युत पूर्णिमा को राका कहा गया है।

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा।
जुषस्व हव्यमाहुत प्रजां देवि दिदिड्ढि नः।।
कुहू देवीं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि।।

(अथर्ववेद ७।४६,४७।१)

वार – वेदाङ्ग ज्योतिष में वारों का नाम है – वार शब्द का अर्थ सप्ताह के प्रत्येक दिन से है जिसका नाम उस दिन के स्वामी ग्रह के नाम पर रखा गया है। संस्कृत व्याकरण में वृ धातु से घञ् प्रत्यय के योग से निष्पन्न वार शब्द समूह अथवा क्रमशः का सूचक है। ये सात वार यद्यपि वैदिक साहित्य में उल्लिखित नहीं हैं तथापि स्मृति ग्रन्थों में इनका नाम क्रमबद्ध रूप से पाया जाता है। याज्ञवल्क्य स्मृति का यह श्लोक –

रविः सोमस्तथा भौमो बुधो गीष्पतिरेव च।
शुक्रः शनैश्चरश्चैवं वाराः सप्त प्रकीर्तिताः।।

वेदों में वार के लिए वासर शब्द का प्रयोग मिलता है। ऋग्वेद ८।६।३० में वासर शब्द का प्रयोग वार अर्थ में किया गया है। यह अर्थ सायणाचार्य को अभिप्रेत है।

आदि प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्यश्यन्ति वासरम्।
परो यदिध्यते दिवा।

वार शब्द अति प्राचीन है और यह ग्रहों की कक्षाओं के क्रमसे ही परिगणित है। यदि वार शब्द आधुनिक होता अथवा वैदिक काल के पश्चात् का होता तो सात के स्थान पर नौ वार होता। यह सप्ताह न होकर नवाह के नाम से प्रचलित होता।

नक्षत्र – वैदिक ज्योतिष के मूलाधार ये नक्षत्र ही हैं। वेद में नक्षत्रों को उडु, ऋक्ष, नभ, रोचना तथा स्तृ पर्याय से भी कहा गया है। ऋग्वेद १।५०।२ तथा ६।६७।६ में जिस लोक का कभी क्षय नहीं होता उसे नक्षत्र कहा गया है। यजुर्वेद में नक्षत्रों को चन्द्रमा की अप्सरा कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि सब नक्षत्र देवगृह हैं। जो यह जानता है वह गृही और सुखी होता है। ये रोचन हैं, शोभन हैं तथा आकाश को रुचिर बनाते हैं। इनके बीच में सूक्ष्म जल का समुद्र है, ये उसे तरते हैं, तारते हैं इसीलिए तारा और तारका कहे जाते हैं।

देवगृहा वै नक्षत्राणि। य एवं वेद गृही भवति।
रोचन्ते रोचना दिवि। सलिलं वो इदमन्तरासीत्।।
यदतरस्तत्तारकाणां तारकत्वम्। (तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।२)

तैत्तिरीय संहिता एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण में अनेक स्थलों पर २७ नक्षत्रों का उनके स्वामियों सहित उल्लेख है। चन्द्रमा को नक्षत्रेश भी कहा गया है। नक्षत्राणामधिप्नः चन्द्रः। चन्द्रमा को नक्षत्रमण्डल की एक परिक्रमा करने में लगभग २७-१/२ दिन लगते हैं इसीलिए नक्षत्र २७ या २८ माने गये हैं। चूँकि पक्ष २४ हैं और नक्षत्र २७ इसीलिए २७ नक्षत्रों के २४ ही नाम रखे गये थे किन्तु फाल्गुनी, आषाढ़ा और भाद्रपदा तीन नक्षत्रों के दो दो भाग करके पूर्वा एवं उत्तरा तीन नक्षत्र और बढ़ाकर २७ की संख्या कर दी गयी। उत्तराषाढ़ा एवं श्रवण की कुछ घटियों से अभिजित नक्षत्र का नाम देकर २८ नक्षत्र भी कहीं-कहीं ज्योतिष शास्त्र में प्रयुक्त होने लगे। इन वैदिक नक्षत्रों का विस्तृत वर्णन अगले अध्याय में किया जायगा।

योग एवं करण – ज्योतिषशास्त्र में काल के दो अवयवों का मेल ही योग कहा गया है तथा तिथि के अर्धांश को करण कहा गया है। वेदाङ्ग ज्योतिष के अथर्व ज्योतिष में योग एवं करण का उल्लेख प्राप्त होता है। इसका प्रयोग अथर्व ज्योतिष की टीका में पढ़ें। अधिक विस्तार के भय से पिष्टपेषण करना समीचीन नहीं होगा। अन्यत्र उपलब्ध वैदिक साहित्य में ज्योतिष के ये दोनों अवयव प्राप्त नहीं होते।

मुहूर्त – मुहूर्त शब्द संस्कृत भाषा में हुर्छ् धातु से क्त प्रत्यय तथा धातोः पूर्व मुट् च के योग से बना है जिसका अर्थ होता है समय का अल्प अंश। मुहूर्त शब्द प्राचीन काल से ही तीन अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है १. काल का अल्पांश २. दो घटी (४८ मिनट) ३. वह काल जो किसी भी कृत्य के लिए योग्य हो। कालः शुभ क्रियायोग्यो मुहूर्त इति कथ्यते। निरुक्तकार यास्क ने मुहुः ऋतुः इति मुहूर्तः कहकर

मुहूर्त शब्द का निर्वचन किया है। ऋतुः का निर्वचन ऋतुः अर्ते गतिकर्मणः, तथा मुहुः का मूढः इव कालः। अर्थात् वह काल जो शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। मुहूर्त शब्द वैदिक साहित्य में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। एक चान्द्रमास में लगभग ३० दिन होते हैं इसलिए ३० तिथियाँ मानी गयी हैं। एक मास में दिन एवं रात्रि की संख्या ६० होती है अतः वेद में ६० मुहूर्तों का उल्लेख प्राप्त होता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है कि जो व्यक्ति मासों के मधु माधव पक्षों के पवित्र सहस्वान् दिवसों के संज्ञान विज्ञान तथा रात्रियों के तृप्ति पूर्णा आदि नामों को जानेगा उसे कभी भी पीड़ा नहीं होगी।

इसी ब्राह्मण ग्रन्थ में विदेहराज जनक का कथन है कि जो मनुष्य अहोरात्रों का चिन्तन करता है वह उनका रहस्य जानकर पापरहित होता हुआ इस लोक और स्वर्गलोक को जीत लेता है।

यो ह वा अहोरात्राणां नामधेयानि वेद संज्ञानं विज्ञानं दर्शा दृष्टेति नाहो रात्रेष्वार्तिमार्च्छति य एवं वेद।।

जनको ह वैदेहोऽहोरात्रैः समाजगाम।
तं होचुर्यो वा अस्मान् वेद विजहत्पाप्मानमेति अभि स्वर्गं लोकं जयति।।

(तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१०।१ एवं ९)

शुक्ल पक्ष के १५ दिनों के नाम इस प्रकार हैं –

संज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं जानदभिजानत्।
संकल्पमानं प्रकल्पमानं उपकल्पमानं उपक्लृप्तं क्लृप्तम्।
श्रेयो वसीय आयत् संभूतं भूतम्।।

शुक्ल पक्ष की १५ रात्रियों के नाम इस प्रकार हैं–

दर्शा दृष्टा दर्शता विश्वरूपा सुदर्शना।
आप्यायमाना प्यायमाना प्याया सूनृता इरा।
आपूर्यमाणा पूर्यमाणा पूरयन्ती पूर्णा पूर्णमासी।।

कृष्णपक्ष के १५ दिनों के नाम इस प्रकार हैं –

प्रस्तुतं विष्टुतं संस्तुतं कल्याणं विश्वरूपम्।
शुक्रं अमृतं तेजस्वि तेजः समृद्धम्।
अरुणो भानुमान् मरीचिमान् अभितपत् तपत् तपस्वत्।।

कृष्णपक्ष की १५ रात्रियों के नाम इस प्रकार हैं –

सुता सुन्वती प्रसुता सूयमाना अभिसूयमाना।
प्रीती प्रपा सम्पा तृप्तिः तर्प्नयन्ती।
कान्ता काम्या कामजाता आयुष्मती कामदुघा।।

ऋग्वेद ३।३३।५ में मुहूर्त शब्द का प्रयोग करते हुए ऋषि का कथन है कि हे जल से पूर्ण नदियो! मेरे सोम सम्पन्नता के कार्य की बात सुनने के लिए मुहूर्त भर के लिए चलने से रुको।

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरूप मुहूर्तमेवैः।
प्रसिन्धुमच्छा बृहती मनीषाऽवस्युरहवे कुशिकस्य सूनुः।।

प्रतिमुहूर्त – वेदों में दिन एवं रात्रि के ६० मुहूर्तों के नाम शोभन, शोभमान, दाता, प्रदाता, मोद, प्रमोद, आनन्द, अमृता, समृद्ध, तेजस्वी और शम्भु आदि हैं। एक मुहूर्त में १५ प्रतिमुहूर्त होते हैं। उनके नाम हैं – इदानीं, तदानीं, एतर्हि, क्षिप्र, अचिर, आशु, निमेष, फण, द्रवन् तथा अति द्रवन्, त्वरन्, त्वरमाण, आशु, अशीयान, जव।

वेद के साठ मुहूर्त

शुक्ल पक्ष		कृष्ण पक्ष	
दिन	रात्रि	दिन	रात्रि
चित्र	दाता	प्रस्तुत	अभिशास्ता
केतु	प्रदाता	विष्टुत्	अनुमन्ता
प्रभान्	आनन्द	संस्तुत	आनन्द
आभान्	मोद	कल्याण	मोद
संभान्	प्रमोद	विश्वरूप	प्रमोद
ज्योतिष्मान्	आवेशन	शुक्र	आसादयन्
तेजस्वान्	निवेशन	अमृत	निसादयन्
आतपन	संवेशन	तेजस्वी	संसादन
तपन	संशान्त	तेज	सादन
अभितपन्	शान्त	समृद्ध	संसत्र
रोचन	आभवन्	अरुण	आभू
रोचमान	प्रभवन्	भानुमान्	विभू
शोभन	संभवन्	मरीचिमान्	प्रभू
शोभमान	संभूत	अभिजित्	शंभू
कल्याण	भूत	तपस्वान्	भुव

ये सभी वैदिक मुहूर्त प्रत्येक दिन और रात्रि में क्रमशः आते रहते हैं। इसमें गणित की आवश्यकता नहीं पड़ती। अथर्व ज्योतिष में दिन में १५ मुहूर्त माने गये हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं – रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, सावित्र, वैराज, विश्वावसु, अभिजित्, विश्वावसु, वैराज, सावित्र, सारभट, मैत्र, श्वेत तथा रौद्र।

कला-काष्ठा – नारायण उपनिषद् में मुहूर्त, कला एवं काष्ठा नामक सूक्ष्म कालमानों का उल्लेख है।

सर्वे निकेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
कला मुहूर्ताः काष्ठाश्चाहोरात्रश्च सर्वशः।।

(नारायण उपनिषद् अनुवाक १)

इन कला एवं काष्ठा का परिमाण क्या है, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता।

✦✦✦

अध्याय २

ग्रहों का वैदिक स्वरूप

ग्रह शब्द ग्रह् धातु से अच् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। इसकी व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जाती है। गृह्णाति गति विशेषान् इति तथा गृह्णाति फलदातृत्वेन जीवान् इति। अर्थात् जो प्राणियों को उनके कर्मानुसार फल प्रदान करते हैं, वे ग्रह हैं। शंकर बालकृष्ण दीक्षित जी ने लिखा है कि नक्षत्र देवों के गृह हैं। यह वाक्य बड़े महत्त्व का है। यहाँ नक्षत्रों से संचार करनेवाले प्रत्यक्ष प्रकाशमान ग्रहों को ही देव कहा गया है। मालूम होता है "देवगृहा वै नक्षत्राणि" वाक्य के आधार पर ही गृह्णाति इति ग्रहः व्युत्पत्ति द्वारा शुक्रादि तेजोमय देवताओं को ग्रह कहने लगे होंगे। यद्यपि वैदिक साहित्य में सप्तग्रह या नवग्रह शब्दों का प्रयोग नहीं है तथापि नवग्रहों में सूर्य, चन्द्रमा का उल्लेख अनेक बार हुआ है। राहु, केतु छाया ग्रहों का भी उल्लेख मिलता है, शेष पाँच ग्रह मंगल आदि का उल्लेख अन्य देवता आदि के रूप में हुआ है।

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः।
देवत्रा नु प्रावच्यं सधीचीनानि वावृदुवित्तं मे अस्य रोदसी।।

(ऋग्वेद १।१०५।१०)

अर्थात् ये जो महाप्रबल पाँच विस्तीर्ण द्युलोक के मध्य में रहते हैं, उनका मैं स्तोत्र बना रहा हूँ। एक साथ आनेवाले होते हुए भी वे सब चले गये हैं।

ऋग्वेद १०।५५।३ में एक मन्त्र द्रष्टव्य है जिसमें पंच देवों का उल्लेख है।

आ रोदसी अपृणादोत मध्यं पञ्च देवा ऋतुशः सप्तसप्त।
चतुस्त्रिंशता पुरुषा विचष्टे सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन।।

अर्थात् आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष को इन्द्र (सूर्य) ने ही अपने शरीर से सम्पन्न किया है। वे ही पंच देवों को अपने तेज द्वारा धारण करते हैं। उन्होंने सात तत्त्वों को अपने विभिन्न कार्यों में नियुक्त किया। इन सब कार्यों में उनके सहायक लगे रहते हैं। उपर्युक्त दोनों मन्त्रों में पंच देव से पाँच भौमादि ग्रह ही ध्वनित होते हैं।

अथर्ववेद में ग्रहों के साथ राहु एवं केतु का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वाञ्छमन्तकः।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः।।

(अथर्ववेद १९।९।७)

अर्थात् मित्र, वरुण, सूर्य, अन्तक, पृथिवी और अन्तरिक्ष में होनेवाले उत्पात और आकाश में विचरण करनेवाले ग्रह हमारे लिए शान्ति करनेवाले हों।

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्याश्च राहुणा।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः।।

(अथर्ववेद १९।९।१०)

अर्थात् चन्द्रमा, आदित्य, राहु तथा धूमकेतु का अनिष्ट तथा रुद्र के तीक्ष्ण सन्ताप देनेवाले उपद्रव यह सभी कल्याण करनेवाले हों।

सूर्य – इस ब्रह्माण्ड में अगणित नीहारिकाएँ, तारा समूह, धूमकेतु, ग्रह, उपग्रह आदि निरन्तर भ्रमणशील हैं और इन सबका प्रभाव न केवल मानवों पर अपितु समस्त चराचर पर पड़ा करता है। सूर्य ग्रहों का अधिपति तथा चराचर की आत्मा है। जैसा कि वैदिक ऋषि कहता है। सूर्य ईश्वरीय विभूति है क्योंकि वह स्वयं प्रकाशमान ज्योतिःस्वरूप ब्रह्माण्ड नायक साक्षात् ब्रह्म की मूर्ति है। वास्तव में सूर्य की किरणों के संयोग से ही सम्पूर्ण संसार का जीवन रहता है। यजुर्वेद ७।४२ में कहा गया है –

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरीक्षँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।।

अर्थात् पूजनीय रश्मियों का आश्चर्यजनक समूह तथा मित्र, वरुण और अग्नि को प्रकाश प्रदान करनेवाला सूर्य ही पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक को अपनी रश्मियों से व्याप्त कर रहा है। यह समस्त स्थावर और जंगम जगत् की आत्मा है। यही कारण है कि परवर्ती काल में ज्योतिर्विदों ने सूर्य को आत्मा का कारक माना है। वेदों में ग्रहों के लिए अधिकांश स्थलों पर देवता शब्द से ही कहा गया है।

तदंशका ज्योतिष्मन्तो ग्रहा वै देवाश्च।

सभी भुवनों का आधार सूर्य है। इसे ऋग्वेद में इस प्रकार कहा गया है –

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनाम।
त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनानि तस्थुः।।

(ऋग्वेद १।१६४।२)

अर्थात् उस एक चक्रवाले रथ में सात घोड़े जुड़े हैं। सात नामों का एक ही घोड़ा रथ खींचता है। उस चक्र में तीन नाभियाँ हैं। वह अक्षय एवं अप्रतिबन्ध है और उसी के आधार पर सब भुवन स्थित हैं। वस्तुतः यह मन्त्र प्रतीकात्मक है। सूर्य के रथ, सात घोड़े, तीन नाभि सभी प्रतीक के रूप में कहे गये हैं क्योंकि इसी वेद के एक मन्त्र में सूर्य को अनश्व तथा रथ आदि रहित भी बताया गया है। यह वास्तविक वर्णन है।

अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत् पतयदूर्ध्वसानुः।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः।।

(ऋग्वेद १।१५२।५)

अर्थात् बिना घोड़े और बिना रास (लगाम) वाला सूर्य प्रकट होकर ऊँचे चढ़ता और शब्द करता है। मित्रावरुण के स्थान रूप सूर्य की मनुष्यगण स्तुति करते हैं।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि उस सूर्य को संसार को दिखाने के लिए किरणें ऊपर लाती हैं।

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्।। (यजुर्वेद ८।४१)

वास्तव में जब हम सूर्य का उदय देखते हैं उस समय सूर्य का उदय नहीं होता। अर्थात् क्षितिज पर जब तक सूर्य नहीं आता, क्षितिज से बहुत नीचे रहता है तभी भू वायु के ऊपरी स्तर पर सूर्य किरणें गिरती हैं। अतः पहले किरणें ऊपर आती हैं पुनः सूर्य निकलता है।

सूर्य में काले धब्बे हैं– यह वर्तमान विज्ञान द्वारा सूर्य की फोटो लेकर सिद्ध कर दिया गया है। वस्तुतः इसका ज्ञान बहुत पहले वैदिक ऋषियों को था जैसा कि ऋग्वेद के सवितृ सूक्त का कथन है –

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्येन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।।

ऋतुओं का कारण सूर्य ही है। इस विषय में ऋग्वेद का यह मन्त्र जिसमें कहा

गया है कि यह अग्नि तीन जन्मवाला है। एक समुद्र में, एक द्युलोक में तथा एक अन्तरिक्ष में सूर्य रूप अग्नि ने ऋतुओं का विभाग कर पृथिवी के प्राणियों के निमित्त पूर्व दिशा के पश्चात् क्रमपूर्वक दिशाओं को बनाया –

त्रीणि जाना परिभूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवाना मृतून् प्रशासद वि दधावनुष्ठु।।

ऐतरेय ब्राह्मण २।१७ में वायु का भी कारण सूर्य को ही बताया गया है। लिखा है कि वह होता सूर्य के लिए यजन करता है। सूर्य का यजन करने से उत्तर–पश्चिम की ओर से बहुत वायु चलती है क्योंकि वह वायु सूर्य से उत्पन्न होकर बहती है।

सवितारं यजति यत्सवितारं यजति तस्मादुत्तरतः पश्चाद यम्।
भूयिष्ठं पवमानः पवते सवितृप्रसूतो ह्येष एतत्पवते।।

ग्रहों की कक्षा का निर्धारण करता हुआ ऋषि कहता है कि चन्द्रमा अन्तरिक्ष में सूर्य से नीचे है। चन्द्रमा (पक्षी) अन्तरिक्ष में सञ्चार करता है।

सुपर्णा एवं आसते मध्य आरोचने दिवः। ते सेधन्ति पथो
वृकं तरन्तं य हवतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी।।

(ऋग्वेद १।१०५।११)

सूर्य कभी उदित अथवा अस्त नहीं होता। जो अस्त हुआ दिखाता है वह दिन के अन्त में जाकर अपने को उल्टा घुमाता है इधर रात करता है उधर दिन।

स वा एष न कदाचनास्तमेति नोदेति तं यदस्तमेतीति
मन्यन्तेह्न एव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यते।।

(ऐतरेय ब्राह्मण १४।६)

वेदों में सूर्य ही विष्णु हैं। इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। यही सूर्य विष्णुरूप में उदयकाल में वामन रहते हैं पर मध्याह्न में तेजस्वी और विराट् होकर अन्धकार रूपी बलि को पाताल भेज देते हैं। वे सूर्योदय, मध्याह्न तथा सूर्यास्त रूपी तीन पगों में पूरा आकाश नाप लेते हैं। चारों दिशाएँ सूर्य की चार भुजाएँ हैं। ये चतुर्भुज हैं। सूर्य की किरणों से अमृत बरसता है। निवेशयन्नमृतम्। सूर्य स्वर्णिम सिंहासन पर स्थापित है– हिरण्यमयेन सविता।

सूर्य ही ब्रह्मा हैं। चराचर जगत् सूर्य से ही उत्पन्न होता है। **नूनं जनाः सूर्येण प्रसूतः**। और यही **प्राणः प्रजानाम्** अर्थात् सूर्य ही प्राण है।

वेदों में सूर्य को ही इन्द्र कहा गया है।

इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरणं सगरस्य बुध्नात्।

यहाँ इन्द्र शब्द सूर्य का बोधक है। इन्द्र शब्द अन्तरिक्ष के देवता विद्युत् के लिए प्रयुक्त है और द्युलोक के देवता सूर्य के लिए भी। इन्द्र का अर्थ सायण ने सूर्य भी किया है। वेदों में दो विशेषण इन्द्र के लिए आये हैं १. सहस्वान् २. मरुत्वान्। इन्द्र अन्तरिक्ष में स्थित वायु का विद्युत् स्वरूप है और सहस्वान् इन्द्र सूर्य रूप है। यहाँ भी यह सूक्ष्म विभाग है कि सूर्य मण्डल को द्युलोक कहा जाता है और उसमें प्रतिष्ठित प्राण शक्ति देवता को इन्द्र कहा जाता है। वेदों में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। शतपथ ब्राह्मण के १४वें काण्ड में कहा गया है –

यथाग्निगर्भा पृथिवी तथा द्यौरिन्द्रेण अस्तु गर्भिणी।

जैसे पृथ्वी के गर्भ में अग्नि है वैसे द्युलोक के गर्भ में इन्द्र है। इसका अर्थ इन्द्र पद को सूर्य ही बताना है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में जहाँ 'वरांसि' शब्द आया है इसका अर्थ आचार्य माधव ने तेज किया है तथा सत्यव्रत सामश्रमी ने नक्षत्रमण्डल अर्थ किया है। सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार है –

स सूर्यः पर्युरू वरांसीन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा।
अतिष्ठन्तमपश्यं न सर्गं कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान।।

(ऋग्वेद १०।८९।२)

अर्थात् सूर्य रूप इन्द्र सब महान् नक्षत्रमण्डल को रथचक्र की भांति घुमाता है।

सूर्यमण्डल ही सबके मध्य में है और सबका आकर्षण करता है –

वैश्वानर नाभिरसिक्षितीनाम् विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य।

(ऋग्वेद १०।५।३)

ऋग्वेद के ४।५३।२ और १।१६४।२ आदि मन्त्रों में सूर्य का नाभिस्थान पर अर्थात् मध्य में रहना और सब लोकों को धारण करना स्पष्ट रूप से कहा गया है–

वेदों में मातृ शब्द पृथिवी और पितृ शब्द द्यु का वाचक है –

तिस्रोमातृस्त्रीन् पितृत् विभ्रदेक ऊर्ध्वस्तथौ नेममवग्लापयन्ति।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमयिष्वमिन्वाम्।।

(ऋग्वेद १।१६४।१०)

अर्थात् एक ही सूर्य तीन पृथिवी और तीन द्युलोकों को धारण करता हुआ ऊपर स्थित है। इसको कोई भी ग्लानि को प्राप्त नहीं करा सकता अर्थात् दबा नहीं सकता। उस द्युलोक के पृष्ठ पर सभी देवता संसार के जानने योग्य सर्वत्र व्याप्त न होनेवाली वाक् को परस्पर बोलते हैं। ऋग्वेद का एक अन्य मन्त्र भी द्रष्टव्य है–

तिस्रो भूमिर्धारयन् त्रींरूत द्यून त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम्।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारू।।

(ऋग्वेद १।२७।८)

अर्थात् सूर्य तीन भूमि और तीन द्युलोकों को धारण करते हैं। यज्ञ में तीन प्रकार के व्रत अर्थात् कर्म हैं। हे अर्यमा, वरुण, मित्र नामक आदित्य देवताओ! ऋत से तुम्हारा सुन्दर अतिविशिष्ट महत्त्व है।

इस प्रकार अनेक मन्त्रों में तीन भूमि, तीन द्युलोकों का धारण सूर्य के द्वारा बताया गया है। ये तीन-तीन की सख्या ६ ग्रहों को सूचित करती है। पृथिवी और सूर्य के मध्य रहनेवाले चन्द्रमा, बुध और शुक्र तीन भूमियों के नाम से कहे गये हैं और द्युलोक के नाम से तीन ग्रह जो सूर्य से ऊपर हैं मंगल, गुरु और शनि हैं। इन सभी ग्रहों का धारण, आकर्षण सूर्य के द्वारा सिद्ध हो जाता है।

पृथ्वी के भ्रमण का भी संकेत ऋग्वेद में प्राप्त होता है। पृथिवी अपनी धुरी पर घूमती है और उसका कारण सूर्य है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में स्पष्टतया कहा गया है।

यज्ञ इन्द्रमवर्द्धयद्। यद् भूमिं व्यवर्त्तयत्।
कुर्वाण ओपशं दिवि। (ऋग्वेद ८।१४)

अर्थात् यज्ञ इन्द्र को बढ़ाता है, इन्द्र द्युलोक में ओपश अर्थात् शृंग (वेणी) बनाता हुआ पृथिवी को विवर्तित करता है अर्थात् घुमाता है। इससे सिद्ध होता है कि किरणों के आघात से पृथिवी का घूमना इस मन्त्र में प्राप्त होता है।

वैदिक साहित्य के अनुसार आकाश ही क्षीरसागर है, सूर्य ही विष्णु हैं, उसकी किरणें ही सुर हैं, मेघ ही असुर हैं, दोनों का संघर्ष ही समुद्र मन्थन है, उससे उत्पन्न जल ही अमृत है। मेघों का भागना ही अमृत की चोरी है। विद्युत् ही मोहिनी रूपी विष्णु है। वर्षा ही शिव का वीर्यपात है, सूर्य का प्रकाश ही लक्ष्मी है, सूर्य की किरणें ही वासुकी हैं। सूर्य की किरणें भूमिस्थ जल को ऊपर ले जाती हैं, उसे घृत बना देती हैं और फिर उससे पृथ्वी को सींचती हैं। सूर्य ही पक्षी हैं, गरुड़ हैं।

उनके पंख सोने के हैं सुपर्ण हैं, वह आकाश रूपी समुद्र में रहते हैं। उर्वशी उनकी अप्सरा है और वह नदियों के साथ आकर जल देती है। सूर्य समुद्र मन्थन कराता है। अमृत बरसाता है और विष भी। वह विष सूर्य के काले धब्बों, उल्काओं और धूमकेतुओं में है। अनेक विषधर सर्प (धूमकेतु) सूर्य के चारों ओर घूमते हैं।

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।
घृतेन पृथिवी व्युद्यते।। (ऋग्वेद १।१६४।४७)

नदीभिरुर्वशी (ऋग्वेद ५।४।१९)

नदीनामपावृणोद् गन्धर्वः।। (ऋग्वेद १०।३९।६)

सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरसः।। (यजुर्वेद)

अश्वमेध यज्ञ के अश्व का पूर्वार्द्ध काला और उत्तरार्द्ध श्वेत रहता है तथा उसके ललाट पर चिह्न रहता है। वह वर्ष भर घूमता है और यज्ञ में १२-१३ रस्सियों से बाँधा जाता है तथा रस्सियों में अन्य पशु बाँधे जाते हैं। राजा की चार रानियाँ सौ-सौ दासियों के साथ आती हैं। इसके पूर्व दिग्विजय में युद्ध और धन का अपहरण होता है। भाष्यकारों का कथन है कि यह वर्ष और वर्षा का वर्णन है। सूर्य ही राजा है वह वर्ष भर घूमता है, उषा ही अश्व का ललाट चिह्न है, रात्रि ही काली पूर्वार्द्ध है, दिन ही श्वेत उत्तरार्द्ध है। १२, १३ मास ही रस्सियाँ हैं। ग्रह आदि ही उनमें बँधे पशु हैं और चार दिशाएँ ही चार पत्नियाँ हैं। सूर्य के भ्रमण में मेघ बाधक होते हैं। उनके जल का अपहरण ही धन का अपहरण है और युद्ध है। सम्पूर्ण सौर परिवार सूर्य की रश्मियों से बँधा है और यह सृष्टि यज्ञ है।

छान्दोग्य उपनिषद् में सूर्य को मधु (अमृत) का छत्ता बताया गया है। आदित्य की पूर्व दिशावाली किरणें उसके पूर्व की मधु नाड़ियां हैं, ऋग्वेद रूपी भ्रमर हैं, आप (जल) ही अमृत है। उनसे यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नादि रसों की उत्पत्ति होती है। यह आदित्य का रोहित रूप है।

आदित्यो देवमधु तस्य द्यौरेव तिरश्चीनवंशो मरीचयः पुत्राः।
तस्य ये प्रांचो रश्मयस्ता एव प्राच्यो मध्युनाड्य ऋच एष

मधुकृत ऋग्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपः। तस्याभितप्तस्य।
यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यं रसोऽजायत्। एतत् रोहितं रूपम्।।

(छान्दोग्य उपनिषद् अध्याय ३)

सम्पूर्ण नक्षत्र, ताराएँ तथा गृह आदि का प्रकाशक सूर्य ही है। इस सन्दर्भ में ऋग्वेद का एक मन्त्र द्रष्टव्य है –

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्य विश्वमुदियर्षि भानुना।
तेनास्मिद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्ष्वप्न्यं सुव।।

समस्त रोगों को शमन करने की सामर्थ्य सूर्य में ही है अतः पौराणिक काल में आरोग्यं भास्करादिच्छेत् कहा जाने लगा था। इस विषय में ऋग्वेद का यह मन्त्र दर्शनीय है –

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति।।

(ऋग्वेद १।३५।९)

अर्थात् स्वर्णिम हाथवाले सर्वद्रष्टा सूर्य आकाश और पृथिवी के मध्य गति करते हैं। वे रोगादि बाधाओं को मिटाकर अन्धकारनाशक तेज से आकाश को व्याप्त करते हैं।

शतपथ ब्राह्मण (२।१।३।१-९) का कथन है कि सूर्य ही काल विभाजक है। सूर्य ही ३६६ दिनात्मक संवत्सर का निर्माण करता है। वही ऋतु एवं अयनों को करनेवाला है।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में जिसमें वरुण द्वारा एक विस्तृत मार्ग का निर्माण तथा सूर्य द्वारा उस मार्ग का अनुगमन करना बताया गया है। सम्भवतः यह मार्ग ही सूर्य का क्रान्ति वृत्त, पथ या राशिमण्डल है।

उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्।।

(ऋग्वेद १।२४।८)

अर्थात् वरुण ने सूर्य के गमन करने के लिए विस्तृत मार्ग बनाया है तथा निराश्रय आकाश में सूर्य के पैर रखने की व्यवस्था की है। हे वरुण! हमारे हृदय-जनित कष्टों को दूर करो।

अन्त में अथर्ववेद ९।५।९।१ के इस मन्त्र का जो सूर्य के लिए प्रयुक्त है इसका उल्लेख करके अन्य वैदिक ग्रहों की चर्चा करते हैं। मन्त्र इस प्रकार है –

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृत पृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्वपतिं सप्तपुत्रम्।।

आचार्य सायण इसका अर्थ इस प्रकार करते हैं–

सबको प्रकाश देनेवाला, सम्पूर्ण लोकों का पालक, स्तुति द्वारा यज्ञादि में आह्वान करने योग्य, सुप्रसिद्ध इन प्रत्यक्ष देव सूर्य का मध्यम भाई वायु सर्वव्यापक है। इन्हीं सूर्य का तीसरा भाई घृतपृष्ठ अग्नि है। इन तीनों में सर्वत्र फैलानेवाले सात किरण रूप पुत्रों के साथ सूर्यदेव को ही मैं विश्वपति (सबका स्वामी) जानता हूँ। इस अर्थ से सूर्य के सन्दर्भ में कुछ ज्योतिषीय संकेत भी प्राप्त होते हैं। यथा – वामस्य से स्पष्ट होता है कि सूर्य के ही प्रकाश से सभी जीवन प्राप्त करते हैं। सम्पूर्ण ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी, जीव, वनस्पति, चर, अचर सूर्याधीन हैं। पलित शब्द श्वेत केशों का द्योतक है अतः इससे सिद्ध होता है कि सूर्य सबसे प्राचीन है। होतुः शब्द से अनेक अर्थ निकलते हैं। सूर्य हमें वृष्टि जल प्रदान करते हैं। पृथ्वी से रस (जल) का हरण करते हैं। सभी ग्रहों, उपग्रहों के नाभि रूप केन्द्र स्थान में रहते हैं। सभी ग्रहों, उपग्रहों का आकर्षण करते हैं। ताप द्वारा वायु में गति उत्पन्न करके उसके द्वारा शब्द भी कराते हैं। विश्वपति का अर्थ प्रजाओं को उत्पन्न एवं पालन करनेवाला है। सप्तपुत्रम् शब्द का अर्थ सात रंगवाली किरणें हैं। भ्राता शब्द से ध्वनित है कि तीनों लोकों का स्वामी सूर्य है किन्तु उसने पृथ्वी स्थान का स्वामी अग्नि को तथा अन्तरिक्ष का स्वामी वायु को बनाया है।

इन बातों से यह सिद्ध हो जाता है कि चराचर की आत्मा, प्राणियों का उत्पादक, पालक, संहार, सम्पूर्ण भुवनों का आधार सूर्य ही है। सूर्य ही तिथि, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर युग, कल्प आदि का कारण है, किन्तु यह सूर्य अकेले ही इन सबका निर्माण नहीं करता अपितु इसमें वह एक अन्य पदार्थ का आश्रय लेता है वह है विवेच्य विषय का दूसरा ग्रह चन्द्रमा। वेदों में ऋतु का उत्पादक चन्द्रमा को भी कहा गया है। यथा –

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परियातो अध्वरम्।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्टे ऋतूं रन्यो विदधज्जायते पुनः।।

(ऋग्वेद १०।८५।१८)

अर्थात् ये दोनों अपनी शक्तियों से बालकों की तरह खेलते हुए आगे-पीछे विचरते हैं और यज्ञ में आते हैं। इनमें एक अर्थात् सूर्य सब लोकों को प्रकाशित करता है और एक अर्थात् चन्द्रमा ऋतुओं को उत्पन्न करता हुआ पुनः पुनः पैदा होता है। इससे सिद्ध होता है कि सूर्य और चन्द्रमा दोनों राजा हैं।

चन्द्रमा – चन्द्रमा को वैदिक साहित्य में सोम, चन्द्रमा, मास, शशि, विधु, अमृत किरण, हिमदीधित, चन्द्र आदि नामों से अभिहित किया गया है। इसे वेदों में मन भी कहा गया है।

चन्द्रमा मनसो जातः। चन्द्रमा से पृथिवी का क्षेत्रफल १३ गुना अधिक है। चन्द्रमा जिस नक्षत्र मण्डल के सीध में होता है उसी नक्षत्र में उस दिन स्थित मान लिया जाता है। इसीलिए तैत्तिरीय संहिता में 'नक्षत्राणि स्थ चन्द्रमासि श्रितानि' कहा गया है। चन्द्रमा एक स्थान से चलकर पुनः लगभग २७-१/३ दिनों में वहीं आ जाता है इसलिए एक नाक्षत्र मास २७ दिन १९ घटी का माना जाता है तथा नक्षत्र २७ अथवा २८ माने गये हैं। सूर्यमार्ग और चन्द्रमार्ग (क्रान्तिवृत्त) में लगभग सवा पाँच अंश का कोण बनता है। इसी क्रान्तिवृत्त से ग्रह या तारे की दूरी को ज्योतिष में शर कहा गया है। जिस तारे का शर सवा पाँच अंश से कम होता है उसे चन्द्रमा ढक देता है। इसी आच्छादन क्रिया को पिधान कहते हैं। यजुर्वेद में चन्द्रमा को आह्लादकारक तथा ऋग्वेद में अमृतवर्षी एवं सोम कहा गया है।

शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि। (यजुर्वेद ४।१८)

अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियम्। (यजुर्वेद १२।१०४)

चन्द्रे ज्योते (यजुर्वेद ८।४३)

चन्द्रमग्निं चन्द्ररथम्। (ऋग्वेद ३।३।५)

यच्छतु चन्द्रा उपमं नो (ऋग्वेद ७।३९।७)

यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन्धामन्नृतस्य।
मूर्धानाभा सोम वेन आभूषन्ती सोम वेदः।।

(ऋग्वेद १।४३।९)

वेदों में दो ही तत्त्व द्वारा जगत् की स्थिति बतायी गयी है। कहा गया है कि "अग्निसोमात्मकं जगत्"। वाक् अंश की प्रधानता के कारण सोम (चन्द्र) यही मन एवं वाणी है तथा प्राण की प्रधानता के कारण अग्नि (सूर्य) नाम व्यवहृत होता है। सोम सर्वत्र व्यापक है और वह अग्नि के द्वारा आकृष्ट होता है।

अग्नि (सूर्य) उसे अपनी ओर खींचकर अपने रूप में परिणत कर देता है। पुनः आकर्षण से बाहर होने पर वह सोमरूप हो जाता है। यही अमावस्या तिथि में दोनों का एक राशि में आना है। सोम का आधिक्य कहाँ-कहाँ होता है यह ऋग्वेद १।९१।२२ में कहा गया है।

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयंस्त्वं गाः।
त्वमा ततन्योर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ।।

हे सोम तुमने इन सब ओषधियों को उत्पन्न किया है। अर्थात् ओषधियों में तुम विशेष रूप से रहते हो। परवर्ती काल में सोम (चन्द्रमा) को ओषधिपति भी कहा जाने लगा। दुग्ध, दधि, घृत, तेल आदि में जो चिकनाई है वह सोम ही है। तेल में जो सोम है दीपक उसी का ग्रहण करता है। सूर्य के विषय में विज्ञान अन्वेषण द्वारा बताता है कि करोड़ों मन प्रकाश और उष्णता सूर्य से निकलती रहती है किन्तु उसकी पूर्ति कैसे होती है। जिस प्रकार दीपक जलानेवाला मनुष्य दीपक में तेल डालता है उस प्रकार सूर्य में तेल कौन डालता है। विज्ञान इस बात को आज तक नहीं बता सका किन्तु वेद कहता है कि "सोमेनादित्या बलिनः (ऋग्वेद १०।८५।२) अर्थात् सोम से ही आदित्य बलवान् है। सूर्य एवं चन्द्रमा का अमावस्या तिथि में समसूत्र में स्थिति ही दोनों को बल प्रदान करती है। यजुर्वेद ३२।१ में कहा गया है कि सूर्य ही पुरुष एवं सोम ही प्रकृति है।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः सः प्रजापतिः।।

यजुर्वेद १०।१८ का यह प्रसिद्ध मन्त्र जो आज भी चन्द्रमा की शान्ति के लिए प्रयुक्त होता चला आ रहा है। इसमें एक साथ मातृकुल एवं पितृकुल दोनों का प्रशस्त रूप से विख्यात होना सिद्ध है। सम्भवतः यही कारण है कि चन्द्रमा को मातृ कारक भी माना गया है –

इमं देवा अस पत्न सुबद्धं महते क्षत्राय महते ज्येष्ठाय
महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय।
इममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोमी राजा
सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा।। (यजुर्वेद ९।४०)

पृथ्वी और सूर्यमण्डल के मध्य अन्तरिक्ष में चन्द्रमण्डल है। इसे ही सोम मण्डल कहा गया है। इस चन्द्रमा से पृथ्वी का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

उसी चन्द्रमा एवं सूर्य के सम्बन्ध से पृथ्वी पर ऋतु आदि का परिवर्तन होता है। सूर्य किरणों से आकृष्ट होकर यह सोम निरन्तर सूर्यमण्डल में गिरता रहता है। इसी के कारण सूर्य प्रज्वलित रहता है। सोम स्वयं प्रकाशमान नहीं है। जहाँ तक सूर्य किरणों का सम्पर्क है वहीं तक यह चमकता रहता है। वेदों में समुद्र के दो प्रकारों का वर्णन है, एक पृथिवी पर तथा दूसरा अन्तरिक्ष में।

सउत्तरस्मादधरं समुद्रम्। (ऋग्वेद)

ऋग्वेद के इस मन्त्र में दोनों समुद्रों का स्पष्ट संकेत है। यहाँ उत्तर समुद्र शब्द से अन्तरिक्ष का बोध होता है तथा अधर समुद्र पद से पृथ्वी के समुद्र का। चन्द्रमा समुद्र में रहता है तथा समुद्र मन्थन से प्रकट हुआ इस प्रकार के कथन तथा समुद्र के ज्वार-भाटे का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। इस सन्दर्भ में ऋग्वेद का यह मन्त्र दृष्टव्य है-

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी।।

(ऋग्वेद १।१०५।१)

भगवान् कृष्ण भी चन्द्रवंश में अवतार लेते हैं। कृष्ण की रासलीला का भी चन्द्रमा से सम्बन्ध है। चन्द्रमा राशि चक्र में रासलीला करता रहता है। वैदिक काल में नक्षत्रों की गणना कृत्तिका नक्षत्र से होती थी। उसके अनुसार विशाखा नक्षत्र १४वाँ नक्षत्र होता है। यह नक्षत्रों के मध्य में होने से यह रासेश्वरी है। इसी का दूसरा नाम राधा भी है। इसी के बाद का नक्षत्र अनुराधा कहा गया है। विशाखा नक्षत्र पर जिस पूर्णिमा को चद्रमा रहता है उस दिन सूर्य कृत्तिका पर रहता है। सामने स्थित सूर्य की किरणों से विशाखा नक्षत्र युक्त चन्द्रमा प्रकाशित होता है। कृत्तिका का सूर्य वृषराशि का है अतः राधा को वृषभानुसुता भी कहा गया है।

मुण्डकोपनिषद् में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को ईश्वर का शरीर बताया गया है। लिखा है अग्नि जिसका मस्तक है, चन्द्रमा, सूर्य जिसके नेत्र हैं, दिशाएँ श्रोत हैं, वेद वाणी हैं, वायु प्राणरूप है, पृथ्वी पाद है वही ईश्वर सब भूतों की अन्तरात्मा है।

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ
दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य
पद्भ्यां पृथिवी ह्येव सर्वभूतान्तरात्मा।।

(मुण्डकोपनिषद् २।१।४)

ज्योतिष के परवर्ती काल में चन्द्रमा को द्वितीय, षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश स्थान में स्थित होने से नेत्रों में कष्ट होगा। यह बात इस मन्त्र से ही प्रकट होती है।

ऋग्वेद के दशम मण्डल के ८५वें सूक्त एवं अथर्ववेद के चतुर्दश काण्ड के प्रथम सूक्त में चन्द्रमा के सन्दर्भ में अनेक मन्त्र दिये गये हैं जिसमें कहा गया है कि सत्य से ही सूर्य स्थित है। सूर्य आकाश लोक में स्थित है तथा सोम अर्थात् चन्द्रमा भी सत्य पर आधारित है।

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः।।

सोम से ही यह पृथिवी पूजित है, सोम से ही सूर्य बलयुक्त है इसीलिए यह सोम नक्षत्रों के पास रहते हैं। वराहमिहिरादि आचार्यों ने चन्द्रमा को स्त्री संज्ञक ग्रह माना है। इसका भी आधार वेद ही है। इसी सूक्त के नवम मन्त्र में कहा गया है कि पति की कामनावाली सूर्या को जब सूर्य ने दिया तब सोम वधू हुआ तथा अश्विनी कुमार वर हुए।

चन्द्रमा प्रत्येक नक्षत्रों में रहता है तथा चन्द्रमा सूर्य का अन्न है। चन्द्रमा ही प्रति नक्षत्रं वसति। (शपतपथ ब्राह्मण ८।४।१।१०) तथा चन्द्रमा सूर्यस्यान्नम्। शतपथ ब्राह्मण ४।६।७।१२)।

अमावस्या के दिन चन्द्रमा आदित्य (सूर्य) में प्रविष्ट हो जाता है। वह लुप्त हो जाता है। उसे कोई नहीं जानता।

चन्द्रमा वा अमावस्यायामादित्यमनुप्रविशति, सो अन्तर्धीयते तं न निर्जानन्ति।

आदित्या द्वै चन्द्रमा जायते। चन्द्रमसो वै वृष्टिर्जायते। (एतरेय ब्राह्मण ८।५)

सूर्य से ही चन्द्रमा उत्पन्न होता है तथा चन्द्रमा से ही वृष्टि होती है।

गोपथ ब्राह्मण १।३३ का कथन है कि चन्द्रमा ही सविता हो जाता है तथा सभी नक्षत्र सावित्री हैं। जहाँ चन्द्रमा है वहीं नक्षत्र हैं और जहाँ नक्षत्र हैं वहाँ चन्द्रमा है। यह दो उत्पत्ति स्थान और एक जोड़ा है।

चन्द्रमाः एव सविता नक्षत्राणि सावित्री। यत्र हि एव चन्द्रमाः तत् नक्षत्राणि, यत्र वै नक्षत्राणि तत् चन्द्रमाः इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम्।।

यजुर्वेद १८।४० में कहा गया है कि यज्ञ के द्वारा सुख देनेवाले, सूर्य की रश्मियों से आभावान् चन्द्रमा नामक गन्धर्व हम लोगों की रक्षा करे। यह आहुति चन्द्रमा की प्रसन्नता के लिए हो। नक्षत्र ही चन्द्रमा की अप्सराएँ हैं। वे हमारी रक्षा करें।

सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम। स न इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा।।

मंगल – मंगल ग्रह कभी-कभी पृथ्वी के समीप और कभी भ्रमण करता हुआ पृथ्वी से बहुत दूर चला जाता है। यही कारण है कि यह कभी छोटा तथा कभी बहुत

बड़ा दिखायी देता है। यह नैसर्गिक रूप से लाल है अतः वेद में इसे अग्नि, लोहितांग तथा रुद्र एवं अंगारक या भूमिपुत्र भी कहा गया है। यह ६८७ दिनों में सूर्य की प्रदक्षिणा करता है। सम्भव है मंगल ग्रह का वातावरण सुखदायक होगा अतः इसका नाम मंगल रखा गया होगा। मंगल एवं पृथ्वी की समानता के कारण ही इसे भूमिपुत्र कहा गया जान पड़ता है। यजुर्वेद का कथन है कि यह सुमंगल है, ताम्रवर्ण है, अरुण (लाल) है, बभ्रु है, अनेक रुद्रों से घिरा है, मृड (मंगलप्रद) है। इसकी ग्रीवा नील है, वर्ण लोहित है, यह आकाश में भ्रमण कर रहा है। इसके दर्शन वेदोक्त कर्म से हीन गोप तथा जल भरनेवाली महिलाएँ भी करती हैं। यह ग्रह दर्शन देने के लिए आता है। यह हमारा मंगल करे।

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमंगलः।
ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षुश्रिताः सहस्त्रशो वैषा हेडईमहे।।

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।
उतैनं गोपा अदृश्रन्नुदहार्य्यः स दृष्टो मृडे याति नः। (यजुर्वेद १६।६,७)

ऋग्वेद में रुद्र का स्थान गौड़ माना गया है। केवल तीन सूक्तों १।११४, २।३३ और ७।४६ में इस देवता का वर्णन मिलता है। प्रो० वेवर रुद्र को झंझावात और तूफान का देवता मानते हैं। हिलब्राण्ट के अनुसार इनका सम्बन्ध किसी विशेष नक्षत्र से है और यह ग्रीष्म का देवता है। श्रोदर के विचार में मृतात्माओं के प्रधान को रुद्र देवता बना दिया गया, क्योंकि मृतात्माएँ आँधी के साथ उड़कर ऊपर जाती हैं। ओल्डेनवर्ग उपर्युक्त मत को स्वीकारते हुए रुद्र को पर्वत एवं अरण्यों का देवता मानते हैं। रुद्र का नाम ऋग्वेद में लगभग ७५ बार प्रयुक्त हुआ है। इसका चित्रण, उग्र एवं हिंसक देवता के रूप में हुआ है। क्रोधी होते हुए भी वे अपने पूजकों का हित विधान करते हैं। कालान्तर में यही रुद्र, शिव बन गया है।

रुद्र देवता ही मंगल ग्रह है। वैदिक साहित्य में रुद्र की जो विशेषताएँ बतायी गयी हैं वे सभी मंगल ग्रह में विद्यमान हैं तथा परवर्ती ज्योतिष ग्रन्थों में वे सभी विशेषण मंगल ग्रह में वर्णित हैं। रुद्र के लिए वेद में घोरा (भयंकर) विशेषण है अतः परवर्ती ज्योतिष इसे पाप क्रूर ग्रह मानता है। मंगल के सौभाग्य आदि स्थानों में स्थित होने के कारण ही मंगली दोष वस्तुतः अमंगली दोष कहा गया है। रुद्र को धन्वन्, सेनापति, आयुधाय आदि शब्दों से सम्बोधित किया गया है। ध्यातव्य है कि ज्योतिष ग्रन्थों में मंगल ही कुमार है, सेनापति है। यजुर्वेद का एक मन्त्र जो रुद्र विषयक है मंगल ग्रह की विशेषताओं को प्रकट करता है –

मा नो महान्त मुतमा नो अर्भकम्मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मानो बधीः पितरम्मोत मातरम्मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः।।

(यजुर्वेद १६।१५)

हे (रुद्र), युद्ध की सेना के अधिकारी विद्वान् पुरुष आप हमारे बड़े पुरुषों को मा (मत) उत (और) अर्भकम् (गर्भस्थ शिशु को) हमारे उक्षन्तम् (गर्भाधान करने-वाले को) उक्षितम् (गर्भ को) मा (मत) बधीः (मारो)।

गर्भपात आदि का कारक मंगल ग्रह ही माना गया है। जिस प्रकार राष्ट्र या समाज अथवा परिवार की रक्षा के लिए किसी रक्षक की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड में उथल–पुथल रोकने के लिए सेनापति रूप में मंगल (रुद्र) को प्रजापति ने बनाया है। कालान्तर में मंगल को कुमार या षडानन भी कहा गया है। जैसे रोहिणी नक्षत्र से बुध तथा पुष्य नक्षत्र से गुरु की उत्पत्ति है ठीक उसी प्रकार से कृत्तिकाओं से मंगल की उत्पत्ति कही जाती है। मंगल का परम शर जब कृत्तिका के निकट होता है तब दोनों मिलकर एक हो जाते हैं जब मंगल आगे बढ़ा होगा उस समय कृत्तिका में स्पष्ट रूप से प्रतीत हुई होगी अतः मंगल कृत्तिका पुत्र कार्तिकेय नाम से जाना गया होगा।

प्राचीन काल से ही मंगल की शान्ति, पूजन एवं हवन में मंगल से सम्बन्धित यजुर्वेद संहिता १३।१४ का यह मन्त्र पढ़ा जाता है –

ॐ अग्निर्मूधा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याः।
अयमपां रेतांसि जिन्वति।।

अर्थात् यह अग्नि दिवलोक के सिर के समान मुख्य है। जैसे बैल को डील होती है वैसे ही इस अग्नि (मंगल) ने उच्च स्थान प्राप्त किया है। यह पृथ्वी और जल को पुष्ट करनेवाला है। इस मन्त्र में मंगल को अग्नि प्रधान माना गया है। अतः यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि मंगल ग्रह ही वैदिक काल में अग्नि एवं रुद्र तथा कुमार रूप में कहा जाता था।

बुध – बुध ग्रह सूर्य के समीप है। यह ग्रहों में सबसे छोटा ग्रह है। यह सूर्य से २७ अंश से अधिक दूर कभी नहीं जाता। चन्द्रमा की तरह बुध की भी कलाओं की क्षय वृद्धि होती है। यह एक वर्ष में लगभग ६ बार उदित एवं अस्त होता है। उदित होने पर २१ से ४३ दिनों तक दिखायी देता है। ग्रहलाघव के अनुसार बुध पूर्व दिशा में अस्त के ३२ दिन बाद पश्चिम में उदित होता है तथा उसके ३२ दिन बाद वक्री होता है। उसके ३ दिन बाद पश्चिम में अस्त, उसके १६ दिन बाद पूर्व में उदित,

उसके ३ दिन बाद मार्गी और उसके ३२ दिन बाद पूर्व में अस्त हो जाता है। इस प्रकार मध्यम मान से ११८ दिनों में इसके उदयास्त का एक चक्र पूरा होता है।

अथर्ववेद के एक मन्त्र में बुध का उल्लेख मिलता है जो इस प्रकार है –

सोमस्यांशो युधां पतेऽनूनो नाम वा असि।
अनून दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च।।

अर्थात् हे सोम के अंश बुध! तुम वीरों के पालनकर्त्ता हो। तुम दर्शन योग्य हो। हव्यादि देकर तुम्हें प्रसन्न करता हुआ मैं पुत्रादि धन से युक्त होऊँ।

'सोमस्यांशो' पद का भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने सोम पुत्र बुध कहा है। इसमें बुध को दर्शनीय तथा अनून कहा गया है तथा बुध ग्रह को भावी युद्ध में विजय का शुभ प्रतीक माना गया है। बुध ग्रह को धन, समृद्धि और सन्तान वृद्धि का कारक माना गया है।

पंचविंशति ब्राह्मण के एक सन्दर्भ में बुध ग्रह को सौमायन (सौम्य) कहा गया है। **बुधो हि सौमायनः प्रोक्तः।** (पंचविंशतिब्राह्मण २४।१८।६।)

बुध को रोहिणेय तथा सौम्य भी कहा गया है। वैदिक काल में किसी समय जब चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र के पास स्थित बुध को ढक दिया होगा तथा ऋषियों ने रोहिणी एवं बुध दोनों को चन्द्र बिम्ब से बाहर निकलते देखा होगा तभी से बुध को रोहिणी एवं चन्द्रमा का पुत्र कहना प्रारम्भ किया होगा।

यजुर्वेद १८।६१ का मन्त्र प्राचीन काल से बुध के पूजन, हवन एवं शान्तिकर्म में प्रयोग होता रहा है। इसमें बुध को बुद्धि का प्रतीक माना गया है। कालान्तर में ज्योतिष ग्रन्थों में बुध को बुद्धि ही कहा गया है। मन्त्र इस प्रकार है –

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते स सृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत्।।

अर्थात् हे अग्ने (ग्रह), तुम जागो। तुम बुद्धिमान् होकर इस अभीष्ट पूर्तिवाले कर्म में यजमान से सुसङ्गत होओ। हे विश्वेदेव निमित्त कर्म करनेवाला यह यजमान देवताओं के साथ रहने योग्य होता हुआ श्रेष्ठ स्वर्ग में चिरकाल तक रहे।

बृहस्पति – बृहस्पति ग्रह को देवगुरु, आङ्गिरस, गुरु तथा जीव आदि नामों से कहा गया है। यह सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल का लगभग १२ वर्षों में भ्रमण पूरा करता है। ग्रहलाघव के अनुसार यह अस्त होने के बाद १ महीने के पश्चात् उदित होता है। उसके बाद लगभग ४ महीने पश्चात् वक्री होता है तथा चार मास वक्री रहने के पश्चात् मार्गी होता है। तथा पुनः ४ महीने बाद अस्त हो जाता है। यह

इसका मध्यम मान है। यह सूर्य से अधिक दूर है तथा सूर्य के ही प्रकाश से प्रकाशित है। इसे शुभग्रह माना गया है। ऋग्वेद में बृहस्पति शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। अथर्ववेद एवं यजुर्वेद में भी अनेक बार आया है। अनेक स्थलों में उसका अर्थ परमात्मा है किन्तु अनेक स्थानों में उसका अर्थ बृहस्पति ग्रह के रूप में भी वर्णित है।

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्।
सप्तास्यस्तु विजयते रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि।।

(ऋग्वेद ४।५०।४), अथर्ववेद २०।८८।४

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानस्तिष्यं नक्षत्रमभिसम्बभूव।
श्रेष्ठो देवानां पृतनासु जिष्णुः दिशो नु सर्वा अभयं नो अस्तु।।

(तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१।१।५)

तिष्य शब्द का अर्थ पुष्य नक्षत्र है और पुष्य के देवता बृहस्पति कहे गये हैं। ज्योतिष ग्रन्थों में गुरु पुष्य योग अत्यधिक सुखद माना गया है। चन्द्रमा, तारा एवं गुरु के सन्दर्भ में जो पौराणिक आख्यान है उस विषय में ऋग्वेद में वर्णन आता है कि बृहस्पति ने अपनी पत्नी जुहू छोड़ी, सोम राजा ने उसे पुनः भेजा, मित्रावरुण ने समर्थन किया और अग्नि ने हाथ पकड़कर स्वयं पहुँचाया। तब सोम द्वारा लायी जाया को बृहस्पति ने पुनः स्वीकार कर लिया।

सोमो राजा ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदह्णीयमानः।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय।।

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्म जायेयमिति चेदवोचन्।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य।।

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धा दधाति परमे व्योमन्।

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम्।
तेन जायामन्वविन्ददबृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः।

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत।
राजानः सत्यं कृण्वानां ब्रह्मजायां पुनर्ददुः।।

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्विषम्।
ऊर्ज पृथिव्या भक्त्याथोरुगायमुपासते।। (ऋग्वेद १०।१०९)

ऋग्वेद के इस आख्यानक के अनुसार इसका अर्थ यह है कि राजा सोम अर्थात् चन्द्रमा का प्रत्येक २७वें दिन पुष्य नक्षत्र से संयोग होता है किन्तु गुरु उसे एक बार छोड़ने के पश्चात् लगभग १२ वर्ष पश्चात् पुनः उस नक्षत्र (पुष्य) में आता है। इस बीच में मित्र, वरुण और अग्निदेव उससे कई बार मिल लेते हैं। ये देव सम्भवतः सूर्य, बुध, शुक्र हैं जो प्रत्येक वर्ष में एक बार पुष्य नक्षत्र से संयुक्त होते हैं अर्थात् पुष्य नक्षत्र के सीध में आ जाते हैं। वेदों में बृहस्पति को ब्रह्म अथवा ज्ञान का प्रतीक भी कहा गया है। पुष्य नक्षत्र बुद्धि का प्रतीक है तथा गुरु ज्ञान का अतः बुद्धि में ज्ञान यदा-कदा उदित होता है जबकि मन, काम, अर्थ आदि प्रायः आते रहते हैं। यही बृहस्पति, तारा एवं चन्द्रमा की कथा है।

बृहस्पति के पूजन, हवन तथा शान्तिकर्म में प्रयुक्त होनेवाला वैदिक मन्त्र इस प्रकार है –

ॐ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हा द्युमद् विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यदीदयच्छवस् ऋत प्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्।।

(ऋग्वेद २।२३।१५)

शुक्र – शुक्र गुरु से छोटा ग्रह है किन्तु उससे तेजस्वी दिखायी देता है। इसका कारण यह है कि यह ग्रह सूर्य एवं पृथ्वी के समीप है। यह सूर्य से ४७ अंश से अधिक दूरी पर कभी भी नहीं जाता। वेद में अग्नि को, वीर्य को और तेज आदि को शुक्र कहा है। कुछ ऐसे मन्त्र भी प्रयुक्त हैं जिनका सीधा सम्बन्ध शुक्र ग्रह से है। पाश्चात्य ज्योतिषियों ने भी शुक्र ग्रह को वेनस् कहा है और यह नाम वेद में आया है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में इसका उल्लेख आया है। लिखा है –

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने।
इममपां संगमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभीरिहन्ति।।

(ऋग्वेद १०।१२३।१)

अर्थात् यह वेनस् उदित हो गया है। यह ज्योति का समूह है। प्रकाश का निधान है। सूर्य का शिशु है, अन्धकार को दूर करता है। जल देता है तथा विप्रों द्वारा पूज्य है। ठीक यही मन्त्र यजुर्वेद ७।१६ में आया है जिसमें मन्त्र के अन्त में लिखा है– उपयाम ग्रहीतोऽसि मर्काय त्वा। अर्थात् हे श्रेष्ठ ग्रह तुम उपयाम पात्र द्वारा गृहीत हो। मर्क (राक्षस) के निमित्त तुम्हें संस्थापित करता हूँ। कुछ आचार्य इस मन्त्र को सूर्य, चन्द्रमा परक मानते हैं। किन्तु यहाँ सूर्य शिशु शब्द प्रत्यक्ष है। चन्द्रमा से शुक्र अधिक तेजस्वी है। चन्द्रमा सूर्य से १२ अंश की दूरी पर दृष्टिगोचर होता है जबकि शुक्र ८ अंश की दूरी

पर ही दिखायी देता है। यह रात्रि में चन्द्रमा के अभाव में अधिक चमकता है। रात्रि में इसके प्रकाश में अपना प्रतिबिम्ब दिखायी देता है। कभी-कभी यह दिन में भी दृष्टिगोचर हो जाता है। इसके कला की क्षय वृद्धि खुले नेत्रों से भी देखी जा सकती है। तेजस्विता के कारण ही इसका नाम शुक्र पड़ा है। यजुर्वेद के एक अन्य मन्त्र में शुक्र को सर्वत्र व्याप्त कहा है –

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः।।

(यजुर्वेद ३२।१)

अर्थात् वही अग्नि है, आदित्य वही है, वायु, चन्द्रमा, शुक्र एवं बृहस्पति वही है, जल तथा प्रजापति रूप में वही सर्वत्र व्याप्त है। यजुर्वेद के अन्य मन्त्रों में शुक्र ग्रह का अनेक बार प्रयोग आया है। यथा –

शुक्रं त्वा शुक्र आधूनोमि। (यजुर्वेद ८।४८)

तेजोऽसि शुक्रमस्य मृतमसि धामनामसि। (१।३१)

शुक्रः शुक्रशोचिषा। (७।१३)

सोमाय ब्रूतात् शुक्रस्ते। (४।२४)

शुक्र ज्योतिश्च चित्र ज्योतिश्च। (१७।८०)

पूयमानः शुक्रः पूतः शुक्रः क्षीर श्रीर्मन्थी। (८।५७)

स्वर्ण शुक्रः स्वर्ण सूर्यः स्वाहा। (१८।५०)

हरिरन्यस्यां भवति स्वधावान् शुक्रो। (३३।५)

यजुर्वेद का कथन है कि हे शुक्र, तुम तेज हो, अमृत हो, आयुरक्षक हो, कवि हो, सूर्यपुत्र हो, अमृत की जिह्वा हो, तथा सूर्य के उदय से, अश्विनों की बाहु से और पूषा के हाथ से सम्बन्धित हो अतः कृपया हमारी आयु की रक्षा करो। सूर्य देवों का चक्षु है और अपने उदय से पूर्व शुक्र को भेज देता है।

तेजोसि शुक्रममृतमायुष्या आयुर्मे देहि। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे अश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे (२२।१) तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि। तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।।

शुक्र ग्रह की प्रतिकूलता में शान्तिकर्म में तथा हवन, पूजन के समय प्रयोग किया जानेवाला शुक्र का वैदिक मन्त्र इस प्रकार है –

ॐ अन्नात् परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिवत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान शुक्रमन्धस इन्द्रियस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु।।

(यजुर्वेद १९।७५)

अर्थात् प्रजापति अन्न से स्रवित रस को ब्रह्म की सहायता से पीता है और क्षात्र बल को अपने वश में कर लेता है। दैत्य ही क्षत्र हैं और वे शुक्राचार्य के वश में रहते हैं। अन्न के रस से शुक्र (वीर्य) बनता है तथा शुक्र ग्रह उसका प्रतीक है।

शनि – शनि ग्रह को एक भचक्र का भ्रमण करने में लगभग ३० वर्ष लगते हैं। इसकी कक्षा बहुत बड़ी है। धीरे चलने से ही इसे शनैश्चर कहा जाता है। इसे मन्द ग्रह भी कहा गया है। ग्रहलाघव के अनुसार शनि अस्त होने के सवा मास बाद उदित होता है। उसके साढ़े तीन मास बाद वक्री होता है, पुनः साढ़े चार मास बाद अस्त होता है। शनि की अंशात्मक मन्द गति और अल्पतेज के आधार पर इसे पाप ग्रह कहा गया है। शनि सूर्य का पुत्र है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि शनि ग्रह में अपना भी थोड़ा प्रकाश है। शनि को चारों ओर मेघ अथवा वलय दिखायी देता है। अतः इसे असित (काला) कहा गया है। वैदिक साहित्य में ग्रहों के वर्णन में जहाँ भी शंनः शब्द प्रयुक्त हुआ है उसका सम्बन्ध शनि ग्रह से है। शन्नो मृत्युर्धूमकेतुः। शनि को वेदों में यम, काल, अन्तक (मृत्यु) तथा मन्द आदि नामों से अभिहित किया है। परवर्ती काल में भी शनि को दुःख की संज्ञा दी गयी है।

अथर्ववेद १९।९।७ में ग्रहों की प्रार्थना इस प्रकार है –

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वान् शमन्तकः।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शन्नो दिविचरा ग्रहाः।।

अर्थात् मित्र, वरुण, सूर्य, अन्तक (शनि), पृथिवी और अन्तरिक्ष में होनेवाले उत्पात और आकाश में विचरण करनेवाले ग्रह हमारे लिए शान्तिप्रद हों।

अथर्ववेद के इसी काण्ड के एक मन्त्र में नव ग्रहों का उल्लेख मिलता है। मन्त्र है–

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः।।

(अथर्ववेद १९।९।१०)

इसमें (चान्द्रमसाः) चन्द्रमा, बुध, आदित्य अर्थात् सूर्य, राहु, मृत्यु अर्थात् शनि, केतु, रुद्र से मंगल तथा तिग्मतेजसः से गुरु एवं शुक्र का संकेत है। यजुर्वेद

संहिता का वह मन्त्र जो आज भी यज्ञकर्मों में हवन, पूजन तथा शान्ति के लिए प्रयुक्त होता है और शनि से सम्बन्धित है, इस प्रकार है –

ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंय्योरभि स्त्रवन्तु नः। (ऋग्वेद १०।९।४, यजुर्वेद ३६।१२)

अर्थात् देदीप्यमान जल (जल रूप शनि देव) हमारे पान के लिए सुखरूप हों तथा रोगों का नाश करें। यहाँ शनि को जल स्वरूप कहा गया है। जल सूर्य से ही उत्पन्न हुआ अतः वह सूर्य पुत्र है। इसीलिए शनि को सम्भवतः सूर्य पुत्र कहा गया है। पञ्चविंशति ब्राह्मण २४।८।६ में शनिस्तु सौरः कहा गया है।

राहु, केतु – राहु केतु, ग्रह पृथ्वी (सूर्य) एवं चन्द्र ग्रह कक्षाओं के दो निराकार सम्पात हैं। पुराणों में राहु सिंहिका का पुत्र है और अमृत पीते समय विष्णु ने उसका सिर काट दिया। अमृत पीने से वह अमर बना रह गया अतः ब्रह्मा ने इसे ग्रहत्व प्रदान किया। ऊपर का भाग राहु तथा नीचे का केतु हो गया। वस्तुतः पृथ्वी की छाया राहु है तथा चन्द्रमा की छाया केतु है। इसी कारण राहु को स्वर्भानु भी कहा गया है तथा केतु को धूमकेतु कहा है। ऋग्वेद के पंचम मण्डल के ४०वें सूक्त में राहु से सम्बन्धित अनेक मन्त्र हैं –

यत् त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः।
अक्षेत्रयिद् यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः।। (ऋग्वेद ५।४०।५)

अर्थात् हे सूर्य! स्वर्भानु नामक दैत्य ने जब तुम्हें अन्धकार से ढक लिया था, उस समय सभी लोक एक–सा दिखायी देता था उस समय समस्त प्राणी विमूढ़ हो गये तथा अपने स्थानों को भी नहीं जा सके।

स्वर्भानोरध यदिन्दु माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहत्।
गूलहं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः।।
ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सर्पयन् कीरिणा देवान् नमसोपशिक्षन्।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात् स्वर्भानोरप्न माया अधुक्षत्।।
यं वै सूर्य स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः।
अत्रयस्तमन्वविन्दन् नह्यन्ये अशक्नुवन्।।

(ऋग्वेद ५।४०।६,८,९)

छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है–

श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यां प्रपद्येऽश्व इव रोमाणि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात् प्रमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभिसंभवामीत्यभि संभवामीति।।

(छान्दोग्य उपनिषद् ८।१३)

अर्थात् मैं शरीर के नष्ट होने के पश्चात् श्याम ब्रह्म से शबल (ब्रह्मलोक) को प्राप्त करूँ। पुनः ब्रह्मलोक से श्याम को प्राप्त करूँ। जिस तरह अश्व अपने रोमों को झाड़कर स्वच्छ एवं मलरहित हो जाता है उसी प्रकार मैं पापों से निवृत्त होकर राहु के मुख से प्रकट हुए चन्द्रमा की भाँति शरीर का परित्याग कर कृतकृत्य होता हूँ। धूमकेतु का उल्लेख अथर्ववेद १९।९।१० में तथा अन्य वैदिक साहित्य में हुआ है। राहु केतु के अतिरिक्त प्रजापति, वरुण एवं यम का भी उल्लेख मिलता है किन्तु ये ग्रह रूप में ऋषियों को ज्ञात नहीं थे यह कौन कह सकता है।

राहु एवं केतु के वैदिक मन्त्र जो प्रायः यज्ञ अनुष्ठान में प्रयुक्त होते हैं इस प्रकार हैं।

राहु का वैदिक मन्त्र –

कयानश्चित्र आभुव दूती सदा वृधः सखा।
कयाशचिष्ठया वृता।। (ऋग्वेद ४।३।११)

केतु का वैदिक मन्त्र –

ॐ केतुं कृण्वन्न केतवे पेशो मर्या अपेशसे।
समुसद्भिरजायथाः।। (ऋग्वेद १।६।३)



अध्याय - ३

नक्षत्रों एवं राशियों का वैदिक विवेचन

नक्षत्रों का वर्णन वेद में विस्तार से हुआ है। कालमान प्रसंग में इसका उल्लेख किया जा चुका है। यहाँ विस्तार से प्रत्येक नक्षत्र का विवरण जो वेदों में वर्णित है, का उल्लेख किया जा रहा है। वैदिक ज्योतिष में नक्षत्रों को तारा, तारका, उडु, ऋक्ष, नभ, रोचना और स्तृ कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में नक्षत्राणि वै सर्वेषां देवानामायतनम् (१४।३।२।१२) कहा गया है। अर्थात् समस्त देवताओं (ग्रहों) का घर नक्षते लोक ही है। नक्षत्र शब्द की निष्पत्ति करते हुए महर्षि यास्क कहते हैं कि नक्षत्रे गतिकर्मणः अर्थात् जिसका कभी क्षय नहीं होता वे नक्षत्र हैं। इसी प्रसंग में ऋक्ष शब्द का निर्वचन भी आया है ऋक्षाः = स्तृभिः इति नक्षत्राणाम्। ऋक्षाः उदीर्णानि इव ख्यायन्ते, स्तृभिः तीर्णानि इव ख्यायन्ते।

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्े कुहचिद् दिवेयुः।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति।।

(ऋग्वेद १।२४।१०)

अर्थात् ये तारे रूप नक्षत्र ऊँचे (उन्नत स्थान में) बैठे हुए रात्रि में दिखायी देते थे। वे दिन में कहाँ विलीन हो गये। चन्द्रमा भी रात्रि में प्रकाशित होता है किन्तु वरुण का नियम अटल है। अन्यत्र ऋग्वेद के १।५०।२ में कहा गया है कि सर्वदर्शी सूर्य के प्रकट होते ही नक्षत्रादि सिद्ध चोर के समान छिप्न जाते हैं।

अपत्ये तायवो यथा नक्षत्रां यन्त्यक्तुभिः।
सूराय विश्वचक्षसे।।

ऋग्वेद के दशम मण्डल के ८५वें सूक्त में कहा गया है कि चन्द्रमा नक्षत्रों के मध्य विचरण करता है। इसमें सोमरस रखा है –

अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः।

इसी मंडल के ६८ सूक्त में कहा गया है कि देवताओं ने नक्षत्रों से आकाश को उसी प्रकार सुसज्जित किया जिस प्रकार कृष्ण अश्व को सुवर्ण के आभूषणों से सजाया जाता है। उन्होंने प्रकाश को दिन के लिए तथा अन्धकार को रात्रि के लिए नियत किया। बृहस्पति ने पर्वत को विदीर्ण कर गौ रूप धन को पाया।

अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन्।
रात्र्यां तमो अदधज्र्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्नाः।।

(ऋग्वेद १०।६८।११)

इसी वेद के एक मन्त्र का कथन है कि वरुण महिमायुक्त है। जिन्होंने विस्तीर्ण द्यावापृथिवी की स्थापना की इन्होंने ही आकाश और नक्षत्रों को प्रेरित कर पृथ्वी को प्रशस्त किया।

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वियस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी।
प्र नाक वृष्वं नुतुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं प्नप्रथच्च भूम।।

(ऋग्वेद ५।८६।१)

ऋग्वेद में पुष्य नक्षत्र के लिए तिष्य नक्षत्र, मघा के लिए अघा तथा फाल्गुनी के लिए अर्जुनी नक्षत्र का प्रयोग हुआ है–

युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्यामरथ्यो बयस्वतः।
न यो युच्छति तिष्यो तथा दिवोऽस्मे रारन्त मरुतः सहस्त्रिणम्।

(ऋग्वेद ४।५४।१३)

त्रिः सप्त सस्त्रा नद्यो महीरपो वनस्पतीन् पर्वताँ अग्निभूतये।
कृशानुमस्तृन् तिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे।।

(ऋग्वेद १०।६४।८)

सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत्।
अघासु हन्यते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते।। (ऋग्वेद १०।८५।१३)

सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत्।
मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्युह्यते।। (अथर्ववेद १४।१।१३)

यजुर्वेद संहिता में कहा गया है कि हे अश्व ! स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष तुम्हें छिद्र रहित करें। वायु तुम्हारे छिद्रों को पूर्ण करें। नक्षत्रों सहित सूर्य तुम्हारे लिए लोक को श्रेष्ठ करें।

द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिन्द्रं पृणातु ते।
सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधु या।। (यजुर्वेद २३।४३)

एक अन्य मन्त्र में देवताओं को हविष्य प्रदान करते हुए नक्षत्रों का भी उल्लेख किया गया है –

पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहा। (यजुर्वेद २२।२९)

नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं चन्द्रमसे किलासमह्ने शुक्ल पिङ्गाक्षं रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम्।। (यजुर्वेद ३०।२९)

यजुर्वेद में नक्षत्रों की संख्या सत्ताईस है। इसका उल्लेख इस प्रकार है–

वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविंशतिः ते।
अग्रेऽश्वमयुञ्जस्ते अस्मिन् जवमादधुः।। (यजुर्वेद ९।७)

कहीं अठाईस नक्षत्रों का भी उल्लेख आता है यथा अथर्ववेद के १९ काण्ड के सातवें सूक्त का प्रथम मन्त्र जो इस प्रकार है–

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
अष्टविंशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम्।।

अभिजित् नक्षत्र का स्पष्ट उल्लेख तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।१ में आया है–

अभिजयत्परस्तादभिजितमवस्तात्।

तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।२ में नक्षत्रों की विशेषता, शुभता एवं अशुभता के विषय में कहा गया है कि मध्य में जल था। उसे तैरने के कारण नक्षत्रों को तारा कहा गया। जो यहाँ यज्ञ करता है वह उस लोक में जाता है। यही नक्षत्रों का नक्षत्रत्व है। नक्षत्र देवताओं के गृह हैं। जो यह जानता है वह गृही होता है। ये जो पृथिवी के चित्र हैं वे नक्षत्र हैं, अतः अशुभ नामवाले नक्षत्रों में शुभ कार्य नहीं करने चाहिए और न ही यज्ञ करना चाहिए। उसमें कार्य करना पाप करने के समान ही है।

सलिलं वा इदमन्तरासीत्। यदतरन्। तत्तारकाणां तारकत्वम्। यो वा इह यजते। अमुं सलोकं न क्षते।

तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम्। देवगृहा वै नक्षत्राणि। य एवं वेद गृह्येव भवति। यानि वा इमानि पृथिव्याश्चित्राणि। तानि नक्षत्राणि तस्माद्शलीला नाम् श्चित्रे नावस्येन्न यजेत्। यथा पापाहे कुरुते तादृगेव तत्।

तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि नक्षत्रों द्वारा अश्व, शकट, मृग, मृगी, शय्या गृह, हाथ, मोती, मूँगा, तोरण, कुण्डल, मंच और मृदंग आदि की सुन्दर आकृतियाँ बनती हैं। नक्षत्रों के रूप में साक्षात् प्रजापति खड़े हैं। हस्त ही उनका हाथ है,

सिर है, स्वाती हृदय है, विशाखा के दो तारे जंघे हैं और अनुराधा उनके खड़े होने का स्थान है।

यो वै नक्षत्रियं प्रजापतिं वेद। उभयोरेनं लोकयोर्विदुः।
हस्त एवास्य हस्तः चित्रा शिरो निष्ट्या हृदयं
उरू विशाखे प्रतिष्ठानुराधाः।

(तैत्तिरीय ब्राह्मण १।९।३)

तैत्तिरीय संहिता का कथन है कि प्रजापति एक अश्व है। जो आशु (शीघ्र) चलता है उसे अश्व कहते हैं। उसका यजन अश्वमेध है। आकाश की सम्पूर्ण ज्योति और सम्पूर्ण कालमान उस प्रजापति के अंग हैं। उषःकाल उसका सिर है, सूर्य नेत्र है, चन्द्रमा कान है, वायु प्राण है, दिशाएँ चरण हैं, दिन रात्रि निमेष हैं, पक्ष पर्व है, ऋतु तथा मास अन्य अंग हैं, वर्ष आत्मा है, नक्षत्र रूप हैं और तारे अस्थियाँ हैं।

यो वाश्वस्य मेध्यस्य शिरो वेद, शीर्षण्वान् मेध्यो भवति। उषास्य शिरः। सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणश्चन्द्रमाः श्रोत्रं, दिशः पादाः अवान्तर दिशः पर्शवोऽहोरात्रे निमेषोऽर्धमासाः पर्वाणि, मासाः सन्धानानि ऋतवोङ्गानि। संवत्सर आत्मा, रश्मयः केशा, नक्षत्राणि रूपं, तारका अस्थीनि।

(तैत्तिरीय संहिता ७।५।२५)

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त तथा यजुर्वेद ३१।२२ में भी नक्षत्रों को परमात्मा का रूप कहा गया है।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णान्निषाणमुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण।।

तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।२ में एक कथा का वर्णन है जिसका भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है कि एक बार देवताओं ने परामर्श किया कि हम असुर संग्राम के लिए अनुकूल सामग्री से राद्ध (समृद्धिशाली) हों। उन्होंने जिस नक्षत्र में यह सलाह की वह अनुराधा है। यह अनु और राद्ध का योग है। जिसमें ज्येष्ठ असुर के वध की योजना बनी वह ज्येष्ठघ्नी हुई। उसका संक्षिप्त रूप ज्येष्ठा है। जिसमें असुरों के समूल उच्छेदन की योजना बनी वह मूल कही गयी। जिसमें असुरों को देवों का आक्रमण असह्य हुआ वह आषाढ़ा हुई और जिसमें बहुत प्रहार किये गये वह श्रोणा कही गयी। श्रोण शब्द बाहुल्यवाची है और श्रोणा का लौकिक नाम श्रवण है। असुरों ने जिस नक्षत्र में देवों के आक्षेप सुने वह श्रविष्ठा है। जिस नक्षत्र में देवों ने असुरों द्वारा किये सौ प्रहारों का भैषज्य (ओषधि) किया वह शतभिषक है;

जिनमें आयुधों को पुनः उद्यत किया वे प्रोष्ठपदा हैं, जिसमें घोर रव (शब्द) किया वह रेवती है, जिसमें अश्वों को रथ में पुनः जोता वह अश्वयुक् या अश्विनी है और जिसमें उनके प्राणों का अपहरण हुआ अर्थात् वे मारे गये वह अप-भरणी कही गयी।

अन्वेषामराद्धमित्यनुराधा । ज्येष्ठमवधिष्मेति ज्येष्ठघ्नी।
मूलमेषामवृक्षामिति मूलबर्हणी। यन्नासहन्त तद्षाढा।।

यदश्रोणत् तच्छोणा । यद शृणोत्तत् श्रविष्ठा।
यच्छत मभिषज्यन् तच्छतभिषक्। प्रोष्ठपदेषूदयच्छन्त।।

रेवत्यामरवन्त अश्वयुजोरयुंजन्। अपभरणीष्वपावहन्।।

तैत्तिरीय संहिता में नक्षत्रों से सम्बन्धित अनेक वर्णन प्राप्त होते हैं। कहीं नक्षत्रों के नाम तथा उनके देवता तथा कहीं-कहीं निर्वचन किया गया है। एक अनुवाक् में समस्त नक्षत्रों का जो चन्द्रमार्ग में पड़ते हैं उल्लेख इस प्रकार है –

कृत्तिका नक्षत्रमग्निर्देवताग्नेरुचस्थ प्रजापतेर्धातुः सोमस्यर्चे त्वारुचे त्वा द्युते त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा रोहिणी नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता मृगशीर्षे नक्षत्रं सोमो देवतार्द्रा नक्षत्रं रुद्रो देवता पुनर्वसू नक्षत्रमदितिर्देवता तिष्यो नक्षत्रं बृहस्पति देवता श्रेषा नक्षत्रं सर्पा देवता मघा नक्षत्रं पितरो देवता फल्गुनी नक्षत्रं भगो देवता फल्गुनी नक्षत्रमर्यमा देवता हस्तो नक्षत्रं सविता देवता चित्रा नक्षत्रमिन्द्रो देवता स्वाती नक्षत्रं वायुर्देवता विशाखे नक्षत्रमिंद्राग्नी देवतानुराधा नक्षत्रं मित्रो देवता ज्येष्ठां नक्षत्रमिंद्रो देवता विचृतौ नक्षत्रं पितरो देवताषाढा नक्षत्रमापो देवताषाढा नक्षत्रं विश्वेदेवा देवता श्रोणा नक्षत्रं विष्णुर्देवता श्रविष्ठा नक्षत्रं वसवो देवता शतभिषङ् नक्षत्रमिंद्रो देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमज एकपाद् देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्बुधिन्यो देवता रेवती नक्षत्रं पूषा देवताऽश्वयुजौ नक्षत्रमश्विनौ देवता भरणी नक्षत्रं यमो देवता पूर्णापश्चाद्यते देवा अदधुः। (तैत्तिरीय संहिता ४।४।१०)

अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र का देवता अग्नि है। अग्नि का तेज, प्रजापति, विधाता, सोम आदि का तेज, प्रकाश के लिए, कान्ति के लिए, ज्योतिष के लिए है। रोहिणी नक्षत्र का देवता प्रजापति। मृगशिरा का चन्द्रमा देवता, आर्द्रा नक्षत्र का रुद्र देवता, पुनर्वसु का अदिति देवता, तिष्य अर्थात् पुष्य नक्षत्र का बृहस्पति देवता, आश्लेषा नक्षत्र का सर्प देवता, मघा नक्षत्र का पितर देवता, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र का भग देवता, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का अर्यमा देवता, हस्त नक्षत्र का सविता देवता, चित्रा

नक्षत्र का इन्द्र देवता, स्वाती नक्षत्र का वायु देवता, विशाखा नक्षत्र का इन्द्राग्नि देवता, अनुराधा नक्षत्र का मित्र देवता, ज्येष्ठा नक्षत्र का इन्द्र देवता, मूल नक्षत्र का पितर देवता, (पूर्वा) अषाढ़ा नक्षत्र का जल देवता, (उत्तरा) अषाढ़ा नक्षत्र का विश्वेदेवता, श्रोण (श्रवण) नक्षत्र का विष्णु देवता, श्रविष्ठा (धनिष्ठा) नक्षत्र का वसु देवता, शतभिषा नक्षत्र का इन्द्र देवता, प्रोष्ठपदा (पूर्वाभाद्रपद) नक्षत्र का अज एकपाद देवता, (उत्तराभाद्रपद) प्रोष्ठपदा नक्षत्र का अहिर्बुध्न्य देवता, रेवती नक्षत्र का पूषा देवता, अश्वयुज (अश्विनी) नक्षत्र का अश्विनौ देवता तथा अपभरणी (भरणी) नक्षत्र का यम देवता है।

अथर्ववेद के १९वें काण्ड के सातवें सूक्त में सभी अट्ठाईस नक्षत्रों के नाम वर्णित हैं।

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे।।

पुण्यं पूर्वाफल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वातिः सुखो मे अस्तु।
राधो विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टं मूलम्।।

अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं ज्ये द्युत्तर आ वहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुष्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम्।।

आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु।।

अर्थात् कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र मेरे आवाहन को सुगमता से स्वीकार करें। मृगशिरा और आर्द्रा (मेरे लिए) कल्याणकारी हों। पवित्र पुनर्वसु और पुष्य तथा ज्योतिर्मय आश्लेषा एवं मघा मेरे लिए अच्छे मार्ग दिखानेवाले हों।

दोनों पूर्वा एवं उत्तरा फाल्गुनी, हस्त नक्षत्र, चित्रा तथा स्वाती मेरे लिए सुखकारी हों। पूजारूप विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा तथा शुभ मूल नक्षत्र मेरे लिए कल्याण देनेवाले हों। पूर्वा अषाढा नक्षत्र मुझे अन्न दे, उत्तराषाढा नक्षत्र मुझे तेज दे, शुभ अभिजित् नक्षत्र मुझे पुण्यवान् बनाये तथा श्रवण एवं धनिष्ठा मुझे शक्ति दें।

महान् शतभिषा नक्षत्र मुझे स्वतन्त्रता प्रदान करे, दोनों प्रोष्ठपद अर्थात् पूर्वा एवं उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र मेरा कल्याण करें, रेवती और अश्विनी नक्षत्र मेरा भाग्यवर्धन करें तथा भरणी नक्षत्र हमें धन प्रदान करें।

अथर्ववेद के इसी काण्ड के आठवें सूक्त के प्रारम्भिक दो मन्त्रों में ऋषि कहता है कि आकाश, अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, पर्वत और दिशाओं में नक्षत्र दिखायी

देते हैं और जिन नक्षत्रों को प्रदीप्त करते हुए चन्द्रदेव प्रकट होते हैं वे नक्षत्र मुझे सुख प्रदान करें। सुख का दर्शन करानेवाले जो अट्ठाईस नक्षत्र हैं वे हमें फल प्रदान करने के लिए समान बुद्धिवाले हों। मैं नक्षत्रों का सहयोग प्राप्त कर अलभ्य वस्तु की प्राप्ति को सिद्ध करूँ और प्राप्त हुई वस्तु की रक्षा का सामर्थ्य भी पाऊं। अहोरात्र को नमस्कार है।

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु।।

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।
योगं प्रपद्ये क्षेमं च क्षेमं प्रपद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु।।

(अथर्ववेद १९।८।१-२)

नक्षत्रों से सम्बन्धित अनेक वर्णन वैदिक साहित्य में हैं जिनका उल्लेख ग्रन्थ विस्तार के भय से नहीं किया जा रहा है किन्तु यहाँ पृथक्-पृथक् नक्षत्रों का उल्लेख करना आवश्यक है जो तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१।१ अथवा अन्य वैदिक स्थलों से सम्बन्धित है।

१. अश्विनी नक्षत्र – अश्विनी कुमार सुनियन्त्रित अश्वों के साथ सुगति से अश्विनी नक्षत्र के साथ आ रहे हैं। ये शुभ हैं, अपने नक्षत्र का हवि से यजन कर रहे हैं, मधु से युत हैं, यजुः से प्रकाशित हैं, देवों के वैद्य हैं, हव्यवाह हैं, विश्वदूत हैं, अमृत के संरक्षक हैं और कर्मफल दाता हैं। उन्हें नमस्कार है। इनका अश्विनी में वास है –

तदश्विनौ अश्वयुजोपयाताम्। शुभं गमिष्ठौ सुयमेभिरश्वैः।
स्वं नक्षत्रं हविषा यजन्तौ मध्वा सम्पृक्तौ यजुषा समक्तौ।।

यो देवानां भिषजौ हव्यवाहौ विश्वस्य दूतौ अमृतस्य गोपौ।
तौ नक्षत्रं जुजुषाणोपयातां नमोऽश्विभ्यां कृणुमोऽश्वयुगभ्याम्।

२. भरणी नक्षत्र – भरणी नक्षत्र का स्वामी देवता यम हैं। यम के लिए वैदिक साहित्य में न्यायाधीश, नियन्ता, संयमी, परमात्मा, वायु तथा सूर्यपुत्र वैवस्वत कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि यम महान् हैं, महानों में महान् हैं, राजा हैं, हमारे मार्ग को सुगम एवं अभय बनाते हैं और उनकी प्रिया भरणी विश्व का भरण करती है। इसी में देवताओं ने यमराज का राज्याभिषेक किया और वे इसी में पधारते हैं। हम भरणी का यजन करते हैं। वह हमारे पापों और कष्टों को समाप्त करें।

लोकस्य राजा महतो महान् हि। सुगं नः पन्थानमभयं कृणोतु।
यस्मिन्नक्षत्रे यम एति राजा। यस्मिन्नेनमभ्यर्षिचन्त देवाः।
तदस्य चित्रं हविषा यजाम।।

३. कृत्तिका नक्षत्र – वैदिक साहित्य में अग्नि को प्रधान देवता माना गया है। ऋग्वेद् में अग्नि से सम्बन्धित लगभग दो सौ सूक्त हैं। ऋग्वेद एवं सामवेद में प्रारम्भ ही अग्नि शब्द से हुआ है। अग्निमीडे पुरोहितं तथा अग्नि आयाहि वीतये। सम्भवतः यही कारण रहा है कि अग्निदेवता का नक्षत्र कृत्तिका भी नक्षत्रगण का प्रथम नक्षत्र वेदों में सर्वत्र उल्लिखित है। शतपद चक्र में कृत्तिका नक्षत्र के प्रथम चरण में अकार है तथा चारों चरणों में स्वर से ही अक्षर आरम्भ हैं। अश्विनी नक्षत्र के प्रथम चरण में 'चू' अक्षर न तो स्वर और न ही व्यंजन का प्रथमाक्षर है। विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी, योगिनी आदि दशाओं का प्रारम्भ बिन्दु कृत्तिका नक्षत्र ही है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि कृत्तिका अग्नि का नक्षत्र है, देव नक्षत्र है और नक्षत्रों का मुख है। इसमें अग्न्याधान करनेवाला प्रमुख होता है। वे अग्निदेव हमारी रक्षा करें जिनकी कृत्तिकाएँ इन्द्रियों को द्योतित करती हैं, जिनकी रश्मियाँ और केतु द्योतमान हैं तथा जो सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं। जो अग्निदेव कृत्तिकाओं में बसते हैं वे हमें कर्मफल दें। अग्निदेव के नक्षत्र कृत्तिका के एक ओर शुक्र तथा दूसरी ओर प्रकाश है। शुक्र तेजस्वी है, दीप्ति का साधन है और दूसरी ओर की ज्वाला ज्योति है, अतः इसमें अग्न्याधान करनेवाला मनुष्य तेजस्वी, ब्रह्मवर्चसी तथा दीप्तिमान होता है।

कृत्तिकास्वग्निमादधीत, एतदग्नेर्नक्षत्रं, मुखं वैतन् नक्षत्राणाम्।
यः कृत्तिकास्वग्निमाधत्ते, मुख्य एव भवति।।

कृत्तिकाः प्रथमं विशाखे उत्तमं, एतानि देव नक्षत्राणि।
अग्निर्नः पातु कृत्तिकाः, नक्षत्रं देवमिन्द्रियम्।।

यस्य भान्ति रश्मयो यस्य केतवः यस्येमाविश्वा भुवनानि सर्वाः।
यः कृत्तिकाभिरभिसंवसानः अग्निर्नो देवः सुविते दधातु।।

(तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१।१)

अग्नेः कृत्तिकाः शुक्रं परस्तात्, ज्योतिरधस्तात्।
यः कृत्तिकासु अग्निमाधत्ते ब्रह्मवर्चसी तेजस्वी भवति।।

(तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।१)

शतपथ ब्राह्मण का मानना है कि अन्य नक्षत्र समूह में एक, दो, तीन या चार तारे हैं, किन्तु कृत्तिका में अनेक हैं अतः इस कृत्तिका में अग्न्याधान

करनेवाला बहुत पाता है। अन्य नक्षत्रों का उदय पूर्व दिशा से हटकर होता है पर ये सदा पूर्व में उगती हैं।

एकं द्वे त्रीणि चत्वारि नक्षत्राणि कृत्तिका एव भूयिष्ठाः।
तद् भूमानमुपैति, तस्मात् कृत्तिकास्वादधीत।।

एताह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते, सर्वाणि चान्यानि
नक्षत्राणि च्यवन्ते तस्मात्।।

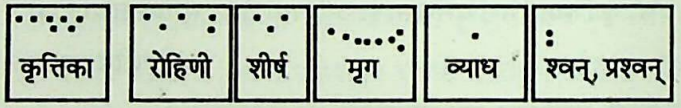
४. रोहिणी नक्षत्र – वैदिक साहित्य में रोहिणी नक्षत्र का स्वामी प्रजापति (ब्रह्मा) है। वर्तमान ज्योतिष भी इसी का अनुगामी है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि प्रजापति की पत्नी रोहिणी आवे। वह बहुरूपा, वृहती और तेजस्विनी है। वह हमारा यज्ञ सम्पन्न करे। जिससे हम सुवीर होकर सौ वर्ष जियें। रोहिणी का सामने से उदय हो रहा है। वह देवों की प्रिया है और सम्पूर्ण विश्व को प्रमुदित करती है। उसे हविष्यान्न प्रदान करने पर प्रजापति प्रसन्न होते हैं।

प्रजापते वेतु पत्नी रोहिणी विश्वरूपा वृहती चित्रभानुः।
सा नो यज्ञस्य सुविते दधातुं यथा जीवेम शरदः सुवीराः।।

रोहिणी देव्युदगात् पुरस्तात् विश्वारूपाणि प्रतिमोदमाना।
प्रजापतिं हविषा वर्धयन्ती प्रियादेवानामुपयातु यज्ञम्।।

(तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१।१)

वेदों का रोहिणी, ब्रह्मा विषयक उपाख्यान केवल भूतकाल में ही घटित हुआ ऐसा नहीं है वह आज भी आकाश में व्याध रूपधारी आर्द्रा (शिव) उनके श्वन् प्रश्वन् नामक दो कुत्ते त्रिकाण्डबाण, मृगरूपी ब्रह्मा और मृगीरूपी रोहिणी दिखायी देते हैं।



५. मृगशिरा नक्षत्र – मृगशिरा नक्षत्र के विषय में तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि मृगशिरा के स्वामी चन्द्रमा हैं। सोम राजा समस्त प्राणियों को समृद्धि देते हुए मृगशिरा नक्षत्र के साथ उदित हो रहे हैं। मृगशिरा नक्षत्र शिव (कल्याणकारी) है। यह चन्द्रमा का प्रिय घर है तथा प्रियों से भी प्रिय है हम ऋषिगण सोम और मृगशिरा को हवि प्रदान कर रहे हैं। ये दोनों हमारे बल की वृद्धि और पशु प्राणियों की रक्षा करें।

सोमो राजा मृगशीर्षेणागात् । शिवं नक्षत्रं प्रियमस्य धाम।
आप्यायमानो बहुधा जनेषु । यत्ते नक्षत्रं मृगशीर्षं प्रियं राजन् प्रियतमम्।
तस्मै ते सोम हविषा विधेम। शन्न एधि द्विपदे चतुष्पदे।

६. आर्द्रा नक्षत्र – आर्द्रा नक्षत्र के स्वामी रुद्र (शिव) हैं। रुद्र की प्रिया ही आर्द्रा है। इनका हृदय सदा दया से आर्द्र रहता है इसीलिए ये आर्द्रा कही गयी है। आर्द्रा नक्षत्र में ही प्रथम वर्षा होती है तथा उससे पृथ्वी के आर्द्र (गीली) होने पर ही संसार के प्राणी सुखी होते हैं। आर्द्रा में बरसने पर पुनः अन्न पैदा होता है अतः आर्द्रा के बाद ही पुनर्वसु नक्षत्र आता है। आर्द्रा नक्षत्र में एक ही तारा है। वह बड़ा तेजस्वी है। उसे आकाश की मणि भी कहा गया है। आकाश का सबसे तेजस्वी ग्रह रुद्र उसी के पास हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार देवों में श्रेष्ठ (पशुओं) गायों का स्वामी, सुप्रसिद्ध देव रुद्र आर्द्रा के साथ आ रहे हैं। हम लोग इनके नक्षत्र आर्द्रा की पूजा करते हैं। वह हमारी हवि को स्वीकार करें। वह हमारी प्रजा की और वीरों की रक्षा करें। रुद्र और आर्द्रा पापों से हमें मुक्ति दिलायें तथा शत्रुओं से रक्षा करें।

आर्द्रया रुद्रः प्रथमान एति । श्रेष्ठो देवानां पतिरघ्नियानाम्।
नक्षत्रमस्य हविषा विधेम । मा नः प्रजां रीरिषन् मोत वीरान्।

आर्द्रा नक्षत्रं जुषतां हविर्नः । प्रमुञ्चमानौ दुरितानि विश्वा।
अपाघशंसं नुदतामरातिम् । हेती रुद्रस्य परितो वृणक्तु।।

७. पुनर्वसु नक्षत्र – वैदिक साहित्य में पुनर्वसु नक्षत्र का स्वामी अदिति देव हैं। ऋग्वेद १।१०।६, २।२२।३, ६।१।१३ आदि अनेक मन्त्रों में विद्या, आरोग्य तथा धन को वसु कहा गया है और विशेषतया वसु का अर्थ अन्न है। जब नये अन्न के उत्पत्ति का समय प्रारम्भ होता है तभी पुनर्वसु का प्राकट्य होता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि पाप से रहित, विश्व का भरण-पोषण प्रतिष्ठा देनेवाले अदिति देवता हम लोगों पर प्रसन्न हों। दोनों पुनर्वसु एवं अदिति बारम्बार आयें।

पुनर्नो देव्यदितिः स्पृणोतु एषा न देव्यदितिरनर्वा विश्वस्य भर्त्री जगतः प्रतिष्ठा। पुनर्वसू नः पुनरेतां यज्ञं देवा अभियन्तु सर्वे। हविषा वर्धयन्ती प्रियं देवानामप्येतु पाथः।

८. पुष्य नक्षत्र – पुष्य नक्षत्र का देवता बृहस्पति है। पोषण करने वाले को पुष्य नक्षत्र कहा गया है। पुनर्वसु में नवीन अन्न होगा तभी प्राणियों का पोषण होगा अतः पुनर्वसु के बाद पुष्य नक्षत्र आता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि बृहस्पति पुष्य के पास आया। यह देवों में श्रेष्ठ एवं विजयी है। हमारे लिए सभी दिशायें

भयरहित करनेवाली हों। बृहस्पति और पुष्य नक्षत्र सभी ओर से हमारी रक्षा करें। वे हमारे शत्रुओं के बाधक हों और हमें बलवान बनावें। यथा –

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानस्तिष्यं नक्षत्रमभिसम्बभूव।
श्रेष्ठो देवानां पृतनासु जिष्णुः। दिशः सर्वा अभयं नोऽस्तु।

तिष्यो पुरस्तादुत मध्यतो नः। बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चात्।
बाधेतां द्वेषोऽभयं कृणतुं सुवीर्यस्य पतयः स्याम।।

९. आश्लेषा नक्षत्र – आश्लेषा या श्लेषा नक्षत्र का स्वामी सर्प देवता हैं। श्लेषा नक्षत्रं सर्पा देवता। वैदिक साहित्य में इस नक्षत्र को अश्लील नक्षत्र कहा है। यह निन्द्य नक्षत्र है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि अश्लील नामवाले नक्षत्र में न यज्ञ का आरम्भ करें और न ही इस नक्षत्र में यज्ञ समाप्त करें क्योंकि यह पाप नक्षत्र है।

अश्लीलनामश्चित्रे नावस्येन्न यजेत्।
यथा पापाहे कुरुते तादृगेव तत्।। (तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।२)

दो पदार्थों का संयोग ही आश्लेष है। श्रावण मास में पृथ्वी और आकाश के संयोग का दर्शन होता है, जब सूर्य आश्लेषा नक्षत्र में आता है। वैदिक साहित्य में आश्लेषा का स्वामी जो सर्प है वह साँप नहीं अपितु देवता हैं। यजुर्वेद १०।३०, १३।६, २३।५६ में लोकों को सर्प कहा गया है। जो सरकते हैं वे सर्प हैं। सर्पन्ति इति सर्पाः। तारा आदि भी सर्प ही हैं क्योंकि वे निरन्तर सरकती हैं। कुछ अत्यधिक चमकनेवाले तारे ही सर्पमणि हैं। ये सर्प द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी तीनों लोकों में रहते हैं। भगवान् शिव भी सर्प धारण करते हैं। सूर्यमण्डल में भी सर्प हैं तथा नक्षत्र उनकी शरीर हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि जो सर्प द्युलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी में रहते हैं, तारे और ग्रहों में रहते हैं, सूर्य की किरणों में रहते हैं, नक्षत्र रूपी देहवाला आश्लेषाएँ जिनके चित्त और कामनाओं का अनुगमन करती हैं वे सर्प हमारे यज्ञ में आवें। हम उन्हें मधुमती हवि प्रदान कर रहे हैं।

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।
नमोऽस्तु सर्प्नेभ्यो ये केचन् पृथिवी मनु।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्प्नेभ्यो नमः।।
इदं सर्प्नेभ्यो हविरस्तु जुष्टम्।

ये अन्तरिक्षं पृथिवीं क्षियन्ति ते नः सर्पासो हव मागमिष्ठाः।
ये रोचने सूर्यस्यापि सर्पाः। ये दिवं देवीमनुसंचरन्ति।

येषामाश्लेषा अनुयन्ति कामं, अनुयन्ति चेतः।
तेभ्यः सर्प्नेभ्यो मधुमज्जुहोमि।

१०. मघा नक्षत्र – वेदों ने मघा को देव नक्षत्र माना है। मघा के स्वामी पितर हैं। ये देवयान से आते हैं।

आ यन्तु नः पितरः सोम्यसोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः। अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु ते अवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्।। (यजुर्वेद १९।५८)

वेदों के अनुसार मघा का अर्थ है विद्या, विज्ञान, ऐश्वर्य, बल एवं इन्द्र। इन्द्र का एक नाम मघवा भी है। यह नक्षत्र सुकृत के लिए है। शुभ है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी इसे सुकृत्य, मनोजव आदि कहा है –

उपहूता पितरो ये मघासु मनोजवसः सुकृतः सुकृत्याः।
ते नो नक्षत्रे हवमागमिष्ठाः। येऽमुं लोकं पितरः क्षियन्ति।
यांश्च विद्मो यान्न विद्मः। मघासु यज्ञं सुकृतं जुषन्ताम्।।

ऋग्वेद १०।८५।१३ में अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्यो पर्युह्यते। का अर्थ करते हुए शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने लिखा है कि सविता ने जो दहेज दिया वह दहेज सूर्या के पहले ही आगे गया। अघा (मघा) नक्षत्र में गायों को मारते हैं। अर्जुनी (फाल्गुनी) नक्षत्र में (कन्या) ले जाते हैं। सविता की कन्या सूर्या सोम को दी गयी। उस समय सूर्य ने दहेज में जो गायें दीं वे पहले ही दिन अर्थात् मघा नक्षत्र में ही हाँककर ले जायी गयीं और कन्या अर्जुनी नक्षत्र में गयी।

११. पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र – वैदिक साहित्य में पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र का स्वामी भग देवता कहे गये हैं। 'फल्गुनी नक्षत्रं भगो देवता।' यजुर्वेद ३४।३६, ३४।३८ मन्त्रों में भग का अर्थ भजनीय, परमात्मा, विद्वान्, ऐश्वर्य तथा सूर्य हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि भग देवता फाल्गुनी के स्वामी हैं तथा सबके हितकारी हैं। हे भगदेव! आप देवों में श्रेष्ठ हैं, दाता हैं, प्रदाता हैं और फल्गुनी में प्रविष्ट हैं अतः वे आपकी महिमा को जानती हैं। आप कृपापूर्वक हमें क्षत्रत्व, अमरत्व और बल दें तथा गोमान् तथा अश्वमान् बनावें। हम देवों के साथ रहें, उनकी आज्ञा मानें और फल्गुनी हम पर प्रसन्न हो।

श्रेष्ठो देवानां भगवो भगासि तत्त्वा विदुः फल्गुनीस्तस्य वित्तात्।
अस्मभ्यं क्षत्रमजरं सुवीर्यं गोमदश्वमत् सन्नुदेह।।

भगो ह दाता भग इत्प्रदाता भगो देवीः फल्गुनीराविवेश।
भगस्येत्तं प्रसवं गमेम यत्र देवैः संघमादं मदेम।।

१२. उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र – उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का देवता अर्यमा है। ऋग्वेद १।१६७।८ में अर्यमा का अर्थ न्यायकारी है। वस्तुतः अर्यमा भी सूर्य का ही पर्याय है। वेद अर्यमा को गायों (किरणों) का स्वामी मानता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि हे अर्यमन् आप फल्गुनी एवं गायों के स्वामी हैं। आप हित (कल्याण) करनेवाले हैं। हम लोग संसार के पिता और कष्टों के निवारक आपकी शरण में हैं। आपने सब भुवनों को जीता है और देवगण आपके चित्त का अनुसरण करते हैं। हे अर्यमन् ! आप बुद्धिमान् घोषकारी तथा निर्जर (कभी बूढ़े न होनेवाले) राजा हैं।

गवां पतिः फल्गुनीनामसि त्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु।
तं त्वा वयं सवितारं सनीनां जीवा जीवन्तमुपसंविशेम।।
येनेमा विश्वा भुवनानि संजिता यस्य देवा अनुयन्ति चेतः।
अर्यमा राजा अजरस्तु विष्मान् फल्गुनीनामृषभो रोरवीति।।

दोनों पूर्वा एवं उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रों के स्वामियों में कहीं-कहीं अन्तर भी मिलता है। कहीं पूर्वाफाल्गुनी का स्वामी अर्यमा तथा उत्तराफाल्गुनी का स्वामी भग देवता कहा गया है। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के सन्दर्भ में तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।२ का कथन है कि पूर्वाफाल्गुनी अशुभ है। यह संवत्सर की अंतिम रात्रि है। इसमें अग्न्याधान करनेवाला पाप का भागी होता है। उत्तराफाल्गुनी संवत्सर की प्रथम रात्रि है। यह संवत्सर का मुख है। इसमें अग्न्याधान करनेवाला प्रमुख और श्रेष्ठ होता है।

न पूर्वयोः फल्गुन्योरग्निमादधीत्, एषा वै जघन्या रात्रिः संवत्सरस्य। पृष्टित एव संवत्सरस्याग्निमाधाय पापीयान् भवति, उत्तरयोरादधीत।। एषा वै प्रथमा रात्रिः संवत्सरस्य यदुत्तरे फल्गुनी। मुखत एव संवत्सरस्याग्निमाधाय वसीयान् भवति।।

१३. हस्त नक्षत्र – वेदों में हस्त नक्षत्र का स्वामी देवता है सूर्य है। हस्तो नक्षत्रं सविता देवता। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार सूर्य देव सोने के रथ पर आरूढ़ होकर इच्छापूर्वक, इष्ट फल देनेवाले, सौभाग्ययुक्त हस्त नक्षत्र के साथ आ रहे हैं। हम उस दाता को सदा पावें। वह हम लोगों को शाश्वत अमृत प्रदान करें और हम उसे दायें हाथ से ग्रहण करें।

आयातु देवः सविता हिरण्मयेन सुवृत्ता रथेन वहन्।
हस्तं सुभगं प्रयच्छन्तं ग्नपुरिं पुष्यम्।

हस्तः प्रयच्छत्वमृतं वसीयः दक्षिणेन प्रतिगृभ्णीम् एनत् दातारमद्य सविता विदेय।।

१४. चित्रा नक्षत्र – वैदिक साहित्य में चित्रा नक्षत्र का स्वामी इन्द्र है। "चित्रानक्षत्रमिन्द्रो देवता" का उल्लेख तैत्तिरीय संहिता ४।४।१० में आया है। किन्तु तैत्तिरीय ब्राह्मण में चित्रा का स्वामी त्वष्टा देवता को कहा गया है। इस ब्राह्मण का कथन है कि त्वष्टा देवता सुन्दर जघनवाली सुन्दरी युवती चित्रा के साथ आ रहे हैं। वह अमृतवर्षिणी और भुवनरक्षिणी है। वह हम लोगों पर अनुग्रह करें, वह हम लोगों को बहुत (धनादि) प्रदान करे और वीर प्रजा से, गायों से तथा अश्वों से सम्पन्न बनावे।

त्वष्टा नक्षत्रमभ्येति चित्रां शुभंशसं युवतिं रोचमानाम्।

निवेशयन्नमृतं भुवनानि विश्वा। तन्नक्षत्रं भूरिदमस्तु प्रजां वीरवतीं सनोतु गोभिर्नो अश्वैः संयुनक्तु।।

चित्रा नक्षत्र २७ नक्षत्रों में मध्य का नक्षत्र है। खगोल में प्राचीन चित्रों में चित्रा नक्षत्र का आकार लम्बे कानोंवाले उलूक (उल्लू) पक्षी जैसा बनाया हुआ मिलता है। यही कारण है कि वेदों में इन्द्र के लिए वृद्धश्रवाः अर्थात् लम्बे कानोंवाला कहा गया है।

१५. स्वाती नक्षत्र – स्वाती नक्षत्र का देवता वायुदेव हैं। स्वाती नक्षत्र को 'निष्ट्या' नक्षत्र भी कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में १।५।२ में कहा गया है कि स्वाती नक्षत्र में विवाहिता कन्या पति को इतनी प्रिय हो जाती है कि पुनः लौटकर पिता के घर नहीं आती। स्वाती नक्षत्र का वर्णन करता हुआ वैदिक ऋषि कहता है कि तेजस्वी, इष्टप्रद, शब्दायमान वायुदेवता सम्पूर्ण विश्व को प्रेरणा देता हुआ निष्ट्या नक्षत्र के साथ आ रहे हैं। वे बहुप्रद हों और हमें शत्रुओं तथा कष्टों से पार कर दें।

वायुर्नक्षत्रमभ्येति निष्ट्यां तिग्मशृङ्गो वृषभो रोरुवाणः, समीरयन् भुवनानि विश्वा। तन्नो वायुर्निष्ट्या शृणोतु भूरिदाऽस्तु यथा तरेम।।

१६. विशाखा नक्षत्र – "विशाखे नक्षत्रमिन्द्राग्नी" अर्थात् वैदिक साहित्य में विशाखा नक्षत्र के दो प्रधान देवता हैं इन्द्र और अग्नि। इसी कारण इसे द्वीश दो स्वामियोंवाला कहा गया है। निरुक्तकार ने विशाख का निर्वचन करते हुए लिखा है कि जो 'ख' आकाश में विशेष रूप से शयन करता है। विशाखा नक्षत्र में दो तारे हैं अतः इसे वेदों में द्विवचन में प्रयोग किया गया है। विशाखा नक्षत्र को राधा नक्षत्र भी कहा जाता है। राधा, राधस् शब्द से निष्पन्न है जिसका अर्थ तेज अथवा धन है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि दो श्रेष्ठ देवता इन्द्र और अग्नि नक्षत्रों की अधिपत्नी राधा के साथ आ रहे हैं। ये सब भुवनों के संरक्षक हैं। ये तीनों हमारे

शत्रुओं को भयभीत कर भगा दें, वे दूर चले जायँ, और देवगण हमारे यज्ञ में आकर प्रसन्न हों। हम चारों ओर से अभय रहें। ये विभिन्न गतियों से आकर हमारे शत्रुओं और क्षुधा को दूर करें।

दूरमस्मच्छवो यन्तु भीताः तन्नो देवा अनुमदन्तु यज्ञं, पश्चात् पुरस्तादभयं नो अस्तु। नक्षत्राणामधिपत्नी विशाखे श्रेष्ठाविन्द्राग्नी भुवनस्य गोपौ। विषूचः शत्रूनप्नबाधमानौ। अपक्षुधं नुदतामरातिम्।।

ऋग्वेद १।१३५।४ में भी राधा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का वर्णन मिलता है। **पिवतं मध्वो अन्धसः चन्द्रेण राधसागतम्।।**

१७. अनुराधा नक्षत्र –"अनुराधा नक्षत्रं मित्रो देवता" अनुराधा नक्षत्र का स्वामी मित्र देवता अर्थात् सूर्य देव हैं। वेदों में राद्ध का अर्थ समृद्ध है अतएव अनुराधा नक्षत्र समृद्धिदा नक्षत्र है। यह नक्षत्र राधा (विशाखा) नक्षत्र के पश्चात् आता है अतः इसे अनुराधा कहते हैं। आराधना शब्द भी इसी अर्थ में आता है। जैसे परमात्मा की आराधना सिद्धि एवं समृद्धि देती है उसी प्रकार यह अनुराधा नक्षत्र भी सिद्धि और समृद्धिदायक है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार पूर्व दिशा में यह अनुराधा नाम का विचित्र नक्षत्र उदित हुआ है। इसमें मित्र देव अन्तरिक्ष में स्थित स्वर्ण से निर्मित देवयान पथ से आ रहे हैं।

चित्रं नक्षत्रमुदगात् पुरस्तात् अनुराधा इति यद् वदन्ति।
तस्मिन् मित्र एति पथिभिर्देवयानैर्हिरण्ययैर्विततैरन्तरिक्षे।।

इसी अनुवाक में 'मैत्रेण कृषन्ते' का अर्थ करते हुए आचार्य सायण ने कहा है कि अनुराधा नक्षत्र में हल चलाते हैं। आचार्य शंकर बालकृष्ण दीक्षित का मत है कि अनुराधा में हल चलाने का कारण कुछ–न–कुछ इस कथन में अवश्य है। इसी अनुवाक में अनुराधा नक्षत्र की व्युत्पत्ति 'अन्वेषामरात्स्मेति। तदनूराधाः'। की गयी है।

१८. ज्येष्ठा नक्षत्र – 'ज्येष्ठा नक्षत्रमिन्द्रो देवता' अर्थात् ज्येष्ठा नक्षत्र का स्वामी इन्द्र देवता है। इन्द्र देवताओं में ज्येष्ठ हैं इसीलिए उनके नक्षत्र को ज्येष्ठ कहा गया है। देखने में ज्येष्ठा के तीन तारे बड़े सुन्दर हैं अतः ज्योतिर्विदों ने इसे कुण्डल कहा है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि ज्येष्ठा नक्षत्र इन्द्र की प्रिया है। देवासुर संग्राम में इन्द्र ने इसी नक्षत्र में असुरराज वृत्र को मारा था। इन्द्र अपनी ज्येष्ठा के साथ आ रहा है। इस नक्षत्र में हम अमृत का दोहन कर क्षुधा से, दुर्गति से और संकटों से पार हों। दुष्ट पुरों के नाशक, बली, धीर, वीर, व्रती, सहिष्णु, सज्जनों पर आनन्द की वर्षा करनेवाले और श्रेष्ठ मधु के दोहक इन्द्र को नमस्कार है। वे यजमान को अपना लोक ज्येष्ठा प्रदान करें।

इन्द्रो ज्येष्ठामनुनक्षत्रमेति यस्मिन् वृत्रं वृत्रतूर्ये ततार।
तस्मिन् वयममृतं दुहाना क्षुधं दुरितिं दुरिष्टिं तरेम्।।
पुरन्दराय वृषभाय धृष्णवे आषाढाय सहमानाय मीढुषे
इन्द्राय ज्येष्ठा मधुमद्दुहानाः। उक्तं कृणोतु यजमानाय लोकम्।।

ज्येष्ठा नक्षत्र अशुभ एवं उग्र है इसका विचार वेदकाल में होने लगा था। यही कारण है कि अथर्ववेद में इसे कुलघाती आदि कहा गया है। अथर्ववेद में इसका अनेक स्थलों पर उल्लेख है। एक स्थान पर कहा गया है कि ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न जातक बड़ों को मारनेवाला तथा मूल नक्षत्र का जातक कुटुम्ब का पालक होता है। इसीलिए पाप नक्षत्र में जन्म लेनेवाले इस बालक को यम के कुटुम्ब नाशवाले कार्य से पृथक् करो। सभी देवगण इसे पापों से पार करते हुए शतायुष्य करें। मेरा यह बालक सिंह के समान क्रूर नक्षत्र में उत्पन्न हुआ है इसलिए यह जन्म लेते ही उत्तम वीर्य से युक्त हो और बड़ा होने पर अपने माता-पिता की हिंसा करनेवाला न बने।

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परिपाह्येनम्।
अत्येन् नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।।
व्याघ्रेऽह्वय् जनिष्ठ वीरो नक्षत्रजा जायमानः सूवीरः।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम्।

(अथर्ववेद ६।११०।२,३)

अगले सूक्त में ज्येष्ठा एवं मूल नक्षत्र में उत्पन्न जातकों के विषय में वर्णन करता हुआ ऋषि कहता है कि हे अग्ने! ज्येष्ठा नक्षत्र का जातक अपने बड़े लोगों में से किसी की मृत्यु का कारण न बने। यह वंशविनाशक न हो अतः इस दोष से रक्षा करो। हे अग्ने! तुम शान्ति कारक हो इसलिए ग्रहणशील पिशाचों के बन्धन से इसे मुक्त करो। हे अग्ने! तुम पितर आदि के परिवेदन दोष से उत्पन्न पाश का शमन करो। माता-पिता, पुत्र जिन परिवेदनजन्य पाशों से बचे हैं उन्हें खोलो। हे अग्ने! तुम मुक्त करनेवाले उपायों के ज्ञाता हो अतः इस परिवेदनजन्य दोष से मुक्त करो।

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परि पाह्येनम्।
स ग्राह्याः पाशानु विचृत प्रजानन् तुभ्यं देवा जानन्तु विश्वे।
उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां त्रयस्त्रिभिरुत्सिता ये भिरासम्।
स ग्राह्याः पाशान् विचृत प्रजानन् पिता पुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान्।।

(अथर्ववेद ६।११२।१,२)

अन्य स्थल पर भी ज्येष्ठा एवं मूल नक्षत्र में उत्पन्न जातक को अरिष्टप्रद बताते हुए कहा गया है कि यह जातक सन्तापदायक पाश आदि बन्धनों से मुक्त हो। विचृत अर्थात् मूल इन दो नक्षत्रों में बँधे हुए जातक को मृत्युभय से मुक्त करें। हे बन्धन के अभिमानी देव इस बन्धन से पीड़ित होनेवाले जातक को स्थान दो, बन्धन से मुक्त करो और अनेक प्रकार से यहाँ से चले जाओ, जैसे माता के गर्भ से बाहर आया हुआ शिशु विचरण करता है, वैसे तुम लोग मार्गों में विचरण करो।

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके।
प्रेहामृतस्य यच्छतां प्रैतु बद्धकमोचनम्।।
वि जिहोष्व लोकं कृणु बन्धान्मुश्चासि बद्धकम्।
योन्या इव प्रच्युतोगर्भः पथः सर्वां अनुक्षिय।।

(अथर्ववेद ६।१२१।३,४)

१९. मूल नक्षत्र – वैदिक साहित्य में मूल नक्षत्र को विचृति, मूल बर्हण आदि नामों से कहा गया है। तैत्तिरीय संहिता में इस नक्षत्र का स्वामी पितर हैं किन्तु अन्य स्थलों पर इसका स्वामी निर्ऋति हैं। निर्ऋति दिक्पाल हैं। अथर्ववेद का कथन है कि विचृती नामक मूल नक्षत्र का उदय हो गया है। वह माता–पिता से प्राप्त क्षय, कुष्ठ, अपस्मार आदि रोगों को पाश के समान बाँधने वाले हों तथा रोग के मूल को नष्ट करें।

उदगातां भगवती विचृती नाम तारके।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम्।। (अथर्ववेद २।८।१)

तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि जिसमें देवों ने असुरों का समूल नाश किया वह मूल नक्षत्र है। विचृत शब्द तैत्तिरीय आरण्यक २।८।१ के मत से मूल नक्षत्र की पर्यायवाची संज्ञा है। तैत्तिरीय संहिता ४।४।१०।२ में मूल नक्षत्र में उत्पन्न बालक के अरिष्टे शमन का निर्देश किया गया है। ज्येष्ठा नक्षत्र में वर्णित अथर्ववेद ६।११०।२ में 'ज्येष्ठघ्न्यां जातो' आदि में ज्येष्ठा नक्षत्र का बालक बड़ों का तथा मूल का जातक कुल नाशक होता है। अथर्ववेद ६।११० में तीन मन्त्रों द्वारा ज्येष्ठा, मूल, रेवती, अश्विनी, आश्लेषा एवं मघा इन छह नक्षत्रों को पाप नक्षत्र बताया गया है। इन छह नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र में उत्पन्न जातक अनिष्टकारक होता है। ज्येष्ठा एवं मूल नक्षत्र को अभूक्त मूल तथा शेष चार नक्षत्र गण्डान्त कहे गये हैं। अभूक्त मूल नक्षत्र में उत्पन्न जातक का कुल नष्ट हो जाता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण गोस्वामी तुलसीदास जी के जन्म से ज्ञात होता है।

गोस्वामी जी की पीड़ा

गोस्वामी जी ने मूल नक्षत्र में उत्पन्न जातकों की पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त किया है। वे लिखते हैं कि माता-पिता ने मुझे जन्म देकर त्याग दिया। मेरा जन्म होने पर वधावा नहीं बजे अर्थात सोहर आदि नहीं गाया गया। मैं जन्म से ही भिक्षुक बना। बचपन से ही कथरी लिये, नीच जनों से अपमानित होता हुआ रोटी के टुकड़े के लिए बिलखता हुआ कुत्ते की भाँति प्रत्येक द्वार पर भटकता रहा। चने के चार दाने को चार पुरुषार्थ, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष समझता रहा। पेट की ज्वाला से सन्तप्त होकर जाति, कुजाति सबका खाया। दांतों को काढ़ता हुआ (खीस निकालकर) लोगों के पैर पर गिरता रहा पर लोगों द्वारा प्रेम से बोलना तो दूर कोई हमारा मुख भी देखना नहीं चाहता था। लोग कहा करते थे यह कुलभक्षी है। लोग अभागा समझकर मुझे छूते तक नहीं थे, इसे कौन नहीं जानता है। कवितावली रामायण में गोस्वामी जी का कथन इस प्रकार है-

दुखहु दु:खित मोहि हेरे।
तनु जन्यो तज्यो कुटिल कीट ज्यों माता पिता हू।
मातु पिता जग जाइ तज्यो विधिहुँ न लिखी कुछ भाल भलाई।
नीच निरादर भाजन कादर, कूकर टूकन लागि ललाई।।
राम सुभाउ सुन्यो तुलसी प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथु सो साहेब खोरि न लाई।।

(कवितावली, उत्तरकाण्ड ५७)

जाति के सुजाति के, कुजाति के पेटागिबस
खाये टूक सबके विदित बात दूनीं सो।
मानस बचन काय किये पाप सतिभांय
राम को कहाई दासु दगाबाज पुनि सो।

(कवितावली, उत्तरकाण्ड ७२)

जायो कुल मंगन बधावनो बजायो सुनि
भयो परितापु पापु जननी जनक को।
बारें ते ललात विललात द्वार द्वार दीन
जानत हौं चारि फल चारि हि चनक को।।

(कवितावली, उत्तरकाण्ड ७३)

पातक पीन, कुदारिद दीन मलीन धरैं कथरी करवा हैं,
लोकु कहै विधिहूँ न लिख्यो सपनेहूँ नहिं अपने वर वाहै।।

(कवितावली, उत्तरकाण्ड ५६)

अर्थात् लोक मेरे विषय में कहता था कि यह बालक पापों में बढ़ा हुआ दरिद्रता के कारण दीन है तथा मलिन कना और करवा धारण किये है। विधाता ने इसके भाग्य में कुछ भी नहीं लिखा तथा यह सपने में भी अपने बल पर नहीं चलता।

इस प्रसंग में कहना यह है कि गोस्वामी जी अभुक्त मूल में पैदा हुए थे तथा जन्म लेते ही जैसे माता–पिता को यह ज्ञात हुआ कि यह कुलघाती है गोस्वामी जी को घर से बाहर निकाल दिया। एक दासी चुनिया इनका पालन–पोषण करने लगी थी किन्तु नक्षत्र के प्रभाव से माता–पिता का शीघ्र ही मरण हो गया यहाँ तक कि जो दासी सेवा कर रही थी वह भी थोड़े काल में स्वर्ग सिधार गयी। अब क्या था लोग गोस्वामी जी का मुख भी देखना पसन्द नहीं करते थे। गोस्वामी जी जब क्षुधा से पीड़ित होकर रोटी माँगते थे तो लोग इन्हें कुत्ते की भाँति दुरदुरा देते थे और कहते थे कि इसका मुख भी देखना अपशकुन है। अस्तु ! इतना कष्ट वह भी मूल नक्षत्र के कारण सहन करनेवाले गोस्वामी जी को ज्योतिष शास्त्र के प्रति अनास्था होनी चाहिए थी किन्तु 'नानापुराणनिगमागम सम्मतं यत्' का डिंडिम घोष करनेवाले गोस्वामी जी ने अपने सम्पूर्ण साहित्य में जितना अधिक ज्योतिष शास्त्र को महत्त्व दिया वह सर्वथा उनके अनुरूप था। एक नहीं ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिसमें गोस्वामी जी ने ज्योतिष शास्त्र को अत्यधिक प्रतिष्ठापित किया। रामशलाका प्रश्नावली भी ज्योतिषशास्त्र पर आधारित उनका ग्रन्थ ज्योतिष समाज में आज भी अभिवन्द्य है।

मूल शान्ति का विधान जो वैदिक साहित्य में वर्णित है उसका उल्लेख शान्ति विधान प्रकरण में किया जायगा। यहाँ वैदिक नक्षत्रों का वर्णन चल रहा है अतः प्रसंगवशात् यह बात कही गयी है।

२०. पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र – "आषाढ नक्षत्रमापो देवता" तैत्तिरीय संहिता ४।४।१० अर्थात् पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र का देवता आप यानी जल है। वैदिक साहित्य में ब्रह्मचारी के पवित्र पलाश दण्ड को आषाढ़ कहा गया है। वर्तमान ज्योतिष इसे हाथी के उठे हुए दो दांतों के समान इसकी आकृति मानता है। इसका स्वामी जल वैदिक साहित्य में घृत, मधु, अमृत, जीवन, पय, क्षीर, भेषज, रस, क्षेम, सुख, शुभ एवं पवित्र आदि अनेक नामों से उल्लिखित है। इस जल के नक्षत्र पूर्वाषाढ़ा के विषय में तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि अषाढ़ा नक्षत्र का यह जल दिव्य आकाश से आ रहा है अतः पेय और पय है। यह पृथ्वी पर आने पर भी वैसा ही रहता है। इसमें आप देव बैठे हैं, अषाढ़ा उनकी इच्छा का अनुगमन कर रही है और जल में स्थित मधु को पीती–पिलाती है। यह जल आकाश, कूप, समुद्र, सरोवर, नदी आदि किसी भी जलाशय के हों, मधु हैं। यह हम लोगों का कल्याण करे।

या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवु र्या अन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः।
या सामषाढ़ा अनुयन्ति कामं तान आपः शं स्योना भवन्तु।।

याश्च कूप्याः समुद्रिया याश्च नाद्याः वैशन्तीरुत प्रासचीर्याः।
या सामषाढ़ा मधु भक्षयन्ति ता न आपः शं स्योना भवन्तु।।

(तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।२)

२१. उत्तराषाढ़ा नक्षत्र – उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के स्वामी विश्वेदेव कहे गये हैं। "आषाढ़ा नक्षत्रं विश्वेदेवा देवता" ऋषियों ने समस्त देवों के समूह को विश्वेदेवा कहा है। सायणाचार्य ने विश्वेदेवा को देव-विशेष माना है। विश्वेदेवों की भावना की भूमिका में जहाँ भारतीय आर्यों की संघात्मक भावना है वहीं सामाजिक तथा सांस्कृतिक ऐक्य की विचारणा भी स्थित है। वसुओं एवं आदित्यों जैसे देवसमूह के साथ विश्वेदेवों का आवाहन भी इसकी पुष्टि करता है। यही कारण है कि विश्वेदेवों के इस नक्षत्र में देव प्रतिष्ठा, विवाह, सीमन्तोन्नयन, राज्याभिषेक, उपनयन, गृहारम्भ, गृह-प्रवेश तथा समस्त शुभ कर्मों को किया जाता है। पीछे यह कहा जा चुका है कि इस नक्षत्र में देवों के द्वारा किये गये प्रहार को असुरगण सह नहीं सके थे इसीलिए इसे अषाढ़ा कहा गया है। अथर्ववेद संहिता १९।७।४ में कहा गया है कि जलदेवता का पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र हमें सुभक्ष्य अन्न प्रदान करे तथा विश्वेदेवताओं का उत्तराषाढ़ा-हमें बलदायक, तेजदायक अन्नमय रस दे। यथा –

अन्नं पूर्वा रासतां भे आषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु।।

२२. अभिजित नक्षत्र – तीन ताराओं के द्वारा त्रिकोण की आकृतिवाला यह नक्षत्र वस्तुतः नक्षत्रमण्डल नहीं है। यह उत्तराषाढ़ा का अन्तिम भाग तथा श्रवण नक्षत्र के आदि का १५ अंश का योग है। नक्षत्रों की कुल संख्या २७ ही है तथापि गणना की सुगमता के लिए वैदिक ऋषियों ने २८ नक्षत्रों को स्वीकार किया है और यह अभिजित् नक्षत्र वैदिक नक्षत्र है। इसके विषय में अथर्ववेद कहता है कि 'अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव' अर्थात् ब्रह्म देवता का अभिजित् नक्षत्र हमें पुण्य प्रदान करे। तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।१ में अभिजयत्परस्तादभिजितमवस्तात् अर्थात् अभिजित् नक्षत्र हमें ऊपर एवं नीचे सर्वत्र जय प्रदान करे, कहा गया है। ताण्डय ब्राह्मण २३।२३।३ में सप्त विंशतिर्नक्षत्राणि कहकर २७ नक्षत्रों का संकेत किया गया है। वहीं तैत्तिरीय ब्राह्मण में ब्राह्मणे वा अष्टाविंशो नक्षत्राणाम् (तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।३।४) २८ नक्षत्रों का परिगणन है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१।१ में कहा गया है कि ब्रह्मा ने जिसमें सबको जीता वह अभिजित् नक्षत्र हमें विजय और लक्ष्मी प्रदान करे।

यस्मिन् ब्रह्माऽभ्यजयत्सर्वं
तन्नोनक्षत्रमभिजिद्विजित्य श्रियंदधातु।।

२३. श्रवण नक्षत्र – वैदिक काल में श्रवण नक्षत्र को श्रोणा नक्षत्र भी कहा जाता था। लिखा है 'श्रोणा नक्षत्रं विष्णुर्देवता'। अर्थात् श्रवण नक्षत्र का स्वामी देवता विष्णु हैं। अथर्ववेद में श्रवण नक्षत्र को पुष्टि देनेवाला कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार श्रवण नक्षत्र अमृत का संरक्षण करनेवाला तथा विष्णु का भोग्य है। इस नक्षत्र में पुण्य वाणी सुनायी देती है और यह सन्ताप को हरती है। हम लोग इसका यजन करते हैं। बहु प्रशंसित विष्णु तीन पदार्थों में तीन भुवनों को नाप लेते हैं। ये श्रवण नक्षत्र में स्थित हैं। श्रवण नक्षत्र यजमान को पुण्यात्मा बनाकर उसके समस्त अभिलषित वस्तुओं को प्रदान करता है। यथा -

श्रृण्वन्ति श्रोणाममृतस्य गोपां पुण्यामस्या उपश्रृणोमि वाचम्।
महीं देवीं विष्णुपत्नीमजूर्याम्। प्रतीचीमेनां हविषा यजामः।

त्रेधा विष्णुरुरुगायो विचक्रमे दिवं पृथिवीमन्तरिक्षम्।
तच्छ्रोणेति श्रव इच्छमाना पुण्यं श्लोकं यजमानाय कृण्वती।।

२४. धनिष्ठा नक्षत्र – धनिष्ठा नक्षत्र को वैदिक काल में श्रविष्ठा नक्षत्र भी कहा जाता था। लिखा है "श्रविष्ठा नक्षत्रं वसवो देवता"। अर्थात् धनिष्ठा नक्षत्र के स्वामी वसु देवता हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि आठों वसु देवता सौम्य हैं और धनिष्ठा की चार देवियाँ अर्थात् तारे अजरा हैं। हम इस पुण्य नक्षत्र को प्राप्त करें। इसकी कृपा से हमें संवत्सर का अमृत प्राप्त हो, यह नक्षत्र दक्षिण से आवे और हमारे शत्रुओं तथा पापों को समाप्त कर दे।

अष्टौ देवा वसवः सोभ्यासः चतस्रो देवीरजराः श्रविष्ठाः।
संवत्सरोणाममृतं पान्तु। यज्ञं नः पान्तु दक्षिणतोऽभियन्तु।
पुण्यं नक्षत्रमभिसंविशाम मा नो अरातिरघशंसागन्।।

२५. शतभिषा नक्षत्र – 'शतभिषङ् नक्षत्रमिन्द्रो देवताः' अर्थात् शतभिषा नक्षत्र का स्वामी देवता इन्द्र है। यह तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है किन्तु तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार शतभिषा नक्षत्र का स्वामी वरुण देवता कहे गये हैं। शतभिषा नक्षत्र में एक सौ के लगभग तारे हैं अतः इसका नाम संख्या के आधार पर रखा गया होगा। तैत्तिरीय ब्राह्मण कहता है कि वरुण देवता क्षत्रियों के राजा हैं अथवा क्षत्रराज हैं और शतभिषा नक्षत्र उनका निवास-स्थान है। वे दोनों सैकड़ों भैषज्य धारण करते हैं और सज्जनों को दीर्घायु प्रदान करते हैं। यथा –

क्षत्रस्य राजा वरुणो वसिष्ठः शतभिषक्।
तौ देवेभ्यः कृणुतो दीर्घमायुः शतं सहस्त्र भेषजानि धत्तः।

२६. पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र – वैदिक काल में भाद्रपदा नक्षत्र के लिए प्रोष्ठपदा शब्द प्रयुक्त होता था। पूर्वाभाद्रपदा एवं उत्तराभाद्रपदा दोनों को प्रोष्ठपदा कहा गया है। तैत्तिरीय संहिता में इन नक्षत्रों के स्वामियों का उल्लेख करते समय कहा गया है कि प्रोष्ठपदा नक्षत्रमज एकपाद देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्बुध्नियो देवता। अर्थात् पूर्वा प्रोष्ठपदा का स्वामी अज एकपाद देवता तथा उत्तरा प्रोष्ठपदा का स्वामी अहिर्बुध्न्य देवता हैं। पीछे जिस घटना का उल्लेख किया गया है उसमें कहा गया है कि इस नक्षत्र में देवताओं ने अस्त्रों का निर्माण किया था। 'प्रोष्ठपदेषूदयच्छन्त'। प्रोष्ठपद का अर्थ है जिसके चरण (पाद) विशेष प्रौढ़ (पुष्ट) हों। ऋग्वेद में प्रोष्ठ का अर्थ शुभ कहा गया है। यथा –

प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः।
स्त्रियोः या पुष्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि।।

(ऋग्वेद ७।५५।८)

दोनों भाद्रपदा नक्षत्र में चार चमकीले तारों से एक बृहद् चतुष्कोण बनता है। पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र के स्वामी अज एक पाद् देवता हैं। यह नाम सूर्य का भी है। इस नक्षत्र के सन्दर्भ में तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि संसार के सब प्राणियों को आनन्द प्रदान करता हुआ सूर्य प्रोष्ठपदा के साथ उदित हो रहा है। यह देवी अमृत की संरक्षिका है तथा देवगण सूर्य के पीछे आ रहे हैं। सूर्य ही विष्णु हैं, जन्मरहित हैं और एक पाद से देवों एवं अन्य प्राणियों की रक्षा करते हैं अतः वे अजैकपाद हैं। सायणाचार्य के अनुसार अजैकपाद शब्द अग्नि के लिए भी प्रयुक्त होता है। सूर्य भी अग्नि ही हैं। यह तेजस्वी सुन्दर सूर्य द्यौ और पर्वत रूपी अन्तरिक्ष पर आरोहण करता है तथा प्रोष्ठपदा उसका अनुगमन करती है।

अज एक पादुदगात् पुरस्तात् विश्वाभूतानि प्रतिमोदमानः।
तस्य देवाः प्रसवं यन्ति सर्वे प्रोष्ठपदासो अमृतस्य गोपाः।।
विभ्राजमान अन्तरिक्षमरुहद् अगं द्याम्।
तं सूर्य देवमजमेकपादं प्रोष्ठपदासो अनुयन्ति।।

२७. उत्तराभाद्रपदा – उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र का स्वामी देवता अहिर्बुध्न्य है। यह नाम वेदों में सूर्य एवं रुद्र दोनों के लिए प्रयुक्त है। उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र के विषय में तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि देवों और मनुष्यों में श्रेष्ठ अहिर्बुध्न्य आ रहे हैं। यह

प्रतिष्ठावान् देव हैं। सायणाचार्य के अनुसार जो कभी हीन नहीं होता वह अहि है। यह जगत् के बुध्न (मूल) में अर्थात् सृष्टि प्रारम्भ में होने से बुध्निय है। यह रुद्र ही है। सोमपायी सौम्य ब्राह्मण उसकी ओर चार प्रोष्ठपदाओं की स्तुति करते हैं। प्रोष्ठपदाएँ चार हैं और देव एक हैं। नक्षत्र रूपी चार देव सभापति बुध्निय की स्तुति करते हैं और नमस्कार से अहि की सेवा करते हैं। यथा –

अहिर्बुध्नियः रथमान एति श्रेष्ठो देवानामुत मानुषाणाम्।
तं ब्राह्मणाः सोमपाः सोभ्यासः प्रोष्ठपदासो अभिरक्षन्ति सर्वे।
चत्वार एकमभिकर्म देवाः।
प्रोष्ठपदास इतियान् वदन्ति ते बुध्नियं परिषद्यं स्तुवन्तः।
अहिं रक्षन्ति नमसोपसद्य।

२८. रेवती नक्षत्र – "रेवती नक्षत्रं पूषा देवता।" अर्थात् रेवती नक्षत्र का स्वामी देवता पूषा हैं। पूषन् शब्द का अर्थ है पोषणकर्त्ता। वेद में पूषा को सूर्य की पुत्री सूर्या का पति कहा गया है। यह पूषा सब प्राणियों को देखनेवाले तथा सर्वज्ञ हैं। इनका निवास रेवती नक्षत्र में है। ये रथ पर बैठकर चलते हैं किन्तु इनके वाहन रथ में घोड़े नहीं बकरे हैं। प्रेतात्माओं को पितृलोक में पूषा ही ले जाते हैं। यह समस्त संकटों को दूर कर रक्षा करते हैं। इस नक्षत्र के सम्बन्ध में तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि पूषा देव रेवती के साथ आ रहे हैं। वे दोनों पुष्टिपति, पशुपति और अन्नजन्य बल के पति हैं। वे सुमार्ग से आकर हमारी हवि ग्रहण करें और हमारे अन्न, गाय, अश्व आदि की रक्षा करें। यथा –

पूषा रेवत्यन्वेति पन्थाम् पुष्टिपती पशूपा वाजवस्त्यौ।
सुगैर्नो यानैरुपयातां रक्षतु रेवती गावोश्वान् अन्वेतु पूषा।।

इन सत्ताईस (अठाईस) नक्षत्रों के उपनक्षत्रों की संख्याएँ भी वैदिक साहित्य में वर्णित हैं। हस्त नक्षत्र पाँच तारों के समूह से बना है। पुनर्वसु, फाल्गुनी, विशाखा तथा अश्विनी ये द्विवचन में प्रयुक्त हैं अतः इनमें दो–दो तारे (उपनक्षत्र) हैं। कृत्तिका नक्षत्र में सात तारे हैं। यह तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१।४ में स्पष्ट रूप से कहा गया है।

अम्बायै स्वाहा दुलायै स्वाहा । नितत्नयै स्वाहा भ्रयन्त्यै स्वाहा। मेघयन्त्यै स्वाहा वर्षयन्त्यै स्वाहा । चुपुणीकायै स्वाहा।।

अर्थात् अम्बा, दुला, नितत्नी, अभ्रयन्ती, मेघयन्ती, वर्षयन्ती तथा चुपुणीका इन सातों कृत्तिकाओं को आहुति दी जाती है।

शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि अन्य नक्षत्र पुञ्जों में एक, दो, तीन तारे हैं किन्तु कृत्तिका में अनेक हैं अतः कृत्तिका में अग्न्याधान करनेवाला बहुत पाता है। अन्य नक्षत्रों का उदय पूर्व दिशा से हटकर होता है परन्तु ये सदा पूर्व में उदित होती हैं।

एकं द्वे त्रीणि वान्यानि नक्षत्राणि कृत्तिका एव भूयिष्ठाः।
तद् भूमानमुपैति, तस्मात् कृत्तिकास्वादधीत।।

एता हवै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते, सर्वाणि चान्यानि
नक्षत्राणि च्यवन्ते तस्मात्।। (शतपथ ब्राह्मण २।१।२।२)

तैत्तिरीय ब्राह्मण में धनिष्ठा के चार तारे बताये गये हैं। चतस्रो देवीरजराः श्रविष्ठाः। (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१।२) इसी अनुवाक में उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में चार तारों का उल्लेख किया गया है।

प्रोष्ठपदासो अभिरक्षन्ति सर्वे। चत्वार एकमभिकर्म देवाः।।

वैदिक-काल में वसन्त सम्पात कृत्तिका नक्षत्र में होता था इसलिए कृत्तिका प्रथम नक्षत्र था। नक्षत्रों को दो भागों में विभक्त किया गया था। प्रथम देव नक्षत्र तथा दूसरा भाग यम नक्षत्र कहा जाता था। तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।२ में लिखा गया है

कृत्तिकाः प्रथमं विशाखे उत्तमं तानि देव नक्षत्राणि।
अनुराधाः प्रथममपभरणीरुत्तमं तानि यम नक्षत्राणि।।

अर्थात् कृत्तिका से विशाखा तक १४ नक्षत्र देव नक्षत्र कहे जाते थे तथा अनुराधा से भरणी तक १४ नक्षत्र यम नक्षत्र माने जाते थे।

आगे नक्षत्रों के नाम, नक्षत्रों के स्वामी, लिंग एवं नक्षत्रों में रहनेवाले तारों की सूची दी जा रही है। कतिपय नाम एवं स्वामियों के विषय में मतान्तर है। यह सूची तैत्तिरीय संहिता (४।४।१०।१-३) तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।५ एवं ३।१९) अथर्ववेद (२।१३।३०) एवं वेदाङ्ग ज्योतिष के आधार पर है।

नक्षत्रों की सूची, उनके नाम, देवता आदि

सं०	वैदिक नाम	वर्तमान नाम	वैदिक देवता	तै०सं० ४।४।१०। १-३	तै०ब्रा० १।५	तै०ब्रा० ३।१।४-५	अथर्ववेद १९।७। २-५	काठक सं० ३९।१३	मैत्रायणी सं० २। १३।२०	वेदाङ्ग-ज्योतिष २५-२६ (ऋ०), ३६।४० य० केवल देवनाम	लिंग	तारों की संख्या
१.	कृत्तिका	कृत्तिका	अग्नि	कृत्तिका	कृत्तिका	कृत्तिका	किसी नक्षत्र के देवता का नाम नहीं	कृत्तिका	कृत्तिका	अग्नि	स्त्रीलिंग	तै०सं० (३।१।४।१) में सात नाम हैं, यथा अम्बा, दुला आदि (बहुला)
२.	रोहिणी	रोहिणी	प्रजापति	रोहिणी	रोहिणी	रोहिणी	रोहिणी	रोहिणी	रोहिणी	प्रजापति	स्त्रीलिंग	१
३.	मृगशीर्ष	मृगशीर्ष	सोम	मृगशीर्ष	इन्वका	मृगशीर्ष या इन्वका	मृगशीर्ष	इन्वका (देवता, मरुत)	इन्वका (देवता मरुत)	सोम	नपुंसक लिंग	१ बहुवचन, तै० ब्रा० १।५, काठक, मैत्रा०
४.	आर्द्रा	आर्द्रा	रुद्र	आर्द्रा	बाहु	आर्द्रा	आर्द्रा	बाहु	बाहु	रुद्र	स्त्रीलिंग	२ (तै०ब्रा० १।५), तै०सं०, काठ०, मैत्रा०(पुँल्लिंग)

५.	पुनर्वसु	पुनर्वसु	अदिति	पुनर्वसु	पुनर्वसु	पुनर्वसु	पुनर्वसु	पुनर्वसु	पुनर्वसु	अदिति	पुँल्लिंग	२
											पुँल्लिंग	१ काठ० एवं मैत्रा०
६.	तिष्य	पुष्य	बृहस्पति	तिष्य	तिष्य	तिष्य	पुष्य	तिष्य	तिष्य	बृहस्पति	पुँल्लिंग	१
७.	आश्लेषा	आश्लेषा	सर्पाः	आश्लेषा	आश्लेषा	आश्लेषा	आश्लेषा	आश्लेषा	आश्लेषा	सर्पाः	स्त्रीलिंग	बहुवचन
८.	मघा	मघा	पितरः	मघा	मघा	मघा	मघा	मघा	मघा	पितरः	स्त्रीलिंग	बहुवचन
९.	फाल्गुनी	पूर्वा फाल्गुनी	अर्यमा	फाल्गुनी	पूर्वा फाल्गुनी	फाल्गुनी	पूर्वा फाल्गुनी	फाल्गुनीः (भग, देवता)	फाल्गुनीः (भग, देवता)	भग	स्त्रीलिंग	बहुवचन,२ (अथर्व०, तै० ब्रा० १।५, ३।१; १ (तै०सं०)
१०.	फाल्गुनी	उत्तरा फाल्गुनी	भग	फाल्गुनी	उत्तर फाल्गुनी	फाल्गुनी	अवर्णित	उत्तरा फाल्गुनी; (अर्यमा)	फाल्गुनी (दे० अर्यमा)	अर्यमा	स्त्रीलिंग	१;२ तै० ब्रा० १।५।३।१।४।१०
११.	हस्त	हस्त	सविता	हस्त	हस्त	हस्त	हस्त	हस्त	हस्त	सविता	पुँल्लिंग	१; काठ० में २
१२.	चित्रा	चित्रा	इन्द्र	चित्रा	चित्रा	चित्रा (त्वष्टा)	चित्रा	चित्रा (त्वष्टा)	चित्रा (त्वष्टा)	त्वष्टा	स्त्रीलिंग	१
१३.	स्वाती	स्वाती	वायु	स्वाती	निष्ट्या (वायु)	निष्ट्या (वायु)	स्वाती	निष्ट्या (वायु)	निष्ट्यम्	वायु	स्त्रीलिंग नपुंसक लिंग	१ मैत्रा०
१४.	विशाखा	विशाखा	इन्द्राग्नी	विशाखे	विशाखे	विशाखे	विशाखे	विशाखम्	विशाखम्	इन्द्राग्नी	स्त्रीलिंग	२ नपुंसक लिं०, काठ०, मैत्रा०

१५.	अनुराधा	अनुराधा	मित्र	अनुराधा	अनुराधा	अनुराधा	अनुराधा	अनुराधा	अनुराधा	मित्र	स्त्रीलिंग	बहुवचन, पुँल्लिंग, तै०ब्रा० ३।१।५।१
१६.	रोहिणी	ज्येष्ठा	इन्द्र	रोहिणी	रोहिणी	ज्येष्ठा	ज्येष्ठा	ज्येष्ठा (इन्द्र)	ज्येष्ठा (वरुण)	इन्द्र	स्त्रीलिंग	१
१७.	विचृतौ	मूल	पितरः	विचृतौ (पितरः)	मूलबर्हणी	मूल	मूलम् (निर्ऋति)	मूलम्	मूलम् (निर्ऋति)	(निर्ऋति)	पुँल्लिंग	या स्त्रीलिंग, २ (विचृतौ), नपु० १ मूल, काठ०, तै० ब्रा० ३।१।५।३, स्त्री० १ (मूलबर्हणी)
१८.	अषाढा	पूर्वाषाढ़ा	आपः	अषाढ़ा	पूर्वाषाढ़ा	अषाढ़ाः	अषाढ़ा	आषाढ़ा	आषाढ़ा	आपः	स्त्रीलिंग	बहुवचन
१९.	अषाढ़ा	उत्तरा-षाढ़ा	विश्वेदेवाः	अषाढ़ा	उत्तरा-षाढ़ा	अषाढ़ाः	उत्तरा	उत्तरा-षाढ़ा	अषाढ़ा	विश्वेदेवाः	स्त्रीलिंग	बहुवचन
२०.	अभिजित्	अभिजित् (अवर्णित)	ब्रह्मा	अनुल्लि-खित	अभिजित् (देवता नहीं)	अभिजित् (ब्रह्मा)	अभिजित्	अवर्णित	अभिजित् (ब्रह्मा)	अनुल्लि-खित	नपुंसक लिंग	१
२१.	श्रोणा	श्रवण	विष्णु	श्रोणा	श्रोणा	श्रोणा	श्रवण	अश्वत्थ	श्रोणा (विष्णु)	विष्णु	स्त्रीलिंग	१
२२.	श्रविष्ठा	धनिष्ठा	वसु	श्रविष्ठा	श्रविष्ठा	श्रविष्ठा	श्रविष्ठा	श्रविष्ठा	श्रविष्ठा	वसु	स्त्रीलिंग	बहुवचन

२३.	शतभिषक्	शतभिषक्	इन्द्र	शतभिषक्	शतभिषक् (इन्द्र)	शतभिषक् (वरुण)	शतभिषक्	शतभिषक् (वरुण)	शतभिषक् (इन्द्र)		पुँल्लिंग नपुंसक०	१ अथर्व० एवं मैत्रा०
२४.	प्रोष्ठपदा	पूर्वा भाद्रपदा	अज एकपाद्	प्रोष्ठपदा	प्रोष्ठपदा	प्रोष्ठपदा		प्रोष्ठपदा	प्रोष्ठपदा (अहिर्बुध्न्य)	अज एकपात्	पुँल्लिंग स्त्रीलिंग	बहुवचन, तै० ब्रा० १।५ एवं ३।१ अन्यों में
२५.	प्रोष्ठपदा	उत्तरा भाद्रपदा	अहिर्बुध्निय	प्रोष्ठपदा (अहिर्बुध्निय	प्रोष्ठपदा (अहिर्बुध्निय	प्रोष्ठपदा (अहिर्बुध्निय)	प्रोष्ठपदा	उत्तरे प्रोष्ठपदा (अहिर्बुध्निय)	प्रोष्ठपदा (अज एकपात्)	अहिर्बुध्न्य	पुँल्लिंग	(या स्त्रीलिंग ?) बहुवचन
२६.	रेवती	रेवती	पूषा	रेवती	रेवती	रेवती	रेवती	रेवती	रेवती	पूषा	स्त्रीलिंग	१
२७.	अश्वयुजौ	अश्विनी	अश्विनी-कुमार (दोनों)	अश्वयुजौ	अश्वयुजौ	अश्वयुजौ	अश्वयुजौ	अश्वयुजौ	अश्वयुजौ	अश्विनी (दोनों अश्विनी कुमार)	पुँल्लिंग	२
२८.	अपभरणी	भरणी	यम	अपभरणी	अपभरणी	भरणी	भरण्यः	अपभरणीः	भरणीः	यम	स्त्रीलिंग	बहुवचन

वैदिक साहित्य में राशि प्रयोग – संस्कृत व्याकरण में अश् धातु अश्नुते व्यापोति से इञ् प्रत्यय के योग से धातोरुडागमश्च सूत्र से धातु के अ को र का आगम करने पर निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है ढेर, अम्बार, संग्रह, परिणाम, समुदाय अर्थात् जैसे धनराशि, जलराशि, अंकराशि, ज्योतिश्चक्र तथा तारामण्डल शब्दों के लिए राशि शब्द का प्रयोग किया जाता है। वैदिक ऋषियों ने आजकल प्रयुक्त होनेवाली मेष, वृषादि १२ राशियों का मधु, माधव, शुक्र, शुचि आदि १२ नामों से अथवा अरुण, अरुणरज, पुण्डरीक, विश्वजित आदि १२ नामों से अथवा वाज, प्रसव, अपिजु, क्रतु आदि सौर मासों द्वारा काम लिया करते थे। आचार्य वराहमिहिर ने राशियों के पर्याय का प्रयोग बृहज्जातक में किया है जिसमें कहा है कि "राशि क्षेत्र गृहर्क्षभानिभवनं चैकार्थ सम्प्रत्ययाः।" अर्थात् राशि, क्षेत्र, गृह, ऋक्ष, भ, भवन ये सब राशि के पर्याय हैं। वराहमिहिर द्वारा प्रयुक्त यह वाक्य वैदिक साहित्य में राशियों का बोध कराने में अत्यधिक सहायक है। तथापि मेष, वृष आदि राशियों के नाम सर्वप्रथम बौधायन सूत्र में प्रयुक्त हुए हैं। जहाँ कहा गया है "**मीन मेषयोर्मेषवृषभयोर्वसन्तः**" अर्थात् वसन्त ऋतु मीन, मेष राशि अथवा मेष, वृषराशि में होती है। ऋग्वेद में द्वदशारं नहि तज्जराय १।१६४।११ तथा द्वादशप्रधयश्चक्रमेकम् १।१६४।४८ में ऋत के चक्र (ज्योतिश्चक्र) के १२ अर (तीलियाँ) हैं। यह आकाश में चतुर्दिक् भ्रमण करता है। यह कभी नहीं थकता, जरा को प्राप्त नहीं होता। हे अग्नि, इसमें अर्थात् ज्योतिश्चक्र में ७२० पुत्रों के जोड़े निवास करते हैं। एक चक्र एवं बारह प्रधियां (जहाँ अर (तीलियाँ) चक्र से मिलती हैं) उस चक्र में ३६० अति अस्थिर खूँटियाँ हैं। यहाँ यह कहना सम्भव है कि ऋत का चक्र राशिमण्डल ही है जो १२ भागों में अर्थात् १२ अरों में विभाजित है।

ऋक्ष शब्द ऋग्वेद के १।२४।१० में उल्लिखित है।

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृशे कुहचित् दिवेयुः। अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति।।

अर्थात् ये तारे रूप ऋक्ष उन्नतस्थान में बैठे हुए रात्रि में दिखते थे। वे दिन में कहाँ विलीन हो गये। चन्द्रमा भी रात्रि में ही प्रकाशित होता हुआ चलता है। वरुण के नियम अटल हैं।

यहां ऋक्ष का अर्थ राशिमण्डल ही है क्योंकि पूर्वोक्त कथन में ऋक्ष शब्द राशि का पर्याय बताया गया है। आज भी राशि मण्डल रात्रि में ही दृष्टिगोचर होता है। यदि ऋक्ष का अर्थ तारा माना जाय तो कुछ तारे कभी-कभी दिन में भी दिखायी पड़ते हैं किन्तु राशि तो रात्रि में ही दिखायी पड़ती है, दिन में नहीं। अन्य स्थलों पर भी

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्।

इत्था चन्द्रमसो गृहे। (ऋग्वेद १।८४।१५)

अर्थात् देवताओं ने चन्द्रमा के घर में छिपे हुए त्वष्टा के तेज को जाना। गृह शब्द का अर्थ भी राशियाँ ही हैं।

अन्यत्र

अरुणो मास कृद्वृकः पथायन्तं ददर्श हि।
उज्जहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ठयामयी वित्तं मे अस्य रोदसी

(ऋग्वेद १।१०५।१८)

अर्थात् पीठ पर रोग उठने के कारण पीड़ा से खड़े हो जानेवाले बढ़ई के समान खड़ा होकर प्रकाशयुक्त चन्द्रमा उस मार्ग से जाता हुआ मुझे नित्य देखता था।

यहाँ मार्ग (पथ) क्रान्तिवृत्त राशिमण्डल के लिए प्रयुक्त है। छान्दोग्योपनिषद् में एक आख्यान आता है जिसमें नारद जी एक बार सनत्कुमारादि ऋषियों के पास जाकर ब्रह्मविद्या के अध्ययन की इच्छा प्रकट की। ऋषि सनत्कुमार द्वारा नारद मुनि से यह पूछे जाने पर कि वे अब तक कौन-कौन सी विद्याएँ पढ़ चुके हैं, नारद मुनि ने अपनी अधीत विद्याओं में नक्षत्र विद्या और राशि विद्या का नाम लिया है।

वेदाङ्ग ज्योतिष में आर्च ज्योतिष के १९वें मन्त्र में लग्न शब्द का प्रयोग किया गया है।

श्रविष्ठाभ्यां गुणाभ्यस्तान् प्राग्विलग्नान् विनिर्दिशेत्।
सूर्यान् मासान् पलभ्यस्तान् विद्याच्चान्द्रमसानृतून्।।

(आर्च ज्योतिष १९)

इस मन्त्र में लग्न का प्रयोग राशियों का पूर्णज्ञान भारतीयों को था इसका सूचक है। 'राशीनामुदयो लग्नः' अर्थात् राशियों के उदय को ही लग्न कहा जाता है तो यदि लग्न का ज्ञान है तो उसके कारण को अवश्य जानते रहे होंगे।

मैत्रेय सूत्र में मलमास (मलिम्लुच) के सन्दर्भ में राशि शब्द का प्रयोग आया है।

रविणा लंघितो मासश्चान्द्रः ख्यातो मलिम्लुचः।
मासद्वये यदाप्येकराशिं संक्रमेतादित्यस्तत्राद्यो मलिम्लुचः।।

आर्च ज्योतिष तथा यजुः ज्योतिष में राशि का प्रयोग किया गया है।

निरेकं द्वादशार्धाब्दं द्विगुणं गतसंज्ञिकम्।
षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणा राशिरुच्यते।

ये बृहस्पतिना भुक्ता मीनात् प्रभृति राशयः।
ते हृताः पञ्चभिर्याता यः शेषः स परिग्रहः।।

अर्थात् ६० के प्रत्येक भाग में दो-दो जोड़ते जाने से अर्थात् योग करने से पर्वों की राशि होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक साहित्य में सर्वत्र भले ही मेषादि राशियों का स्पष्टतः उल्लेख न मिलता हो तथापि राशियों का बोध वैदिक ऋषियों को अवश्य था।

✦✦✦

अध्याय ४

वैदिक साहित्य में फलित ज्योतिष

वैदिक साहित्य में फलित ज्योतिष का पर्याप्त विस्तार है। यद्यपि कुण्डली निर्माण का संकेत उस काल में आज की भांति देखने को नहीं मिलता तथापि शकुनों के आधार पर लक्षणों के द्वारा तथा मुहूर्त एवं स्वप्न आदि का उल्लेख यत्र-तत्र प्राप्त होता है। वेदों में सुदिन शब्द के प्रयोग को देखकर शंकर बालकृष्ण दीक्षित का मानना है कि अवश्य ही कुदिनों की शान्ति हेतु सुदिनत्व की कामना की गयी है। लगता है कि कुछ थोड़े से कालों में कुदिन की भावना भी रही होगी। अनेक वैदिक मन्त्रों में यह प्रार्थना है कि हमारे दिन सुदिन हों, प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल और रातें शुभ हों, हमारे चतुर्दिक शुभ हो, हमारे लिए इन्द्रादि देव, आकाश, पृथ्वी, वनस्पतियाँ, ग्रह, तारे, नक्षत्र आदि शान्तिप्रद और शुभ हों, हमें सब लोग मित्र की दृष्टि से देखें और हम सबको मित्र की दृष्टि से देखें। इसका अभिप्राय यही है कि कभी भी कोई दिन, कोई प्राणी, देवता और दिशाएँ किसी के लिए शुभ तो किसी के लिए अशुभ हो जाती हैं। जैसा कि महाकवि कालिदास का कथन है कि "विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेत् अमृतं वा विषमिश्वरेच्छया"। अतः आगामी दिनों में कोई दुर्घटना न घटे, हमारा सम्पूर्ण दिन उत्तम फल देने वाला हो। यह फलित को ही सूचित करता है।

अहानि शं भवन्तु नः शं रात्रीः प्रतिधीयताम्।
शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः।।
द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिः।
ओषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिः।
यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शन्नः कुरु प्रजाभ्यः अभयन्नः पशुभ्यः।।
इमां मेऽअग्ने समिधं जुषस्व सुदिनत्वे।

सुदिन शब्दों का प्रयोग अनेक स्थलों पर मिलता है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।
पोषं रयिणामारिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्।

(ऋग्वेद २।२१।६)

अर्थात् हे इन्द्र, हमको उत्तम धन और ख्याति प्रदान करो। सौभाग्यदान कर धन की वृद्धि करो। हमारी वाणी में मधुरता दो। हमारे शरीर की रक्षा करो तथा हमारे सभी दिनों को सुखमय कर दो।

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदीर्यति वाचम्।।

(ऋग्वेद ३।८।५)

अर्थात् वृक्ष रूप से पृथिवी पर उन्नत हुआ यूप यज्ञ स्थान में मनुष्यों के साथ सुशोभित हुआ दिवसों को मङ्गलमय बनाता है। मेधावी अध्वर्युगण अपनी बुद्धि के अनुसार यूप को जल से धोकर शुद्ध करते हैं। देवताओं का यजन करनेवाले होतागण स्तोत्र का उच्चारण करते हैं।

नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इलायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम्।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि।।

(ऋग्वेद ३।२३।४)

अर्थात् हे अग्ने शुभ दिनों की प्राप्ति के लिए हम इस पृथिवी के पवित्र स्थान में तुम्हें प्रतिष्ठित करते हैं। तुम दृषद्वती, आपगा और सरस्वती इन तीनों नदियों के समीप वास करने वालों के घर में धन सहित प्रदीप्त होओ।

त्वामीऽते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः।
यस्य देवैरासदो बर्हिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति।।

(ऋग्वेद ७।११।२)

अर्थात् हे अग्ने, तुम गतिमान हो। हवि देनेवाले पुरुष तुम्हें सदा ही दूत बनाते हैं। तुम जिस यजमान के कुशाओं पर देवताओं सहित विराजमान होते हो वह यजमान शुभ दिनवाला होता है।

वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वप्ना महोभिः।
स्नोतारं विप्रः सुदिनत्वे अहनां यान्तु द्यावस्ततनन् यादुषासः।।

(ऋवेद ७।८८।४)

अर्थात् विद्वान् वरुण ने दिन–रात्रि को बढ़ाया और मुझे नौका पर चढ़ा दिया। अपने रक्षण कर्मों द्वारा उन्होंने वसिष्ठ को श्रेष्ठ कर्मवाला किया। हे अग्ने, हम लोगों के प्रतिकूल दिनों को सुदिन में परिवर्तित कर दो।

इमां मे अग्ने समिधं जुषस्वेलस्पदे प्रति हर्या घृताचीम्।
वर्ष्मन् पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्नामूर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या।।

(ऋग्वेद १०।७०।१)

अर्थात् हे अग्ने, उत्तरवेदी पर प्रतिष्ठित होकर मेरी समिधाओं को स्वीकार करो। घृतयुक्त स्रुवा की कामना करते हुए पृथिवी के श्रेष्ठ भाग को अर्थात् शुभ दिनों को देवगण में अपनी ज्वालाओं को उन्नत करो।

सायणाचार्य इन मन्त्रों का भाष्य करते हुए लिखते हैं कि हे अश्विनो ! उस रथ से आओ जिसके योग से कुदिन सुदिन हो जाते हैं। हे अग्ने, उज्ज्वल होकर दिनों को सुदिन बनाओ। वरुण ने वशिष्ठ के दिनों को सुदिन बनाया। अग्नि की प्रार्थना से दिन सुदिन हो जाते हैं। शं नः सोमो भवतु। शं नः सूर्य उरूचक्षाः। शं नः पर्वताः सिन्धवः आपः। शम् सन्तु गावः शं सरस्वती। अभयं नः करत्यन्तरिक्षं अभयं मित्रादमित्रात् अभयं नक्तमभयं दिवा नः।

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसु सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे।।

(अथर्ववेद १९।२)

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु।।
अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।
योगं प्रपद्ये क्षेमं प्रपद्ये नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु।।
स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु।।

(अथर्ववेद ९।८।१-३)

अर्थात् हमारे लिए सोम, सूर्य, पर्वत, सागर, गायें, सरस्वती शुभ हों। हमें मित्र, अमित्र, दिन, रात्रि, नक्षत्र, ग्रह किसी से भय न हो। आकाश में टेढ़ी-मेढ़ी गति से और वेग से चलने-वाले ये चित्र-विचित्र नक्षत्र बड़े सुन्दर हैं। मैं सुवेग, सुवाणी और सुमति चाहता हूँ। अतः इन आकाशवासी जनों की सुवाणी से पूजा करता हूँ। हे अग्ने, हमारे लिए कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा आदि सुहव और कल्याणकारी हों। पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा और मघा प्रकाशप्रद, सुचेष्ट, अनुकूल और सुमार्गद हों। ये अट्ठाइसों नक्षत्र हमारे कल्याणकारक और योगक्षेमप्रद हों। अहोरात्रों को नमस्कार है। हे परमात्मा, हमारे सभी प्रातःकाल, सायंकाल, दिन और रात शकुन अर्थात् शुभ हो जायँ।

अथर्व ज्योतिष का कथन है कि यदि व्यक्ति सफलता चाहता है तो उसे तिथि, नक्षत्र, करण एवं मुहूर्तों का विचार करके ही कार्य का आरम्भ करना चाहिए। यदि उचित तिथि न मिले तो शेष तीनों का विचार करे। यदि प्रथम दो तिथि और नक्षत्र उचित न मिल रहे हों तो अन्तिम दो के शुभत्व का विचार करना चाहिए किन्तु यदि प्रथम तीन अर्थात् तिथि, नक्षत्र और करण ठीक न मिल रहे हों तो केवल मुहूर्त का आश्रय लेना चाहिए। यदि जल्दी हो और इन चारों में से एक भी अनुकूल न हों तो ब्राह्मणों के उद्घोष से कि जाओ सब कुछ अच्छा होगा कार्यारम्भ कर लेना चाहिए। ऐसा करने से सफलता मिलती है।

चतुर्भिः कारयेत्कर्म सिद्धिहेतोर्विचक्षणः।
तिथि नक्षत्रकरणमुहूर्तेनेति निश्चयः।।
दूरस्थस्य मुहूर्तस्य क्रिया च त्वरिता यदि।
द्विज पुण्याहघोषेण कृतं स्यात्सर्वसम्पदम्।।

सायणाचार्य ने भी इस बात की पुष्टि करते हुए लिखा है कि

यथा नक्षत्रयोगात् कालस्य कर्मयोग्यता तथा ब्राह्मणवचनात् अतएव पुण्याहं वाचयन्ति।।

शतपथ ब्राह्मण में ब्राह्मणों को अट्ठाईसवां नक्षत्र कहा है–

ब्राह्मणोवाष्टाविंशो नक्षत्राणाम्।

शान्ति से सम्बन्धित शम् शब्द ऋग्वेद में १६० बार प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद २।३३।१३ में शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि एवं १।११४।२ मन्त्र में यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु। अर्थात् हे रुद्र, हम आपके मार्गदर्शन से उन शम् एवं योः को प्राप्त करें जिन्हें पिता मनु ने यज्ञ से प्राप्त किया। यास्क ने शम् और योः का निर्वचन करते हुए शम् का अर्थ सुख तथा योः का अर्थ दुःख निरोध किया है। अथर्ववेद के मन्त्रों में देवताओं, ग्रहों, पृथिवी, उल्कापात, गाय, नक्षत्र, अभिचार, राहु, धूमकेतु, रुद्र, वसु, आदित्य, बृहस्पति आदि की स्तुति, सुख, शान्ति, कल्याण देने के लिए तथा अरिष्टों के शमन के लिए किया है। मन्त्रों में शान्तियों के द्वारा दारुण, क्रूर, पाप अथवा बुरे प्रभावों को दूर करने की कामना की गयी है। वैदिक साहित्य में शान्ति का प्रयोग अनेक अर्थों में होता था। बुरे प्रभावों का शमन करने के लिए, बुरे प्रभावों को दूर करने का साधन तथा शान्ति कृत्य आदि कर्मों में शान्ति शब्द का प्रयोग होता था। ऋग्वेद में ऐसी अशुभ घटनाओं के भी संकेत मिलते हैं जिनको दूर करने के लिए उपाय बताये गये हैं –

अपेहि मनसस्पतेऽप्नक्राम परश्चर।
परो त्रिर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः।।
भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम्।
भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बहुत्रा जीवतो मनः।।

यदाशसा निःशसाभिशसोपारिम जाग्रतो यत् स्वप्नन्ताः।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्य जुष्टान्यारे अस्मद् दधातु।।

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽभिद्रोहं चरामसि।
प्रचेता न आङ्गिरसो द्विषतां पात्वंहसः।।

अजैष्माद्यासनाम चाऽभूमानागसो वयम्।
जाग्रत्स्वप्न संकल्पः पापो य द्विष्मस्तं स ऋच्छतु
यो नो द्वेष्टि त मृच्छतु।। (ऋग्वेद १०।१६४।१-५)

अर्थात् हे दुःस्वप्न तुमने हमारे मन पर अधिकार किया है। तुम अब यहाँ से दूर भागो और वहीं विचरण करो। हमसे बहुत दूर जो निर्ऋति देवता विराजमान हैं उनसे हम पर कृपा करने को कहों क्योंकि मनुष्य के अभीष्ट विस्तृत होते हैं और ये दुःस्वप्न अभीष्टों को विफल करनेवाली हैं। प्राणवान् मनुष्य विस्तृत कामनाओंवाले होते हैं। वे श्रेष्ठ अभीष्ट सम्पत्ति की कामना करते हैं। श्रेष्ठ फल प्राप्त करने की आशा में सदा रहते हैं। यमराज उन्हें अपने मङ्गलमय चक्षु से देखते हैं। अपनी आशा को फलवती करने के लिए निराश होने पर निद्रावस्था में अथवा जागते हुए भी हमसे जो अपराध बन जाते हैं उनसे उत्पन्न पापों को अग्नि हमसे दूर करे। हे इन्द्र ब्राह्मणस्पते, हमने जो दुष्कर्म किये हों और उनके फलस्वरूप हमारा जो अमंगल होने को हो, उस शत्रुरूप अमंगल में आङ्गिरस प्रचेता हमारी रक्षा करें। आज हमारी विजय हुई है, पाने योग्य वैभव हमने प्राप्त कर लिया है। हम सभी अपराधों से मुक्त हो चुके हैं। हमारी सुषुप्तावस्था में अथवा वाणी द्वारा ही जो पाप हमसे हो गया हो उसका दुष्ट फल हमारे शत्रु को पीड़ित करे, हम जिससे बैर करते हैं वह उसी को प्राप्त हो।

ऋग्वेद के पाँचवे मण्डल में आया है कि हे सविता देव, आप आज सन्तति से युक्त कल्याण हमारे लिए उत्पन्न करो तथा दुःस्वप्नों के प्रभावों को भयभीत करो। हे सविता देव, सभी दुष्कृत्यों को दूर करो तथा हमें शुभदायक चीजों को प्रदान करो।

अद्या नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौभगम्।
परा दुःस्वप्न्यं सुव।।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव।।

(ऋग्वेद ५।८२।४-५)

ऋग्वेद के दूसरे मण्डल में ऋषि का कथन है कि हे राजा वरुण, चाहे जो मित्र या सहायक मेरे प्रति घोषित करता है कि मुझे स्वप्न से भय है या कोई भी चाहे चोर, डाकू या भेड़िया आदि हिंसक पशु मेरी हानि करना चाहता है उससे आप हमारी रक्षा करें।

यो मे राजन् युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह।
स्तेनो वा यो दिप्सति वृको वा त्वं तस्माद् वरुण पाह्यस्मान्।।

(ऋवेद २।२८।१०)

इसी वेद के आठवें मण्डल में ऋषि का कथन है कि हम सभी दुःस्वप्न त्रित आप्त्य को दे देते हैं, आपकी कृपा किसी द्वारा रोकी नहीं जा सकती, आप द्वारा की गयी रक्षा उत्तम है।

त्रितेदुःस्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परिदम्नस्यनेहसो व ऊतयः। सुऊतयो व ऊतयः।।

(ऋग्वेद ८।४७।१५)

दुःस्वप्नों से सम्बन्धित अनेक ऋचाएँ ऋग्वेद ८।४७।१४, १६, १८ तथा दशम मण्डल के ३६।४ तथा ३७।४ में वर्णित हैं। इसी प्रकार शकुन के दुष्प्रभावों तथा शुभ प्रभावों का भी वर्णन अनेक ऋचाओं में वर्णित है। उदाहरण के लिए दूसरे मण्डल के अध्याय ४३ के मन्त्र द्रष्टव्य हैं –

प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः।
उभे वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति।।
उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि।
वृषेववाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतौ नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद।।
आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा यद् तृष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धिनः।
यदुत्पतन् वदसि ककरिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः।

(ऋग्वेद २।४३।१-३)

अर्थात् समय-समय अन्न की खोज करनेवाले पक्षीगण स्तुति करनेवालों की तरह परिक्रमा करते हुए सुन्दर शब्द उच्चारण करें। सोम गायकों द्वारा गायत्री छन्द और

त्रिष्टुप् छन्द उच्चारण करने के समान, कपिञ्जल पक्षी भी दोनों प्रकार की वाणी उच्चारण करता हुआ सुनने वालों को मोहित कर लेता है।

हे शकुनि, सोम के उद्गाता जैसे सोमगान करते हैं वैसे ही तुम भी सुन्दर गान करो। यज्ञ में ऋत्विकगण जैसे शब्द करते हैं, तुम भी वैसा ही करो। तुम सब ओर से हमारे लिए पुण्य बढ़ानेवाले कल्याण की सूचना प्राप्त करते हो।

जब तुम मौन धारण कर बैठते हो तब हमसे प्रसन्न नहीं रहते जान पड़ते। जब तुम उड़ते हो तब कर्करि के समान मधुर शब्द करते हो। हम पुत्र और पौत्रवान् हुए इस यज्ञ में रची हुई स्तुतियों का गान करेंगे।

इसी मण्डल के ४२वें अध्याय के प्रथम मन्त्र में शकुन द्वारा भविष्य का ज्ञान भी होता है, का उल्लेख मिलता है। यथा बारम्बार शब्द करनेवाला, भविष्य का निर्देश करनेवाला कपिञ्जल जैसे नाव को चलाता है, वैसे ही वाणी को प्रेरणा देता है। हे शकुनि, तुम मंगलप्रद होओ। किसी भी प्रकार की पराजय, कहीं से भी आकर तुमको प्राप्त न हो।

कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम्।
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभाविश्व्याविदत्।।

(ऋग्वेद २।४२।१)

ऋग्वेद की ही भाँति अथर्ववेद, आश्वलायन गृह्यसूत्र तथा कौशिक सूत्र आदि में शकुन, दुःस्वप्न आदि का पर्याप्त वर्णन प्राप्त होता है। शांखायन गृह्यसूत्र (५।६।७–११) का कथन है कि यदि कोई रोगग्रसित हो जाय तो उसे रुद्र की स्तुति द्वारा गवेधुक अन्नों की आहुतियां देनी चाहिए। यदि किसी के घर में मधुमक्खियाँ छत्ता लगा लें तो उसे १०८ गूलर की लकड़ी को दही, मधु एवं घी से युक्त कर यज्ञ करना चाहिए तथा उपवास करना चाहिए। यदि घर में चीटियां टूह बना लें तो घर का त्याग करे अथवा तीन अहोरात्र पर्यन्त उपवासपूर्वक महाशान्ति कृत्य करना चाहिए। ऐतरेय आरण्यक (३।२।४) में दस स्वप्नों का उल्लेख है, जैसे कोई व्यक्ति काले दाँत वाले काले पुरुष को देखता है और वह पुरुष उसे मार डालता है या सूकर उसे मार डालता है। अथवा बन्दर उसे काटता है। यदि स्वप्न में वायु उसे उड़ा ले जाती है, वह सोना निगलकर उल्टी कर देता है, मधु खाता है, कमलों के डंठल चूसता है, केवल एक रक्त कमलनाल लेकर चलता है, गदहों या सूअरों के झुण्ड हाँकता है, पुष्पों की माला पहनकर वह काले बछड़े के साथ काली गाय को दक्षिण दिशा में हांकता है। इनमें से कोई एक भी स्वप्न देखता है तो उसे उपवास करना चाहिए। एक पात्र में दूध के साथ चावल पकाना चाहिए और उसकी आहुतियाँ अग्नि में डालनी चाहिए तथा रात्रिसूक्त

(ऋग्वेद १०।१२७।१-८) का पाठ करना चाहिए, ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए तथा स्वयं चावल खाना चाहिए।

अथर्ववेद में भी शकुन, स्वप्न तथा मुहूर्त सम्बन्धी एवं शान्तिकारक अनेक वचन प्रयुक्त हैं। छान्दोग्योपनिषद् का कथन है कि यदि कोई काम्य कर्म में लगा हो उस समय यदि स्वप्न में स्त्री देखे तो उसे निश्चित ही बहुत समृद्धि प्राप्त होगी, अथवा उसे इच्छित वस्तु की प्राप्ति होगी। यथा

यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियः स्वप्नेषु पश्यति।
समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन्स्वप्न निदर्शने।।

(छान्दोग्योपनिषद् ५।२।९)

बृहदारण्यकोपनिषद् के चतुर्थ अध्याय के तीसरे ब्राह्मण के सात से लेकर बीस मन्त्रों में स्वप्नों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। जहाँ जनक के प्रश्नों का महर्षि याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया है। प्रश्नोपनिषद् के चतुर्थ प्रश्न के पाँचवें मन्त्र का कथन है कि स्वप्न की स्थिति में यह देव अपनी महिमा का अनुभव करता है। जाग्रत अवस्था में इसने जो देखा था, उसी को पुनः स्वप्न में देखता है। जो सुना था उसे ही स्वप्न में सुनता है, विभिन्न दिशाओं में अनुभव किये हुए को पुनः पुनः अनुभव करता है इतना ही नहीं, यह देखे-अनदेखे, सुने-अनसुने, अनुभूत-अननुभूत, सत् और असत् समस्त पदार्थों को देखता है और स्वयं भी सर्वरूप बनकर देखता है।

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति। यद्दृष्टं दृष्ट मनु पश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुश्रृणोति देश दिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टं चादृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति।।

जब यह जीवात्मा तेजस् से सम्पन्न होता है तब यह स्वप्न नहीं देखता। उस समय शरीर में यह आनन्द अनुभव करता है।

स यदा तेजसाभिभूतो भवत्यत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथतदैतस्मिञ्छरीरे एतत्सुखं भवति।।

कौशिक सूत्र कण्डिका ११०, १११ में स्त्रियों, गायों, घोड़ियों तथा गर्दभी आदि के प्रसव के विषय में प्रभूत वर्णन मिलता है। एक दो उदाहरण पर्याप्त होंगे। कहा गया है कि जब स्त्री एक ही समय में तीन या चार अथवा अधिक बच्चे जनती है या अद्भुत रूपवाला बच्चा (राक्षस) उत्पन्न करती है तब देश पर अथवा कुल पर विपत्ति आती है।

भविष्य को जानने के अनेक प्रकारों का वर्णन वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। प्राकृतिक घटनाओं द्वारा जैसे ग्रहण, उल्कापात, शकुन, स्वप्न, मनुष्य अथवा पशु पक्षियों के चेष्टाओं द्वारा बोलियों द्वारा भविष्य फल कहा गया है। व्यक्ति की जन्मपत्री के आधार पर भविष्य का फलादेश देखने में नहीं आता किन्तु ग्रहों एवं नक्षत्रों की स्थिति वशात् कुछ फलादेश अवश्य मिलते हैं। अथर्ववेद ज्योतिष तथा अथर्ववेद सायण भाष्य के अनुसार ज्योतिष सम्बन्धी १६२ मन्त्रों का विवरण देते हुए अथर्ववेदीय फलित ज्योतिष के अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का उल्लेख किया गया है। फलित ज्योतिष सम्बन्धी अथर्ववेद शौनकीय शाखा के ९०, ९१, ९३, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८ सूक्तों में तिथि, नक्षत्र, वार, करण, योग तारा एवं चन्द्रमा के क्रम से १, ४, ८, १६, ३२, ६० और १०० उत्तरोत्तर गुण बताये गये हैं। साथ ही वारों के स्वामी भी बताये गये हैं। जातक के जन्म नक्षत्र को लेकर बहुत ही वैज्ञानिक ढंग से फल बताया गया है। जातक के जन्म नक्षत्र के माध्यम से फल बताने की विधि नक्षत्रों में तीन वर्गों में स्थापित किया गया है।

जन्म नक्षत्र	कर्म नक्षत्र	आधान नक्षत्र
१. सम्पत्कर	१. सम्पत्कर	१. सम्पत्कर
२. विपत्कर	२. विपत्कर	२. विपत्कर
३. क्षेमकर	३. क्षेमकर	३. क्षेमकर
४. प्रत्वर	४. प्रत्वर	४. प्रत्वर
५. साधक	५. साधक	५. साधक
६. निधन	६. निधन	६. निधन
७. मित्र	७. मित्र	७. मित्र
८. परममित्र	८. परममित्र	८. परममित्र

अथर्व ज्योतिष में कहा गया है कि शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बली रहता है किन्तु कृष्णपक्ष में निर्बल रहता है अतः कृष्णपक्ष में तारा का बल देखकर फलादेश करना चाहिए। अथर्ववेदीय शौनकीय शाखा में अनेक प्रकार के रोगों के शमन का विधान है। उसमें बताया गया है कि पाप, शाप, कृत्या, अभिचार, क्षेत्रिय, व्याधि, वरुणपाश, नैर्ऋति, दोष, उन्माद, मृगी, मूर्च्छा, यक्ष्मा रोग, गण्डमाला, कैन्सर, वास्तुदोष, अद्भुत दर्शन, देवयजन दोष, देव हेडन अर्थात् देवताओं का तिरस्कार करने से उत्पन्न दोष,

अनज्ञात दोष, अज्ञात अपराधजन्य दोष, ग्रह दोष तथा नक्षत्रजन्य दोषों का ज्ञान कैसे हो तथा उसका शमन कैसे किया जाय इसका विस्तार से वर्णन है।

अथर्ववेदीय शौनक शाखा के अनुसार प्रश्नों के फलों को जानने का सरल उपाय बताया गया है। अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के चतुर्थ सूक्त "अम्बयोयन्ति' तथा पंचम सूक्त 'आपोहिष्ठामयोभु' एवं षष्ठ सूक्त 'शंनोदेवीरभिष्टय" इन तीनों सूक्तों से यह ज्ञान प्राप्त करे कि –

१. हम जो कार्य करना चाहते हैं उसमें लाभ होगा अथवा नहीं?

२. मुकदमा, विवाद, संग्राम, जुआ, लाटरी, सट्टा आदि में विजय होगी अथवा पराजय?

३. अनुष्ठान में प्रयोग किये जानेवाले मन्त्र से अनुकूल फल होगा अथवा नहीं?

४. रोगी का स्वास्थ्य अच्छा होगा अथवा नहीं?

५. नौकरी, व्यवसाय अथवा जीविका मिलेगी या नहीं?

६. नष्ट धन, चोरी हुई वस्तु, धरोहर, या किसी को कर्ज रूप में दिया गया धन प्राप्त होगा अथवा नहीं?

७. घर से नाराज होकर अथवा किसी कारण से घर से गया हुआ व्यक्ति अथवा पशु लौटेगा अथवा नहीं?

८. परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे अथवा नहीं?

९. पुत्र अथवा पुत्री का विवाह शीघ्र होगा या नहीं?

१०. पुत्र सुख मिलेगा अथवा नहीं, अथवा गर्भ से कौन सन्तान होगी?

११. उत्तम वृष्टि होगी अथवा नहीं?

आदि–आदि प्रश्नों को फल के ज्ञानार्थ – दूध, ईंधन, चावल, समिधा; कुशा की मुष्ठी तथा पाठा को बिना गिने ही अभिमन्त्रित तीनों सूक्तों से करें और चावल, खीर पकाकर फैलायें और उन्हें क्रमशः गिनें, यदि संख्या सम (२,४,६) आदि गिनने से हो तो स्वकार्य, सिद्धि, विषम हो तो असिद्धि। इसी प्रकार युद्ध वेदी के परीक्षण काल में समिधा, कुशा आदि को अभिमन्त्रित कर पश्चात् गिनें – सम २;४;६ आदि हों तो जय; १;३;५ आदि हों तो पराजय समझें।

अथर्व कां. २. सू. १ वेनस्तत् से भी पृथक्-ज्ञान करें

१. पाँच ग्रन्थियों से युक्त वांस की दण्डी; काम्पील वृक्ष की शाखा पृथक्-पृथक् या दोनों ही एक साथ अभिमन्त्रित करें, अपने अभीष्ट कार्य के चिन्तन के साथ

समतल भूमि में ऊपर की ओर खड़ी करें। यदि खड़ा हुआ वह दण्डादि अपनी निश्चित (जो पृथक् अपने संकल्प से निश्चय करे) दिशा की ओर गिरें तो कार्य सफल हो, विपरीत दिशा में गिरें तो असफल हो।

२. इसी प्रकार बाण को अभिमन्त्रित कर धनुष पर चढ़ा, निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर फेंके। यदि निर्दिष्ट लक्ष्य पर गिरे तो सिद्धि, अन्यत्र गिरे तो असिद्धि।

३. उत्पादक के पूर्णघट के जल को अभिमन्त्रित करें। उसमें से लोटा या कमण्डलु में जल भरें; उसे अलग पात्र में पलट दें। पुनः उत्पादक के पूर्ण दूध को अभिमन्त्रित कर, उसी लोटा या कमण्डलु में भरें, यह जल से न्यून या अधिक जैसा भी रहे, और पृच्छक ने न्यून या अधिक का जैसा पूर्व निश्चय किया हो – उसी अनुसार अर्थसिद्धि, कार्यसिद्धि समझें।

४. बिना पूर्व गिने दाभों की मुट्ठी भर लें, अभिमन्त्रित करें। कार्य का चिन्तन कर गिनें, यदि सम २।४।६ आदि हों तो अभीष्ट सिद्धि, १:३:५ आदि विषम हों तो असिद्धि।

कां० २ सू० १ 'वेनस्तत्'

५. समिधाएँ अभिमन्त्रित अग्नि में छोड़ दें। यदि वे परिक्रमाक्रम से स्वतः ही जलें तो अभीष्ट सिद्धि अन्यथा जलें तो असिद्धि।

६. खेलने के पाश या गोठ बिना गिने अभिमन्त्रित कर फेंकें। अपनी (पृच्छक) की अभीष्ट संख्या के निश्चित स्थान में गिरें तो सिद्धि।

७. हाथ की दो (ही) अङ्गुलियों को अभिमन्त्रित करें, चिन्तनकर बोधशून्य बालक से स्पर्श करायें। यदि अपनी निश्चित अङ्गुलि का स्पर्श करे तो सिद्धि।

८. २१ बार शर्करा अभिमन्त्रित कर बिना गिने लें। कार्य का चिन्तन करें दो भागों में बाँटे। अपने उद्देश्यानुसार एक भाग को गिनें। यदि सम हों तो कार्य सिद्धि, अर्थसिद्धि। इन दो भागों में से एक ही को निश्चय करें।

९. नष्टधन-चोरी गये धन, वस्तु, पशु, मानव आदि के ज्ञानार्थ जलपूर्णघट या हल या गोटें (पाशे) कोई भी या सभी नवीन वस्त्र से ढाँककर अभिमन्त्रित करें और बिना रजोधर्म (प्रारम्भ) की कन्या से कहें "उठाकर ले जाओ" वे जिस दिशा में लेकर चलें उधर ही नष्ट धन, चोरी, अपहृत पशु, भागा व्यक्ति जो भी हो-समझें।

१०. विवाह से पूर्व कुँवारी कन्या के सौभाग्यादि के लक्षण के लिए या पुत्र सुख के लिए या धन-धान्य समृद्धि या स्वास्थ्य के ज्ञानार्थ, उसी के पैरों की मिट्टी, वामी की मिट्टी; चौरास्ता की मिट्टी और श्मशान की मिट्टी चारों को इसी से अभिमन्त्रित

करें। कन्या से कहें इनमें से "किसी एक को उठाओ"। यदि पैर या वामीं में से किसी को छुये या उठाये तो कल्याण। चौरस्ता की मिट्टी स्पर्श करे तो मरण, श्मशान की स्पर्श करे तो वैधव्य, मरणान्त कष्ट समझें।

११. कुमारी की अञ्जलि में जल पूर्णतया भर दें – इसी से अभिमन्त्रित करें; और उससे कहें "इससे जिस ओर चाहो फेंक दो" यदि पूर्व को फेंके तो कल्याण (कौशिक सूत्र ५।१)

कां० ५ सू० ६ 'ब्रह्मजज्ञानम्' से अभिमन्त्रित करें

१. रोगी ठीक होगा या नहीं? रोगी के सिर से पैर पर्यन्त ३ बार रस्सी नापकर अभिमन्त्रित कर अङ्गारों पर रख दें। यदि वे अङ्गारों पर रखी ऊपर को उठें तो रोगी जीवित रहेगा ऐसा समझें। (कौशिक सूत्र २।६)

२. संग्राम में जय होगी या नहीं? अपने सेनापति या राजा के ३ व्यों, पृथक्–पृथक् लें– उसमें १–अपने दल की; दूसरी मध्य में मृत्यु की, तीसरी रज्जु पर सेना की सङ्कल्पित कर–अभिमन्त्रित करें और उन्हें पृथक्–पृथक एक ही पास अङ्गारों पर रख दें। उन अङ्गारों पर रखी मृत्यु वाली रज्जु जिस पर आवे, उसकी पराजय। जो मृत्यु से ऊपर चली जाय उसकी विजय; जो सामने जाकर पड़े उसकी भी जय समझें।

३. इसी क्रम से इसी सूक्त से अभिमन्त्रित कर एक रस्सी को अङ्गार पर रख दें तो पूर्ववत सैनिकों की जय, पराजय समझे। कौ० २।६ काण्ड १ सूक्त ५ के साथ बताये सभी कार्यों का ज्ञान करें। कौ० सू० ३।१ वहाँ कां० १ सू० ४.५.६ में कुछ कार्य ही उदाहरणार्थ दिये हैं इसके अतिरिक्त अन्य सभी प्रश्नों पर इसी प्रकार कां० २ सू० १ "वेनस्तत्" तथा कां० ५ सू० ६ 'ब्रह्मजज्ञानम्' से करें।

यन्त्रलिखित अखण्ड ज्योति स्थापित करें, इन उपर्युक्त सभी सूक्तों या किसी एक से भी अभिमन्त्रित करें, ज्योति की पूजा कर – प्रश्न करें तो दीप ज्योति में भी प्रश्नों के उत्तर अकारादि क्रम से आते हैं उन्हीं से पूरा वाक्य होने पर, उत्तर पूर्ण हो जाता है।

ज्योति में उनके स्वरूप, स्थानादि भी, अबोध बालक और बिना रजोधर्म प्रारम्भ हुई कन्याओं को दृष्टिगोचर होते हैं। ये कृत्या, अभिचार, नैर्ऋति आदि समस्त कर्मज व्याधियों के ज्ञान की पुष्टि के सूचक हो जाते हैं।

गर्भदोष – (अ. कां० ८ सू० ६) स्त्री के बच्चे मरना, गर्भपतन होना, जन्मे हुए बच्चों को मारना, स्त्रियों के योनि आदि भागों में पहुँच पीड़ा करना, हृदयताप, रजोधर्म न होना, सन्तान न होना; पैदा होकर मरना, पापाचरण में प्रवृत्ति होना, सोते-

जागते पीड़ा देना, पतिवत् सम्भोग करना, भ्राता की भाँति प्रेम करना, गर्भ को नष्ट करना, कच्चे ही मांस को खा जाना, बालक के जन्मते ही झपटा करना, इनके दो मुख, चार आँखें, पाँच पैर परन्तु अंगुलिरहित होते हैं। इनके पैर पीछे को एंड़ी और मुख आगे को होते हैं। ये हाथों में सींग धारणकर स्त्री के पास पहुँचते हैं, चमकते हैं, ये पाक रसादि में वास करते हैं। गधे का-सा शब्द करते हैं। सुई जैसे चुभानेवाले हथियार होते हैं, पेट बड़ा होता है, प्रायः सन्ध्या, निशा में ये प्रकृष्ट होते हैं। एकान्त में घसीटते हैं। इनके कारण चर्म में दुर्गन्धि आती हैष्ट मुख लाल होते हैं इनके नाम- पलाल, अनुपलाली, शर्कु, कोक, मलिम्लुच पलीजक, आश्लेष, प्रमीलिन, कृष्ण, केशी, असुर, तुण्डिक, अराय अनुजिघ्र, प्रमृशन, क्रव्याद, रेरिह, श्वकिष्की, पिग, वज आदि कहे हैं। ये वन्ध्यापन, बच्चे का तुरन्त मर जाना, रोने की ओर प्रवृत्ति का कारण बनाना, पाप प्रवृत्ति आदि के मूल कारण कहे हैं। ये पुरुष को स्वकीया में प्रीति न होकर परकीया में प्रीति करनेवाला, या शिखण्डी बनाते हैं।

ग्रहग्रस्त शापग्रस्त दोष ज्ञान

जन्मलग्न या प्रश्नलग्न से या चन्द्रमा से उपर्युक्त पद्धति के भावगत विषय 'बोधक चक्र' तथा इसी के 'ग्रहों के स्वरूप का विचार' 'शीर्षक प्रकरणों को दृष्टि में रखते हुए' ८वें या १२वें भौम हो तो कृत्या दोष होता है। इसी में नाक, कान, नेत्र तथा शरीर के तिलादि चिह्नों को भी समझें और फलादेश कहें। उपर्युक्त प्रश्न लग्न से ९वें केतु, राहु में से कोई हों और मंगल ८वें हों तो ब्रह्मराक्षस आदि का दोष समझें। ८वें शनि या भौम हों तो पीपल के वृक्ष का काटना या क्षति पहुँचाना समझें, वहां ब्राह्मण या ऋषि की समाधि या पूज्य देवता का स्थान समझें उससे वरुणशाप होता है। यदि जलराशि ८वें या ९वें पाप ग्रह के साथ हो तो प्रश्नकर्त्ता को सर्प (वरुणपाश) तथा जल स्वप्नादि में दिखायी देंगे। शनि हो तो बड़े दाँतों की चिपके गालों की बड़ी लाल डरावनी आँखें, सुअर जैसे खड़े बिखरे बालवाली काली मूर्ति लम्बा चेहरा दिखायी पड़ेगा। यदि कापालिक कृत्या हुई तो नीला स्वरूप होगा (या) लोहितवर्ण। केतु हो तो शूद्र अन्त्यज-चाण्डाल कृत कृत्या होती है। बुध हो तो आसुरी कृत्या, यदि १२वें गुरु हों तो दैवी, मंत्रकृत कृत्या समझें।

प्रश्न लग्न या चन्द्रमा से चतुर्थ स्थान में जैसी राशि और ग्रह हों वैसा ही ग्रह का स्वरूप समझें। उसके वाम (तृतीय को) दायें (५वें ६ठे स्थान के सन्मुख १०वें स्थान को समझें। इनमें शुष्क राशि हो शुष्क स्थान जल राशि हो तो जल स्थान, उसमें राहु, केतु हों तो गन्दा जल, सौम्य हों तो उत्तम जल स्थान कहें। राहु से शमी या काँटेदार वृक्ष, भौम से अश्वत्थ बुध से लतादि शनि से नीमादि कटु वृक्ष, केतु से

बबूलादि काँटेदार पेड़ समझें। भौम से लाल ईंट आदि चिह्न, शनि से, काला गोमय, कूड़ा, कोयला, पत्थर, राहु से पुल आदि समझें। यह कृत्या प्रयोग स्थान है। विद्वान्, भविष्यवक्ता, अपने स्थान को त्यागकर बिना सम्मानपूर्वक आमन्त्रित किये, प्रश्नकर्त्ता के यहाँ न पधारें, अपनी पर्णकुटी पर, स्वाशन से ही निष्काम भविष्यवाणी करें। प्रश्नकर्त्ता निष्ठा भाव तथा पत्र-पुष्पादि उपायनपूर्वक प्रश्न करें या आमन्त्रित करें तभी दोनों सफल होंगे।

गर्भादिदोष के ज्ञान के लिए

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त 'भावगत विषय बोध चक्र' के लग्न से द्वादश भाव के अङ्गों में जैसी राशि या ग्रह हों वैसे ही उन-उन स्थानों में चिह्न होंगे। राशि से दिशा तथा ग्रहों से वर्ण, अवस्था, वेश-भूषा समझें। लग्न, प्रश्न और चन्द्रमा से ५वें या ८वें शत्रु, निर्बली, या पापःक्रूर ग्रह हो तो पुत्ररहित, मृतवत्सा द्वारा वस्त्र या बाल काटे या रजोधर्म का वस्त्र चुराया है (यह) स्त्री कृत्या दोष, रजोधर्म के आगे-पीछे होने या कमर आदि की पूर्वोक्त व्यथा, पेडू पर गैस, हृदय व मस्तिष्क में विकार करनेवाला वन्ध्यापन (पुत्र सुख में बाधक) समझें।

यदि मनुष्य के कल्याण, शरीर, स्वास्थ्य, मन, मस्तिष्क, धन, पद सम्पदा के लिए बाधक, आपत्तियों की विविध प्रकार की वर्षा करनेवाला, मिथ्यालाञ्छन, अपमानादि का प्रतीक होता है। यह भैषज्य वेद की उत्तम चिकित्सा से परे परन्तु 'शौनकीय शाखा' की विधि से साध्य हो जाते हैं।

समय – जन्मनक्षत्र से भुक्त महादशा, अन्तर्दशा, मासदशा, सूक्ष्म दशा, प्राण दशा के माध्यम से निश्चित करें।

नैर्ऋति दोष के लक्षण – सहसा कलह, व्याधि-पर-व्याधि, अपव्यय, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक विविध कष्ट, पशु, कृषि की क्षति, रोग, भौतिक भूमि सम्बन्धी विवाद। बाल, कुमार, युवाओं की दयनीय मृत्यु, बाल, तरुण युवतियों का वैधव्य, स्त्री पुरुष, माता पुत्री पिता पुत्र, स्वामी सेवक में विवाद, अकस्मात् धन हानि, मान हानि, गौ, घोड़ी, स्त्री तथा फलदार उद्यान में पुष्प (ऋतु धर्म) पुत्र सन्तति को बाधा आदि विघ्न होते हैं। यह यम की पत्नी नैर्ऋति हैं।

शाप – प्रायः अन्याय, अधर्म से संतप्त प्राणी शाप देते हैं, परन्तु देव, द्विज, गुरु, ऋषि, गौ, सती का यदि किसी प्रकार अपमान हो और वे स्वयं शान्ति से सहन करें, मन, वाणी से किसी का अहित न सोचें तो वहाँ वरुण शाप हो जाता है। शापकर्त्ता के शाप की वाणी के शब्द ब्रह्माण्ड में शब्द ब्रह्म होने से अमिट होते हैं। शाप उनकी

दया या वे स्वयं न हों तो परम्परागत महामानव की दया अथवा अथर्व विधि से बिना शाप विमोचन किये, उन दोषी जनों या कुलों का कल्याण नहीं होता है।

सन्तति-विज्ञान

गुरु सन्तान कारक ग्रह हैं। सन्तान का विचार जन्मलग्न, प्रश्नलग्न से पंचम स्थान और चन्द्रमा उन लग्नों में जहां भी हो उससे पंचम स्थान से करें।

१. गुरु, पञ्चमभाव, पञ्चमेशशुभ ग्रह युक्त या दृष्ट हों तो सन्तति हो।

२. लग्नेश पंचम भाव में हो, और गुरु बलवान् हों, तो सन्तति होती है।

३. बलीगुरु, लग्नेश से दृष्ट हो, तो प्रबल सन्तति योग होता है।

४. सन्तान (५वें) भाव पर मंगल, और शुक्र की एक पाद, द्विपाद, त्रिपाद दृष्टि हो

५. १;४;७;१०;५; और ९वें भावों, के स्वामी शुभ ग्रह हों, और उनमें से कोई पंचम भाव में बैठा हो। तथा पंचमेश, ६।८।१२ भाव में न हो, पापयुक्त; अस्त; या शत्रुराशिगत न हो, तो सन्तान सुख हो।

६. पंचम में २;७;४ वृष, तुला, कर्क में से कोई राशि हो, ५वें शुक्र या चन्द्र हो अथवा इनकी दृष्टि हो, तो बहुपुत्र योग होता है।

७. लग्न या चन्द्रमा में ५ वें भाव में शुभ ग्रह हो, या ५वां भाव शुभ ग्रहों से दृष्ट हो, या पंचमेश से दृष्ट हो, तो सन्तान योग होता है।

८. लग्नेश, पञ्चमेश एक साथ हों, या परस्पर दृष्ट हों, अथवा दोनों स्वगृही मित्रगृही, या उच्च के हों, तो प्रबल सन्तति योग समझें।

९. लग्नेश, पंचमेश शुभ ग्रह, के साथ होकर, केन्द्र १;४;७;१०वें स्थानों में हों और द्वितीयेश बली हो तो सन्तान योग होता है।

१०. लग्नेश और पंचमेश दोनों सप्तम भाव में हों, अथवा द्वितीयेश लग्न में हो, तो सन्तान योग होता है।

११. पंचमेश के नवांश का स्वामी, शुभ ग्रह से युत और दृष्ट हो तो सन्तान योग होता है। लग्नेश और पंचमेश १।४।७।१० स्थानों में, शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो तो सन्तान योग होता है।

१२. पंचमेश और गुरु बलवान् हो तथा लग्नेश पंचम भाव में हो, सप्तमेश के नवांश का स्वामी, लग्नेश तथा धनेश, और नवमेश, इन तीनों से दृष्ट हो, तो सन्तति योग होता है।

१३. पंचम भाव में २।४।८।१०।१२ राशियाँ और इन्हीं राशियों के नवांश शनि, बुध, शुक्र या चन्द्रमा से युत हों तो कन्याएँ अधिक तथा पंचम भाव में १।३।५।७।९।११ राशियाँ, तथा इन राशियों के नवांशाधिपति मंगल, शनि और शुक्र से दृष्ट हों, तो पुत्र सन्तति अधिक हों।

१४. पंचमेश २।८ भाव में हो तो कन्याएँ अधिक हों।

१५. १२वें बुध; शुक्र; या चन्द्रमा में से कोई हो तो कन्याएँ अधिक हों।

१६. बुध, चंद्र और शुक्र में से एक भी ५वें गया हो तो कन्याएँ अधिक हों।

१७. पंचम में मेष, वृष और कर्क में से किसी पर केतु हो तो सन्तान लाभ हो।

प्रश्न लग्न में विशेष

१. प्रश्नकर्त्ता की तिथि संख्या को ४ से गुणा कर १ जोड़ें; योग में दिन संख्या विष्कम्भादि योग संख्या जोड़ें, और योग में २ का भाग दें। लब्धि को ३ से गुणाकर ४ से भाग दें। १ शेष हो तो विलम्ब से, दो शेष हो तो अभाव; ० शेष से शीघ्र सन्तति लाभ समझें।

२. दिन संख्या को ३ से गुणा करें उसमें तिथि जोड़ लें, योग में दो का भाग दें। १ शेष हो सन्तति लाभ, ० शेष हो, अभाव समझें।

३. प्रश्न, जन्म और चन्द्रमा से पंचम से सिंह, वृष, वृश्चिक या कन्या राशियाँ हों तो विलम्ब से सन्तान हो।

४. यदि प्रश्न से ५वें पाप युति या दृष्टि हो, तो विलम्ब से सन्तति लाभ हो।

५. प्रश्न से ८वें सिंह, मकर या कुम्भ में रवि, और शनि हों, तो सन्तति अभाव।

६. प्रश्न से ८वें चन्द्र और बुध हों, तो विलम्ब से १ सन्तति लाभ, चन्द्र बली हो, तो कन्या।

७. प्रश्न से ८वें केवल बुध हो, तो सन्तान अभाव।

८. प्रश्न से ८वें शुक्र और बुध हों, तो सन्तति होकर मर जाय।

९. प्रश्न से ८वें मंगल हो, तो गर्भपात हों।

१०. प्रश्न लग्न से अष्टमेश अष्टम में हो, तो सन्तति नहीं होती है।

११. प्रश्न से ८वें शुक्र और सूर्य हों, तथा दूसरे, बारहवें और आठवें, पाप ग्रह हों, तो सन्तान अभाव तथा प्रश्नकर्त्ता को कष्ट समझें।

१२. प्रश्न से बारहवें, का स्वामी १।४।७।१० में हो, और शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट हो, तो सन्तान अभाव तथा प्रश्नकर्त्ता को कष्ट समझें।

१३. पञ्चमेश, लग्नेश, मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन और कुम्भ में से किसी में हों, तो १ पुत्र लाभ हो। यदि उक्त ग्रह वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन में से किसी में हों तो कन्या हो।

१४. लग्न से विषम स्थान १।३।५।७।९।११वें स्थान में, शनि हो तो पुत्र और यदि सम २।४।६।८।१०।१२ वें स्थान में हो तो कन्या हो।

१५. प्रश्न से ५वें का स्वामी; लग्नेश या चन्द्रमा से, इत्थशाल करता हो, और शुभ से युत या दृष्ट हो, तो सन्तान लाभ हो।

गर्भस्थ सन्तान का लिंगज्ञान

१. प्रश्न से लग्न में रवि, गुरु या भौम हो या ये ग्रह ३।५।७।९वें स्थान में हों तो पुत्र, अन्य कोई ग्रह हो तो कन्या।

२. प्रश्न लग्न विषम राशियाँ विषम नवांश में हों, और लग्न में रवि, गुरु चन्द्र बली हों तो पुत्र। समराशि या सम नवांश में ये ग्रह हों तो कन्या। परन्तु विषम में गुरु या रवि हों तो पुत्र। चन्द्र, शुक्र और मंगल, सम राशि में हों तो कन्या हो, ये तीन योग हैं।

३. प्रश्न लग्न को छोड़ अन्य विषम स्थान में शनि हो तो पुत्र। द्विस्वभाव लग्न पर बुध की दृष्टि हो, तो यमल (जुड़वाँ) सन्तति हो।

४. प्रश्न लग्न पुरुष राशि हो और बली पुरुष ग्रह से युत या दृष्ट हों तो पुत्र। समराशि हो और स्त्री ग्रह से युत या दृष्ट हो तो कन्या हो।

५. प्रश्न से पञ्चमेश और लग्नेश सम राशि में हों तो कन्या, विषम राशि में हो तो पुत्र हो।

६. पुरुष ग्रह-र, मं, गु, बली हों तो पुत्र जन्म; स्त्री ग्रह-चं, शु बली हों तो कन्या जन्म हो।

७. प्रश्न कुण्डली में ३।९।५।११वें स्थान में र.मं. गु हों तो पुत्र अथवा ५।९ भाव में बली गुरु हो तो पुत्र जन्म हो।

८. प्रश्न दिन संख्या, शुक्ल प्रतिपदा से उस दिन तक की तिथि संख्या; प्रहर संख्या; नक्षत्र संख्या को जोड़ें, १ घटायें, ७ का भाग दें, शेष विषम १।३।५।७ रहें तो पुत्र, २:४:६ रहें तो पुत्री।

९. गर्भिणी नामाक्षर-प्रश्नतिथि तथा योग में १५ जोड़ें। योग में ९ का भाग दें, १:३:५:७:९ शेष रहें, तो पुत्र, सम २:४:६:८ रहें तो कन्या हो।

१०. प्रश्न तिथि-वार-नक्षत्र तथा गर्भिणी के नाम के अक्षर जोड़ ७ का भाग दें; शेष १ से रवि २ से सोम के क्रम में यदि र. भौ. गु. आयें तो पुत्र, शुक्र, चन्द्र, बुध आयें तो कन्या, शनि आये तो क्षीण सन्तति समझें।

११. प्रश्नकाल में प्रश्नकर्त्ता अपने दायें अंग को स्पर्श करे तो पुत्र, बायें को स्पर्श कर पूछे, तो कन्या जन्म समझें।

सन्तान योग-विचार

१. अनपत्ययोग – जन्म लग्न, प्रश्न लग्न में सर्व ग्रह निर्बली (नीच, शत्रु राशि में या अस्तंगत तथा ६।८।१२ स्थान में गये हों अथवा षड्बलहीन-बली) हों तो पुत्र, या पुत्री कोई भी सन्तान नहीं होवे।

२. गर्भानुत्पाद योग – लग्न में सूर्य, सातवें शनि गये हों, अथवा सातवें भाव में रवि, शनि गये हों और दशवें भाग को गुरु देखें तो गर्भ उत्पन्न नहीं होता।१।।

छठे अथवा चौथे भाव में शनि, मंगल का योग हो तो गर्भोत्पत्ति न हो।।२।।

छठे भाव का स्वामी और शनि, ये दोनों छठे भाव में हों, सातवें चन्द्र हो तो गर्भोत्पत्ति नहीं होती।।३।।

३. गर्भच्युति योग – पञ्चम भाव (र०मं०श०रा०के०ह० ने० प्लूटो और इनसे युक्त, दृष्ट बुध) और शुभ ग्रहों से अदृष्ट हो तो गर्भपात हो जावे।।१।।

पञ्चम भाव में जिस राशि का नवांश हो, उस राशि को कोई शुभ ग्रह न देखे, और जितने पाप ग्रह देखें, उतने ही गर्भपात हों।।२।।

४. सर्प के शाप से विपुत्र योग : पञ्चम भाव में गया हुआ राहु, मंगल से दृष्ट हो, अथवा पञ्चम भाव में मंगल की राशि १।८ में राहु गया हो, सर्प के शाप से पुत्र नहीं होता।।१।।

पञ्चम भाव में गया हुआ शनि चन्द्र से दृष्ट हो, और पञ्चमेश राहु से युत हो तो सर्प से शाप से पुत्र नहीं होता।।२।।

पञ्चम भाव का स्वामी बुध-मंगल से युत होकर-मंगल के ही नवांश में गया हो और राहु गुलिक = लग्न में गये हों, तो सर्प के शाप से पुत्र न हो।।३।।

पुत्र कारक ग्रह (गुरु) राहु से युत या दृष्ट हो, पञ्चमेश निर्बली हो, और लग्नेश मंगल से युत हो तो सर्प के शाप से पुत्र न हो।।४।।

पुत्रकारक ग्रह (गुरु) मंगल से युत हो, लग्न में राहु और पञ्चमेश ६।८।१२ भाव में गया हो, तो सर्प के शाप से पुत्र न हो।।५।।

पञ्चमेश भाव का स्वामी, मंगल हो और पञ्चम भाव में गया हुआ राहु, बुध से युत, या दृष्ट हो तो सर्प के शाप से – पुत्र न हो।।६।।

पञ्चमेश और लग्नेश ये दोनों निर्बली हों, पञ्चम भाव सब पाप ग्रह और बुध, गुरु से युत होकर पञ्चम में हों (पाँचवें र.मं.शं.रा.बु.गु.) हों तो सर्प के शाप से पुत्र न हो।।७।।

लग्नेश राहु से, पञ्चमेश मंगल से युत या दृष्ट हो और पुत्रकारक ग्रह (गुरु) राहु से दृष्ट हो तो सर्प शाप से सन्तति नहीं होती।।८।।

५. पितृशाप से पुत्रहानि योग

१. पञ्चम भाव का स्वामी सूर्य ९वें तथा ५वें भाव में पापग्रहों के बीच में गया हो और पाप ग्रहों से युत; दृष्ट हो तो पितृ के शाप से पुत्र न हो।

२. पञ्चम भाव में नीच राशि का सूर्य, शनि के नवांश (तुला राशि ४, पाँचवें नवांश १।११) में गया हो, और पाप ग्रहों के मध्यम में स्थिति हो तो पितृ के शाप से पुत्र न हो।।

३. सिंह राशि में गुरु गया हो, पञ्चमेश सूर्य से युत, या दृष्ट हो, और पंचम भाव, व, लग्न में पाप ग्रह गये हों, तो पितृ के शाप से पुत्र न हो।

४. आठवें भाव में रवि; व पञ्चम भाव में शनि गया हो, और पञ्चमेश राहु से युत, या दृष्ट हो तो पितृ के शाप से पुत्र नहीं होवे।।

५. बारहवें भाव का स्वामी लग्न में, अष्टम भाव पञ्चम भाव में और दशम भाव का स्वामी आठवें भाव में गया हो तो, पितृ शाप से पुत्र न होवे।

६. मातृ शाप से विपुत्र योग

१. पञ्चम भाव का स्वामी चन्द्रमा नीच राशि का हो, अथवा पाप ग्रहों के मध्य में (पाप कर्तरी में) हो, और चतुर्थ-व, पञ्चम भाव में पाप ग्रह गये हों तो माता के शाप से पुत्रहीन हो।

२. लाभ भाव में शनि-व-चतुर्थ भाव में २-३ पाप ग्रह गये हों, और पञ्चम भाव में नीच राशि (८) का चन्द्रमा गया हो तो माता के शाप से पुत्र न हो।

३. पञ्चमेश ४।८।१२ भाव में गया हो, लग्नेश नीच राशि का हो, और चन्द्रमा पाप ग्रह से युत, या दृष्ट हो तो माता के शाप से पुत्र न हो।

४. पञ्चमेश चन्द्रमा हो और वह शनि राहु व मंगल से युत या दृष्ट हो तो माता के शाप से पुत्र न हो।

५. सुखेश (४ का स्वामी) मंगल हो, और वह राहु व शनि से युत हो, और लग्न में सूर्य, चन्द्रमा ये दोनों गये हों, तो माता के शाप से पुत्र न हो।

६. सुखेश आठवें भाव में, पञ्चमेश व लग्नेश ये दोनों छठे भाव में तथा दशमेश और षष्ठेश ये दोनों लग्न में गये हों तो माता के शाप से पुत्र न हो।

७. राहु-सूर्य, मंगल और ५।१।८।६ इन भावों में यथाक्रम, अथवा व्यतिक्रम से गये हों; और लग्नेश ६।८।१२ भाव में गया हो तो माता के शाप से पुत्र नहीं होवे।

८. राहु-मंगल और गुरु ये तीनों ही ६।८-१२ भावों में गये हों और पंचम भाव में शनि चन्द्रमा का योग हो, तो माता के शाप से पुत्र न हो।

७. कुलदेव दोष से विपुत्र योग

१. छठे भाव में गया हुआ शनि; बुध-चन्द्र, और सूर्य से युत या दृष्ट हो लग्न को पाप ग्रह देखें. तो कुलदेव के दोष से पुत्र न हो।

२. शनि की राशि (१०-११) में गया हुआ सूर्य पाप ग्रह से दृष्ट हो; अथवा लग्न में पापग्रहों का वर्ग अधिक हो तो कुलदेव के दोष से पुत्र न हो।

८. सुतहीन योग

१. लग्न में सूर्य और पाँचवें मंगल गया हो तो सुतहीन होवे।

२. जिस राशि में गुरु स्थित हो, उस राशि से पंचम भाव का स्वामी जो ग्रह हो, वह ६।८।१२ भाव में गया हो और जन्म लग्न से भी, पंचम, नवम व लग्न के स्वामी ६।८।१२ भाव में गये हों या दृष्टि हो तो पुत्र न हो।

३. पंचम में गुरु गया हो और गुरु से पाँचवें भाव में पापग्रह गये हों तो पुत्र न हो।

४. पञ्चमेश लग्न या सप्तम भाव में गया हो और वह बलवान् षष्ठेश से युत या दृष्ट हो तो पुत्रहीन हो।

५. नवम, पंचम और सप्तम भाव के स्वामी निर्बल होकर ६।८।१२ भाव में गये हों और पाप-ग्रहों से युत या दृष्ट हों तो वह बहुत स्त्रियों का स्वामी भी हो तो भी पुत्र न हो।

६. शनि और मंगल ये दोनों ९वें, १०वें भावों में गये हों तो पुत्रहीन हो।

७. शनि, मंगल व शुक्र ये तीनों सातवें भाव में गये हों या दृष्टि हो तो पुत्रहीन हो।

८. लग्नेश, छठे भाव में शुभ ग्रह की राशि में गया हो, और वह बुध, चन्द्र से युत-या-दृष्ट हो, (१) छठे अथवा (२) दूसरे भाव में सूर्य गया हो तो विपुत्र हो।

९. पञ्चमेश (गुरु) पाप-ग्रहों से युत-दृष्ट हो और निर्बल हो तो पुत्रहीन हो। परन्तु पञ्चम भाव में ९, धन मीन १२ राशि हो तो यह योग होगा।

१०. लग्नेश पापग्रह से युत या दृष्ट हो, और पञ्चमेश ६।८।१२ भाव में से किसी में भी गया हो तो पुत्रहीन हो।

११. पञ्चमेश के नवांश का स्वामी: अस्तंगत का हो और पापग्रहों से युत, या दृष्ट हो तो विपुत्र हो।

१२. पापग्रह से युत होकर गुरु ९वें या पाँचवें भाग में गया हो तो पुत्रहीन हो।

१३. लग्नेश मंगल की राशि (१।८) में गया हो, और पञ्चमेश छठे भाव में गया हो तो पुत्रहीन हो।

१४. बारहवें भाव का स्वामी दसवें, अथवा लग्न में गया हो तो पुत्रहीन हो।

१५. बारहवें भाव का स्वामी दसवें; किंवा लग्न में गया हो तो पुत्रहीन हो।

१६. शुक्र या मंगल इन दोनों में से यदि एक भी पञ्चम भाव को न देखता हो तो कई विवाह कर लेने पर भी सन्तान नहीं होती।

(सारांश यह है कि पंचम भाव में शुक्र या मंगल या शुक्र-मंगल दोनों ही देखते हों, तो सन्तति-पुत्र होवेगा क्योंकि वीर्य का स्वामी शुक्र और रज का स्वामी मंगल है, जब (ऋतु रेत) के स्वामी की दृष्टि या युतिगर्भ भाव ५ पर होगी तभी गर्भ रहेगा और इन तीन की दृष्टि न होगी तो कई स्त्रियों के हो जाने पर भी सन्तति नहीं होगी)।

१७. लाभ ११वें भाव में चन्द्र शनि का योग, या दृष्टि हो तो पुत्र न हो।

९. पुत्रनाशन योग

१. पञ्चम भाव, अथवा-पञ्चम भाव कारक ग्रह (गुरु) पाप ग्रहों के मध्य में (पापकर्तरि में) और पापग्रह से युत-या-दृष्ट हो तो पुत्र प्राप्ति तो होगी-जियेगा नहीं।

२. पञ्चमेश-सप्तमेश-और नवमेश ये तीनों ग्रह, जिस-जिस ग्रह के नवांश में हों, वे ग्रह पाप ग्रहों के नवांश में गये हों, और पाप ग्रह से युत, या दृष्ट हों तो पुत्र नाश हो।

३. पञ्चमेश, क्रूर ग्रह के नवांश में हों और वह नीच राशि का अथवा अस्तंगत होकर-पाप ग्रह से युत-या दृष्ट हो तो पुत्र-नाश हो।

४. व्ययेश (१२) के नवांश का स्वामी जिस राशि के देष्काण में हो; उस राशि के स्वामी से पञ्चमेश युत-अथवा-दृष्ट हो तो पुत्र नाश हो।

५. प्रकाशावस्था में गया सूर्य पंचम भाव में गया हो तो जितनी सन्तान जन्मती जावें, उतने ही मरते जायँ-जीवित न रहेंगे।

६. तीन-चार पाप ग्रह पञ्चम भाव में गये हों तो जितनी ही सन्तान जन्मती जावें, उतनी ही मरते जावें।

७. पञ्चम भाव में सूर्य गया हो तो (मृताऽपत्य) सन्तान मर जावें।

८. नवमे, पाँचवें भाव में पापग्रह लग्न में क्षीण चन्द्रमा, और शनि की राशि (१०-११) में गया हुआ गुरु अस्त का हो तो पुत्र का सुख होकर-नाश हो जावे।

९. पञ्चम भाव में बुध गया हो, और लग्न तथा सुख इन दोनों भावों में पाप ग्रह गये हों, तो पुत्र का सुख होवेगा पर नाश हो जायगा।

ये सभी छोटी आयु की सन्तान होने के योग हैं।

१०. पुत्र सुखक्षीण योग

१. पञ्चमेश-क्रूर ग्रहों के षष्ठांश में हो, और पाप ग्रह से युत किंवा दृष्ट हो तो पुत्र का सुख नहीं होगा।

२. तृतीयेश और चन्द्रमा ये दोनों १।४।७।१०।९।५ वें भाव में से किसी में भी गये हों तो पुत्र सुख नहीं होगा।

३. सिंह राशि में गये हुए शनि या मंगल, पंचम भाव में होवें, और पंचमेश छठे भाव में गया हो तो पुत्र का सुख नहीं होवे।

४. पंचम भाव में मंगल की राशि (१-८) में गया हुआ राहु, मंगल से दृष्ट हो तो पुत्र सुख नहीं होगा।

५. गुरु और शुक्र अपनी नीच राशि (१०-६) में गये हों, अथवा बुध सम राशि (२,४,६,८-१०-२२) में, सूर्य विषम राशि (१।३,५,७,९,११) में गया हो तो पुत्र का सुख नहीं होवे।

६. पंचम भाव में गुरु की राशि (९।१२) हो तो पुत्र का सुख नहीं होवे।

७. तृतीय भाव का स्वामी ३,१२,१,२,५, भाव में गया हो तो पुत्र सुख नहीं होवे।

८. पंचम भाव में गुरु की राशि (९-१२) में हो तो पुत्र का सुख नहीं होवे।

९. बुध शनि लग्न में गये हों और वृश्चिक राशि में गुरु का योग हो तो पुत्र सुख न हो।

१०. गुरु से पाँचवें भाग में पाप ग्रह गये हों तो सन्तान सुख नहीं होवे – परन्तु शुभ ग्रह गया हो तो सन्तान का सुख होगा।

(१) पुत्र सुखहीन योग में पुत्र न ही हो, (२) होकर मर जावे, (३) पुत्र होते हुए भी पुत्र का सुख न हो, (४) पुत्र हुआ और न हुआ, तुल्य हो, ये तीन भेद पुत्र सुख न होने के हैं।

इनमें से जिनके पुत्रहीन, अथवा पुत्र-नाश, अथवा वंशविच्छेद योगप्रबल हुआ हो, उनके तो पुत्र होगा ही नहीं, अथवा होकर मर जाते हैं।

जिनके केवल पुत्र-सुख हीन योग ही होवे, और अन्य उपर्युक्त योग नहीं हो तो पुत्र होते हुए भी पुत्र का सुख नहीं होता। यथा –

वियोगान्मरणाद्-क्लैव्यात्तथा चाप्रसवादपि।
देशान्तरे च गमनात्पुत्रदुःख हि पंचधाः।।

(१) परस्पर-स्त्री-पुरुष के वियोग (२) मृत्यु (३) नपुंसकता या वन्ध्यापन, (४) अप्रजनन और दूर देशगमनादि पाँच प्रकार से पुत्र दुःख होगा।

११. वंश-विच्छेद

१. बुध और लग्नेश ये दोनों लग्न के अतिरिक्त दूसरे केन्द्र स्थान (४।७।१०) में गये हों तो वंश-विच्छेद हो।

२. बारहवें, पाँचवें या आठवें भाव में पाप ग्रह गये हों तो वंश-विच्छेद हो।

३. लग्न में चन्द्र गुरु का योग हो, और सातवें भाव में शनि अथवा मंगल गया हो तो वंश-विच्छेद होगा।

४. पाप ग्रह (श०भौ०के०) चतुर्थ भाव में गये हों, तो वंश-विच्छेद हो।

५. जन्म लग्न, किंवा प्रश्न लग्न, बारहवें, पाँचवें और आठवें भाव में सम्पूर्ण पाप ग्रह गये हों तो वंश-विच्छेद हो।

६. पंचम भाव में चन्द्रमा गया हो, और आठवें लग्न में, बारहवें भाव में गुरु गया हो तो वंश-विच्छेद हो।

७. सातवें भाव में बुध-शुक्र; चतुर्थ भाव में श०भौ० के० पाप ग्रह और पंचम भाव में गुरु गया हो तो वंश-विच्छेद हो।

८. चन्द्रमा से आठवें स्थान में पाप ग्रह गये हों, तो वंश-विच्छेद हो।

९. सब पाप ग्रह पंचम भाव में गये हों, तो वंश-विच्छेद हो।

१०. सप्तम भाव में शुक्र, दशम भाव में चन्द्रमा और सुख भाव में पाप ग्रह ३।४ गये हों तो वंश-नाश हो।

११. लग्न में मंगल आठवें, शनि, पाँचवें सूर्य गया हो तो वंश-विच्छेद हो।

१२. वंश-विच्छेद योग में पुत्र या पुत्री कोई जीवित नहीं रहते-वंश का नाश हो जाता है।

१२. 'विलम्ब से पुत्रोत्पत्ति योग'

१. लग्न, नवें और पंचम भाव के स्वामी, शुभ ग्रह से युत होकर ६।८।१२ भाव में गये हों तो विलम्ब से सन्तान होगी।

२. दसवें भाव में सर्व शुभ ग्रह गये हों तो पुत्र सुख विलम्ब से हो।

३. भौ० श० के० अथवा गुरु चतुर्थ अथवा पंचम भाव में गये हों और ८वें भाव में चन्द्रमा हो तो ३० वर्ष की आयु के उपरान्त सन्तान हो।

४. पापग्रह की राशि (१।८।५।१०।११) के लग्न में पापग्रह युत, या दृष्ट हों और सूर्य निर्बली क्षीणांश का हो, और मंगल समराशि (२।४।६।८।१०।१२) में स्थित हों तो ३० वर्ष की आयु के उपरांत सन्तान हो।

५. कर्क राशि में गया हुआ चन्द्रमा पापग्रहों से युत (दृष्ट) हो, और सूर्य को शनि देखता हो, तो ६०वें वर्ष में पुत्र की प्राप्ति हो।

६. लाभ भाव में (११वें में) राहु या हो तो वृद्धावस्था में पुत्र प्राप्त हो और बृहत्पाराशरी के अनुसार कुछ योग इस प्रकार हैं –

१. पाचवें गुरु जावे और पंचमेश शुक्र से युत हो तो ३२ व ३३वें वर्ष में पुत्र हो।

२. पंचमेश व पंचमभाव का कारक (गुरु) ये दोनों (१।४।७।१०) वें स्थान से युक्त या दृष्ट हों तो ३० व ३६वें वर्ष में पुत्र-प्राप्ति होती है।

३. जन्म लग्न से नवें गुरु गया हो और गुरु से नवें स्थान में गया हुआ शुक्र, लग्नेश से युक्त हो तो ४०वें वर्ष में पुत्र प्राप्ति हो।

१३. शान्ति कर्म से पुत्र प्राप्ति योग

१. राहु-रवि और मंगल ये तीनों पाँचवें भाग में आ गये हों तो अथर्ववेद से पुत्रेष्टि यज्ञ करने से पुत्र सुख हो जाता है।

२. पंचमेश अपनी नीच राशि में गया हो, नवमेश लग्न में और बुध केतु पंचम भाव में गये हों तो कष्ट से (शान्तियज्ञ; आदि अनेक प्रयत्नों से) पुत्र सुख हो।

१४. शीघ्र सन्तानोदय योग

१. पंचम भाव में १।२ अथवा ४ राशि में, राहु या केतु गया हो तो सन्तान की प्राप्ति में विलम्ब नहीं होता।

१५. पुत्र प्राप्ति योग

१. सप्तमेश के नवांश का स्वामी; लग्नेश, धनेश और नवमेश, इन तीनों ग्रहों से युत अथवा दृष्ट हो, तो पुत्र प्राप्ति हो।

२. पंचमेश, किंवा-पंचम भाव अथवा पंचम का कारक ग्रह (गुरु) शुभ ग्रह से युत हो, या दृष्ट हो तो पुत्र प्राप्ति हो।

३. लग्नेश पंचम भाव में गया हो, पंचमेश और गुरु ये दोनों परिपूर्ण (बली) हों तो पुत्र प्राप्ति हो।

४. पंचमेश गुरु पूर्ण बलवान हो, और उसे लग्नेश देखता हो तो पुत्र प्राप्ति हो।

५. गुरु अथवा पंचम का स्वामी वैशेषिकांश में गया हो, और शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो पुत्र प्राप्ति हो।

६. धन भाव का स्वामी बली होकर पंचम भाव में हो, और राहु से दृष्ट हो तो पुत्र प्राप्ति हो।

७. पंचमेश और लग्नेश ये दोनों परस्पर एक-दूसरे को देखते हों तो पुत्र प्राप्ति हो।

८. पंचमेश और लग्नेश ये दोनों अन्योन्य राशि में (पंचमेश की राशि में लग्नेश और लग्नेश की राशि में पंचमेश) गया हो अथवा पंचमेश व लग्नेश ये दोनों एक राशि में युत हों तो पुत्र प्राप्ति हो।

९. लग्नेश और पंचमेश ये दोनों शुभाऽऽशुभ ग्रह से युत होकर-केन्द्र (१।४।७।५०) स्थान में गये हों. और धनेश बलवान् हो तो पुत्र प्राप्ति हो।

१०. पञ्चमेश के नवांश का स्वामी शुभाशुभ ग्रह से युत और दृष्ट हो तो पुत्र प्राप्त हो।

११. नवमेश व लग्नेश ये दोनों सप्तम भाव में गये हों, और धनेश लग्न में गया हो तो पुत्र प्राप्त हो।

१२. पंचमेश मुद्दंशाशादि शुभांश में गया हो तो पुत्र प्राप्त हो।

१३. पञ्चमेश गोपुरीशादि अंश में गया हो तो पुत्र प्राप्त हो।

१४. पञ्चम भाव का नवांश का स्वामी लग्न में और लग्नेश के नवांश का स्वामी पञ्चम भाव में गया हो तो पुत्र प्राप्त हो।

१५. गुरु के नवांश का स्वामी (१।४।७।१०) में गया हो तो पुत्र प्राप्ति हो।

१६. नवम-लग्न और पञ्चमेश ये तीनों ग्रह पारावतादि अंश में गये हों और शुभाशुभ ग्रह से दृष्ट हों तो पुत्र प्राप्त हो।

१७. लग्न से अथवा चन्द्रमा से पाँचवें भाव में शुभाशुभ ग्रह की राशि शुभ ग्रह से युत, दृष्ट हो तो पुत्र पैदा हो, इससे विपरीत नहीं।

१६. कन्या प्राप्ति योग

१. पञ्चम भाव में सम राशि (२-४-६-८-१०-१२) और सम राशि का नवांश, बुध या शनि से युत दृष्ट हो, और शुक्र अथवा चन्द्रमा अथवा इन दोनों से दृष्ट हो तो कन्या-सन्तति होवे।

२. नेत्र, पाणि अवस्था में गया हुआ, बुध, पञ्चम भाव में गया हो तो पुत्र की हानि और कन्या की प्राप्ति होगी।

३. समावस्था में गया हुआ बुध पाँचवें अथवा ७वें भाव में गया हो तो कन्या होगी।

४. पंचम भाव सम राशि (२-४-६-८-१०-१२) का हो और वह शुक्र चन्द्र के दस वर्ग में होकर, शुक्र-चन्द्र से ही दृष्ट हो तो बहुत कन्यावाला हो।

५. पञ्चमेश धन में अथवा आठवें भाव में गया हुआ हो तो बहुत कन्या हों।

६. लाभ भाव में बुध-शुक्र किंवा चन्द्रमा इन तीनों में से एक भी ग्रह गया हो तो कन्या प्रजा हो (जितने अधिक ग्रह का योग हो उतना ही योग बलवान् होता है)।

७. बुध, चन्द्र, शुक्र इन तीनों में से एक भी पाँचवें भाव में गया हो तो कन्या प्रजा होती है।

१७. अल्पपुत्र, अनपत्य व मृतापत्य योग

१. वृषभ-कन्या, वृश्चिक अथवा सिंह राशि में चन्द्रमा गया हो तो जातक अल्पपुत्र वाला हो।

२. सप्तम भाव में पापग्रह की राशि पापग्रह से युत-दृष्ट हो तो सन्तानरहित हो।

३. अष्टम भाव में गुरु अथवा शुक्र गया हो तो नष्टगर्भा (जिसके गर्भ ही स्थापित न हो सके ऐसी) अथवा सन्तान मर जानेवाली हो।

१८. वैधव्य योग

१. सप्तम भाव में गया हुआ मंगल पाप ग्रहों से युत-दृष्ट हो तो बाल विधवा योग होता है।

२. लग्न या चन्द्रमा से सातवें या आठवें भाव में पापग्रह (तीन-चार पाप ग्रह) गये हों तो विधवा योग होता है।

३. मंगल की राशि १।८ में गया हुआ राहु, पाप ग्रह से युत होकर ८वें भाव में, अथवा १२वें भाव में गया हो तो विधवा हो।

४. सप्तम और लग्न में पाप ग्रह गये हों (दोनों में ही पाप ग्रह गये हों) तो विवाह होने के उपरान्त ७वें वर्ष में विधवा हो।

५. छठे किंवा आठवें भाव में चन्द्रमा गया हो तो आठवें वर्ष विधवा हो।

(परन्तु यदि चन्द्रमा क्षीण, अथवा नीच, शत्रुराशिगत और पापग्रह से युत, दृष्ट हो तो उक्त फल मिलना सम्भव है। केवल चन्द्र के छठे, आठवें जाने से आठवें वर्ष रण्डा होने का योग यद्यपि सूत्रकार ने कहा है तथापि असंगत प्रतीत हुआ है।

६. अष्टमेश, सातवें भाव में, और सप्तमेश आठवें भाव में गया हो, पापग्रह से दृष्ट हो तो युवावस्था में ही विधवा हो यह अनुभूत है।

७. छठे और आठवें स्थान के स्वामी छठे, या बारहवें भाव में गये हों और पाप ग्रह से युत हो तो युवावस्था में ही विधवा हो।

८. पापग्रह, अष्टम भाव में गया हो, और अष्टमेश के नवांश का स्वामी जो ग्रह हो उसकी दशा, अन्तर्दशा में विधवा हो।

९. आठवें भाव में बुध गया हो, तो काकवन्ध्या होती है। अर्थात् एक बार सन्तान होकर, फिर नहीं होवे, ये सभी योग पं० गंगाराम आत्मज श्री लालकृष्ण गाम-सेई (बसवन) (वृज) जिला मथुरा के अनेक बार अनुभूत हैं।

१०. शनि और रवि ये दोनों आठवें भाव में गये हों तो वन्ध्या (बाँझ) होती है।

विवाह में गुरु विचार

पारस्कर गृह्य सूत्र के भाष्य में देवल ऋषि ने विवाह प्रकरण में निर्दिष्ट किया है कि विवाह काल में गुरु का निम्न प्रकार विचार अनिवार्य, आवश्यक है–

नष्टात्मजा, धनवती, विधवा, कुशीला
पुत्रान्विता, हृतधवा, सुभगा विपुत्रा।
स्वामिप्रिया, विगतपुत्र धवाधनाढ्या।
वन्ध्याभवेत्सुरगुरौ क्रमशोऽभि जन्मः।।

विवाह काल में १ गुरु हो तो जन्मते ही सन्तान नष्ट हो; दूसरे धनवती, ३ तीसरे गुरु हो तो बाल वैधव्य, चौथे कुशील, पाँचवें पुत्रवती, छठे स्वामी वियोग, सातवें सौभाग्यवती, आठवें विपुत्र, नवमें दम्पति को परस्पर अटूट प्रेम-दसवें मृतपुत्र, ग्यारहवें स्वामी धनी, यशस्वी, बारहवें वन्ध्याकारक कहे हैं जिनमें १,३,४,६,८,१०,१२ के योग अनेकों पर सिद्ध हुए हैं।

विषकन्या योग

१. शनिवार–आश्लेषा नक्षत्र, और द्वितीया तिथि जब मिलें, उसमें उत्पन्न कन्या विषकन्या होती है।

२. रविवार–शतभिषा नक्षत्र और द्वादशी तिथि ये तीनों जिस दिन मिलें, उस दिन कन्या जन्म ले तो वह विषकन्या होती है।

३. मंगलवार–विशाखा नक्षत्र और सप्तमी तिथि जब मिलें, उस दिन की जन्मी कन्या विषकन्या होती है।

४. शुभ ग्रह से युत या दृष्ट; पापग्रह लग्न में गया हो, और पापग्रह छठे भाव में गये हों, ऐसे योग, इष्ट घटी में जन्मी हुई विषकन्या होती है।

५. पाँचवें रवि, लग्न में शनि, नवें, मंगल गया हो, ऐसे योग में जन्मी हुई कन्या विषकन्या होती है।

६. जिसके विषकन्या योग हो, वह भाग्यहीना, दरिद्रा, मृतप्रजा और दुर्वचनी-शोक सन्तापयुता होती है।

विषकन्या भंग योग

१. सप्तमेश अथवा कोई शुभ ग्रह सप्तम भाव में गया हो तो विषकन्या योग नहीं होता है। अर्थात् जिसके विषकन्या योग हुआ, उसके जन्म लग्न से सप्तम भाव में सप्तमेश, या कोई शुभ ग्रह गया हो तो विष-कन्या योग का भंग (नाश) हो जाता है।

वैधव्य योग

१. जन्म लग्न या प्रश्न लग्न या चन्द्रमा से सातवें, आठवें पापग्रह गये हों तो विधवा हो।

२. मंगल राहु-सातवें, आठवें या बारहवें गये हों या दृष्ट हो तो विधवा हो।

३. लग्न और चन्द्रमा पापग्रहों के बीच शुभ ग्रहों से अदृष्ट हों तो दोनों कुलों को नष्ट करनेवाली हो।

४. लग्न या चन्द्र से सप्तमस्थ राहु दुःखी, कुल दूषित करनेवाली हो।

५. लग्न और सप्तम में पाप ग्रह हों तो विवाह के ७वें वर्ष विधवा हो।

६. छठे आठवें क्षीण चन्द्र हो तो ८वें वर्ष रण्डा हो।

७. सातवें, आठवें भाव के स्वामी पापग्रह हों, या दृष्ट हों तो तरुणावस्था में रण्डा हो।

८. छठे, आठवें के स्वामी छठे गये हों, बारहवें पापग्रह हों तो विधवा हो।

९. आठवें गुरु या शुक्र हों तो गर्भपात हो या सन्तान मर जावे।

१०. आठवें, मंगल हो तो कुलटा, और शनि हो तो पति रोगी हो।

११. आठवें राहु हो तो दोनों कुलों का संहार करे।

१२. लग्न, चौथे, अष्टम और बारहवें पापग्रह युत या दृष्ट हों तो पति को त्याग दूसरों में आसक्त हो।

१३. सूर्य अष्टम में हों और पाप युत, दृष्ट हों तो पापिनी।

१४. सप्तमेश, अष्टम में अष्टमेश सप्तम भाव में, पापों से युत दृष्ट हों तो बाल विधवा हो।

१५. सातवें, आठवें के स्वामी, छठे, बारहवें, पापग्रहों से पीड़ित हों तो निश्चय

विधवा हो। ये योग भी पं० गंगाराम-ग्राम, पोस्ट सेई (बृज) जिला मथुरा के अनुभूत हैं।

पुत्र प्राप्ति-प्रश्न विचार

प्रश्नकालीन तिथि की संख्या को ४ से गुणा करें, १ जोड़ दें, तदनन्तर वार तथा योग जो उस दिन उस समय हों, उनकी संख्या को जोड़ें, २ से भाग दें, जो लब्धि आये, उसको ३ से गुणा करें, ४ से भाग दें, जो शेष रहे उसे फल कहें –

एक संख्या शेष रहे तो विलम्ब से पुत्र हो, परन्तु चिरायु के लिए पार्थिव शिव-पूजन या अथर्व आयुष्यगण पाठ करें।

दो संख्या शेष रहें तो पूर्व जन्मकृत पाप की बाधा से पुत्र नहीं होगा, पापमोचन शापमोचन (बृहच्छान्ति) पुत्रेष्टि यज्ञ, अथर्ववेद या ऋग्वेद करें या हरिवंश, सन्तानगोपाल के सवालक्ष जप करें। महारुद्रयाग करें।

तीन संख्या शेष रहे तो पुत्र तो प्राप्त होगा, सुख नहीं रहेगा। पुत्र सुख चाहें तो किसी दीन कन्या के विवाह में गुप्त दान दें या उसका विवाह कर दें।

और चार या शून्य शेष रहे तो सन्तान शीघ्र होगी।

रोगों के उत्पन्न या सन्तान न होने में, देवदोष ज्ञान

१. तीसरे, नवें, बारहवें, छठे स्थान में प्रश्न लग्न से कोई पापग्रह हो तो क्रमशः विष-जल-शस्त्र से मरे हुए किसी स्वकुलोत्पन्न आत्मा का दोष कहें परन्तु यह योग, पाप ग्रहों के साथ शुभ ग्रहों का योग होने पर नहीं होता है। यदि बारहवें, आठवें स्थान में राहु हो तो प्रेत दोष, गुरु हो तो पितरदोष, 'चन्द्र हो तो जलदेवी का दोष, सूर्य हो तो देवी दोष अथवा लग्न, अष्टम, द्वादश में सूर्य हो तो क्षेत्रपाल, दोष शनि हो तो स्वगोत्र की सती का दोष और बुद्ध बारहवें या अष्टम हो तो पिशाच दोष, व्यय १२ तथा आठवें भौम हो तो, साकिनी (कृत्या) का दोष, शुक्र हो तो जलदेवी दोष परन्तु दोष सूचक ग्रह, स्व, स्वराशि उच्च राशि में हो और बलवान् हों तो उक्त दोष साध्य, और यदि चन्द्र नीच या निर्बल हो और दोष सूचक ग्रह, अपनी नीच, शत्रु क्षेत्रराशि में हों तो असाध्य कहें। बलवान् पाप ग्रह केन्द्र १,४,७, १० में हो तो असाध्य, यदि शुभ ग्रह १,४,७,१० में हो तो पूर्वोक्त देवगण साध्य अर्थात् अनुष्ठानादि से प्रसन्न हो जावे।

असाध्यता में अथर्ववेदोक्त या ऋग्विधानोक्त विधि ही सफल सिद्ध होती है।

प्रकारान्तर से दोष ज्ञान

२ तिथि, वार, नक्षत्र, लग्न, प्रहर की संख्याओं को जोड़, ८ से भाग दें। ३।७ शेष हों तो देव बाधा, २।८ से पितृ बाधा, ६।४ से भूतप्रेत, पिशाच, यक्ष राक्षस कृत्यादि दोष।

१।५ शेष हों तो शस्त्रादि अपमृत्यु प्राप्त कुल की आत्मा का दोष कहें।

जन्माङ्ग से उपासना और ग्रहयोग

(१) जिस जातक के जन्माङ्ग में गुरु, बुध, मंगल साथ हों वह उपासक होता / है साकार ब्रह्म का उपासक होता है।

(२) गुरु के साथ बुध दशम में हो तो सात्त्विक उपासक बनकर (साकार ब्रह्म) उपासना करता है।

(३) दशमेश कोई शुभ ग्रह हो वह चन्द्रमा के साथ हो राहु केतु से युक्त या दृष्ट न हो तो साकार उपासक हो।

(४) बुध उच्चस्थान या कर्म (९) में हों, दशमेश नवम में हों, राहु केतु का योग न हो तो साकार उपासक हों।

(५) दशमेश उच्चस्थान में हो, बुध साथ हो; या लग्नेश दशमस्थ हो; दशमेश नवमस्थ हो, दोनों दशाओं में किसी पापग्रह का योग न हो तो साकार उपासक हो।

(६) दशमेश १०वें हों या वह चार शुभ वर्ग का हो या १।४।७।१०।५।९ में हो तो साकार उपासक हो।

(७) दशमेश बुध हो गुरु बलवान् हो, या चन्द्र तृतीयस्थ हो तो साकार ब्रह्म उपासक हो।

(८) दशमेश और लग्नेश साथ हों और दशम और लग्नेश के एक ही स्वामी हों तो सफल सगुणोपासक हो।

(९) दशमेश शनि के साथ हो, या राहु के साथ हो तो तामसी प्रकृति का उपासक हो।

(१०) दशमेश रवि, शुक्र या चन्द्रमा हो तो दूसरों के सहयोग से उपासना कर्म द्वारा अनेक धार्मिक कृत्य सम्पादित करें।

यह ध्यान में रख लेना अनिवार्य होगा कि केवल नवम या दशम भाव में स्थित ग्रह ही प्रवृत्ति के परिचायक ही होंगे; प्रत्युत ग्रह-मैत्री दृष्टिबल या पंचम में बैठे ग्रह भी, प्रभावित करते हैं।

१. जिस जातक के पंचम और नवम दोनों भाव शुभ लक्षणों से युक्त हों, वह जातक सफल सगुणोपासक होकर विश्व में ख्यात होता है।

२. पंचम स्थान में पुरुष ग्रह हो या दृष्टि बलवती हो तो पुरुष देवता का उपासक हो।

३. यदि पंचम स्थानों में सम राशि हो, चन्द्रमा और शुक्र भी हों तो शक्ति का सिद्ध उपासक बनता है।

४. ५वें सूर्य हो तो जातक शक्ति का सिद्ध उपासक होता है।

५. नवें मंगल हो या दृष्टि हो तो पशुपतिनाथ का उपासक होता है। यदि ९वें गुरु हो, या गुरु की दृष्टि हो तो शंकर-भक्त होता है।

६. शनि ५वें या ९वें हो (विशेष प्रभाव ९वें में) तो तामसी उपासना में सिद्धि प्राप्त करे। यथा –

"नवमस्थाने सौरोयदि स्थित सर्वदर्शन विमुक्तः।
नरनाथ योगजातो नृपोऽपि दीक्षान्वितोभवति।।"

शनि ९वें हो, अन्य ग्रहों का बलाबल होने पर समस्त दर्शनों को त्याग दे; राजयोग हों तो राज को त्याग दे; या दीक्षा के उपरान्त उपासक बने।

७. यदि जन्मकाल में किसी भी स्थान में ४ से लेकर ७ तक ग्रह हों तो उपासक होता है। इन ४ से सात ग्रहों में एक बली तो हो; पर अस्त न हो और बली ग्रह युद्ध में पराजित भी न हो; हारे बली ग्रहों की दृष्टि न हो उनमें कोई दशमेश हो तो उपासक उभय लोकों का मार्ग प्रशस्त करता है। ऐसी स्थिति में बली सूर्य साकार उपासक, चन्द्रमा तामसी उपासक; भौम से संन्यास; बुध का प्रभाव तामसी, गुरु का साकार ब्रह्मोपासक, यही शुक्र का प्रभाव है।

८. लग्नेश पर किसी की दृष्टि न हो, लग्नेश शनि को देखता हो तो सिद्ध प्रख्यात होता है।

९. शनि पर अन्य ग्रह की दृष्टि न हो और शनि लग्नेश को पूर्ण दृष्टि से देखे तो सिद्ध उपासक या सिद्ध सन्त होता है।

१०. शनि की दृष्टि निर्बल लग्न पर हो तो निर्गुण ब्रह्म उपासक हो।

११. जन्म के चन्द्र की राशि के स्वामी पर किसी की दृष्टि न हो; परन्तु उस जन्मराश्याधिपति की दृष्टि शनि पर पड़े तो प्रभावित ग्रह की अन्तर्दशा में उपासना की ओर अग्रसारित होता है।

चन्द्रमा किसी राशि पर होकर मंगल या शनि के द्रेष्काण में हो; चन्द्रमा पर किसी की दृष्टि न होकर शनि की दृष्टि हो तो निर्गुण उपासक हो।

१२. चन्द्र शनि के द्रेष्काण में हो और उस पर दृष्टि हो तो निर्गुण ब्रह्मोपासक हो।

१३. चन्द्र शनि के द्रेष्काण में हो; मंगल या शनि का नवाँश भी हो उस पर शनि की पूर्ण दृष्टि हो तो निर्गुण उपासक हो।

१४. यदि जन्म राशि निर्बल हो; उस पर शनि की दृष्टि हो तो उपासना में ही अन्तिम जीवन लगाये।

१५. ९वें भाव में शनि पर किसी बली ग्रह की दृष्टि न हो, राजा होकर भी अन्त समय ब्रह्म उपासक होता है। इस योग के प्रभाव से जातक राजसी जीवन व्यतीत करने लगता है।

१६. यदि चन्द्रमा पर शनि या लग्नेश की दृष्टि हो तो उपासक बने।

१७. धर्म ९ में चन्द्र हो, अन्य की दृष्टि न हो तो राजयोग होने पर भी संन्यासी, सिद्ध उपासक होता है।

१८. मंगल जिस राशि में हो उसी में चन्द्र हो; चन्द्रमा शनि के द्रेष्काण में हो और चन्द्रमा पर शनि की दृष्टि हो तो उपासक हो।

१९. लग्नेश गुरु, मंगल या शनि हो, उस पर शनि की दृष्टि हो, धर्म में गुरु हो तो निर्गुणोपासक हो।

२०. कर्म १०वें तीन बलवान् ग्रह हों; सभी उच्च के हों; स्वगृही हों या शुभ वर्गस्थ हों और कर्मेश बली हों तो सिद्ध उपासक हो तथा संसार में ख्यात हो।

२१. कर्मेश निर्बल हो, सप्तम में हो तो तामसी उपासक हो।

२२. द्वितीयेश और सप्तमेश उपासना की ओर अग्रसर करनेवाले तीन ग्रहों से घिरे हों तो तामसी उपासक बन कुख्यात भी हो जाता है।

२३. उपासना की ओर अग्रसर करनेवाले ग्रहों के साथ रवि, शनि, मंगल हो तो तामसी उपासक हो।

२४. लग्नेश बली न हो उस पर शुक्र एवं चन्द्रमा की दृष्टि हो और कोई उच्च

अथवा उच्च नवांशस्थ ग्रह चन्द्रमा को देखता हो तो धनहीन उपासक हो।

२५. हीनबल चन्द्र राशि का स्वामी केन्द्रस्थ बलवान शनि को देखता हो तो तामसी उपासक हो या धनहीन उपासक हो।

२६. यदि कर्म (१०) में मीन का बुध हो –या; उसमें मंगल बैठा हो तो सिद्ध उपासक हो और जीवन्मुक्त हो।

२७. १०वें कर्मेश धर्म (९) में हो; और बली नवमेश, गुरु–शुक्र से दृष्ट हो या संयुक्त हो तो उपासक सिद्ध और संसार में ख्यात हो।

२८. कर्मेश (१०) यह शुभ ग्रह हो या कर्मेश दो शुभ ग्रहों के बीच में हो या कर्मेश शुभ ग्रह के नवांश में हो तो सिद्ध उपासक हो।

२९. केन्द्रस्थ (१।४।७।१०) चन्द्र पर गुरु या शुक्र की दृष्टि हो तो उपासना से अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है।

३०. कर्मेश शुभ ग्रह हो और उच्च, स्वगृही या मित्रगृही हो तो सिद्ध उपासक हो।

३१. दशमेश पाँच शुभ ग्रहों के वर्ग का हो; या सात उत्तमवर्गों का हो तो उपासना पद्धति से महान सिद्धि प्राप्त करता है।

३२. लग्नेश १०वें; ९वें हो, दशमेश पर किसी भी पापग्रह की दृष्टि न हो तो महान उपासक बन उभय लोकत्रायक सिद्धि प्राप्त करता है।

३३. जन्माङ्ग में सभी ग्रह चन्द्र और गुरु के भीतर हों तो निर्गुण उपासक सिद्ध होता है।

३४. जन्माङ्गस्थ समस्त ग्रह शनि और मंगल के अंतर्गत हों तो निर्गुणोपासना में सिद्धि प्राप्त करता है।

३५. जातक का जन्म मकर राशि में हो और समस्त ग्रह सूर्य और मंगल के अंतर्गत हों तो निर्गुणोपासक सिद्ध हो।

३३;३४;३५वें निर्गुणोपासना के योगों में दो ग्रहों के बीच में अन्य सभी ग्रहों के रहने से (अभिप्राय है) कि यदि इस योग में मकर राशि में जन्म हो और सूर्य की राशि अंशों से आगे अन्य सभी ग्रह स्थित हों तथा अन्त में मंगल हो।

३६. धर्मस्थ शनि और गुरु हों या कर्मस्थ हों और एक ही नवांश में हों तो उपासना से सिद्धि प्राप्त करता है।

३७. कर्क जन्मलब्ध हो; धन के नवांश का लग्न हो; गुरु लग्नस्थ हो १।४।७।१० वें तीन या चार ग्रह हों तो उपासना से जीवन्मुक्त हो जाता है।

३८. यदि जन्म धन राशि में हो, गुरु लग्न में हो, लग्नमेष के नवांश का हो, मिथुन में शुक्र हो, चन्द्र कन्या में हो तो उपासना से परमपद प्राप्त करते हैं।

जन्माङ्ग से उपासना और सहयोग में विशेष ज्ञातव्य

३९. यदि मेष के अन्तिम नवांश का जन्म हो; लग्न में गुरु या शुक्र हो–द्वितीय स्थान में चन्द्र हो, सिंह के नवांश का मंगल हो या धन के पंचम नवांश का हो तो सिद्ध उपासक होता है।

४०. लग्न कर्क हो, लग्न में गुरु हो, सिंह का शनि, वृष का चन्द्र, मिथुन में शुक्र, रवि, बुध स्थिर राशि में हो तो उपासना से सिद्धि प्राप्त करता है।

४१. कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और धन में ही सातो ग्रह, बैठे हों, इनमें से बिना ग्रह की राशि कोई न हो तो लब्धप्रतिष्ठ उपासक होता है।

अथर्वकाण्ड ४ सूक्त १ के सन्दर्भ में

कार्य सिद्धि असिद्धि प्रश्न

१. प्रश्नकर्त्ता का मुँह जिस ओर हो, उस दिशा की अंक संख्या (१ पूर्व २ पश्चिम ३ उत्तर ४ दक्षिण); प्रहर संख्या (सूर्योदय से ३ घण्टे १ प्रहर समझें); वार संख्या; और नक्षत्र संख्या (अश्विनी से प्रारम्भ कर) सबको जोड़ें, योग में ८ का भाग दें – शेष १।५ से शीघ्र सिद्धि; ६।४ से ३ दिन में सिद्धि; ३:७ से विलम्ब: २।० से असिद्धि।

२. प्रश्नकर्त्ता से १ से १०८ पर्यन्त संख्या में से कोई अंक लिखाये या जो वह समझे, बुलवायें उसमें १२ का भाग दें १।७।९ से विलम्ब, ८।४।५।१० शेष से कार्यनाश २।३।६।०।११ से कार्य सिद्धि समझें।

३. प्रश्नकर्ता की तिथि संख्या जो प्रश्नकाल में हो – वार संख्या – नक्षत्र संख्या के योग को ३ से गुणा करें उसमें ६ जोड़ें उस योग में ९ का भाग दें – शेष १ से पक्ष में, २ से मास में, ३ से ऋतु, ४ से अयन (उत्तरायण–दक्षिणायन ६।६ मास) ५ शेष में दिन, ६ में रात्रि, ७ में प्रहर, ८ में घटी, ९ शेष में १ मिनट की अवधि कार्य होने की समझें।

लाभालाभ प्रश्न

१. प्रश्न कुण्डली से १।८ के स्वामी ८वें स्थान में हों और दोनों एक ही द्रेष्काण में हों तो अवश्य लाभ हो।

२. प्रश्न लग्न में सौम्यग्रहों का वर्ग हो तो ग्रह भावानुसार शुभ फल हो।

३. प्रश्न लग्न में चन्द्रमां और लाभ ११वें गुरु या शुक्र हो तथा लाभ भाव के ऊपर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो प्रश्नकर्त्ता को विशेष रूप से लाभ हो।

४. लग्नेश और ११ लाभेश एक साथ हों तो भी लाभ हो।

५. लग्नेश लाभेश का इत्थसाल + योग होने पर भी लाभ हो।

६. लग्नेश चन्द्रमा से युत या दृष्ट होकर ११वें स्थित हों तो दूसरों की सहायता से लाभ हो।

७. लग्न से १० में शनि और चन्द्रमा का इत्थसाल होने पर लाभ हो।

८. कर्म १० का स्वामी लग्नेश के साथ हो, या उनका इत्थसाल योग हो एवं कर्मेश और लाभेश योग हो तो लाभ हो।

९. प्रश्न से ११ और ८वें के स्वामी का योग और इत्थसाल हो तो लाभ हो।

१०. जिस-जिस स्थान पर चन्द्रमा की दृष्टि हो उस-उस स्थान से पुण्यवृद्धि तथा कर्मसिद्धि हो।

११. ८वें पर चन्द्र की दृष्टि हो तो कार्य, धर्म, कर्म का ह्रास हो।

१२. लग्नेश ६।८ में हो तो कार्य हानि, नाना कष्ट हों।

१३. लग्नेश १२ भाव में हो तो व्यय अधिक हो, लाभ कुछ नहीं हो।

१४. प्रश्न लग्न में बुध को चन्द्र देखे, अथवा पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो शीघ्र लाभ हो।

१५. प्रश्न लग्न की राशि की कला बनाकर उसको छाया के अंगुलों से गुणा कर ७ से भाग दे शेष को एक स्थान में रख दे। यदि शुभ का उदयांक हो तो कार्य सिद्धि, अन्य ग्रह के उदयांक से असिद्धि समझें।

प्रवासी प्रश्न ज्ञान – अथर्व कां० ७ सू० ९।। प्रपथेपथाम् के सन्दर्भ से

१. प्रश्न लग्न में गुरु, शुक्र २।३ स्थानों में हों तो प्रवासी विलम्ब से आवे। यदि ये १।४ में हों तो शीघ्र वापस आये। (२) ६।७ वें कोई ग्रह हो ५।९ वें बुध या शुक्र हो तो शीघ्र आये।

२. लग्न में चरराशि हो या चन्द्रमा चर पर हो या द्विस्वभाव में, चर का नवांश हो तो वापस आये। यदि स्थिर हो तो न आये।

३. लग्नेश २।३।८।९ में हो तो लौटकर मार्ग में ठहरा समझे। २।३।५।६।७ में वक्री ग्रह हो १।४।७।१० वें गुरु या बुध हो ५।९ शुक्र हो तो शीघ्र वापस आवे।

४. प्रश्नाक्षरों की संख्या या प्रश्नकर्त्ता से किसी फल का नाम लिवाये, उसकी संख्या को ६ से गुणा कर १ जोड़े = योग में ७ का भाग दे १ शेष से प्रवासी मार्ग में, २ से घर के समीप, ३ से घर पर, ४ से लाभ युक्त, ५ से रोगी, ६ से पीड़ित, ० से आने पर तत्पर समझे।

वैवाहिक

१. प्रश्न लग्न से १।७ के स्वामी अथवा चन्द्रमा से इत्थसाल योग हो तो शीघ्र विवाह।

२. लग्नेश या चन्द्रमा ७वें भाव में हो तो शीघ्र विवाह होता है।

३. सप्तमेश का जिस ग्रह से इत्थसाल योग हो वह ग्रह निर्बल हो, पापयुक्त या पापदृष्ट हो तो विवाह न हो या भारी परेशानी से होता है।

४. ७वें भाव में पाप या अष्टमेश हो तो त्रिवाहान्त दम्पति में से १ की मृत्यु हो। विवाह में अशुभ घटनाएँ घटित होती हैं।

५. ७वें या उसके स्वामी पर शुभ ग्रहों की दृष्टि या युति हो तो ३ गास में विवाह हो।

६. लग्नेश, सप्तमेश तथा चन्द्रमा इन तीनों के स्वभाव, गुण, स्थान, दृष्टि के माध्यम से विवाह फल समझें।

अथर्व कां० ४ सू० १ के संदर्भ में

शुभाशुभ ज्ञान

प्रश्न का समय का इष्ट बनायें, प्रश्न कुण्डली, ग्रहस्पष्ट, भावस्पष्ट, नवमांश तथा चलित चक्र बनाकर विचार करें –

१. प्रश्नकाल में चर राशि, बलवान् लग्नेश, कार्येश शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट हो और १।४।५।७।९।१० स्थानों में से कहीं हो तो प्रश्नकर्त्ता का कार्य शीघ्र हो।

२. यदि लग्न में द्विस्वभाव राशि हो १।४।५।७।९।१० में पापग्रह हों लग्नेश, कार्येश हीनबल हो, नीच, अस्तंगत या शत्रु क्षेत्री हो तो कार्य नाश हो।

३. यदि स्थिर लग्न हो, लग्नेश, कर्मेश बलवान् हों तो विलम्ब से कार्य हो। धनप्राप्ति हेतु, लग्नेश, धन, धनेश और चन्द्रमा से। सुख, शान्ति, गृह, भूमि आदि की प्राप्ति के प्रश्न में लग्न, चतुर्थ, दशम और इनके स्वामी और चन्द्रमा से। परीक्षा में यश प्राप्ति के लिए १।५।९।१० और इनके स्वामी और चन्द्रमा से। विवाहार्थ लग्न, चन्द्र २।७ और इनके स्वामी। व्यवसाय, केस, नौकरी में – चन्द्र,

लग्न, दशम, एकादश और इनके स्वामी। बड़े व्यापार में – चन्द्रमा – १।२।७।१०।११ और इनके स्वामी। सन्तति में चन्द्रमा। १–२–५ और इनके स्वामी तथा गुरु से विचार करें।

रोग, आरोग्य मृत्यु-ज्ञान

१. नामाक्षर संख्या को २ से गुणा करें और मात्रा को ४ से गुणा कर योग करें उसमें ७ का भाग दें। शून्य से मृत्यु शेष से जीवन समझें।

२. चन्द्रमा से या प्रश्न लग्न से – लग्न में पापग्रह की राशि हो, और पाप से युक्त या दृष्ट हो या चन्द्रमा ८ में हों अथवा पापग्रह हों तो रोगी की मृत्यु हो।

३. प्रश्न कुण्डली में पापग्रह ८ या १२वें हों या चन्द्रमा १।६।७।८ में हो तो शीघ्र मृत्यु।

४. लग्न में चन्द्र, ७वें सूर्य, मेष का भौम वृश्चिक के नवांश में चन्द्र से युक्त या दृष्ट हो तो शीघ्र मरण।

५. प्रश्न लग्न से ७वें पाप ग्रह हों तो महाकष्ट हो, शुभ ग्रह हों तो शीघ्र स्वस्थ हो। यदि ७वें पाप और शुभ दोनों ही हों तो मिश्रित फल परन्तु मृत्यु नहीं होती।

६. लग्नेश निर्बल हो, अष्टमेष बली हो, चन्द्र ६।८ हो या शनि ८वें भौम से युत या दृष्ट हो तो मरण।

७. ८वें रवि हो तो रक्त पित्त, बुध हो तो सन्निपात, राहु से युक्त सूर्य ८वें हों तो कुष्ट राहु से युक्त या दृष्ट शनि ८वें हो तो वायु विकार और ८वें शुक्र हो तो सन्निपात हो या पक्षाघात, लकवा हो।

८. लग्नेश बली, अष्टमेश निर्बल हो तो रोगी शीघ्र स्वस्थ हो।

९. स्वाती, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, आर्द्रा और आश्लेषा में प्रारम्भ रोग मृत्युप्रद होता है। रेवती, अनुराधा का प्रारम्भ अधिक दिन तक बीमार भरणी, शतभिषा और चित्रा का ११ दिन तक। विशाखा, हस्त और धनिष्ठा का १५ दिन, मूल, कृत्तिका और अश्विनी का ९ दिन, मघा का ७ दिन, मृगशिरा और उत्तराषाढ़ा का १ मास। भरणी, आश्लेषा, मूल, कृत्तिका, विशाखा, आर्द्रा और मघा में सर्प से डसे की मृत्यु समझें।

शीघ्र मृत्यु – आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, शतभिषा, भरणी, तीनों पूर्वा; विशाखा धनिष्ठा और कृत्तिका, रवि, मंगल, शनि, ४।९।१४।११ और ६ तिथि में उत्पन्न रोगी का मरण होता है।

स्त्री पुरुष में से किसी का निधन पहले होगा। १ नामाक्षर संख्या को ३ से गुणा करें मात्रा संख्या को ४ से गुणा करें – दोनों को जोड़ें ३ से भाग दें। शेष १ से पुरुष, २ शेष रहे तो स्त्री की मृत्यु कहें। २. पुरुष स्त्री की जन्मराशि संख्या जोड़ें ३ से भाग दें ० या १ शेष से पुरुष २ से स्त्री की प्रथम मृत्यु होती है।



अध्याय ५

रोगों का ज्ञान एवं वैदिक उपचार

वैदिक ऋषियों का मत है कि अपने क्षेत्र (शरीर) में नीरोग बनकर रहना चाहिए। यह (क्षेत्र) शरीर किसी प्रकार की दैहिक अथवा आध्यात्मिक व्याधि से क्लिष्ट न हो। दैहिक, दैविक, भौतिक त्रयताप ही (अमीव) व्याधियां हैं, जिनसे क्षेत्रज्ञ (प्राणी) सन्तप्त रहते हैं।

स्वे क्षेत्रे अनमीवा विराज। (अथर्ववेद ११।१।२२)

शरीर को नीरोग रखने के लिए वैदिक चिकित्सा-पद्धति तीन प्रकार से कही गयी है –

१. आसुरी चिकित्सा–शल्य क्रिया (आपरेशन)

२. मानुषी चिकित्सा–(ओषधि प्रयोग द्वारा)

३. दैवी चिकित्सा–(प्राणायाम, हवन, जप, अनुष्ठान द्वारा)

वेदों में अश्विनी कुमारों को दैवभिषक् (देवताओं का वैद्य) कहा गया है।

प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद्
देवानामग्रे भिषजा शचीभिः। (अथर्ववेद ७।५३।१)

रोग दो कारण से उत्पन्न होते हैं–

१. कर्मजव्याधि (उत्पत्ति दोष तथा पापजन्य कर्म से)

२. मिथ्या आहार-विहार से

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषाह्यामाश्रयाः स्थिताः।

जननदोष निमित्ता कर्मजव्याधियों के निवारण के लिए अथर्ववेदीय तन्त्र विधान है और मिथ्या आहार–विहारजन्य व्याधियों का निवारण अथर्ववेद की चरण व्यूह शाखा (आयुर्वेद) से निदान और उपचार द्वारा किया जाता है।

कर्मजव्याधियों का कारण –

अथर्ववेद पूर्वजन्म के अशुभ कर्मों को व्याधियों का कारण मानकर उन्हें कर्मज

व्याधि कहता है। इन व्याधियों के कुछ कारणों को लिखा जा रहा है जिनके कारण मनुष्य इस जन्म अथवा अगले जन्मों में व्याधिग्रस्त होता है।

(१) हरण, अपहरण, वाक्छल, हत्या, लूट आदि क्रूरकर्म करनेवाले व्यक्तियों का अगले जन्म में वंश नष्ट हो जाता है। महारुद्र यज्ञ से ऐसी कर्मज व्याधि शान्त होती है।

यजुर्वेद में वर्णित रुद्राष्टाध्यायी के पाठ द्वारा रुद्र का यजन, जप, हवन अथवा अभिषेक करना चाहिए। इस रुद्राष्टाध्यायी का एक वाचन आवर्तन कहा जाता है। इसका ग्यारह बार का वाचन एकादशिनी कहा जाता है। एकादशिनी के ग्यारह बार के वाचन का नाम लघुरुद्र है। लघुरुद्र के ग्यारह बार के वाचन को महारुद्र एवं ग्यारह महारुद्र के वाचन को अतिरुद्र कहा जाता है। यह रुद्र दो प्रकार का होता है (१) हवनात्मक (२) अभिषेकात्मक। प्रथम में मन्त्रों के साथ रुद्र को आहुतियाँ दी जाती हैं तथा दूसरे में मन्त्र पाठ के साथ रुद्र पर पवित्र जल अथवा दुग्ध चढ़ाया जाता है। रुद्राभिषेक का उल्लेख बौधायनगृह्य शेष सूत्र २।१८।११-१६) में हुआ है।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्व्वारूकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।। (यजुर्वेद ३।६०)

इस मन्त्र को मृत्युञ्जय कहा जाता है। व्याहृतियों सहित इस मन्त्र के पुरश्चरण से भी कर्मज व्याधियाँ शान्त होती हैं।

(२) पूर्व जन्म में भ्रूण हत्या, अवैध गर्भपात, विष देकर बालकों की हत्या करनेवाली स्त्रियाँ अगले जन्म में मृतवत्सा होती हैं। अथर्ववेद के मन्त्रों से जलाभिसेचन और हवन से यह व्याधि दूर होती है।

(१) जलावसेचन विधि

कर्त्ता स्नानादि से पवित्र होकर कुश के आसन पर बैठकर रोगी को कम्बल के आसन पर सामने बैठाये। रोग यदि अशक्त हो तो उसे चारपायी पर लेटे रहने दे। सर्वप्रथम ॐ नमो सर्वात्मने ॐ गुरवे नमः ॐ ब्रह्मदेवायनमः ॐ अथर्ववेदाय नमः, ॐ भूभुर्वः स्वर्जनदोऽम् का उच्चारण करता हुआ ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंय्योरभिस्त्रवन्तु नः मन्त्र पढ़कर आचमन करे। पुनः एक ताम्रपात्र में वट, शमी, पलाश की लकड़ियाँ और कुश, अपामार्ग (चिचिड़ी) छोड़कर गंगाजल या पवित्र जल भरकर रोगी को निम्नलिखित मन्त्र से कुश तथा अपामार्ग से स्पर्श कराते हुए अभिमन्त्रित करे –

ॐ शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः।
शं ते सन्निष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः।।

इसके बाद रोगी को अपने इष्ट का मन्त्र जप करने को कहे। यदि वह दीक्षित नहीं है तो नमः शिवाय का जप करे अथवा नास्तिक है तो जप की भी आवश्यकता नहीं है। पुनः आचार्य कुशा और अपामार्ग से अभिमन्त्रित शान्ति जल से पीड़ित व्यक्ति पर जलावसेचन करे। सर्वप्रथम विनियोग करे।

१. विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशतिकाण्डस्य द्वितीय अपांसूक्तस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपः देवता अनुष्टुप छन्दः अमुकस्य (रोगी का नाम षष्ठी विभक्ति के एकवचन में जैसे देवदत्त के लिए देवदत्तस्य) पाप शाप ताप रोग दोष दौर्भाग्यजनितारिष्ट निवारणे, अभ्युदयार्थे अभीप्सितार्थे जलावसेचने विनियोगः।

विनियोग पढ़कर दाहिने हाथ में लिया हुआ जल पृथ्वी पर छोड़ दे। पुनः जलावसेचन मन्त्र पाठ करते हुए करे। जलावसेचन मन्त्र इस प्रकार है –

ॐ शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्त्यूत्स्याः।
शं त सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः।।

शं त आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूप्याः।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेश्भिराभृताः।।

अनभ्रयः खनमाना विप्रागम्भीरे अपसः।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि।।

अपामहादिव्य।ऽनामपां स्त्रोतस्यानाऽम्।
अपामह प्रणेजनेऽश्वाभवथ वाजिनः।।

ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मं करणीरप्नः।
यथैव तृप्यते मयस्तात आ दत्त भेषजीः।।

(अथर्ववेद १९।२।१–५)

जलावसेचन का एक दूसरा भी मन्त्र है। यदि उसका प्रयोग करना हो तो विनियोग इस प्रकार करें।

विनियोग – ॐ अस्य अथर्ववेदस्य प्रथमकाण्डस्य पंचमसूक्तस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः आपः देवता। गायत्री वर्द्धमाना छन्दसी। अमुकस्य

पापशापतापरोगदोष भयबाधानिवारणे, दौर्भाग्यजनितारिष्टनिवारणे अभ्युदयार्थे सतत मङ्गलार्थे च जलावसेचने विनियोगः।

जलावसेचन मन्त्र

ॐ आपोह द्विष्ठा मयोभुवस्तानऊर्जेदधातन। महेरणाय चक्षसे योवः शिवतमो रसस्तस्य भाजयते हनः। उशतीरिव मातरः।। तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः।। ईशाना वार्याणां क्षयन्ती चर्षणीनाम्। आपो याचामि भेषजम्।।

(अथर्ववेद १।५।१-४)

इसी काण्ड के छठे सूक्त का भी प्रयोग जलावसेचन में किया जाता है। विनियोग में पंचम के स्थान पर षष्ठ सूक्तस्य कहना चाहिए।

मन्त्र– ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपोभवन्तु पीतये।
शंय्योरभिस्त्रवन्तु नः।।

अप्सु मे सोमो अव्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवम्।।

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वेमम।
ज्योक् च सूर्यं दृशे।।

शं न आपो धन्वन्याः शमु सन्त्वनूप्याः शं नः खनित्रिमा आपः।
शमु या कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः।।

इन मन्त्रों में किसी एक का प्रयोग कर्मज व्याधिनाशक है।

(३) पूर्व जन्म में अवैध गर्भपात करानेवाली स्त्रियों को अगले जन्म में गर्भस्राव का रोग होता है। इस स्थिति में अथर्ववेद काण्ड ११, सूक्त ६ के अभिसेचन अथवा हवन करने से दोष दूर होता है।

(४) पूर्व जन्मों में पूज्य स्त्रियों से घृणा, ईर्ष्या रखनेवाली स्त्री अगले जन्म में प्रदर रोग से ग्रस्त होती है। इससे मुक्ति प्राप्त करने के लिए अथर्ववेद के ८ काण्ड के छठे सूक्त से अभिसेचन अथवा हवन द्वारा यह रोग दूर होता है।

(५) पापाचरण, पिशुनता, कुटिलता का व्यवहार करनेवाले लोगों को अगले जन्म में शक्ति क्षीण करनेवाले, बुद्धि को मन्द बनानेवाले, सन्तप्त करने वाले रोग हुआ करते हैं। अतः इस दोष के शमन के लिए अथर्ववेद काण्ड ९, सूक्त ८ से अभिसेचन तथा हवन द्वारा ये रोग दूर होते हैं।

(६) बुद्धि, बल, पुरुषार्थ के रहते हुए माता, पिता, आचार्य, गुरु, सदाचारपरायण लोकोपकारी व्यक्ति की निन्दा सुनकर अथवा निन्दनीय व्यक्ति की प्रशंसा सुनकर जो यथार्थ कहने में संकोच करते हैं अगले जन्म में उनके कान में मवाद पैदा करनेवाला रोग (कर्ण रोग) होता है। अतः इससे मुक्ति के लिए अथर्ववेद काण्ड १७ से सूर्योपस्थान तथा काण्ड ९, सूक्त ८ से जलावसेचन करना चाहिए।

(७) पूर्व जन्म में नमक की चोरी अथवा उपकार के बदले अपकार करने से नासिका रोग होता है। अथर्ववेद काण्ड १३, सूक्त १, २ तथा काण्ड १७ सूक्त १ से सूर्योपस्थान करने से यह रोग दूर होता है।

(८) पूर्व जन्म में झूठी गवाही देने से, झूठी शपथ लेने से, अकारण किसी को दुर्वचन बोलने से और मानसिक पीड़ा पहुँचाने से अगले जन्म में मुखपाक रोग होता है। अथर्ववेद काण्ड ९, सूक्त ८ से अभिसेचन, मार्जन तथा काण्ड १७, सूक्त १ से सूर्योपस्थान करने से यह रोग नष्ट होता है।

(९) धूर्तता, लम्पटता का व्यवहार करने से, गुरु, पिता, माता से द्रोह करने से अपस्मार (मिर्गी) रोग होता है। इससे मुक्ति के लिए सदस्पति मन्त्र का विनियोगपूर्वक जप तथा हवन करने से यह रोग दूर होता है।

(२) सदस्पति मन्त्र

विनियोग– ॐ अस्य सदस्पति मन्त्रस्य मेधातिथिः ऋषिः। सदस्पतिर्देवता। गायत्री छन्दः। अपस्मार (मिर्गी) रोग निवारणे जपे (हवने) विनियोगः।

मन्त्र

ॐ सदस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यं स निं मेधानथासिषम्।

(१०) धर्म का ह्रास करनेवाले कर्म करने से, गुरु पत्नी से सहवास करने से, सगोत्री कन्या से विवाह करने से अथवा सगोत्री स्त्री से सम्बन्ध स्थापित करने से अगले जन्म में भगन्दर रोग उत्पन्न होता है।

अथर्ववेद के बृहच्छान्तिगण, रौद्रगण के सूक्तों से मार्जन करने तथा अपांगण के सूक्तों से अभिसेचन करने काण्ड १३ तथा काण्ड १७ से सूर्योपस्थान नौ दिन पर्यन्त करने से यह रोग दूर होता है।

(११) जो व्यक्ति पूर्व जन्म में अपने गोत्र की स्त्री के साथ बलात्कार करता है अथवा जो स्त्री अपने सगे भाई अथवा अपने गोत्र के भाई, चाचा आदि के साथ सहवास करती है उसे हृदयव्रण का रोग अगले जन्म में होता है। अथर्ववेद ने इसका उपचार प्रजापत्य व्रत बताया है।

आगे अन्य रोगों को बताया जा रहा है जो कर्मज व्याधि के ही परिणाम हैं। इन सब रोगों का उपचार अथर्ववेद की जलावसेचन क्रिया से पूर्वजन्म, इस जन्म के पाप कर्म, शाप और उत्पन्न व्याधियाँ बिना दवा के दूर हो जाती हैं।

पूज्य स्त्री के साथ सहवास मस्तक में पीड़ा देता है। विद्वान् की पत्नी से बलात्कार करने पर नासिका व्रण होता है। पूर्व जन्म में किसी को जल में डुबाकर, आग में जलाकर अथवा बांधकर किसी प्राणी की हत्या करने से अगले जन्म में आन्त्रक्षय अथवा पक्षाघात (लकवा) रोग होता है। पूर्व जन्म में विधवा होकर धर्म-विरुद्ध किसी पुरुष से सम्भोग करने से भगव्रण होता है। माता या माता सदृश स्त्री, बहन, भाई की पत्नी से पूर्व जन्म में सहवास करने के कारण मधुमेह रोग होता है। पर्वत की चोटी पर, नदी में मलमूत्र त्याग से शोथ रोग होता है। पत्नी की बहन के साथ सम्भोग करने पर वृषण व्याधि (अण्डकोश वृद्धि) होती है। गुरुद्रोही, मानसिक आघात करनेवाले, गोघाती को गण्डमाला, निरीह प्राणियों की हत्या करनेवालों को कुष्ठ रोग होता है। मित्र से द्रोह अथवा कृतघ्नता से सिर पीड़ा का रोग, पराई स्त्रियों का नग्न रूप देखने की प्रवृत्ति से नेत्र रोग, समाज या राष्ट्र से द्रोह करनेवाले कफरोगी, देव प्रतिमा चुरानेवाले वात व्याधि से पीड़ित, छल-बल द्वारा जो अभुक्त कन्या, ब्रह्मचारिणी, साध्वी स्त्री से सहवास करते हैं वे धनुर्वात, शरीर दाह आदि रोगों से पीड़ित होते हैं। निःस्पृह जनसेवी, तपस्वी तथा निरपराध को बुलाकर उनका अपमान करनेवाले उदर रोग से पीड़ित होते हैं, जनद्रोही, समाजद्रोही अथवा गुरुजनों से द्रोह करनेवाले वातगुल्म रोग के शिकार बनते हैं। ईश्वरीय शक्तियों तथा धर्म के सिद्धान्तों की अवहेलना करनेवाले व्यक्ति जलोदर रोग से पीड़ित होते हैं। जो लोग विवश कन्या अथवा अनाथ स्त्रियों का अनुचित लाभ उठाते हैं वे यकृत, प्लीहा रोग के भुक्तभोगी होते हैं। विश्वासघात करनेवाले लोग पाण्डु (पीलिया) रोग से बारम्बार ग्रस्त होते हैं। पूर्वजन्म या वर्तमान जन्म में इन्द्रिय लोलुप्न, कामान्धता तथा अगम्या गमन करनेवाले क्षय रोग से पीड़ित होते हैं।

ये समस्त रोग कर्मज व्याधि के अन्तर्गत आते हैं। इन व्याधियों का निदान आयुर्वेद, एलोपैथ, होम्योपैथ तथा प्राकृतिक चिकित्सा अथवा अन्य ओषधियों से दूर नहीं किया जा सकता है। इनका निदान मन्त्रों द्वारा ही सम्भव है। जलावसेचन की क्रिया, जप, उपस्थान, हवन, रक्षाकरण्ड, मणिबन्धन, जल चिकित्सा आदि क्रियाओं से बिना ओषधि सेवन के ही ये व्याधियाँ दूर की जा सकती हैं। जलावसेचन विधि पूर्व में कहीं जा चुकी हैं आगे अन्य विधियाँ लिखी जा रही हैं।

(३) हवन मन्त्र

विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठकाण्डस्य द्वाविंशत् सूक्तस्य शन्तात्तिः ऋषिः। आदित्यरश्मिः मरुतः देवता। त्रिष्टुप् चतुष्पदाभुरिग् जगती छन्दसी। अमुकस्य (रोगी का नाम षष्ठी विभक्ति एकवचन) आदि व्याधि असाध्य रोग निवारणे हवने विनियोगः।

मन्त्र

ॐ कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।
न आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिधृतेन पृथिवीं व्यूऽदुः।।

पयस्वतीः कृणुथाय ओषधीः शिवा यदेजथाः मरुतो रुक्मवक्षसः
ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु।।

उदप्रुतौ मरुतस्तां इयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति।
एजाति ग्लहा कन्येऽव तुन्नैरुं तुन्दाना पत्येव जाया।।

(४) रक्षाकरण्ड विधि

रक्षाकरण्ड को ग्राम्य भाषा में गण्डा कहते हैं। यह विधि अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रयोग की जाती रही है। इसकी विधि इस प्रकार है। सर्वप्रथम यदि रेशम का धागा हो तो उत्तम अन्यथा किसी भी धागे को लेकर शुद्ध जल से कुशा एवं अपामार्ग द्वारा आपो हिष्ठामयो भुवः..... यह मन्त्र पूर्व में जलावसेचन विधि में लिखा जा चुका है। से मार्जन करे, पुनः रक्षोहण मन्त्रों से धागे को कुश अपामार्ग और जल से, अभिमन्त्रित कर रक्षोहण सूक्त में जितने मन्त्र हैं प्रत्येक मन्त्रों को पढ़ते हुए उतनी गाँठें धागे में लगा दी जायँ। प्रत्येक गाँठ बाँधते समय प्रत्येक मन्त्र के अन्त में (अमुकं) रोगी का नाम द्वितीया विभक्ति एकवचन का प्रयोग करके रक्ष रक्ष स्वाहा कहा जाय, पुनः उन्हीं रक्षोहण मन्त्रों से अग्नि में हवन करे। प्रत्येक आहुति के बाद अभिमन्त्रित रक्षाकरण्ड को हवन के धुएँ से धूपित करके रोगी की कमर या भुजा में बाँध दिया जाय। यह विधि प्रत्येक रोगी के लिए प्रयोग्य है। यदि रोगी प्रेतादि बाधा से भी ग्रस्त हो तो साधक निर्णय करने के पश्चात् रक्षा करण्ड के साथ पीली सरसों के दाने उपर्युक्त विधि से अभिमन्त्रित कर पीड़ित व्यक्ति पर फेंके इसे सर्षप प्रक्षेपण कहा जाता है। सर्षप प्रक्षेपण के पश्चात् रक्षाकरण्ड दाहिनी भुजा में बाँध देना चाहिए। इससे प्रेतबाधा दूर हो जाती है।

(५) रक्षोघ्न मन्त्र

सर्वप्रथम रक्षोघ्न मन्त्रों का प्रयोग करने से पूर्व शाप विमोचन के लिए विनियोग एवं मन्त्र का पाठ करके पुनः रक्षोघ्न का प्रयोग करना चाहिए।

शाप विमोचन–

विनियोग – ॐ अस्य अथर्ववेदस्य प्रथमकाण्डस्य अष्टाविंशति सूक्तस्य चातनः ऋषिः। अग्निः यातुधानीः देवते। अनुष्टुप् विराट् पथ्यावृहती, पथ्या पंक्तिः छन्दासि शापविमोचने रक्षोहणे सर्षपप्रक्षेपणे रक्षाकरण्डबन्धने च विनियोगः।

शाप विमोचन मन्त्र

ॐ उपप्रागाद्देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः।
दहन्नप द्वयया विनो यातुधानान्किमीदिनः।।

प्रतिदह यातुधानान्प्रति देव किमीदिनः।
प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः।।

या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा।।

पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम्।
अधा मिथो विकेश्यो विघ्नतां यातुधान्यो वितृह्यन्तामराय्यः।।

इस शाप विमोचन मन्त्र का पाठ करके पुनः रक्षोघ्न मन्त्र पाठ के लिये विनियोग करे।

विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य अष्टमकाण्डस्य प्रथमसूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः। आयुः देवता। त्रिष्टुप् पुरोवृहती, त्रिष्टुप, अनुष्टुप् प्रस्तार पंक्तिः, त्रिपदा विराट् गायत्री विराट् पथ्या वृहती त्र्यवसाना पञ्चपदा जगती, त्रिपादभुरिङ् महावृहती, एकावसाना द्विपदासाम्नी भुरिग्वृहती छन्दांसि। अमुकस्य (रोगी का नाम) अभयार्थे, आत्मशक्ति संकल्प शक्ति सम्वर्द्धनार्थे दैनन्दिने अभ्युदयार्थे, अभिवृद्ध्यर्थे पुरुषार्थचतुष्टय लब्धार्थे हवने रक्षाकरण्डबन्धने च विनियोगः।

रक्षोघ्न मन्त्र

ॐ अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम्।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके।।१।।

उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान्।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये।।२।।

इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः।
उत्त्वा निर्त्रत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि।।३।।

उत्क्रामतः पुरुषमाव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः।।४।।

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्याप्नः।
सूर्यस्ते तन्वे शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः।।५।।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि।।६।।

मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन्।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह।।७।।

मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम्।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे।।८।।

श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरथी श्वानौ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः।।९।।

मैतं पन्थामनु गा भीम एव येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि।
तम् एतत्पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक्।।१०।।

रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्वन्ता रक्षतु त्वा मनुष्या यमिन्धते।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्रधाग्विद्युता सह।।११।।

मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात्संकसुकाच्चर।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च
अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः।१२।।

बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वामवद्राणश्च रक्षताम्।
गोपायंश्चत्वा जागृविश्च रक्षताम्।।१३।।

ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहाः।।१४।।

जीवेभ्यस्त्वा समुद्रे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः।
मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि।।१५।।

मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथास्याः।
उत्त्वादित्या वसवो भरन्तू दिन्द्राग्नी स्वस्तये।।१६।।

उत्त्वा द्यौरुत्पृथिव्युत्प्रजापतिरग्रभीत।
उत्त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन्।।१७।।

अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः।
इमं सहस्त्रवीर्येण मृत्योरुत्पारयामसि।।१८।।

उत्त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः।
मा त्वा व्यस्तकेश्यो मा त्वाघरूदोरूदन्।।१९।।

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम्।।२०।।

व्यवात्ते ज्योतिरभूदप त्वत्तमो अक्रमीत।
अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतमप यक्ष्मं नि दध्मसि।।२१।।

यह रक्षोघ्न (रक्षोहण) मन्त्र अकाल मृत्यु को दूर करनेवाला, रोग शोक का शमन करनेवाला, पापशाप भय-बाधा आदि को दूर करनेवाला तथा दीर्घायु एवं समृद्ध जीवन तथा सुखशान्ति प्रदान करनेवाला है। इसके प्रयोग से रोग, शत्रु, मृत्यु आदि का भय समाप्त हो जाता है। इस सूक्त के मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित रक्षाकरण्ड बाँधने से आत्मबल, संकल्पशक्ति तथा शारीरिक एवं मानसिक शक्ति में अपूर्व वृद्धि होती है।

(६) जलचिकित्सा विधि –

(१) किसी बहती हुई नदी अथवा कुएँ का जल शुद्ध पात्र में लेकर अग्नि पर चढ़ाकर सोना डालकर पकाये। १ किलो जल में सोने की मात्रा १ तोला तक हो। जब जल खौलता हुआ चतुर्थांश रह जाय तो सोने को निकाल ले, पुनः उस जल को मन्त्र से अभिमन्त्रित कर मन्त्र आगे लिखा जा रहा है। नित्य ४१ दिन तक पीने से असाध्य रोग भी शान्त हो जाता है। इस क्रिया को ४१ दिन पर्यन्त जलपाक, अभिमन्त्रण एवं पान करना आवश्यक है।

(२) पीले रंग की काँच की बोतल में गंगाजल अथवा किसी बहती हुई नदी

का जल भरकर उसे ऊन के कपड़े से भलीभांति ढककर बोतल का मुख खोलकर प्रातःकाल सूर्योदय के समय खुले स्थान में जहाँ सूर्य की किरणें बोतल पर पड़ती रहें रख देना चाहिए। सूर्यास्त से पहले बोतल का मुख ढक्कन से बन्द करके उठाकर अन्दर रखकर अभिमन्त्रित कर उस जल को रोगी को पान कराये। नित्य इसी प्रकार एक महीना पीने से समस्त आधि-व्याधि दूर हो जाती है।

जलाभिमन्त्रण मन्त्र– जल को सामने रखकर निम्नलिखित मन्त्रों को पढ़ते हुए प्रत्येक मन्त्र के अन्त में ॐ अमृत वर्चसे स्वाहा कहकर फूँक मारे। जप के पश्चात् रोगी को जल पिला दे।

विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य तृतीयकाण्डस्य त्रयोदशसूक्तस्य भृगुः ऋषिः। वरुणः, सिन्धुः, आपः, इन्द्रः, देवताः। अनुष्टुप् निचृत् विराट् जगती निचृदनुष्टुप् छन्दांसि। अमुकस्य (रोगी का षष्ठयन्तनाम) कर्मज व्याधि, भवव्याधि, क्षेत्रियरोग निवारणे, आरोग्यार्थे, दीर्घायुष्यार्थे जलाभिमन्त्रणे विनियोगः।

मन्त्र–

ॐ यददः संप्रयतीरहावनदता हते।
तस्मादा नद्यो नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः।।१।।
यत्प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत।
तदापोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनुष्ठन।।२।।
अपकामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हि कम्।
इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवी स्तस्माद्वार्नाम वो हितम्।।३।।
एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम्।
उदानिषुर्महीरिति तस्मा दुदकमुच्यते।।४।।
आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ विभ्रत्याप इत्ताः।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत्।।५।।
आदित्पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ्मासाम्।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः।।६।।
इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः।
इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः।।७।।

यदि इन मन्त्रों के द्वारा स्वर्णतापी अथवा सूर्यतापी जलों का पान किया जाय तो पाप, शाप-जन्य रोग, कोढ़, टी०बी०, नेत्र, हृदय, कर्ण आदि रोग, मानसिक रोग, मस्तिष्क विकार, उदर रोग, यौन (एड्स) रोग, कैन्सर रोग, भूत-प्रेत- पिशाचादि दोष, अभिचारादि प्रयोगजन्य रोग, उन्माद (पागलपन), आनुवंशिक रोग, बवासीर, भगन्दर, कास, श्वास (दमा) तथा प्रसूति आदि रोग निश्चित ही दूर हो जाते हैं।

(७) अपनोदन भेषज-

पीलिया, जलोदर अथवा हृदय सम्बन्धी रोगों के लिए यह प्रयोग रामबाण है। यह प्रयोग कभी असफल नहीं हुआ है। इसका विधान इस प्रकार है। मिट्टी के बड़े एक घड़े में बहती हुई किसी भी नदी का जल भरकर उसमें अपामार्ग, बरियारा, अर्जुन वृक्ष की छाल, पृश्निपर्णी (काश), कुश एवं दूर्वा डालकर निम्नलिखित मन्त्रों से अभिमन्त्रित करे। मन्त्रों को पढ़ते हुए घट जल में कुश अपामार्ग को घुमाता रहे। पुनः अभिमन्त्रित जल से पुनः इन्हीं मन्त्रों को पढ़ते हुए आचमन कराकर स्नान कराया जाय। इस क्रिया से नेत्रों की जलन, हृदय दाह, हृदय की दुर्बलता, हृदय छिद्र आदि रोग, पीलिया तथा जलोदर रोग शान्त हो जाते हैं।

विनियोग – ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठकाण्डस्य चतुर्विंशत् सूक्तस्य शान्तातिः ऋषि। आपः देवता। अनुष्टुप् छन्दः। (अमुक) रोग निवारणे अपनोदने विनियोगः।

मन्त्र

ॐ हिमवतः प्रस्त्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः।
आपो ह मह्यं तद्देवींर्ददह्द्योत भेषजम्।।१।।

यन्मे अक्ष्योरादिद्यो पाष्ण्यों प्रपदोश्च यत्।
आपस्तत्सर्वं निष्करन्भिषजां सुभिषक्तमाः।।२।।

सिन्धु पत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य स्थन।
दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै।।३।।

(८) आङ्गिरसी भेषज-

अथर्ववेद के मत से ग्लानि, क्लेश, दुःख और संकट मनुष्य के सूक्ष्म प्राण तथा वासनाओं से सम्बन्धित होते हैं। अतः इनका निवारण किसी भी चिकित्सा पद्धति द्वारा सम्भव नहीं है। इस प्रकार के कष्ट आङ्गिरसी भेषज द्वारा ही शमन किये जा सकते हैं। इसके प्रयोग से अकाल मृत्यु, आकस्मिक दुर्घटना, युवावस्था

की मृत्यु, अधःपतन, दिवालिया हो जाना, मस्तिष्क विकार, पागलपन, उन्माद, अदृष्ट, अश्रुत, अचिन्त्य व्यथाएँ, आनुवंशिक दोष, अभिचारादि प्रयोगजन्य कष्ट शान्त हो जाते हैं।

प्रयोग– ताम्र पात्र अथवा कांस्य पात्र में जल भरकर अथर्ववेद के सोलहवें काण्ड के प्रथम सूक्त के तेरह मन्त्रों द्वारा कुशा एवं अपामार्ग से अभिमन्त्रित करे। पुनः इन्हीं मन्त्रों द्वारा पीड़ित व्यक्ति का कुश एवं अपामार्ग से अभिसेचन करे।

विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षोडशकाण्डस्य प्रथमसूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। प्रजापतिः देवता। द्विपदा साम्नी वृहती याजुषी त्रिष्टुप् आसुरी गायत्री, साम्नी पंक्तिः साम्नी अनुष्टुप् निचृद् विराट् गायत्री आसुरी पंक्तिः साम्नी उष्णिक आर्ची अनुष्टुप् छन्दांसि। आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक दुःखनिवारणे पापशापभयबाधासंकटनिवारणे वरुणपाश निर्ऋति दोष कृत्या दोष अपस्तरणे, बाह्याभ्यन्तर शत्रुदमने शत्रुबलक्षये, दौर्भाग्यजनितारिष्ट निवारणे सतत अभ्युदये, अभिवृद्ध्यर्थे च अभिचारकर्मणि जलानुमन्त्रणेमार्जने अवसेचने विनियोगः।

मन्त्र

ॐ अतिसृष्टो अपां वृषभोऽति सृष्टा अग्नयो दिव्याः।
रुजन्परिरुजन्मृणन्प्रमृणन्।।२।।

म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः।।३।।
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि।।४।।

तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।।५।।
अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि।।६।।

योप्स्वाग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम्।।७।।
यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद्वो घोरं तदेतत्।।८।।

इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत्।।९।।

अरि प्रा आपो अप रिप्रस्मत्।।१०।।

प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुष्वप्न्यं वहन्तु।।११।।

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत् त्वचं मे।।१२।।

शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः।।१३।।

(९) सूर्योपस्थान –

सूर्योपस्थान करने से सभी असाध्य रोग दूर होते हैं। इसकी विधि यह है कि रोगग्रस्त व्यक्ति सूर्य की ओर मुख करके दोनों भुजाएँ ऊपर की ओर उठाकर ॐ ह्रीं सूर्याय नमः का जप करता रहे तथा आचार्य विनियोग करके निम्नलिखित मन्त्र से उसके सिर पर जलाभिषेक करें।

विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षोडशकाण्डस्य तृतीयसूक्तस्य ब्रह्मा ऋषिः। आदित्यः देवता। आसुरी गायत्री आर्ची अनुष्टुप् प्राजापत्य त्रिष्टुप् साम्नी उष्णिक् द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् छन्दांसि। अमुकस्य (रोगी व्यक्ति का षष्ठ्यन्त नाम उच्चारण करे) ऋण, रोग दुःखदारिद्र्यदैन्यनिवारणे सुखसौभाग्यसमृद्धिवृद्ध्यर्थे अभ्युदयार्थे सूर्योपस्थाने जलाभिसेचने च विनियोगः।

मन्त्र

ॐ मूर्धाहं रयीणाम् समानानां भूयासम।।१।।
रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धाच मा
विधर्मा च मा हासिष्टाम्।।२।।
उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा
धरुणश्च मा हासिष्टाम्।।३।।
विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च
मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम्।।४।।
बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः।।५।।
असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रोऽस्मि विधर्मणा।।६।।

(१०) हस्ताभिमर्श उपचार–

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त १३ के मन्त्रों का पाठ करते हुए रोगी के सिर से पैरों तक हस्त स्पर्श करने से असाध्य रोग भी दूर हो जाते हैं। इसमें संकल्प शक्ति की प्रधानता होती है।

विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य चतुर्थकाण्डस्य त्रयोदशसूक्तस्य शन्तान्तिः ऋषिः। विश्वेदेवा देवता। अनुष्टुप बृहती छन्दांसि। असाध्य रोग निवारणे, तापत्रयोन्मूलने हस्ताभिमर्शे विनियोगः।

मन्त्र

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चकुषं देवा देवा जीवयथा पुनः।।१।।

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्ष ते अन्त आवातु व्यन्यो वातु यद् रप्नः।।२।।

आ वात वाहि भेषज वि वात वाहि यद् रप्नः।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे।।३।।

त्रायन्तामिम देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत्।।४।।

आ त्वा गन्मं शन्तातिभिरथो अरिष्ट तातिभिः।
दक्ष त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मै सुवामि ते।।५।।

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अथ मे विश्वभेषजोऽय शिवाभिमर्शनः।।६।।

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि।।७।।

(११) कृत्या निवारण –

कृत्या एक प्रकार का अभिचार कर्म है। स्त्रियों, नीच लोगों द्वारा, राजाओं, ब्राह्मणों, कौलाचारियों, कापालिकों द्वारा किये जानेवाले घातक मारण प्रयोगों को कृत्या कहा जाता है। जिस पर प्रयोग करना होता है उसकी आकृति बनाकर मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। यह अत्यन्त निन्द्य कर्म है। रागद्वेषवशात् प्रायः नीच लोग मिट्टी, कागज अथवा कपड़े पर आकृति बनाकर उस पर मन्त्रों का प्रयोग करते हैं अतः सम्बन्धित व्यक्ति असह्य पीड़ा से ग्रस्त हो जाता है। कभी मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर कोई वस्तु खाने-पीने में मिलाकर दी जाती है। कृत्या को लोकभाषा में मूठ कहते हैं। यह प्रयोग कभी किसी व्यक्ति अथवा पूरे परिवार, घर, खेत, दुकान, व्यवसाय तथा रोजी-रोजगार पर किया जाता है। इस कृत्या दोष को हटाने के लिए अथर्ववेद अत्यन्त सफल विधान बताता है। इस कृत्या दोष को दूर करने का सरल उपाय जलावसेचन तथा हवन है। पहले तीन दिन पर्यन्त अथर्ववेद के नौ सूक्तों के मन्त्रों से पीड़ित व्यक्ति के सिर के ऊपर विनियोगपूर्वक जलावसेचन करे, पुनः इन्हीं सूक्तों से तीन दिन तक विनियोग सहित हवन करने से भयंकर कृत्या दोष भी शान्त हो जाता है।

कृत्या-दोष प्रतिहरणार्थ विनियोग : हवन मंत्र

१. विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य द्वितीयकाण्डस्य एकादशसूक्तस्य शुक्रः ऋषिः। कृत्यादूषणम् देवता। चतुष्पदा विराट् गायत्रीः, त्रिपदा परोष्णिक्, पिपीलिकमध्या निचृत् छन्दांसि। कृत्यादोषनिवारणे जलावसेचने, होमे च विनियोगः।

ॐ दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्योमेनिरसि।
आपुहि श्रेयांसमति समं क्राम।।१।।

स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि।
आपुहि श्रेयांसमति समं क्राम।२।।

प्रतितमभिचर योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
आपुहि श्रेयांसमति समं क्राम।।३।।

सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि।
आपुहि श्रेयांसमति समं क्राम।।४।।

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि।
आपुहि श्रेयांसमति समं क्राम।।५।।

२. विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य चतुर्थकाण्डस्य सप्तदशसूक्तस्य शुक्रः ऋषिः। अपामार्गो वनस्पतिः देवता। अनुष्टुप् छन्दः। कृत्यादोषपरिहरणे जलावसेचने, होमे च विनियोगः।

ॐ ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे।
चक्रे सहस्त्रवीर्यं सर्वास्मा ओषधेत्वा।।१।।

सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनः सराम्।
सर्वाः समह्वओषधीरितो नः पारयादिति।।२।।

या शशाप शपनेन याघंमूरमादधे।
या रसास्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा।।३।।

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि।।४।।

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मञ्शाशयामसि।।५।।

क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम्।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे।।६।।

तृष्णामारं क्षुधामारमथो अक्षपराजयम्।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे।।७।।

अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद्वशी।
तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर।।८।।

३. विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य चतुर्थकाण्डस्य अष्टादशसूक्तस्य शुक्रः ऋषिः। अपामार्गो वनस्पतिः देवता। अनुष्टुप्, वृहतीगर्भा छन्दसी। कृत्यादोषपरिहरणे जलाभिसेचने, होमे च विनियोगः।

ॐ समं ज्योतिः सूर्येणाह्ना रात्रीं समावती।
कृणोमि सत्यमूतयेऽरसाः सन्तु कृत्वरीः।।१।।

यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम्।
वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप्नप्नद्यताम्।।२।।

अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति।
अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुला फट् करिक्रति।।३।।

सहस्त्रधामन्विशिखान्विग्रीवां छायया त्वम्।
प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर।।४।।

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु।।५।।

यश्चकार न शशाक कर्तुं शक्ते पादमङ्कुरिम्।
चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः।।६।।

अपामार्गोऽप्न मार्ष्टु क्षेत्रियं शपथश्च यः।
अपाह यातुधानीरप्न सर्वा अराय्यः।।७।।

अपमृज्य यातुधानानप्न सर्वा अराय्यः।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे।।८।।

४. विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य चतुर्थकाण्डस्य ऊनविंशति-सूक्तस्य शुक्रः ऋषिः। अपामार्गो वनस्पतिः देवता। अनुष्टुप् पथ्यापंक्ति-श्छन्दसी। कृत्यादोषपरिहरणे जलावसेचने, होमे न विनियोगः।

उतो अस्यबन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत्।
उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवा छिन्धि वार्षिकम्।।१।।

ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन।
सेनेवैषित्विषीमती न तत्र भवमस्ति यत्र प्रापोप्योषधे।।२।।

अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन्।
उत त्रातासि पाकस्यार्थो हन्तासि रक्षसः।।३।।

यददो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत।
ततस्त्वमध्योषधेऽपामार्गो अजायथाः।।४।।

विभिन्दती शतशाखा विभिन्दन्नाम ते पिता।
प्रत्यग्वि भिन्धि त्वं तं यो अस्माँ अभिदासति।।५।।

असद्भूम्याः समभवत्तद्यामेति महद्व्यचः।
तद्वै ततो विधूपायंत्प्रत्यक्कर्त्तारमृच्छतु।।६।।

प्रत्यङ् हि संवभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम्।
सर्वान्मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया वधम्।।७।।

शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा।
इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत्।।८।।

५. विनियोग – ॐ अस्य अथर्ववेदस्य पञ्चमकाण्डस्य चतुर्दशसूक्तस्य शुक्रः ऋषिः। वनस्पतिः, कृत्यापरिहरणम् देवते। अनुष्टुप्, भुरिक्, त्रिपदा विराट्, निचृद्वृहती, त्रिपदासाम्नी त्रिष्टुप्, स्वराट् छन्दांसि। कृत्या परिहरणे जलावसेचने, होमे च विनियोगः।

ॐ सुपर्णस्त्वान्वन्विन्दत्सूकरस्त्वा खनन्नसा।
दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि।।१।।

अव जहि यादुधानानव कृत्याकृतं जहि।
अथो यो अस्मान्दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे।।२।।

रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः।
कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत।।३।।

पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय।
स्मक्षमस्मा आ धेहि यथा कृत्याकृतं हनत्।।४।।

कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः।।५।।

यदि स्त्री यदि वा पुमान्कृत्यां चकार पाप्मने।
तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या।।६।।

यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता।
तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम्।।७।।

अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व।
पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि।।८।।

कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिञ्जहि।
न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि।।९।।

पुत्र इव पितरं गच्छ स्वज इवाभिष्ठितो दश।
बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः।।१०।।

उदेणीव वारण्यभिस्कन्दं मृगीव।
कृत्या कर्त्तारमृच्छतु।।११।।

इष्वा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति।
सा तं मृगमिव गृह्णतु कृत्या कृत्याकृतं पुनः।।१२।।

अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम्।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः।।१३।।

६. विनियोग – ॐ अस्य अथर्ववेदस्य पञ्चमकाण्डस्य एकत्रिंशत् सूक्तस्य शुक्रः ऋषिः। कृत्यादूषणम् देवता। अनुष्टुप्, वृहतीगर्भा, पथ्यावृहती छन्दांसि। कृत्यादोषनिवारणे जलावसेचने, होमे च विनियोगः।

ॐ यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।१।।

यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा यां कुरीरिणि।
अव्या ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।२।।

यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।३।।

यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम्।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।४।।

यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्रावुत दुश्चितः।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।५।।

यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।६।।

यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे।
दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।७।।

यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।८।।

यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकसुके च याम्।
म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम्।।९।।

अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि।
अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्या।।१०।।

यश्चकार न शशाक कर्तुं शक्ते पादमङ्गुरिम्।
चकारं भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः।।११।।

कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेथ्यम्।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया।।१२।।

७. विनियोग – ॐ अस्य अथर्ववेदस्य सप्तमकाण्डस्य पञ्चाधिकषष्ठि सूक्तस्य शुक्रः ऋषिः। अपामार्गबीरुत् देवता। अनुष्टुप् छन्दः। कृत्यादोष परिहरणे जलावसेचने होमे च विनियोगः।

ॐ प्रतीचीन फलो हि त्वमपामार्गरुरोहिथ।
सर्वान्मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः।।१।।

यद्दुष्कृतं यच्छमलं यद्वा चेरिम् पापया।
त्वया तद्विश्वतोमुखापामार्गाप मृज्महे।।२।।

श्यावदता कुनखिनां वण्डेन यत्सहासिम।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे।।३।।

८. विनियोग – ॐ अस्य अथर्ववेदस्य अष्टमकाण्डस्य पञ्चमसूक्तस्य शुक्रः ऋषिः। कृत्यादूषणं मन्त्रोक्त देवताः। अनुष्टुप्, उपरिष्टाद्वृहती, त्रिपदा विराट्, गायत्री चतुष्पदा भुरिज्जगती, भुरिक्संस्तारपंक्तिः, ककुम्मती, चतुष्पदापुरस्कृतिजगती, त्रिष्टुप्, पथ्यापंक्तिः, त्र्यवसाना षट्पदा जगती, पुरस्ताद्वृहती, त्रिष्टुप्, पथ्यापंक्तिः, त्र्यवसाना षट्पदाजगती, पुरस्ताद् वृहती, जगतीगर्भा त्रिष्टुप्, विराड्गर्भा प्रस्तारपंक्तिः। विराट् त्रिष्टुप्, त्र्यवसाना सप्तपदा विराड्गर्भा भुरिक्शक्वरी छन्दांसि। कृत्यादोष निवारणे जलावसेचने, होमे, स्त्राक्त्यमणि बन्धने च विनियोगः।

ॐ अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय वध्यते।
वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणं सुमंगलः।।१।।

अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्र.।
प्रत्यक्कृत्या दूषयन्नेति वीरः।।२।।

अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्नानेनासुराम्पराभावयन्मनीषी।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत्प्रदिशश्चतस्त्रः।।३।।

अयं स्त्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः।
ओजस्वान्विमृधो वशी सो अस्मान्पातु सर्वतः।।४।।

तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु।।५।।

अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम्।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु।।६।।

ये स्त्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते।
सूर्य इव दिवमारुह्य विकृत्या बाधते वशी।।७।।

स्त्राक्त्येन मणिना ऋषिणेव मनीषिणा।
अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधोहन्मि रक्षसः।।८।।

याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः स्वयंकृता सा उ जान्येभिराभृताः।
उभयोस्ताः परा यन्तु परावतो नवर्ति नाव्या अति।।९।।

अस्मै मणि वर्म वध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड्वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे।।१०।।

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान्जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम्।।११।।

स इद्व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा।
अथो सपत्नकर्शनो यो विभर्तीमं मणिम्।।१२।।

नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः।
सर्वा दिशो वि राजति यो विभर्तीमं मणिम्।।१३।।

कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत।
अविभस्त्वेन्द्रो मानुषे विभ्रत्संश्रेषिणेऽजयत्।
मणिं सहस्रवीर्यं वर्मदेवा अकृण्वत।।१४।।

यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति।
प्रत्यक्त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा।।१५।।

अयमिद्वै प्रतीवर्त ओजस्वान्संजयो मणिः।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः।।१६।।

असपत्नं नो अथरादसपत्नं न उत्तरात्।
इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूरपुरस्कृधि।।१७।।

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वम सूर्यः।
वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे।।१८।।

ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नाति विध्यन्ति सर्वे।
तन्मे तन्वं त्रायतांसर्वतो वृहदायुष्मांजरदष्टिर्यथासानि।।१९।।

आ मारुक्षद्देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये।
इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरुथमोजसे।।२०।।

अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम्।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासत्।।२१।।

स्वस्तिदा विशां पतिर्बृत्रहा विमृधो वशी।
इन्द्रोबध्नातु ते मणिं जिगीवाँ अपराजितः सोमपा अभयंकरो वृषा।
स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः।।२२।।

९. विनियोग – ॐ अस्य अथर्ववेदस्य दशमकाण्डस्य प्रथमसूक्तस्य प्रत्यङ्गिरसः ऋषयः। कृत्यादूषणम् मन्त्रोक्ताः देवताः। अनुष्टुप, महावृहती, विराड्नाम गायत्री, पथ्यापंक्तिः, पंक्तिः उरोवृहती, चतुष्पदा विराड्जगती, प्रस्तारपंक्तिः (विराड्), त्रिष्टुप्, चतुष्पदा जगती, एकावसाना द्विपदार्ची उष्णिक्, त्रिपदा भुरिग्विषमा गायत्री, त्रिपदा गायत्री, मध्येज्योतिष्मती, जगती, द्वयनुष्टुप्गर्भा पञ्चपदा जगती छन्दांसि। कृत्यादूषण परिहरणे जलावसेचने, होमे, सर्षप अभिमंत्रणे च विनियोगः।

ॐ यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः।
सारादेत्वप् नुदाम एनाम्।।१।।

शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।
सारादेत्वप्न नुदाम एनाम्।।२।।

शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता।
जाया पत्या नुत्तेव कर्त्तारं बन्ध्वृच्छतु।।३।।

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु।।४।।

अधमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते।
प्रत्यक्प्रति प्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत्।।५।।

प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून्कृत्याकृतो जहि।।६।।

यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम्।
तं कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः।।७।।

यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येवर्भुर्धिया।
तं गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्तेऽयं जनः।।८।।

ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः।
शंभ्वीदं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनः सरं तेन त्वा स्नपयामसि।।९।।

यद्दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम।
अपैतु सर्वं मत्पापं द्रविणम् मोप तिष्ठतु।।१०।।

यत्ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः।
संदेश्यात्सर्वस्मात्पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः।।११।।

देवैनसात्पित्र्यान्नामग्राहात्संदेश्यादभिनिष्कृतात्।
मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम्।।१२।।

यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम्।
एवा मत्सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति।।१३।।
अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव।
कर्तृन्नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता।।१४।।

अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामोऽभिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी।।१५।।

पराक्ते ज्योतिपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व।
परेणेहि नवतिं नाव्या अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि।।१६।।

वात इव वृक्षान्नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम्।
कर्तृन्निवृत्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय।।१७।।

यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यांवलगं वा निचख्नुः।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम्।।१८।।

उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम्।
तदेतु यत आभृतं तत्राश्व इव वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम्।।१९।।

स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि।
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि।।२०।।

ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव।
इन्द्राग्नी अस्मान्रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती।।२१।।

सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु।।२२।।
भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते।
दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम्।।२३।।

यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।
सेतोष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने।।२४।।

अभ्यक्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि।
जानीहि कृत्ये ।कर्त्तारं दुहितेव पितरं स्वम्।।२५।।

परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय।
मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति।।२६।।

उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा।
उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति।।२७।।

एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ।
यस्त्वा चकार तं प्रति।।२८।।

अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव।।२९।।

यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि।।३०।।

कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम्।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून्कृत्याकृतो जहि।।३१।।

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून्।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहासि।।३२।।

(१२) मणिधारण विधि –

वेदों में सभी प्रकार के रोग, दोष, भय, बाधा, आधि, व्याधि, संकट तथा अरिष्ट निवारण के लिए मणिबन्धन के प्रयोग बताये गये हैं। अथर्ववेद में वर्णित मणियाँ इस प्रकार हैं –

अस्तृतमणि, औदुम्बरमणि, जङ्गिडमणि, दर्भमणि, प्रतिसर मणि, तलाशमणि, फालमणि, शतवारमणि, सपत्नक्षयवरणमणि, अञ्जनमणि, हरिणमणि, अभिवर्तमणि, यवमणि, त्रिसन्ध्यामणि, अर्कमणि, ओयमगनपर्वमणि, शंखमणि, हिरण्यमणि, गोदामणि, वरणमणि तथा प्रतिसर स्राक्त्यमणि।

ये मणियाँ पत्थर आदि रत्न न होकर (वनस्पति) वृक्ष–विशेष हैं। इन मणियों के धारण करने की सामान्य विधि यह है कि किसी महीने की शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि से लेकर पूर्णमासी तक जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिए मणिधारण करना हो

विनियोग में उस प्रयोजन का उल्लेख करे। विनियोग करते समय प्रयोजन के साथ मणि अभिमन्त्रणे, होमे विनियोगः कहना चाहिए। हवन के पश्चात् मणि को गले में या दाहिनी भुजा में धारण करे। जो भी मणि धारण करनी हो उसके सूक्त मन्त्रों से विनियोग अभिमन्त्रण और हवन करने के पश्चात् मणि धारण करनी चाहिए। यही प्रत्येक मणि के धारण करने की सामान्य विधि है। सभी मणियों के धारण विधि को न लिखकर कुछ दो–एक मणि के विधान को लिखा जा रहा है।

औदुम्बर मणि – औदुम्बर संस्कृत शब्द है। इसे लोक में गूलर कहा जाता है। गूलर एक ऐसी महोषधि है जिसकी जड़, त्वचा, शाखा, पत्तियाँ, फल तथा दूध, रोग एवं अन्य दोष दूर करने में अचूक है। इसका प्रयोग धनक्षय हो जाने पर करना चाहिए। सन्तानहीनता में भी इसका प्रयोग सफल देखा गया है। इसके धारण करने से शत्रुओं पर विजय होती है। इसके बाँधने ओज, तेज, वर्चस्व तथा मेधा की वृद्धि होती है। इससे वन्ध्यात्व दोष तथा मृतापत्यों का दोष शमन होता है। यह आँत सम्बन्धी रोगों का शमन करता है। इसका विनियोगादि इस प्रकार है –

विनियोग – ॐ अस्य अथर्ववेदस्य ऊनविंशत्काण्डस्य एकत्रिंशत् सूक्तस्य सविता ऋषिः। औदुम्बरमणिः देवता अनुष्टुप् त्रिष्टुप् विराट् प्रस्तार पंक्तिः पंचपदाशक्वरी विराडास्तार पंक्ति छन्दांसि। औदुम्बरमणि धारणे अभिमन्त्रणे हवने च विनियोगः।

मन्त्र

ॐ औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत्।।१।।
यो नो अग्निर्ग्राहपत्यः पशूनामधिपा असत्।
औदुम्बरो वृषा मणिः सं मा सृजतु पुष्ट्या।।२।।
करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे।।३।।
यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः।
गृह्णेहं त्वेषां भूमानं विभ्रदौदुम्बरं मणिम्।।४।।
पुष्टिं पशूनां परिजग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदायंच्च धान्यम्।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात्।।५।।
अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्ब्रविणानि नि यच्छतु।।६।।

उपमौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च।
इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा।।७।।
देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये।
पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु।।८।।
यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्टया सह जिज्ञसे।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती।।९।।
आ मे धनं सरस्वतीं पयस्फातिं च धान्यम्।
सिनीवाल्युपा बहादयं चौदुम्बरो मणिः।।१०।।
त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान।
त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स
त्वमस्मत्सहस्वारादरातिमगर्तिं क्षुधं च।।११।।
ग्रामणीरषि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि।।१२।।
पुष्टिरसि पुष्टया मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छ
रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अर्ह त्वाम्।।१३।।
अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते।
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात्।।१४।।

शतवार मणि – आयुर्वेदिक ओषधि शतावर को अथर्ववेद में शतवार कहा गया है। इसके गुण अनेक हैं। जिन स्त्रियों अथवा पशुओं का दूध सूख गया हो अथवा विकार-ग्रस्त हो गया हो उसे शतावर पिलाने से दुग्ध शुद्ध होकर अधिक मात्रा में बढ़ जाता है। इसीलिए इसे बहुदुग्धप्रद भी कहा गया है। यह ओजवर्धक तथा कुलक्षय दोष निवारक है। अथर्ववेद का कथन है कि शतवार मणि धारण से भूत प्रेत, पिशाच, राक्षस भाग जाते हैं। इससे जादू, टोना, टोटका और अभिचार कर्मजन्य बाधाएँ दूर होती हैं। यह राजयक्ष्मा जैसी कर्मज व्याधियों का शमन करता है।

इसके धारण का विधान औदुम्बरमणि के समान ही है। मन्त्र अथर्ववेद के १९ काण्ड का ३६वाँ सूक्त है।

जङ्गिडमणि – जङ्गिण, अर्जुन वृक्ष को कहते हैं। आयुर्वेद में अर्जुन वृक्ष का उपयोग अनेक रोगों में किया जाता है। मणि धारण में अर्जुन वृक्ष की छाल को धारण किया जाता है। इससे प्रत्येक अभिचार दोषों की शान्ति, क्षेत्रिय रोग दोष, कीटाणुजन्य रोग दोष, राजयक्ष्मा, कैन्सर, भगन्दर, नासूर, स्नायुदौर्बल्य, नाड़ी दोष, मस्तिष्क

विकार, रक्तविकार, हृदयरोग, मूत्राशय रोग, यकृत रोग, प्लीहा रोग तथा सन्ताप, दैवी, आसुरी समस्त व्याधि दूर होती है। इसके प्रयोग में अथर्ववेद के काण्ड २ तथा सूक्त ४ के मन्त्रों से अभिमन्त्रण करके धारण करना चाहिए।

दर्भ मणि– दर्भ का अर्थ कुश है। कुश को कुशोत्पाटिनी अमावस्या (भाद्रमास की अमावस्या) को अथवा गुरुपुष्य योग में ग्रहण करना चाहिए। दर्भ मणि धारण करने से कृत्या दोष, अभिचार कर्मजन्य दोष समाप्त हो जाते हैं। मृत्यु का भय, शत्रुओं द्वारा किये जानेवाले षड्यन्त्रों को यह विफल कर देती है। सुरक्षा के अतिरिक्त यह आयु, बल, यश, धन, ऐश्वर्य को बढ़ाती है। शत्रुओं को यह निष्क्रिय एवं निरीह बना देती है। इसको धारण करने में अथर्ववेद के काण्ड १९, सूक्त २८ का प्रयोग करना चाहिए।

प्रतिसर मणि – प्रतिसर मणि को स्राक्त्य मणि के भी नाम से जाना जाता है। कौशिकसूक्त के भाष्यकार दारिलकेशव ने इसे सिलुत्कक कहा है। राजनिघण्टु में तिलक वृक्ष कहा गया है। पं० देवदत्त शास्त्री लेखक अथर्ववेदीय तन्त्र विज्ञान ने इसे एकमुखी रुद्राक्ष माना है। यद्यपि स्राक्त्य मणि और एकमुखी रुद्राक्ष दोनों भिन्न-भिन्न हैं तथापि गुण धर्मों के आधार पर दोनों में समानता पायी जाती है। अतएव प्रतिसर मणि सूक्त से अभिमन्त्रित रुद्राक्ष वही लाभ देता है जो अथर्ववेद में प्रतिसर मणि के बताये गये हैं। इसमें अथर्ववेद के आठवें काण्ड के पाँचवें सूक्त से अभिमन्त्रण करना चाहिए। इसे किसी भी महीने की शुक्लपक्ष त्रयोदशी से लेकर पूर्णमासी तक तीन दिन इन मंत्रों से गंगाजल और कुश से अभिमन्त्रित कर इन्हीं मन्त्रों से हवन कर हवनाग्नि में मणि को धूपित करना चाहिए। तीन दिन तक यह क्रिया समाप्त होने के बाद उसी समय अघोर मन्त्र एवं मृत्युञ्जय मन्त्रों से १०८ बार हवन कर सोने के तार अथवा लाल रेशमी धागे में गूँथकर गले अथवा दाहिनी भुजा में धारण करना चाहिए। अघोर मन्त्र तथा मृत्युञ्जय मन्त्र सर्वविदित है तथापि पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ लिखा जा रहा है।

अघोर मन्त्र

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः।
सर्वेभ्यः शर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः।।

मृत्युञ्जय मन्त्र

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।।

इस मणि के धारण से सभी आधि-व्याधि का शमन, शत्रु पर विजय, तेज, वर्चस्व की वृद्धि, कीर्ति विजय विभूति, दुर्घटनाओं से रक्षा तथा विषधर जन्तु एवं हिंसक पशुओं से रक्षा होती है।

१३. अर्थोत्थापन विधि – जब व्यक्ति निरन्तर कार्यरत, श्रमरत तथा उद्योग में रत रहते हुए भी व्यापार या किसी भी व्यवसाय में सफल नहीं होता, लाभ की अपेक्षा हानि ही होती रहती है, अनेक प्रकार की बाधाएँ, रुकावटें आती हैं तब दुर्भाग्य को समाप्त करने के लिए अथर्ववेद के अर्थोत्थापन विधि का प्रयोग करना चाहिए। अर्थोत्थापन कर्म में प्रथम तीन दिन अर्थोत्थापनगण के सूक्तों से आनेवाले विघ्नों के शमन के लिए विनियोग पूर्वक जलावसेचन करके अर्थोत्थापनी ऋचाओं से उपस्थान किया जाता है। पुनः तीन दिनों तक हवनीय ऋचाओं से हवन किया जाता है। इस प्रकार कुल ६ दिनों में अर्थोत्थापन कर्म पूर्ण होता है। इस क्रिया से सोया हुआ भाग्य जग जाता है। सौभाग्य का उदय होता है। अर्थोपार्जन होने लगता है, वाणिज्य, व्यापार, उद्योग, नौकरी जो भी कार्य किया जाय उसमें पूर्ण सफलता मिलती है।

जलावसेचन

विनियोग – ॐ अस्य अथर्ववेदस्य प्रथमकाण्डस्य त्रयस्त्रिंशत् सूक्तस्य शन्तातिः ऋषिः आपः देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। अर्थोत्थापने विघ्ननिवारणे जलावसेचने च विनियोगः।

मन्त्र

ॐ हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु।।१।।

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम्।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु।।२।।

यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शंस्योना भवन्तु।।३।।

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे।
घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु।।४।।

आहुति मन्त्र

विनियोग – ॐ अस्य अथर्ववेदस्य तृतीयकाण्डस्य पञ्चदशसूक्तस्य अथर्वा ऋषिः विश्वेदेवा इन्द्राग्नी देवते। त्रिष्टुप् अनुष्टुप् निचृतादि छन्दांसि। वाणिज्यार्थे व्यवसार्थे, प्नण्यकामार्थे हवने च विनियोगः।

हवन मन्त्र

ॐ इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम्।।१।।

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावा पृथिवी संचरन्ति।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धन माहराणि।।२।।

इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम्।।३।।

इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यम्ध्वानमगाम दूरम्।
शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु।
इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तुचरितमुत्थितं च।।४।।

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।
तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान्हविषा निषेध।।५।।

येम धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।
तस्मिन्म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः।।६।।

उप त्वा नमसा वयं होतर्वैश्वानर स्तुमः।
स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि।।७।।

विश्वाहा ते सद्मिद्भरेमाश्वायेव तिष्ठते जातवेदः।
रायस्पोषेण समिषा महन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम्।।८।।

१४. बृहद् शान्तिकर्म

इस प्रयोग से जन्म-जन्मान्तर कृत समस्त पाप, ताप, शाप, रोग, दोष, दुःख, दारिद्र्य, ऋण, शत्रु, अकालमृत्यु, नक्षत्र ग्रह दोष, भूत-प्रेत, पिशाच, राक्षस आदि दोष, मस्तिष्क, हृदय, यौन, राजयक्ष्मा आदि सभी प्रकार के असाध्य रोग दूर हो जाते हैं। जब कोई भी उपाय सफल न हो रहा हो उस स्थिति में इस प्रयोग से निश्चित ही सफलता प्राप्त होती है। यह अत्यन्त सफल एवं अमोघ है।

अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त २३ के मन्त्रों से पहिले तीन दिन तक गंगाजल, कुश और अपामार्ग से विनियोगपूर्वक जलाभिसेचन करना चाहिए। पुनः तीन दिन तक इन्हीं मन्त्रों से चन्दन, आम अथवा बरगद की समिधाओं से अग्नि प्रज्ज्वलित कर अष्टांग हवन सामग्री से हवन किया जाय, 'प्रयोजन' सिद्ध होगा।

विनियोग – ॐ अस्य अथर्ववेदस्य चतुर्थकाण्डस्य त्रयोत्रिंशत्सूक्तस्य

मृगारः ऋषिः। प्रचेता अग्निः देवता। त्रिष्टुप पुरस्ताज्ज्योतिष्मती अनुष्टुप् प्रस्तार पंक्तिः छन्दांसि अमुक प्रयोजने (यहाँ अपना प्रयोजन कहे) जलाभिसेचने, हवने विनियोगः।

मन्त्र

ॐ अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यन्मिन्धते।
विशोविशः प्रविशिवां समीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः।।१।।
यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन्।
एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो मुचत्वंहसः।।२।।
यामन्यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन्कर्मन्नाभगम्।
अग्निमीडे रक्षोहणे यज्ञवृधं घृताहुतं स नो मुञ्चत्वंहसः।।३।।
सुजातं जातवेद समग्निं वैश्वानरं विभुम्।
हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः।।४।।
येन ऋषयो बलमद्योतयन्युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः।
येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः।।५।।
येन देवा अमृतमन्वविन्दन्येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन्।
येन देवाः स्वराभरन्त्स नो मुञ्चत्वंहसः।।६।।
यस्येदं प्रदिशि यद्विरोचते यज्जातं जनितव्यं च केवलम्।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः।।७।।

ये चौदह प्रयोग कर्मज व्याधिनाश के लिए लिखे गये हैं। ये सभी अथर्ववेद के मन्त्र हैं। इनके प्रयोगों से समस्त आधि-व्याधि का शमन होता है। अथर्ववेद की ही भांति ऋग्वेद और यजुर्वेद में भी आधि-व्याधि निवारण के लिए अनेक मन्त्र लिखे गये हैं किन्तु सभी मन्त्रों के प्रयोग का विधान स्वयं यदि वेद का ज्ञाता न हो तो नहीं करना चाहिए। किसी विद्वान् वेदज्ञ जो स्वरों के ज्ञान से भली-भाँति परिचित हो उसे ये प्रयोग कराने चाहिए। कुछ कर्मज व्याधियों के शमन हेतु ऋग्वेद एवं यजुर्वेद के मन्त्रों का भी प्रयोग आगे लिखा जा रहा है।

कर्मज व्याधिनाशन ऋग्वेदीय मन्त्र

भयंकर कष्ट हो, असाध्य रोग हो अथवा अपमृत्यु का भय हो गया हो तो ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १३०, मन्त्र १ से ७ तक संकल्पपूर्वक विनियोग करके ४१ दिन तक १० हजार मन्त्र के जप से असाध्य रोग, अभिचारजन्य रोग, पागलपन तथा अकालमृत्यु से रक्षा हो जाती है।

संकल्प – ॐ स्वस्ति श्रीमद् मुकुन्दसच्चिदानन्दस्याज्ञया प्रवर्तमानस्याद्य ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे एक पञ्चाशत्तमे वर्षे प्रथम पक्षे प्रथम दिवसे अह्नो द्वितीये यामे तृतीये मुहूर्ते रथन्तरादि द्वात्रिंशत्कल्पानां मध्ये श्रीश्वेतवाराहकल्पे स्वायम्भुवादि मन्वन्तराणां मध्ये सप्तमे वैवस्वत मन्वन्तरे कृत त्रेता द्वापर कलिसंज्ञानां चतुर्युगानां मध्ये वर्तमाने अष्टाविंशतितमे कलियुगे तत्प्रथम चरणे तथा पञ्चाशत्कोटि योजन विस्तीर्ण भूमण्डलान्तर्गत सप्त द्वीप मध्यवर्तिनि जम्बूद्वीपे तत्राऽपि नवखण्डानां मध्ये नवसहस्रयोजन विस्तीर्णे भरतखण्डे तत्राऽपि परम पवित्रे भारतवर्षे आर्यावर्त्तान्तर्गत ब्रह्मावर्तैक देशे (अमुक) क्षेत्रे (अमुक) मण्डले गंगायाः (अमुक) नर्मदायाः (अमुक) यमुनायाः (अमुक) दिग्भागे देव ब्राह्मणानां सन्निधौ श्रीमन्नृपतिवीर विक्रमादित्यस्य राज्यातीत (अमुक) संख्या परिमित प्रवर्तमान संवत्सरे प्रभवादि षष्टि संवंत्सराणां मध्ये (अमुक) नाम संवत्सरे (अमुक) अयने (अमुक) गोत्रे (अमुक) ऋतौ (अमुक) मासे (अमुक) तिथौ (अमुक) वासरे (अमुक) योगे (अमुक) करणे (अमुक) नक्षत्रे (अमुक राशिस्थे) श्री सूर्ये (अमुक राशिस्थे) श्री चन्द्रे (अमुक राशिस्थे) देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथा यथा राशि स्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुणगणविशेषज्ञ विशिष्टायां पुण्य तिथौ (अमुक) वेदान्तर्गत (अमुक) शाखाध्यायी (अमुक) सूत्रीय (अमुक) प्रवरीय (अमुक) गोत्रोत्पन्नः (शर्मा, वर्मा, गुप्ता दासोऽहं) मम (आत्मनः) अस्माकं सर्वेषां सकुटुम्बिनां बन्धुबान्धवादीनां पशु गोष्ठयादिकानाञ्च इह जन्मनि जन्मान्तरे वा कृत कायिक वाचिक मानसिक दुरित ध्वंस पुरस्सर ब्रह्महत्यादि पाप, स्वर्ण स्तेयादि पाप, विविध शाप ताप, नैर्ऋति, कृत्या, वशा, क्रव्यात् अभिचारजनित वैकृत्यादि दोष यक्ष गन्धर्व अप्सरा, यातुधान, असुर, पिशाचादि उन्मादजनित समस्त विकार क्षेत्रीय दोष यम वरुणादि विविध पाशजनित विकार ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मदण्ड ब्रह्मशिरा पाश्वपदास्त्र इन्द्र कुलिश त्रिशूल तिग्मेहेति दिव्यायुधजनित रक्तस्रावादि विविध विकार जन्मलग्नाद् वर्षलग्नाद् मासलग्नाद् चतुर्थाष्टम द्वादश त्रिक मारकादिस्थानास्थित सूर्यादि क्रूरग्रह तज्जनितारिष्ट निवृत्तिपूर्वक अष्टोत्तरी विंशोत्तरी, योगिनी दशा अन्तर्दशा प्रत्यन्तर्दशा सूक्ष्म प्राणदशा दिन दशादि तज्जनितारिष्ट निवृत्तिपूर्वक ज्वरपीड़ा दाहपीड़ा नेत्रकर्णोदरादि पीड़ा निवृत्तिपूर्वक अल्पायु निवृत्तिपूर्वक आधिदैविक, आधिभौतिक आध्यात्मिक क्लेश वन्ध्यात्व नपुंसकत्व गर्भस्राव मृतापत्यादि दोष दाम्पत्यद्रोह गुरुपितृमातृद्रोह ईर्ष्यादि उपशमनपुरस्सर अहंसोन्मूलने दौर्भाग्यनाशने, अर्थोत्थापने, कृषि पशुसम्वर्द्धने, मेधाजनने पौष्टिके स्वस्त्ययने, ब्रह्मवर्चसे, दीर्घायुष्ये, विविध अद्भुत् वैकृति तारका उपतारका उल्कापात कपोतकाकगृद्धादि अद्भुत दुरित जनित समस्त क्लेश उपशमनार्थे वृहच्छान्तिके ऋग्वेदस्य अमुक मन्त्रस्य दशसहस्रसंख्याकं जपं एकचत्वारिंशत् दिन पर्यन्तं करिष्ये।

(यदि स्वयं के लिए करना हो तो करिष्यामि कहे।)

विनियोग – ॐ अस्य ऋग्वेदस्य दशममण्डलस्य त्रिंशदधिकं एक-शतं सूक्तस्य यज्ञप्रजापत्यः ऋषिः। भाववृत्तप्त देवता। जगती त्रिष्टुप् छन्दांसि। (अमुक प्रयोजने) असाध्यरोग निवारणार्थे, अपमृत्युशमनार्थे जपे विनियोगः।

मन्त्र

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः।
इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्रवयाय वयेत्यासते तते।।१।।
पुमां एन तनुत उत कृणत्ति पुमान् वितत्ने अधिनाके अस्मिन्।
इमे मयूखा उप सेदुरू सदः सामानि चक्रुस्तसराण्योतवे।।२।।
कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत् परिधिः क आसीत्।
छन्दः किमासीत् प्रउगं किमुक्थं यद् देवा देवमयजन्त विश्वे।।३।।
अग्नेर्गायत्रभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता स वभूव।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान् बृहस्पतेर्वृहती वाचमावात्।।४।।
विराण्मित्रावरुण योरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुविह भागो अह्नः।
विश्वान् देवाञ्जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्त ऋषयो मनुष्याः।।५।।
चाक्लृप्ते तेन ऋषयो मनुष्या यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे।
पश्यन् मन्ये मनसा चक्षसा तान् य इम यज्ञमयजन्तपूर्वे।।६।।
सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः सहप्रमाऋषयः सप्त दैव्याः।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन्।।७।।

२. वरुणपाश, शाप, निर्ऋति दोषों की शान्ति के लिए ऋग्वेद के दशवें मण्डल सूक्त १२९ नासदीय सूक्त के सातों मन्त्रों का जप पीपलवृक्ष के नीचे १० हजार जपने से पाप, शाप, ताप, पाश, दुरित दोष, दुर्गति, जलोदर, यक्ष्मा रोग तथा समस्त असाध्य रोग दूर होते हैं।

संकल्प आदि पूर्व की भाँति करे। विनियोग इस प्रकार है–

विनियोग – ॐ अस्य ऋग्वेदस्य दशममण्डलस्य एकोनत्रिंशदधिकं एकशतं सूक्तस्य प्रजापति ऋषिः। भाववृत्तम् देवता। त्रिष्टुप् छन्दः अमुक प्रयोजने जपे विनियोगः।

मन्त्र

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् नहन गभीरम्।।१।।

न मत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अहन आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास।।२।।
तम आसीत् तमसा गूलहमग्नेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छयेनाश्वपिहित यदासीत् तपसस्तन्महिनाजायतकम्।।३।।
कामस्तदग्रे समवर्ततधि मनसोरेतः प्रथम यदासीत्।
सतोबन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।।४।।
तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन् महिमान आसन् त्स्वधा अवस्तोत् प्रयतिः परस्तात्।।५।।
को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाऽद्या को वेद यत् आवभूव।।६।।
इयं विसृष्टिर्यत आवभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमम्त्सी अङ्गवेद यदि वा न वेद।।७।।

३. कथा देवानां कतमस्य यामनि सुमन्तु नाम श्रृण्वतां मनामहे।
. को मृलाति कतमो नो मयस्करत् कहम ऊतो अभ्यावर्वर्तति।।

(ऋग्वेद १०।६४।१)

पूर्वोक्त संकल्प, विनियोगादि करके इस मन्त्र को पीपल मूल का स्पर्श करके २१ दिन तक प्रतिदिन १ हजार जप करने से प्रारब्धगत असाध्य रोग दूर हो जाता है।

४. क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनन्ति वेनाः पतयन्त्या दिशः।
न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो देवेषु मे अधि कामा भयं सत।।

(ऋग्वेद १०।६४।२)

इस मन्त्र को पीपल वृक्ष के नीचें बैठकर ११ दिन तक प्रतिदिन १ हजार जप करने से दुर्भाग्यजन्य समस्त अरिष्टों का शमन होता है।

५. इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव।।

(ऋग्वेद १।९४।१)

इस मन्त्र को शिव मन्दिर में जाकर भगवान् शंकर की पूजा करके प्रतिदिन १०८ बार २१ दिन तक जपने से समस्त व्याधि तथा अकालमृत्यु से रक्षा होती है।

६. अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि स जयामि शश्वतः।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे विभजामि भोजनम्।।१।।

अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वणास्त्रिताय गा अजनय महेरधि।
अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमा ददे गोत्रा शिक्षन् दधीचे मातरिश्वने।।२।।
मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम्।
ममानीक सूर्यस्येव दुष्टरं मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च।।३।।
अहमेतं गव्ययमश्वव्यं पशुं पुराषिणं सायकेना हिरण्मयम्।
पुरु सहस्रा नि शिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमान्दिषुः।।४।।
अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदाचन।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिपाथन।।५।।
अहमेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वेन्द्रं ये वज्रं युधयेऽकृण्वत्।
आह्वयमानां अवहन्मनाहन दृलहा वदन्नमस्युर्नमस्विनः।।६।।
अभीदमेकमेको अस्मि निष्पालभी द्वा किमु त्रयः करन्ति।
खले न प्नर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्तिशत्रवोऽनिन्द्राः।।७।।
अहं गुं गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करमिषं न वृत्रतुरं विक्षु धारयम्।
यत् पर्णयघ्न उत वा करञ्जहे प्राहमहे वृत्रहत्ये अशुश्रवि।।८।।
प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भुद्न वा मेषे संख्या कृणुत द्विता।
दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयमादिदेनं शंस्यसुक्थ्यं करम्।।९।।
प्र नेमस्मिन् ददृशे सोमो अन्तर्गोपा नेममाविरस्था कृणोति।
स तिग्मशृङ्गं वृषभ युयुत्सन् द्रुहस्तस्थौ बहुले वद्धो अन्तः।।१०।।
आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनानि दाम।
ते मा भ्रदाय शवसे ततक्षुरपराजितमस्तृतमषालहम्।।१।।

(ऋग्वेद १०।४८।१-११)

इन मन्त्रों का ४१ दिन पर्यन्त १०८ बार पीपल वृक्ष के नीचे जप करने से वृत्ति, पापाचरण की बुद्धि, हीनभावना, चोरी आदि की वृत्ति, पाप, दोष तथा अल्पायु ादि दोष दूर होते हैं तथा सौभाग्य का उदय होता है। संकल्प विनियोगादि पूर्वोक्त ति से कर लेना चाहिए।

. इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि।। (ऋग्वेद १०।८५।४५)

इस मन्त्र को प्रातः एवं सायं प्रतिदिन १०८ बार अर्थात् १ माला प्रातः १ माला ायं २१ दिन तक जप करने से बुद्धिमान्, तेजस्वी, दीर्घायु तथा यशस्वी पुत्र पैदा ोता है। प्रतिदिन इस मन्त्र को जपने के पश्चात् पुनः –

८. अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः।
वीरसर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।

(ऋग्वेद १०।८५।४४)

इस मन्त्र को पढ़ते हुए पति अपनी पत्नी के सिर पर दाहिना हाथ रखकर २१ दिन तक आशीर्वाद दे।

९. सम्राज्ञीश्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।। (ऋग्वेद १०।८५।४६)

इस मन्त्र का जप यदि कोई स्त्री नित्य संयम रखकर १०८ बार प्रातः एवं सायं जप करे तो उसे तेज, पातिव्रत, सुख, सौभाग्य तथा समृद्धि की अत्यधिक वृद्धि होती है।

१०. समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ।। (अथर्ववेद १०।८५।४७)

इस मन्त्र को ४१ दिन तक नित्य एक हजार जपने से दाम्पत्य सुख प्राप्त होता है। अलगाव, तनाव, तलाक, असन्तोष आदि पति–पत्नी में नहीं होता है। सुख सौभाग्य आदि की अभूतपूर्व वृद्धि होती है।

११. इन्द्र पिव तुभ्यं सुतो मदायाऽव स्य हरी विमुचा सखाया।
उत प्रगाय गण आ निषद्याऽथा यज्ञाय गृणते वयो धाः।।

(ऋग्वेद ६।४०।१)

इस मन्त्र को नित्य १०८ बार जपने से पुत्र की दुर्बुद्धि, दुष्प्रकृति, बुद्धिमान्द्यता, अल्पायु तथा संकट एवं दुर्घटना से रक्षा होती है। यदि कोई बालक या बालिका गूँगी, बहरी हो तो वह भी बोलने-सुनने लगती है। कोई लड़का अवारा हो, प्रमादी हो दुर्व्यसनी, शराबी, जुआड़ी हो, घर में उपद्रव करता हो तो इस जप से समस्त दोषों का शमन हो जाता है।

१२. अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन्।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दु समह्यन् पीतये समस्मै।।

(ऋग्वेद ६।४०।२)

इस मन्त्र का नित्य १०८ बार जप करने से भाइयों में परस्पर वैरभाव नष्ट होकर अनन्य प्रेम होता है।

१३. आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोम पेयम्।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नो ऽधा ते यज्ञस्तन्वे वयो वात्।।

(ऋग्वेद ६।४०।४)

इस मन्त्र का नित्य १०८ बार जप करने से वाणी की सिद्धि प्राप्त होकर वाग्मिता प्राप्त होती है। परीक्षा में सदैव प्रथम स्थान प्राप्त होता है।

१४. यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्यद् वा स्वे सदने यत्र वासि।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्त्सजाषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः।।

(ऋग्वेद ६।४०।५)

इस मन्त्र का नित्य प्रातः तथा सायं १०८ बार जप करने से शरीर के अधिष्ठातृ देवता का अनुग्रह प्राप्त होता है तब कार्यसिद्धि हो जाती है।

१५. सुगो हि वो अर्यमन् मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति।
तेनादित्या अधिवोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म।।

(ऋग्वेद २।२७।६)

इस मन्त्र का नित्य १०८ बार जप करने से हृदय रोग, दुर्बलता, धड़कन, हृदयशूल, हृदय का घाव, हृदय छिद्र तथा अनेक संकट दूर होते हैं।

१६. रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः।
विश्वा अधि श्रियोऽधित।। (ऋग्वेद १०।१२७।१)

इस मन्त्र का प्रतिदिन १०८ बार पीपल वृक्ष के नीचे रात में जपने से भूत प्रेत की बाधा, सांप आदि विषैले जन्तु तथा हिंसक जीवों का भय दूर हो जाता है। प्रतिदिन मन्त्र जप पूरा करके पीली सरसों अभिमन्त्रित करके घर के भीतर एवं बाहर बिखेर दे। यह क्रिया ४० दिन पर्यन्त करनी चाहिए।

१७. इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामह मतीः।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं गामे आस्मिन्ननातुरम्।।

(ऋग्वेद १।११४।१)

इस मन्त्र से बरगद की लकड़ी और घी से १०८ बार आहुति ३ दिन तक रोगी के पास देने से समस्त ज्वर एकाहिक, द्व्याहिक त्र्याहिक, चातुर्थिक, महाज्वर अथवा अन्य सभी प्रकार के ज्वर शान्त हो जाते हैं।

१८. अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् सखा सुशेव एधि नः।।१।।
यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे।

वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप सक्वेषु वप्सयो निषु स्वप्न।।२।।
स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनः सर।
स्तोतृ निन्द्रस्य रायसि किमस्मान् दुच्छुनायसे निषु स्वप्न्।।३।।
त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः।
स्तौतृ निन्द्रस्य रायसि किमस्मान् दुच्छुनायसे नि षु स्वप्न्।।४।।
सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः।
ससस्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः।।५।।
य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा।।६।।
सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्।
तेना सहस्येना वयं नि जनान् त्स्वापयामसि।।७।।
प्रोष्ठेशया वह्येशया नारी र्यास्तल्पशीवरीः।
स्त्रियो याः पुष्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि।।८।।

इन मन्त्रों को १०८ बार प्रतिदिन किसी प्रतिष्ठित भगवान् शंकर जी के मन्दिर में ३० दिन पर्यन्त जप करके अन्त में ३ माला अर्थात् ३२४ बार इन मन्त्रों से हवन करने से भयंकर कुष्ठ रोग दूर हो जाता है।

१९. ॐ सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसो वाचमक्रत।
अत्रा सखाया सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि।।

(ऋवेद १०।७१।२)

इस मन्त्र का जप प्रतिदिन १०८ बार पीपल वृक्ष के नीचे ४१ दिन तक करने से पारिवारिक शाप तथा अपना एवं परिवार भर का दुर्भाग्य नष्ट हो जाता है एवं स्थिर लक्ष्मी वसती हैं।

२०. महित्रीणामवोऽस्तु द्युक्षँ मित्रस्यार्यम्णः दुराधर्ष वरुणस्य।
न हि तेषामसा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशंसः।।२।।
यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मत्वीय।
ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम्।।३।। (ऋग्वेद १०।१८५।१-३)

इन मन्त्रों का जप ५४० बार प्रतिदिन फाल्गुन महीने पर्यन्त प्रतिपदा से आरम्भ कर पूर्णिमा तक ३० दिन पर्यन्त आँवला वृक्ष के नीचे करने से अपवाद, कलंक, मिथ्यापवाद, पाप, शाप, ताप तथा अनेक प्रकार की व्याधियों, संकटों से मुक्ति मिलती है तथा उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त होता है।

२१. बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा तिरः पुनर्नेषदघशंसाय मन्म।
क्षिपदश्स्तिमप दुर्गति हस्त्रथा करद्यजमानाय शं यो।।

(ऋग्वेद १०।१८२।१)

इस मन्त्र को प्रतिदिन १०८ बार पीपल वृक्ष के नीचे २१ दिन तक जपने से परिवार के मरे हुए लोगों को मुक्ति मिलती है। विनियोग करते समय मृतक व्यक्तियों के नाम अपना सम्बन्ध बताते हुए करना चाहिए।

२२. तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रोरमन् तुभ्यमिमे सुतासः।।१।।
तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वा त्या आह्वयन्ति।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोतम्।।२।।
य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्त मिच्चारुमस्मै कृणोति।।३।।
अनुस्पष्टो भवत्येषो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम्।
निग्रत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः।।४।।
अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम।।५।।

(ऋग्वेद १०।१६।१-५)

इन पाँचों मंत्रों का मकर संक्रान्ति के दिन शंकर जी के मन्दिर में बैठकर जितना जपा जा सके जपने से एक ही दिन के जप से मृगी (मिरगी), मूर्च्छा आदि रोग दूर हो जाता हैं।

व्याधि नाशन यजुर्वेदीय मन्त्र

१. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्।
उर्व्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः।। (यजुर्वेद ३।६०)

पति से पीड़ित महिला द्वारा स्वयं अथवा किसी वेदज्ञ विद्वान् के द्वारा इस मन्त्र का प्रतिदिन एक हजार जप ४१ दिन पर्यन्त शिव मन्दिर में करने से पति की प्यारी तथा सौभाग्ययुक्त हो जाती है।

२. रक्षोहणं बलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं बलगमुत्किरामि यं म निष्टयो यममात्मो निचखानेदमहं त बलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यम सबन्धुर्निखानेदमहं

तं बलमुत्किरामि य मे सजातो यमसजाते निच खानोत्कृत्यां कित्या किरामि।।२३।।

स्वराडसि सपलहासत्रराऽस्यभिमातिहा जनराऽसिरक्षोहा सर्वराऽस्य मित्रहा।२४।।

रक्षोहणी वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान क्षोहणो वो बलगहनोऽवनयामि वैष्णवान्क्षोइणौ वो बलागहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान् क्षहणो वां बलगहना उपदधामि वैष्णवी रक्षहणी वां बलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ।।२५।। (यजुर्वेद ५।२३-२५)

इस मन्त्र का प्रयोग किसी भी प्रकार का संकट उपस्थित हो शत्रुओं का प्रकोप बढ़ गया हो, प्रेतादि बाधाएँ घर में उपद्रव कर रही हों तो इन मन्त्रों को प्रतिदिन १०८ बार जपना चाहिए। यह सद्यः लाभकारी है।

३. योऽअस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः।
निन्दाद्योऽअस्मान् धिप्साच्चसर्वं तं भस्मसा कुरु।।
(यजुर्वेद ११।८०)

शत्रुओं से, चोर, डाकुओं से घिर जाने पर, हिंसक जीवों के आक्रमण करने पर इस मन्त्र का उच्चारण करने से अथवा उच्च स्वर से पढ़ने मात्र से भय से रक्षा हो जाती है।

यहाँ तक कर्मज व्याधियों के शमनार्थ वेदों में प्रयुक्त मन्त्रों का संकल्प, विनियोग आदि करके प्रयोग करने से निश्चित ही संकटों से रक्षा होती है का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया। अब वेदों के अनुसार होनेवाली मिथ्या आहार-विहारजन्य व्याधियों के शमन हेतु उपचार लिखा जा रहा है। यद्यपि इन रोगों के शमन हेतु योग्य तपस्वी वैद्य, चिकित्सक के परामर्श से ओषधियों का प्रयोग करना चाहिए तथापि वेदों में वर्णित ओषधियों, वनस्पतियों द्वारा रोग शमनार्थ स्वयमेव प्रयोग किया जा सकता है। सर्वप्रथम ओषधियों का परिचय प्राप्त कर लिया जाना चाहिए।

वेदों में ओषधियों के विविध प्रकार उनके जातिभेद, वर्गभेद, स्वरूप और गुण धर्मों का प्रतिपादन किया गया है। अथर्ववेद के काण्ड ८, सूक्त ७ में ओषधियों का जातिभेद इस प्रकार है।

रंग भेद – भूरे रंगोंवाली, शुभ्र श्वेत रंगवाली, लाल रंगवाली चितकबरी, नीले रंगवाली तथा काले रंगवाली ओषधियां होती हैं।

स्वरूप भेद से – मूल से ही अलग-अलग शाखाओं में फैलनेवाली जैसे

अनार, मेंहदी आदि ओषधियाँ। एक मूलवाली जैसे आक – मदार आदि ओषधियाँ। फैले हुए मूलवाली जैसे – ब्राह्मी ओषधि, काँटोंवाली जैसे जवासा, कटेली, नागफनी आदि ओषधियाँ। सूक्ष्म अवयवोंवाली जैसे – थूहर, झोऊ ओषधियाँ। काण्डों (पोरों) वाली जैसे – सरपत, नरकट, सरकण्डा, ईख, बेत आदि ओषधियाँ। शाखारहित, जैसे – नारियल, सुपाड़ी, खजूर, ताड़ आदि ओषधि वृक्ष (८।७।४)

गुण भेद से – जीवनदेने वाली ओषधि। किसी हालत में हानि न पहुँचाने वाली ओषधि। स्वयं जीवनी-शक्ति रखनेवाली ओषधि। आन्तरिक मर्मस्थानों को शक्ति देनेवाली ओषधि। बाहरी घावों को भरनेवाली ओषधि। उन्नत करने वाली ओषधि। फूलों वाली ओषधि। मधुर रसवाली ओषधि। (८।७।६)

संशोधन तथा स्नेहन वर्ग की ओषधियाँ – प्रचेतसाः (चेतना प्रदान करने वाली) और मेदनीः (दोषों को हटाकर शुद्धता, स्निग्धता लानेवाली ओषधियाँ) (८।७।७)

उपयोग भेद से – जो पुनर्भवा हों अर्थात् बार-बार नये रूप में उगनेवाली हों। अग्नेर्घासः – अग्नि के भोजन रूप हों। अपां गर्भः – जलों का सार रूप हों। ध्रुवाः – स्थिर प्रभाववाली हों। सहस्रनाम्नीः – हजारों नामोंवाली ओषधियाँ रोग भेद से उपयोग में लायी जानी चाहिए (८।७।८)।

जलीय ओषधियों की उत्पत्ति भेद से जाति – अवकोल्वा – जिन ओषधियों में काई (सेवार) लिपटी रहती है। उदकात्मनः – जलमय जल से उत्पन्न ओषधियाँ। तीक्ष्णशृङ्ग्यः जिनके पत्तों के अग्रभाग सूक्ष्म होते हैं। (८।७।९)

विषनाशक ओषधियों का वर्ग – **विषरुणाः** – ग्राह्य। उग्राः – तीव्र गन्ध रसवाली।

विषदूषणीः– विषनाशक। बलासनाशनी – कफ – बलगम नाश करनेवाली।

कृत्यादूषणी – कृत्या अभिचार दोषों को दूर करनेवाली ओषधियाँ (८।७।१०)।

अन्न देनेवाली, दूध देनेवाली, घास, घृत देनेवाली, स्निग्ध ओषधियों के तीन वर्ग – इन ओषधियों का मूल गुणकारी होता है। इनकी फुनगी (ऊपरी भाग) गुणकारी होता है। इनका मध्य भाग गुणकारी होता है। इनके पत्ते गुणकारी होते हैं। इनके फूल गुणकारी होते हैं। मधुर गुणवाले जल से सींची हुई ये ओषधियाँ अमृत का भागप्रद भंडार हैं। इनसे घी, अन्न और दूध का दोहन करना चाहिए (८।७।१२)।

पत्तों वाली ओषधियों का वर्ग – पृथ्वी पर जितनी ओषधियाँ हैं वे सहस्र पर्णोंवाली हैं। मृत्युरूप रोग से मुक्त कराती हैं (८।७।१३)।

ओषधियों की मणियों के गुण – ओषधियों की मणि (बटी, गोली) सिंह जैसे प्रभावकारी रोगों से बचाती है। देहक्षति से रक्षित रखती है। रोगों को और समस्त विषकृमियों को दूर करती है (८।७।१४)।

ओषधि – मणि का तात्पर्य ओषधि की वटी या गोली से है। कौटिल्य अर्थशास्त्र (अधि०१४।प्र०१७९) का यह सूत्र भी प्रमाणित करता है –

जीवन्तीश्वेतामुष्कपुष्पवन्दाकानामक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य मणिः सर्वविषहरः।

महोषधि वर्ग की ओषधियाँ – वृक्षों में अश्वत्थ (पीपल), तृणों में दर्भ (दाभ, कुश), लताओं में ओषधिराज सोमलता, प्राकृतिक द्रव पदार्थों में जल (अमृत), जङ्गमज वस्तुओं में घृत-सेवन तथा घृत हवन, अन्नों में जौ और चावल, आकाशीय भेषज रूपों में सूर्य और चन्द्र महोषधि हैं (८।७।२०)।

यहाँ पर अथर्ववेद दो प्रकार की चिकित्सा का संकेत करता है – १. प्राकृतिक चिकित्सा २. ओषधि चिकित्सा।

पशु-पक्षियों तथा मनुष्यों द्वारा उपयोज्य भेद से ओषधियों का वर्गीकरण – अथर्ववेद के अध्याय ८ सूत्र ७ के वराहो वेद वीरुर्ध इस २३वें मंत्र से लेकर यावतीषु मनुष्याभेषर्जभिषज्जो विदुः – इस २६वें मंत्र तक पशु-पक्षियों, मनुष्यों द्वारा उपयोज्य ओषधियों का वर्ग बनाया गया है।

आकारभेद से ओषधियों का वर्ग – पुष्पवतीः – फूलोंवाली। प्रसूमतीः फूलों से रहित किन्तु पल्लवाङ्कुरोंवाली। फलिनीः – फलवाली। अफला – फल रहित (८।७।२७)

अथर्ववेद में पृथिवी (मिट्टी), पर्वत, जल, नदी, स्रोत, मेघवृष्टि, अग्नि, बिजली, वायु, सूर्य, चन्द्र – इन प्राकृतिक पदार्थों से प्राकृतिक चिकित्सा का विधान बताया गया है। जैसे –

१. पृथिवी (मिट्टी)	सर्प विष को चूसने का गुण मिट्टी में रहता है।
२. पृथिवी-संषत् (ऊसर, पड़ती जमीन)	रेह मिट्टी में कफ, खाँसी दूर करने का गुण है।
३. देवी (सौराष्ट्रमृत्तिका)	सौराष्ट्र मृत्तिका केशों को काला और लंबा बनाती है और स्थावर विषों को दूर करती है।
४. उपजीकोद्भृत (बाँबी की मिट्टी)	बाँबी की मिट्टी में नासूर का घाव भरने तथा नशा करनेवाले स्थावर विषों को दूर करने, मूर्च्छा, भय और सर्प विष नष्ट करने का गुण है।

५. गिरि (ऊँचे टीले) पर्वत (पहाड़)	ऊँचे टीले तथा पहाड़ पर दौड़ते हुए चढ़ जाने से सर्प का विष तुरन्त उतर जाता है।
६. जल आपः, महत् (कुएँ का जल) नदी-स्रोत (बहता हुआ जल), अवत्क (ऊँचे से गिरता हुआ जल) शतवृष्ण्य (मेघ-जल)	जल में सद्योव्रण (तुरन्त घाव) भरने, स्वप्नदोष, निद्राक्षय, वंशानुगत रोगों को दूर करने का अनुपम गुण है। नदी के बहते हुए पानी में डुबकी लगाने से सर्पविष दूर होता है, नेत्र दृष्टि बढ़ती है। झरने के पानी से हृदयशूल, हृदय दाह, नेत्रदाह दूर होता है। नये खोदे हुए कुएँ का जल, ऊँचाई से गिरता हुआ जल व्रणस्राव नाशक है। मेघ-वृष्टि का जल मूत्रावरोध, पथरी तथा मूत्राशय, पित्ताशय के समस्त रोग दूर करता है। अथर्ववेद ने जल को रसायन कहकर समस्त रोगों को दूर करनेवाला बताया है।
७. अग्नि अग्नि (सामान्य अग्नि) भूरिधायस पर्जन्य (पार्थिव अग्नि) होता (हवन की अग्नि)	अग्नि शीत रोग को दूर करती है, सर्प विष को जला (दाग) कर नष्ट करती है। कृमियों से दूषित आहार को शुद्ध करती है। मूत्रावरोध को दूर करती है। गर्भवती को सुख-प्रसव कराती है। इसमें रासायनिक गुण रहते हैं।
८. विद्युत् इन्द्र विद्युत् (वज्राग्नि) वरुण विद्युत (विद्युतधारा)	विद्युत से समस्त रोग दूर होते हैं। खासकर भोजन में कृमि-दोष को दूर करती है। रुके हुए पेशाब को खोलती है।
९. वायु मरुत् (साधारण वायु) वेधा (मौसमी हवा) बृहस्पति (ऊर्ध्व वायु) मित्र (यंत्र प्रेरित वायु)	वायु रसायन है। स्वास्थ्यप्रद है। शरीर के अन्दर भेषज्य प्रभाव डालता है। सुख से प्रसव कराता है। सभी प्रकार के रोगों को दूर करता है। रुके हुए पेशाब को निकालता है।
१०. मेघ वृषा (बादल)	गरज के साथ बरसता हुआ पानी और मेघ-गर्जन सर्प विष को दूर करता है।
११. चन्द्र (चन्द्रमा)	चन्द्रमा की चाँदनी रुके हुए मूत्र को बाहर निकालती है और क्षेत्रीय (वंश परम्परागत) रोगों को दूर करती है।

१२. सूर्य अर्यमा सविता आदित्य	हृदय रोग, हलीमक, कामला, अपची (गण्डमाला) और शिरोरोग को सूर्यकिरणें नष्ट करती हैं। सभी विषैले जन्तुओं का विष दूर करता है। कृमि नाशक हैं। क्षेत्रीय रोग तथा सभी प्रकार के रोग. सूर्योपासना, सूर्यस्नान, सूर्यव्यायाम से दूर होते हैं।

ओषधि निघण्टु

अथर्ववेद में जिन ओषधियों के नाम दिये गये हैं उनके मूल नाम, गुण-धर्म इस प्रकार हैं –

अथर्ववेदीय नाम	प्रसिद्ध नाम	गुण और धर्म
१. अग्नि	चित्रक या चीता	योनि दोष, गर्भ संस्राव, जातघातक रोग तथा गर्भाशय के कृमियों का नाशक है।
२. अङ्ग	सुगंधकोल, अगर	ज्वर नाशक।
३. अजशृंगी	मेढ़ा सिंगी	विषाक्त कृमि नाशक, भूतोन्माद नाशक।
४. अदिति	गाय का घी, दूध आदि पंचगव्य	सर्प विष को दूर करता है।
५. अपामार्ग (श्वेत अपामार्ग, रक्तअपामार्ग)	चिचिड़ा (सफेद और लाल)	श्वेत अपामार्ग अरुचि, मन्दाग्नि, ग्लानि, सन्तानस्तम्भन दूर करता है। रक्त अपामार्ग तृष्णा रोग, भस्मक रोग, पुरुषेन्द्रिय की निर्बलता को दूर करता है। अपामार्ग गुदा, लिंग और योनि के रोगों–बवासीर–भगन्दर आदि दूर करता है। मुख और नाक के अर्बुदों को दूर करता है। स्वप्न दोष, निद्राक्षय, जीवन की निर्बलता, अक्रान्ति को दूर करता है। वीर्य स्तम्भक और बाजीकरण है। संक्रामक रोगों को दूर करता है।

६. अर्क	आक, आकड़ा	पुरुष की मूत्रेन्द्रिय में हर्ष और वृद्धि करता है। बाजीकरण औषधि है।
७. अर्जुन काण्ड	अर्जुनवृक्ष, कुहवृक्ष, कौहा	क्षेत्रीय रोग नष्ट करता है तथा क्षेत्र (खेत) के अनुपज दोष को इसकी भस्म नष्ट करती है।
८. अश्वत्थ शमीस्थ	शमीवृक्ष पर लगा हुआ पीपल वन्दा	गर्भ स्थापन कराता है। पुरुष द्वारा खाने से पुत्र उत्पन्न होता है। स्त्री द्वारा खाने से गर्भ में लड़की होती है। पुरुष के वीर्य और स्त्री के रज को विशुद्ध और पुष्ट बनाता है।
९. अश्ववार	काँस	सर्प काटे विष का बन्धक (रोकनेवाला) है।
१०. असिक्री	नलिनी पानील	सफेद बालों को काला करती है और श्वेत कुष्ठ, गलित कुष्ठ को दूर करती है।
११. अञ्जन	बुन्देलखण्ड, मध्य प्रदेश में पाया जाने-वाला अञ्जन वृक्ष, सुरमा का वृक्ष	हलीमक-पाण्डु रोग, विषयभोगजन्य रोग, विसर्प रोग, हृदय और श्वास रोग दूर करता है। आयुवर्द्धक है।
१२. आञ्जनमणि	अञ्जन-सुरमा	इसकी वटी सर्पविष दूर करती है। स्थावर विष नष्ट करती है। मृगी, मूर्च्छा दूर करती है। स्वप्न दोष, निद्राक्षय दूर करती है। विषैले कीटाणु नष्ट करती है। पाण्डुरोग, क्षयरोग, मानसिक रोग, हृदयरोग, श्वास, दमा रोग, नेत्र रोग नष्ट करती है। पशुओं को पुष्टि प्रदान करती है। सन्तान शक्ति देती है।

१३. आसुरी	सफेद सरसों	श्वेत कुष्ठ, गलित कुष्ठ दूर करती है। स्त्रियों का सौन्दर्य बढ़ाती है।
१४. इन्द्र	इन्द्रायण (इँदोरन)	उछलनेवाले, लिपटनेवाले, फुफकारनेवाले और तिरछी रेखा-वाले साँपों का विष दूर करती है। सभी प्रकार के सांपों के विष का शमन करती है।
१५. उपजीका उपजीकानुषिक्त	दीमकों का मुखस्राव	स्थावर नशे से व्याप्त नशे को दूर करता है।
उपजीका, उपजीकोद्मृत	दीमकों की बाँबी की मिट्टी	व्रणस्राव को नष्ट करती है।
१६. ऋषभ	अष्टवर्ग की एक ओषधि	बाँझपन और गर्भपात को दूर करती है। गर्भस्थापन की शक्ति देती है।
१७. औक्षगन्धि	वृष्यगन्धावला	भूतोन्माद और जहरीले कीड़ों का विष दूर करती है।
१८. औदुम्बरमणि	गूलर वटी	पुष्टि, बल, सन्तानोत्पादन शक्ति प्रदान करती है।
१९. कनन्कक	सोहागा	सर्प विष नाशक है।
२०. कन्या	बड़ी इलायची	इसकी जड़ सर्प विष नाशक है।
२१. कल्याणी	माषपर्णी	बाजीकरण ओषधि है।
२२. कश्यप वीवर्ह	चमरी मृग की पूँछ	इसका झोल सभी रोगों में हितकर है।
२३. कान्द विष	कन्द विष	सर्व विषनाशक
२४. कुमारिका	बाँझककोड़ा	फलरहित यह ओषधि सर्व विषनाशक है।
२५. कुषुम्भक	कुसुम्भ, कुसुम	सर्व विषनाशक।

२६. कुष्ठ	कूट	मौसमी बुखार, तिजारी, चौथिया बुखार सिर के, नेत्र के रोग दूर करता है।
२७. केशवर्धिनी	भृंगराज, भाँगरा, भँगरैया	कान्ति, तेज, वीर्यवर्द्धक, केशों को काला कान्तियुक्त बनाती है।
२८. गन्धारि	कचूर	ज्वरनाशक
२९. गुल्गुल	गूगल	वात विकार, शापवृत मानसिक रोग, खेद, संक्रामक रोग, कृमिजन्य रोग तथा भूतोन्माद-नाशक है।
३०. घृताची	बड़ी इलायची	कन्या के गुण में लिखा जा चुका है।
३१. चीपद्रु	चीड़ वृक्ष	सब प्रकार के फोड़े, फुन्सी और पिदध्रि रोग नाशक है।
३२. जङ्गिडमणि	सहदेवी रस क्रियावटी	समस्त मानसिक रोगों को दूर करती है, आमवात, वातव्याधि, स्नायुदौर्बल्य, देहह्रास, शोथ, शोष, शरीर का फटना, धातुओं वेक विकार, कमजोरी आदि शारीरिक, मानसिक रोगों को दूर करती है। वृत्या–विष को नष्ट करती है, बल वीर्य, ओज को बढ़ाकर दीर्घायुष्य प्रदान करती है।
३३. जीवन्ती	जीवन्ती	जीवनदायिनी, आयुवर्द्धिनी, शक्तिप्रदायिनी

३४. जीवला	सिंह पिप्पली	पशुओं के रोग दूर करती है।
३५. तरुणक	एक प्रकार का तृण जिसे रोहिष, रोहासा, बड़ी तिखाड़ी, और भ्रष्ट नाम से पुकारा जाता है	साँप काटने पर इसे बाँध दिया जाय तो विष उतर जाता है।
३६. तस्तुव	कड़वी तुम्बी-तुरई	सर्पविष नष्ट करती है।
३७. ताबुब	कड़वी तुम्बी-तुरई	सर्पविष नष्ट करती है।
३८. तिलपिञ्जी	तिलों की मंजरी	जन्मजातरोगों, पैतृकरोगों को नष्ट करती है और तिल के नाल की भस्म अनुपजाऊ खेत को उपजाऊ बनाती है।
३९. तौदी	बड़ी इलायची	इसके गुण-धर्म कन्या में लिखे जा चुके हैं।
४०. दर्भ	कुश	साँप काटने पर कुश बाँधने से विष नहीं चढ़ता है।
४१. दर्भमणि नमः अभ्रक	अभ्रकवटी	जरामृत्युनाशक रसायन, ज्वर नाशक। प्रसूति रोग, गर्भ भक्षक कृमिरोग, मृत-वत्सता, पैदा होते ही शिशु का मर जाना आदि रोग इससे नष्ट होते हैं।
४२. दशवृक्ष	दशमूल	प्रसूता को शक्ति देता है, पुत्रोत्पत्ति की शक्ति देता है, सन्धिवात, अपस्मार रोगों को दूर करता है।
४३. दासी	काकजंघा	ज्वरनाशक।
४४. दृति	जोंक नाम का, जलचरजीव	सर्प के विष को चूस लेता है, रक्त विकार को चूसता है।
४५. देवी	सौराष्ट्र मृत्तिका (गोपी	केशों को लंबा और काला करता

	चन्दन)	है।
४६. नघमार	मीठा कूट	सन्ततज्वर, तिजारी, मौसमी बुखार, मलेरिया ज्वर को दूर करता है।
४७. नघारिष	कड़ुवा कूट	इसके भी गुण मीठाकूट के समान हैं।
४८. नलदी	जटामासी	कृमिनाशक, विषनाशक, रक्तचाप और हृदय रोग नाशक है।
४९. परुषवार	मूँज	साँप काटने पर बाँध देने से विष नहीं चढ़ता।
५०. पर्जन्य	दारु हल्दी	सर्प विषनाशक।
५१. पलित	सोमवल्ली के पत्तों की वटी	बहुत बड़ा रसायन है।
५२. पाटा	पाठा, पाढ़	शस्त्राघात के घाव की अमोघ औषधि है।
५३. पिङ्ग	हरिताल	प्रसूतिरोग नाशक, गर्भभक्षक कृमि-नाशक, मृतवत्सता, सन्तान मर जाने-वाले रोगों को दूर करता है।
५४. पिप्पली पीला मगध	छोटी पीपर, बड़ी पीपर	आक्षेपक वात, पक्षाघात, गठिया, वात व्याधि, ज्वर, कृमि और भूतोन्माद को दूर करती है।
५५. पृश्निपर्णी	पृष्टिपर्णी	बवासीर, दाद, खाज, कोढ़, योनि-विकार, गर्भक्षय आदि कृमियों से आक्रान्त रोगों को नष्ट करती है। योनि और गर्भाशय के विकारों के लिए विशेष लाभकर है।
५६. पैद्व अर्क श्वेत	सफेद आक, मदार	जहाँ सर्प काटे हो घाव पर मदार की जड़ का लेप करने से, जड़ का चूर्ण खाने से विष नष्ट होता है।

		तित्तिलि स्वर्ण वर्ण चित्रित होती है, इसे श्वेत रूमाल में बाँधकर अभिमंत्रित कर घर में रखने से ही सर्प भय विष उतर जाता है।
५७. प्रक्नी	सोमलता	इसके गुण लिखे जा चुके हैं।
५८. प्रमन्दिनी	प्रमदनी घातकी	विष प्रभाव, कृमि रोग, भूतोन्माद दूर करती है।
५९. ब्रह्म औदुम्बरमणि	गूलर वृक्ष	योनि दोष, गर्भ पतन, जातघातक रोग, योनि तथा गर्भाशय और मधुमेह को नष्ट करता है।
६०. भद्रा	कृष्ण सारिवा	रुधिर बहता हो, कहीं कट गया हो, चोट लगी हो, जल गया हो, हड्डी टूट गयी हो तो यह अमोघ लाभ पहुँचाता है।
६१. भूरिमूलदर्भ	खस	क्रोध, मानसिक उद्वेग, भ्रम, मूर्च्छा और उन्माद को शान्त करती है।
६२. मधु	शहद	सर्पविष नाशक।
६३. मधुजाता	शहद की शक्कर	विष कृमियों, जहरीले जन्तुओं के विष को दूर करती है।
६४. मधुद्राक्षा	मुनक्का	विष कृमियों, जहरीले जन्तुओं के विष को दूर करती है।
६५. मधुश्चुत	महुआ	विष कृमियों, जहरीले जन्तुओं के विष को दूर करती है।
६६. मधू	मुलहेठी, जेष्ठामधु	" " "
६७. मयूरी	मोरपंख का चँदवा	सर्प विष नाशक।
६८. मित्र	अतीस	सर्प विष नाशक।
६९. मुनिदेव	अगस्त्य वृक्ष की जड़	हर प्रकार के गण्डमाला को नष्ट करती है।
७०. यवपलाली	जौ की नाल जौ की	जौ की नाल की भस्म खेतों को

	बाली	उपजाऊ बनाती है और जौ की बाल पैतृक, पैदायशी रोग दूर करती है।
७१. रोपणाका	श्वेत दूब	कामला और पाण्डु रोग दूर करती है। हड्डी टूटने पर, घाव लगने पर, रुधिर स्राव होने पर, जलने, कटने पर यह लाभकारी है। नकसीर, नपुंसकता और बाँझपन निवारक है।
७२. रोहणी रोहिणी	मांस रोहणी	जले, कटे घाव रोगों पर फायदेमन्द है।
७३. लवण	नमक	गर्दन, काँख और वंक्षण में होने-वाली अपची गण्डमालाओं को दूर करता है।
७४. लाक्षा	लाख	पुराने घाव भरती है, हड्डियाँ जोड़ती है, गर्भ शक्ति देती है, चोट अच्छी करती है।
७५. वचस्	वच	स्थावर विष और मूर्च्छा दूर करती है।
७६. वरणमणि वरणावती वरुणा वरुण	विल्व वरना	सर्प विष और शिरोरोग नाशक (मणिधारण प्रकरण देखें)।
७७. वाक	अगस्त्य वृक्ष का पञ्चांग	मन्या, ग्रीवा, स्कन्ध की अपची ग्रन्थियों को नष्ट करता है।
७८. वात	मूर्वाकन्द	सर्प विष नाशक।
७९. विक्षर	समुद्रफेन	कफमय खाँसी को नष्ट करता है।
८०. विश्वरूपा	काला अगर	पशु रोगों को दूर करता है।
८१. विषाणा	हिरन का सींग	हृदय रोग, पैतृक रोग नाशक।
८२. विषाणा अजशृङ्गी	मेढ़ासिंगी	रक्तस्राव, वात रोग दूर करती है।

८३. वृषा	केंवाच	वाजीकरण ओषधि है।
८४. शंखमणि शंखमुक्ता	शंखवटी (भस्मादि) मोती	मानसिक रोगों, भ्रम, मूर्च्छा रोगों को दूर करती है।
८५. शतवारमणि	ऋषभकवटी	नपुंसकता दूर करती है, गर्भपात दूर करती है। विष नाशक, वात-रोग नाशक है।
८६. शुद्रा	प्रियंगुलता	ज्वर नाशक।
८७. श्वेत	सफेद फूल का आक	सर्पविश नाशक-नपुंसकतानिवारक, हैजानाशक।
८८. समिध	सुगन्ध काष्ठ	कृमि नाशक।
८९. सहदेवी	सहदेई, सुसकौनी, महाबला	मनुष्यों, पशुओं के अनेक रोगों को दूर करता है। रसायन है। भूतघ्नी है।
९०. सिन्धुतः पर्याभृत	सिन्धु फल (कोङ्कण प्रदेश में उत्पन्न यह इलायची की तरह तीन धार का होता है)	ईर्ष्या, मानसिक दाह नाशक।
९१. सुभा	शालपर्णी	पशु रोगों को नष्ट करती है।
९२. सोम	सोमलता	दिव्य महोषधि है। सर्व रोग नाशक रसायन है।
९३. हवि	घृत आदि से किया गया हवन	आयुवर्द्धक, मेधावर्द्धक है।
९४. हारिद्रव	दारु हल्दी का वृक्ष	वृक्ष के नीचे सोने से, इसे देखने से, इसकी वायु सेवन करने से, इस वृक्ष का स्वरस तथा कषाय पीने से, अन्य योगों के साथ सेवन करने से, इसकी छाल पीसकर लेप करने से हलीमक (पाण्डुरोग) कामला नष्ट होते हैं।

अजीर्णनाशक अग्निवर्द्धक चूर्ण

सोंठ, अजवायन, छोटी हरड समभाग लेकर कूट लें, उसे हरे इन्द्रायण (फरफेंदुआ) में लेकर भर दें, सूख जाने पर चूर्ण कर लें काला नमक मिला लें, खाना सोडा अनुपात से मिला लें मात्रा ६ माशा जल के साथ सेवन करें।

इन्द्रायण को पक जाने पर लावें दवा भरकर कपड़े आदि से ढककर गेहूँ या उड़द के भूसे में बरसात में दबा दें। वर्षाकाल के उपरान्त शरद् ऋतु में चूर्ण बनायें।

बल वीर्यवर्द्धक भेषज

सफेद मूसली २५ ग्राम, छोटे गोखरू २५ ग्राम, बड़े गोखरू २५ ग्राम, शंखाहूली (शंखपुष्पी) २५ ग्राम, सालिम मिश्री २५, पुरानी सुपाड़ी २५, नागौड़ी असगंध २५ ग्राम, ढाक का गोंद २५ ग्राम, सैमर का गोंद २५ ग्राम, कौंच के बीज २५ ग्राम, अलसी २५ ग्राम, चने का बेसन २५० ग्राम, सिंघाड़े का आटा २५० ग्राम, कीकर का गौंद, २५० ग्राम, बादाम की गिरी २५० ग्राम, बुरादागोला २५० ग्राम, चिरौंजी २५० ग्राम, सैमर का फूल २५०, शमी (छौंकर जाटी) की फली २५० ग्राम, पीपल, गूलर, प्लक्ष (पिलखन व गूलर) के पृथक फल व कौंपलें उत्तर की टहनियों की २५०-२५० ग्राम, घी १।। किलो सूजी (रवा) २५० ग्राम, खोया ५०० ग्राम, चीनी २।। किलो, छोटी इलायची बीज १० ग्राम, बड़ी इलायची बीज २० ग्राम, केसर ५ ग्राम, केवड़ा २० ग्राम, पिस्ता १०० ग्राम, सफेद दूब २५० ग्राम, वाराही कन्द ५० ग्राम, बीज शिवलिङ्गी नेपाली १० ग्राम।

अलसी को बारीक पीसे और २०० ग्राम घी में भूने, दोनों गोंद पीसकर धीमी आँच से घी में भूने, बेसन २५० ग्राम घी में, खोये को ७५० ग्राम घी में भूने, सुगन्ध आने पर भूने, पर जलने न दे। सिंघाड़े के आटे को २५० ग्राम घी में हल्की आँच पर भूने। सूजी को ५०० ग्राम घी में भूनकर स्वच्छ बर्तन में रख ले। भूनने में कोई चीज कच्ची न रहे। न जले।

लोहे की साफ कढ़ाई में चीनी के अन्दाज से पानी डालकर दूध से सफा करके २ तार की चाशनी ले। चाशनी से पूर्व सूजी को चाशनी में डाल दे, जब सूजी फूल जाय तो भुनी व अन्य कुटी हुई चीजों को उसमें डालकर अच्छी तरह घोटे, तदनन्तर बारीक कटे हुए मेवाओं को कढ़ाई में डालकर मिला ले। केसर केवड़े को भली भाँति घोटकर इस रसायन में मिला अच्छी तरह घोट दे कि उसमें कोई गाँठ न रहने पावे। इस रसायन को घी से चुपड़ी काँसे की थाली में फैलाये, ठंडी होने पर ५०।५० ग्राम की कतरी काटकर रख लें। प्रातः सायं १/१ गौ के धारोष्ण दूध में १ हिस्सा शहद २

हिस्सा घी व यथेच्छ खाँड़ डालकर ऊपर से लें। औटा दूध हो तो ठंडा करके शहद मिलायें तब लें। उसमें ५० ग्राम शिलाजीत और मिला लें, रसायन में ही मिला लें। कब्ज होतो त्रिफला १ तोला सोते समय जल के साथ ले लें।

पथ्य– २ मास पूर्ण ब्रह्मचर्य, गुड़, तेल, खटाई, लाल मिर्च, तेल, गर्म मसाले।

पुरुष गर्भाधान पर्यन्त लें। स्त्रियाँ सन्तान होने के अर्थात् जब तक बच्चा दूध पिये, लें।

साथ ही जल स्वर्ण व चाँदीवाला लें। रसायन के परिपाकपर्यन्त अथर्व का० २ सूक्त ३६ का जप अनिवार्य है।

सन्तति सुन्दर, सुशील, सुनहरे बाल, स्वस्थ, मेधावी, दीर्घायु होती है। स्त्रियों का बल क्षीण नहीं होता, बाल काले होकर मुलायम हो बढ़ने लगते हैं, शरीर की झुर्रियाँ नहीं रहती हैं।

स्त्री–प्रीति सन्तति, धर्म, अर्थ, लक्ष्मी, यज्ञादि का मूल होने से प्रतिष्ठा की पात्र हैं, जहाँ उनका आदर है, वहीं देव निवास करते हैं, बाजीकरण योग्य वृष्य स्त्री जो इस सन्तान विज्ञान से भली–भाँति निपुण हो, पीछे दी गयी विधि से सन्तति सृजन उभयलोक के कल्याण का साधन है। ऐसी सन्तति से देश, धर्म, राष्ट्र व कुल को गौरव मिलता है। स्त्री–पुरुष को सन्तानोत्पादन में वृष्यता तथा वृहणता परम वाञ्छनीय है। कर्मज,कालज रोगों के निराकरणार्थ पीछे विविध विधियों का संग्रह किया गया है, अब आहार–व्यवहारजन्य व्याधि से उत्पन्न नपुंसकता व वन्ध्यापन को दूरकर शुद्ध, पुष्ट, रज वीर्यलाभ कर, गर्भाधान का श्रीगणेश किया जाता है। इसमें अनेक उपाय हैं, परन्तु यहां उन्हीं ओषधियों का उल्लेख किया जायगा, जिसे सर्वसाधारण सुलभता से कर सकें। (अकर्मण्य, आलसी, अनाचारियों के लिए परमहंसवत् संसार शून्य है)।

१. वेदोक्त ओषधि सूक्तों के विधिवत् अनुष्ठान के पश्चात्, पुष्य नक्षत्र सिद्धि सर्वार्थ सिद्धि अमृतसिद्धि योगों में विधिवत पूजा व प्रार्थना कर अपने अभीष्ट सिद्धि के लिए ओषधियों का चयन करें, घर पर धूप पूजा, गन्धादि के साथ छाया में रखें, समय पर उपयोग में लें निश्चय आश्चर्यजनक लाभ होता है।

२. ओषधि सेवन से पूर्व शमी (छौंकर) या छोटी हरड़ प्रातः सायं १/१ तोला लें। ऊपर दूध या जल निम्न प्रकार का लें। सप्ताह उपरान्त ओषधियाँ लें– यह गर्भाधान से पूर्व ही कर लें।

३. जल-सोना, चाँदी कोई भी नग, वंग (धातु) जल या दूध में डाल ले, अग्नि पर गर्म करे जब जल ३/४ रह जावे, उतार ले, उसी में से १ छ० १ बार में लें।

४. गंगाजल-पीले रंग की बोतल में कर लें, पीली ऊन से ढँककर डाट को हटा सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त धूप में नित्य रख दें, उठायें तो डाट से मुँह बन्द कर लें। गैस न निकलने दें। नं० ३ के जल की भी गैस न निकले, इस जल में से थोड़ा-थोड़ा जल उसमें मिला लिया करें।

इन जलों में महाभूत (पञ्चतत्त्वों) की पञ्चतन्मात्राएँ आ जाती हैं। पञ्चमहाभूतों से ही पार्थिव शरीर है, जिस प्राणी के शरीर में कोई व्याधि हो या रज वीर्य में दोष या दुर्बलता हो, इससे निश्चय लाभ होता है।

(अ०का०३ सू० १३) (अपः) सूक्त (अ०का० ३ सू० १८) वनस्पति सूक्त

५. इन दोनों जलों को अथर्व तथा ऋग्वेद के सूक्तों से अभिमन्त्रित करके लिया जाय तो ब्रह्म इत्यादि पाप, शाप, कुष्ठ, यक्ष्म, नेत्र, कर्ण, मन, मस्तिष्क, बुद्धि (पिशाच, यक्ष, कृत्या, यातुधान, रक्षोगणादिजन्य) उन्माद, नपुंसकता, गर्भस्राव, रक्तस्राव, प्लीहा, सन्ततज्वर, पाण्डु रोग, क्षेत्रीय रोग, कृमिरोग, बवासीर रोग, श्लेष्मा, खाँसी, प्रसूति रोग, निश्चय दूर हुए हैं। अनुभूत हैं, परीक्षण चल भी रहे हैं।

६. भावी सन्तान को सुन्दरता, सुडौल, पुष्टता, दीर्घायु, शुद्ध स्वस्थ मन, मस्तिष्क, हृदय, बुद्धिलाभ होता है, बलवृद्धि तो होती ही है।

यह मणि बन्धन, स्वर्णधारण सूक्तों से अभिमन्त्रित जल या दूध का उपयोग अवर्णनीय अचिन्त्यगुणों का स्रोत सिद्ध हुआ है। नक्षत्र तथा शान्ति सूक्त, पापनाशन सूक्त, पापमोचन सूक्त, शापविमोचन सूक्तों से अभिमन्त्रित यह जल व क्षीर (चरु) कर्मज कालज उपर्युक्त व्याधियों से निश्चय मुक्त करता है, निष्ठा विश्वास संयम परमोपयोगी है। इनमें किसी भी विदेशी ओषधि का सेवन न करें।

यही भूमि परम पुनीत दिव्य जलों, वनस्पतियों तथा ओषधियों का स्रोत है, यहाँ रज में उत्पन्न प्राणी यहीं की ओषधि और जलों से यहाँ के पूर्वजों की प्रदत्त अमूल्य थाती और अतीत के विज्ञान के गौरव को समझें, धारण करें तो मिथ्या आहार-विहार-कर्मज-कालज, आचार, प्रज्ञादि-जन्य सभी व्याधियों से मुक्त होकर, लोक और परलोक को प्रशस्त बनाते हुए उत्तम पुत्र उत्पन्न कर, देव, पितृ, गुरु, राष्ट्रीय जन्मत्रय ऋणों से मुक्त होकर, मय अपने पितृश्वरों के सुकृत लोगों की प्राप्ति में सफल होंगे, हुए हैं।

गंगाजल के अभाव में पावन नदियों, स्रोतों का जल ग्राह्य है। परन्तु वर्षा ऋतु की नदियों का न लें, शरद् ऋतु से ग्रीष्मपर्यन्त का लें।

दूध

१. लाल या काले रंग की बछड़े की, माँ बछड़ा भी उसी के रङ्ग का हो और जीवित हो, सींग ऊँचे उठे हों, कठोर न हों, नम्र हो मारती न हो, चारों थन की प्रथम बार की ब्याई हो, या उड़द के भूसा आदि के खानेवाली या अर्जुन वृक्ष के पत्तों से पली गौ को रखें, अथर्व वेदोक्त "कां ४ सू २१ गावः" से नित्य पूजा करें, उसी के दूध धारोष्ण में दोहन कालान्त उपर्युक्त दोनों जलों को, गौघृत, बसन्त की छोटी मधुमक्खी का मधु शुद्ध खाँड़ मिलाकर प्रातः लें, तो वृष्यता, वृहणता के साथ आध्यात्मिक आधिदैविक बल बढ़ता है, पुत्रप्रद है।

२. अष्टधातु का पुरुष बनाकर उपर्युक्त गौ के दूध में डालें और औटा दें, जल जल जाय दूध रह जाय, ठण्डा होने पर उपरोक्त मधु घी खाँड़ डालकर, उपर्युक्त जल मिश्रित कर पिये। ७० वर्ष की आयु में भी पुत्र प्रदान करता है।

३. ३० पिप्पलियों को तिल-तेल और गोघृत मिलाकर (१ पल में) भूनें पीस कर खाँड और मधु डालकर उपरोक्त दूध के साथ लें।

चमत्कार- अ.वे.का. ६/सू. १०९ पिप्पली भेषजम् सूक्त से अभिमन्त्रित करें तब ले, अचिन्त्य अप्रमेयबल, वीर्य प्राप्त हो।

४. चरक (गंगाधर) के मत से पर्वती गोखुरू तथा विदारीकन्द समान लें और उसका मिज़ क्वाथ लें, उड़द काले और साठी चावल को पानी में भिगोयें बाद में गौघृत में भूने, इन सबको दूध में डाल खीर बनायें और अ.वे.का. १० सू ९ शतोदना गौ तथा कां. ४/४/६/ वाजीकरण, तथा कां. ६ सू. १३८ क्लीवत्वम् के पाठ से अभिमन्त्रित कर मधु खांड मिला सेवन करे, निश्चय पुत्र लाभ हो।

५. गुरुवार को जब पुष्य आये, शतावरी को अ.वे. का. १९ सू. ३६ से पूजा करके लायें, स्नान धूप दे घर छाया में रख लें, सूख जाने पर चूर्ण बना लें। ८ पल चूर्ण, उपर्युक्त गौ का दूध ३२० पल, गौ का घी ३२ पल, सबको मन्द अग्नि से पकावें, पकाते समय उपर्युक्त सूक्त का तथा का. ६ सू. १०१ वाजीकरण तथा कां. ५ सू. १३८ क्लीवत्व का पाठ करें। इसमें सिद्ध पिप्पली (पीपल, जवा छोटी) का चूर्ण मधु खाँड़ मिला लें। नित्य सेवन करें, यह घृत सुन्दर, धीमान्, धैर्य, धर्मवान्, दीर्घजीवी पुत्रप्रद है।

६. उपर्युक्त गौ के उपर्युक्त मणि, धातुओं और सूक्तों दूध में शंखपुष्पी जो पुष्य नक्षत्र में लायी हो नित्य सेवन करें, ऋतु स्नानान्त शिवलिङ्गी (नेपाली) तथा

वाराहीकन्द को चूर्ण कर दोनों १/१ तोला शिवलिङ्गी के ५ बीज लें, गर्भाधान, गर्भाधान विधि बृहदारण्यक में लिखे अनुसार करें, निश्चय मृतवत्सा अनपत्या या कन्या-ही-कन्या वाली स्त्रियाँ दीर्घजीवी धार्मिक, बलिष्ठ सुन्दर पुत्र को जन्म देती हैं।

७ अथर्व वेदोक्त- कां० १९ सू० ३१ औदुम्बर मणि सूक्त, कां. ६ सू. ११ पुंसवनसूक्त से गुरुपुष्य में पूजा कर, उत्तर और पूर्व की दिशावाली शाखाओं के औदुम्बर (गूलर), पीपल, वट तथा पिलखुन के लाल ऊपरवाले कोंपल तथा फल और जटाएँ लाकर छाया में सुखा लें, चूर्ण कर लें, सभी समान भाग लें और उपर्युक्त गौ के उपर्युक्त रीति से सिद्ध किये दूध में गौघृत, खाँड़ तथा शहद मिलाकर सेवन स्त्री-पुरुष दोनों ही करें तो शूरवीर, सभाजीत, वाग्मी कवि, धर्मात्मा, सुन्दर नरसिंह को जन्म दें, राष्ट्र की सेवा का महान् सुख प्राप्त करते हैं।

पीपल यदि शमी वृक्ष में पैदा हुआ हो या वट वृक्ष से उत्पन्न मिल सके और यदि उसके नीचे गायें निवास करती हों मिल सके तो अहोभाग्य ही समझें।

धनिकों के लिए तो और भी साधन सुलभ हैं, ये ७ प्रयोग सर्वसाधारण साधन-हीन जनों के लिए परीक्षणान्त संग्रह किये हैं एक भी परिवार को लाभ सम्भव हुआ तो लेखक अहोभाग्य समझेगा। धैर्य निष्ठा तथा विश्वास से शरीरस्थ शत्रु (आलस्य) का दमन कर अनुभव करने की परम आवश्यकता है।

रसायनें

हरीतकी रसायन

१. हरड़, आँवला, बहेड़ा (२ बेल के वृक्ष की जड़ की छाल, अरणी की जड़ की छाल, अरलू की जड़ की छाल, गाम्भारी की जड़ की छाल, पाटला के जड़ (पढ़ल) की छाल, खरैटी की छाल), ३ चारों पर्णी (शालपर्णी प्रश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी), पिप्पली, गोखरू, छोटी-बड़ी कटेहरी, वाराहीकन्द, शिवलिङ्गी के बीज इन सबका क्वाथ, घी से चौगुना, चौगुना ही विदारीकन्द का क्वाथ मुलहटी, महुए के फूल, काकोली, क्षीर काकोली-कौंच बीच, जीवक ऋषभक, क्षीर विदारी, शंखपुष्पी, ब्राह्मी इन सब को नं. ३ को समभाग ले कल्क बनाये, यह घी की मात्रा का चौथाई लें, घी का ८ गुना दूध लें उपलों को मध्यम अग्नि में पकाये, जब सब जल जावे, घी रह जावे, उतारकर छान लें, घी गौ का ही प्रयोग करें।

इसी सिद्धरसायनघृत में से १/२ तोले से एक तोले की मात्रा में प्रतिदिन सेवन करें, इसके जीर्ण होने पर दूध में, घी, मधु, खाँड़ डालकर साठी चावल का भात खाये। अनुपात गर्म जल जो स्वर्णादिका पूर्व बताया जा चुका है, लें।

सिद्ध करते समय, अथर्ववेद तथा ऋग्वेद के सूक्तों का पाठ करें, यह निश्चय ही देह, इन्द्रिय, बुद्धि, मन, रज, वीर्य, मेधास्मृति, कान्ति, नीरोगता, देहाग्नि की दीप्ति, वर्ण की निर्मलता, वायु की अनुलोमता, वृद्धता से मुक्त करा, नव जीवन ज्योति जगाने-वाली है, शक्ति अनुसार, गर्भाधानान्त भी स्त्री सेवन करे तो भावी पुत्र की विलक्षणता के आश्चर्यजनक प्रभावों को प्राप्त करायें।

मेध्यरसायन

१. स्वर्णादि से सिद्ध उपर्युक्त दूध के साथ

अमण्डूकपर्णी का स्वरस अथवा मुलहटी का चूर्ण अथवा नीमगिलोय का चूर्ण अथवा शंखपुष्पी का जड़ सहित चूर्ण अथवा वाराही कन्द अथवा शिवलिङ्गी नेपाली के बीज ५ से १० तक सेवन करें।

ऐन्द्री रसायन

१ मछेछी, ब्राह्मी, ब्रह्म सुवर्चला, पिप्पली, सेंधानमक स्वर्ण का उपर्युक्त विधि से सिद्ध घी, शंखपुष्पी (वत्सनाभ) विष इनमें से घी व विष को छोड़ अन्य ओषधियां तीन-तीन तोला स्वर्ण भस्म, २ जौ, वत्सनाभ १, तिल और उपर्युक्त स्वर्ण घृत १, पल परिमाण में लें, जीर्ण होने पर पर्याप्त घृत, शहद मिला सेवन करें।

लाभ– सभी प्रकार के बुढ़ापे को दूर करेगा, स्मृति मेधा आयु पुष्टिकर, बलकारक, स्वर, वर्ण को शुद्ध, कृत्या (पाप का अभिचार कर्म), अलक्ष्मी (दरिद्रता) सभी प्रकार के विष, श्वेतकुष्ठ, उदररोग प्लीहा, गुल्म, पुराना विषमज्वर, मेधा स्मृति तथा ज्ञान के अपहरण करनेवाले सभी उन्माद मृगी, हिस्टीरिया, आंत्रीणियों के पानी का रोग, सभी शोथ रोग, सिंह की गर्जना से सभी जीवों की भाँति पूँछ दबाकर भाग जाते हैं।

सूक्तों के साथ सिद्ध करना चमत्कारों का जनक है।

'हरीतकी रसायन नं. १ में निर्दिष्ट पञ्चमूल निम्न का प्रयोग करें।

१. विदारीकन्द (शालपर्णी), वृहती, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, गोखरू

२. बेल वृक्ष, अरणी, अरलू, कापूमर्य (गाम्भरी), पाटला (पाटल)

३. पुनर्नवा, (साँठ) मुग्दपर्णी, माषपर्णी, वला, एरण्ड, (अण्डी)

४. जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, शतावरी

५. शर (शरकण्डा, सरपत), ईख, दाभ, काश (काही जिस की कलम बनती है)।

ये सब मिलाकर पञ्चमूल कहलाती हैं, इनमें जो बड़े तनेदार वृक्ष हैं उनकी जड़ों की छालें, जो छोटी जड़ों की हैं वे जड़ें नं. १ दस पल नं. २ दस पल, नं. ३ दस पल नं. ४ दस पल नं. ५ को भी सभी मिलाकर १० सारांश सभी समभाग लें।

ओषधि सूक्त सब मंत्र परिशिष्ट में देखें। ओषधियाँ अथवा रसायन सिद्ध करने से पूर्व भगवान अश्विनी कुमार का पूजन करें और ऋषिन्यास से न्यास तथा मुद्राएँ करके सिद्ध करें तो शीघ्र अचिन्त्य मनवाञ्छित लाभ होता है।

भिलाये का दूध

आषाढ़ के महीने में विधिवत पूजा तथा प्रार्थना कर क्रीड़ाओं से रहित, बिना चोट के बिना गले बिना रोग के पके जामुनी रंगवाले ज्येष्ठ या आषाढ़ में स्वयं चुनकर लायें, जौ या उर्द के भूसे में शुद्ध कपड़े में बाँधकर ४ मास पड़ा रहने दें। अगहन, पौष में शीतल, स्निग्ध, मधुर आहार से शरीर शुद्ध कर नित्य निम्न प्रकार सेवन करें।

प्रथम दिन १०, दूसरे दिन ११ इसी प्रकार २१वें दिन १/१ बढ़ाने से ३० मिलाये, पुनः २२ वें दिन से ३०/३० सत्ताईसवें दिन तक लें, २८वें दिन २९, उन्तीसवें दिन २८ तीसवें २७ ऐसे ही १-१ कम करके ४८वें दिन १० अर्थात् कुल १००० भिलावे ही लें अधिक न लें, न ३० से ऊपर एक दिन में लें।

इनको कुचलकर आठ गुना जल में डालकर पकायें, जब जल १/८ भाग शेष रहे स्वच्छ वस्त्र से छान लें, इसमें दूध, खाँड़, मधु, घृत मिलाकर पियें। परन्तु गर्मस्वभाववाले को उष्ण काल या पित्तकाल में नहीं पीना चाहिए। जीर्ण हो जाय तो घी मिश्रित दूध से साठी चावल खायें। प्रयोग ४८ दिन के उपरान्त २ मास २-२ बार दूध अवश्य लें। तो आयु १०० वर्ष स्वस्थ, सुन्दर, बल, वीर्य की वृद्धि तथा उपर्युक्त सभी गुणों से सम्पन्न शरीर हो जाता है।

यह कुछ उदाहरणार्थ, विश्वास के लिए निर्दिष्ट है। भारतीय आयुर्वेद अथर्ववेद का अङ्ग ओषधियों का स्रोत है, वहाँ की पद्धति अल्प व्यय से स्थायी लाभ करने में सदैव अनुकरणीय रहेगी।

ये सभी प्रयोग वन्ध्यापन, नपुंसकता तथा सभी प्रकार की सभी शरीर के अङ्गों की शिथिलता को दूर करनेवाले हैं। स्वस्थ रज, वीर्य से ही उत्तम दीर्घजीवी पुत्र का सुख प्राप्त होता है।

बल तथा वीर्यवर्द्धक गुटिका

१. उत्तम ताजा घी, उससे दूनी मिश्री, घी से आधे जल में डालकर चाशनी बनायें, उसी में घी व घी से भुना गेहूँ का आटा डालें, ठण्डा होने पर घी का आधा

शहद डालें, और सबको मिला मर्दन करें, जब सब एक ही जावें तो १-१ तोला के लड्डू बना लें। नित्य प्रातः-सायं ४१ दिन स्त्री-पुरुष सेवन करें। स्वर्णादि क़ा जल व स्वर्णादि का सिद्ध दूध साथ लेते रहें तो हाथी के सदृश बल वीर्य प्राप्त कर गर्भाधान करनेवाले निश्चय बली, सुन्दर, सुशील, दीर्घजीवी पुत्र प्राप्त करते हैं।

ओषधि तोल परिमाण

१ यव	=	१/४ रत्ती
२ स्वेधान्यक	=	१ माशा
१ काण	=	४ रत्ती
१ कर्ष	=	४ तोला
१ पल	=	४ तोला
१ कुड़व	=	१ पाव
१ प्रस्थ	=	१ सेर
१ द्रोण	=	१६ सेर
१ सूर्य	=	३२ सेर
२ सूर्य द्रोणी	=	६४ सेर

भिलावा योग

भिलावे को ओषधि में प्रयोग करने से पूर्व पक्व भिलावों की टोपी उतारकर उनको तप्त रेत में दबा दें। ३-४ दिन उपरान्त उनको निकालकर किसी कपड़े में लपेटकर जौ या उड़द के भूसे में दबा दें। ४ मास उपरान्त निकालकर दूध में उबाल लें फिर पानी से धोकर किसी मृत पात्र में या शीशे के पात्र में रखें। भिलावे का प्रयोग द्विगुणघृत तथा चौगुने दूध मिश्री मिश्रित कर लें।

मात्रा- १ भिलावे से प्रारम्भ करें। अर्थात् प्रथम दिन १।। तीसरे दिन २ इस प्रकार ११ वें दिन ६ भिलावों का प्रयोग करें, फिर उसी प्रकार कम करते चले आवें। २२वें दिन १ भिलावा ही लें।

यह आधुनिक मानव के बल-पौरुष जलवायु को दृष्टिपथ में रखकर अनुकूल मात्रा है।

अनार्तव या आर्त्तवादर्शन

रजोदर्शन काल से रजक्षय काल तक प्रतिमास रजस्राव होता है। इसमें व्यतिक्रम

होना अनार्तव कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है– १ शरीर क्रिया सम्बन्धी २. वैकृतिक। नं. १ शरीर क्रिया सम्बन्धी यथा गर्भावस्था तथा स्तन्य काल। नं. २ वैकृतिक– स्थानीय रोग अथवा सामान्य रोगों के कारण यहाँ नं. २ वैकृतिक का ही उपचार है। यह भी दो प्रकार का है– प्रत्यक्ष अनार्तव, विकृति की वह अवस्था जिसमें उत्पादन चक्र एवं रजस्रावचक्र की गति क्रियाएँ गर्भाशय तथा डिम्ब ग्रन्थियों में यथा क्रम सम्पादित होती हैं किन्तु मासिक धर्म के समय रक्त का योनि मार्ग से बहिरागमन नहीं होता है। यह स्थिति किसी भी प्रकार के अवरोध से ही उत्पन्न होती है। ये भी दो प्रकार के होते हैं। जन्मजात–२ अन्य कारण यथा– "दोषेरावृतमार्ग त्वाद्रार्त्तव नश्यति स्त्रिया" (सुश्रुत) "पित्तं पंगु कफं पंगु पंगवो मलधातव:। वायुनायत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति वेगवत्" तथा चरक –

योनि गर्भाशयस्यं चेत्पित्तसद्षयेदसृक।
साररजस्का मता काश्र्य वैवण्र्य जननीभृशम्।।

सुश्रुत ने अनार्त्तव चक्र को अरजस्कायोनि माना है। इसका कारण अविच्छिन्न योनिच्छद है जो योनिमार्ग तथा गर्भाशय ग्रीवा के जन्मजात अवरोध के कारण भी हो सकती है। किन्हीं को अन्य कारणों से हुए अवरोध से भी मासिक धर्म का रक्त रुक सकता है। यह अकाट्य सुविदित तथ्य है कि मासिक स्राव का आना न आना शरीर के विभिन्न संस्थानों की कार्यकुशलता पर निर्भर करता है। इन संस्थानों के कार्य में किसी भी प्रकार का व्यवधान होने से अनार्त्तव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

संस्थान

१. उत्पादन संस्थान, २. रक्त वाहक संस्थान ३. नाड़ी संस्थान ४. निस्रतोस ग्रन्थि।

२ उत्पादन संस्थान के विकार से उत्पन्न अनार्त्तव ३ प्रकार के होते हैं –

(१) गर्भाशय अथवा डिम्ब ग्रन्थि की जन्मजात अनुपस्थिति

(२) गर्भाशय तथा डिम्ब ग्रन्थियों को शल्य कर्म द्वारा निर्हरण

(३) डिम्ब ग्रन्थियों की क्रियाहीनता, गर्भाशय दीवार में किसी प्रकार का शोथ किन्हीं नवीन अर्बुद आदि की उत्पत्ति रेडियम किरण आदि के डालने से।

रक्त–वाहक संस्थान विकार से उत्पन्न अनार्त्तव निम्न कारणों से सम्भव है–

(अ) रक्ताल्पता (ब) हलीयक बार–बार रक्तस्राव होना तथा शारीरिक दुर्बलता के अन्य सभी कारण जैसे राजयक्ष्मा, हृदय रोग, मूत्राशय सम्बन्धी रोगों की अन्तिम

स्थितियाँ, विविध प्रकार के ज्वर, विविध प्रकार के विष, विविध प्रकार के जीर्ण विष, पारद विष, अहिफेन, मद्य, नाड़ी संस्थान, पक्षाघात तथा विभिन्न स्नायुविक विकार सभी उन्माद, गम्भीर मानसिक संघात अथवा स्त्रियों को गृहीत गर्भा या रजः क्षय होने का विकल्प जो मानसिक प्रभाव से होता है।

''विधि मुत्तर वस्त्यन्तं कुर्यादार्त्तव शुद्धये। स्त्रीणां स्नेहादि मुत्रानाँ चतष्टष्वार्त्तवमदी कुर्यात्कल्कन्पिचुश्चापि पश्यान्याचमनानि च।

आर्तव शुद्धि के लिए पंच कर्म करें। कल्क और पिचु रख तथा योनि का आचमना (पिचकारी) करावें अथवा अपामार्ग से विषादि विकारों का शोधन करें।

चिकित्सा

आर्त्तवादर्शन नारी मत्स्यान सेवेत नित्यशः काजिकचतिलान् भाषानुदश्विय तथा दधितामत्स्य कुलथ्याम्लतिल पाषसुराहिता पाने मूत्र मुवारिवच्चदधि शुक्त च भोजन्।

आर्तव नष्ट होने पर मछली का माँस, कुलथी, अम्लपदार्थ, तिल, उड़द, सुरा, गोमूत्र बिना ब्यानी गौ का मट्ठा, सिरका खाना हितावह है। दशमूलारिष्ट कस्तूरी से युक्त रज प्रवर्द्धिनी वटी के साथ

पीत ज्योतिष्मतीपत्रं स्वर्जिकोग्रासनग्यहम्।
शीतेनपयसा पिष्टं कुसुमं जनमेदधुवम्।। (भा.प्र.)

इश्वाकुलीज दन्ती चपला गुड़ मदन किरवयव शूर्कः।
सासृक क्षीर वर्तिता योनिगता कुसुम संजननी।। (यो.दो.भा.प्र.)

कडवी तोरई के बीज, जमालगोटा, पीपल, गुड़ मेनफल, सुराबीज तथा ववारवार इन को थूहर के दूध में पीसकर योनि में रखें।

लोहमण्डूर, स्वर्णमाक्षिक भस्म आदि को देश, काल, आयु बलाबल की दृष्टि से प्रयोग करें। भोजनान्तर कुमारी आसव दें। चिकनी सुपाड़ियों का सुपाड़ी पाग दें। चन्द्रप्रभा वटी दें।

आयुर्वेदीय योग– देवदाघामेष्ट, कुमारी आसव, दार्धादिक्वाथ चन्द्रप्रभा। इसमें वंगभस्म, लोहभस्म का मिश्रण, एलुआ के साथ लाभप्रद है। कन्या लोहादि गुटिका और वंगभस्म का मिश्रण कर देना भी लाभप्रद है। काली समटिवटी भी लाभप्रद है। स्वर्ण भस्म को मकोय के साथ देना लाभदायक है। त्रिवंगभस्म भी लाभकारी है।

न्यग्रोधादिगण

न्यग्रोधोदुम्बाराश्वत्य प्लक्ष यष्टी कपी तनाः। ककुभाम्रप्रियातश्चवेतसोरोहिणीशिवा। तिन्दुकी वदरी लोध्र जम्बु भल्लातकस्तुणीः। कदम्बकस्तथा दार्वोपलाशमधुकावापि। न्यग्रोदादिगणोह्येष योनि दोषहरः परः। एभिक्वाथं तैल्लञ्च साधयित्वा प्रयोजयेत्। वट, गूलर, पीपल, पाकर, मुलेठी, पारिस पीपल, अर्जुन, आम, चिरौंजी, वेदसादर रोहणी, हरड़, तन्दु, वेर, लोध, जामुन, भिलावा तथा कदम्ब, दारुहल्दी, ढाक और महुआ के वृक्षों की छालें, मुलहटी के फूल, हर्रे का फल इन सबकी छाल समभाग को जौ कटकर लें। इसमें से २ तोला लें। उसे १२८ तोला जल में पकायें, आधा शेष जल रहने पर कपड़े से छान लें, उसमें ५ रत्ती फिटकरी, ५ रत्ती सुहागा मिलाकर एनिमा देने के यन्त्र से योनि का प्रक्षालन करे। इन्द्रायण की धूप दें। सैमर की जड़ दूध में औटाकर छान लें, उसमें बिजौड़े के बीज पीसकर मिलावें, सबको छानकर 'रजो धर्म' के उपरान्त ४ दिन पिये तो लाभप्रद होता है। अथवा नागौरी असगन्ध ३ तोला, संगजराहत २ तोला, इलायची के बीज ३ तोला, वंशलोचन ३ तोला, शतावर ३ तोला, बबूल का गोंद ५ तोला, चूर्ण कर लें मात्रा ३-३ माशा प्रातः—सायं अनुपान बछड़े की गौ का दुग्ध अवधि १ सप्ताह।

यह पूर्व जन्मकृत पापों के परिणामस्वरूप, क्षेत्रीय रोग हो और कन्या ही होती हों, या गर्भस्राव हो जावे, या सन्तति होकर मर जावे, या रजोनाश (अनार्तव) हो तो (अ.कां. २ सू. २८) तथा अहोलिङ्गण, स्वत्ययनगण, वास्तुगण, पवित्रगण, वर्चसगण, अम्बादिगणों से महाशान्ति जल अभिमन्त्रित कर शान्ति ओषधियों को सिर पर रख, छीटे दें। उपर्युक्त ओषधियों को अभिमन्त्रित कर योनि में लेप करें, उन्हीं की धूप योनि में दें। ओषधियों को अभिमन्त्रित कर सेवन करायें यज्ञावशेषपुरोडाश को खिलाये। कां. २ सू. ४१ तथा सू. ४३ कां. ३ सू. ११ "मुञ्चामित्वा"- से अवसिञ्चन क्षेत्रीयरोग में करें सिर पर तिल, शण, गोमय, का. २ सू. २९ अर्जन की छाल, यववुस, तिल एकत्रित कर बाँधे, बल्मीक की मिट्टी तथा जीवित पशु के चर्म के साथ पोटली बनाकर अभिमन्त्रित कर बाँधे।

आज्यतन्त्र

आज्यतन्त्रमुच्यते-अव्यसश्चव्यचसश्च, (अ. काँ. १९ सू. ६८) वर्हि लवन वेदिः उत्तरवेदिः अग्निप्रणयनं अग्निप्रतिष्ठापनं व्रतग्रहणं पवित्रकरणं पवित्रेणेध्म- प्रोक्षणं इध्मोपसमाधानं वर्हिः प्रोक्षणं ब्रह्मासनं ब्रह्मस्थापनं स्तरणंस्तीर्ण प्रोक्षणं आत्मासनं उदपात्र स्थापनं आज्य संस्कार, स्रुवग्रहणं पुरस्ताद्धोमा आज्यभागौ अभ्यातानान्तं पूर्व तन्त्र।

अथ उत्तर तन्त्रमुच्यते अभ्यातानादि पार्वण होम समृद्धि होमाः स्विष्टकृध्द्धोमाः सर्व प्रायश्चित्तीय होमाः स्कन्नहोमाः पुनर्मैत्विन्द्रियहोमः स्कन्ना स्मृतिहोमौ संस्थित होमा चतुर्गृहीतहोमः वर्हिहोमः संस्त्रावहोमः विष्णुक्रमाः व्रतविसर्जनं दक्षिणादानं ब्रह्मोत्थापनं यस्मात्कोशादित्येतत् (कां. १९ सू. ७२ ऋचा १) उत्तरतन्त्र।

अग्नें चरुरिति (कां. ८ सू. ६७ (पुनर्मैत्विन्द्रियं) ब्रह्मास्थापनं। कां., सू. ६८ प्रधानदेवता की स्थापना

अक्षिरोग भैषज्यम

अ.कां. ६ सू. १६ आवयो इति सार्षपं तेलसंपातं वध्नाति।।१

इससे अभिमन्त्रित तेल को डालें, मर्दन करें। गौ मूत्र से धोयें काण्डं प्रलिप्य।।२।।– (कां. २ सू. ३) (अदो) ऋचा से सरसों के तेल में शाक सरसों को मिलाकर अभिमन्त्रित कर रोगी को दें।

चत्वारि शाकलानि प्रयच्छति ।।४।। (अ. कां. २ सू. ५) मूलक्षीरं मुखेनप्राश्य ततो अभिमन्त्र्य अङ्गे अक्षिणी व्याधितस्य। (मूलक्षीरं क्षीर पाटिका लग्नं) कां. २ सू. ६ से अभिमन्त्रित कर (मूल क्षीरं भक्षयति)।

केशवृद्धिकरणे, केशपतने भैषज्यम्

(अ.कां. २ सू. ८) तथा (कां ६ सू. २१) वृक्षों (हल्दी, दारुहल्दी, अपामार्ग, पुनर्नवा, आंवला) की मूल व छाल व फल को पानी में डालें औटायें और सर धोयें यह रेवती नक्षत्र या पुष्य में लाये हुए वृक्षों की सामग्री होनी चाहिए, उपर्युक्त मंत्रों से अभिमन्त्रित कर ले।

(कां. ६ सू. २२) (कां. ६ सू. २३) (का. ७।२) (का. ७ सू. ३) इन सूक्तों से जल को अभिमन्त्रित कर छीटे दें (कां. ६ सू. १३६) (कां. ६ सू. १३७) से ओषधियों को खोदकर लायें। इनसे सबसे ही वरुण का हवन तथा दूध–भात की बलि पाक यज्ञविधान से करें।

जलोदर में

कां. ६ सू २२ व २३ चित्यादि शान्ति ओषधियों से जलोदर के रोगी को छीटे दें, और इन्हीं से वरुण देव का उपर्युक्त हवन व बलिदान करें। का. २/१३ से भी आहुतियाँ दें। का. २ सू. १३ से तथा का. ६ सू. २४ से हृदयरोग, जलोदर तथा कामल रोग (पीलिया) में ढाक की लकड़ी को (पर्णरस) गिलोय के रस में भिगोकर हवन करें।

कुशाओं के मुट्ठों को जलाकर गिलोय का रस छोड़कर सिर पर होकर नीचे का झाड़ा दें और रोगी को जल प्रवाह के विमुख खड़ाकर उन्हें तृणों को बहां दे और अन्य कुशाओं से सिर पर शान्त्योषियों की पोटली रख छींटें दें।

केश कल्प विधि

१ चम्पा के फूल, धत्तूरे के बीज, जल में पीसकर केशों पर लेप करें।

२ आँवले नीबू के रस में पीसें, २१ दिन केशों पर लगाये।

इनको अ.वे. कां. ६ सू. १३६ तथा १३७ से अभिमन्त्रित कर लें।

मृत्वत्साके हेतु

रतन ज्योति पीले पुष्प की जड़ पञ्चाङ्ग सहित, जल में पीसकर पिलाये, माल कांगनी, जटामांसी के फूल निगलकर ऊपर से गौ घृत पिये।

अपस्मार (मृगी या हिस्ट्रिया)

१. काली मिर्च घोड़े के मूत्र में पीस नास दें।

२. कबूतर की बीट २ रत्ती, पानी में घिसकर नेत्रों में लगावें।

भंग धतूरे की गर्मी में

घी व खांड़ मिलाकर पियें।

बिच्छू का विष

नौसादर, चूना, समभाग लें, जल से पीसकर हाथों में मलें और सूँघें, कान का मैल थूक में घिसकर उस काटे पर लगावें।

अफीम

फिटकरी का चूर्ण पान के रस में ले, अफीम का नशा उतर जाता है।

गूँगेपन में

सफेद जीरा १ माशा, हींग ४ रत्ती, मिश्री १ तोला, ३ दिन प्रातः-सायं दूध में मिला पिये।

बधिरता में शुद्ध- एक पूती का लहसुन का अर्क और शुद्ध शराब कान में डालें।

सुजाक

रेवत चीनी, शीतल चीनी, दारुहल्दी, गेरू, सोडा, समभाग लेकर लस्सी के साथ सेवन करें, दूध-भात खावें।

कटेहरी की जड़ २ तोला, पानी १ सेर में पकाये, १/४ भाग रह जायें तब पियें, १४ दिन सेवन कर, गेहूँ, चना की रोटी खाये बिना नमक, मिर्च, मिठाई, घी लेना चाहिए। बिषखपरा की जड़ ६ माशे, पान का रस ६ माशे, पारा ३ माशे, मिला हाथ में मोड़े, पीक डालता जावे, हाथ मलता जाय, १।। प्रहर बाद ६ माशे रूमामस्तङ्गी लेपकर हाथों को मले, गर्म जल से धोयें।

बवासीर में

दही आधा सेर, राई ६ माशे भुनी पिसी, सीपी की कली ३ माशा, मिश्री ३ तोला मिला ३ दिन प्रातः सायं सेवन करें।

केश वृद्धिकरणेभैषज्यम् (कां. २ सू. २८)

धातुओं की क्षीणता, नपुंसकता, श्लेष्मा, नजला, यक्ष्मादि से शरीर में दुर्बलता से केशों की सफेदी और केशों का उखड़ना और केशों की वृद्धि में रुकावट आ जाने के उपद्रवों के निराकरण के निमित्त, अथर्व कां. ६ सू. १३६ "केशहंहणम्" तथा सूक्त १३, (केशवर्द्धनम्) काची माची फल और जीवन्ती फलों को जल में डालें, अभिमन्त्रित कर केशों को छींटे दें। भृङ्गराज (काला भांगरा) से धोयें ये उपर्युक्त ओषधियाँ रात्रि को जल में भिगोये, मथ जल अभिमन्त्रित कर ब्रह्ममुहूर्त, सूर्योदय से पूर्व धोयें। इससे श्वेतता दूर होकर श्यामता भी आयेगी, उपर्युक्त रोग दूर होंगे। इनमें आँवला और डालें।

केशवर्द्धन, केश जनन, छोटे से बड़ा काला करने के लिए, काले उड़द, काले तिल अन्य कृष्णवर्ण, अन्न की खिचड़ी में घी डाल अभिमन्त्रित कर खायें। त्रिफला का सेवन तथा अपामार्ग का चूर्ण बनाकर स्वर्ण व चांदी डालकर तप्त जल के ३/४ भाग को ठण्डा कर उसके साथ सेवन करें।

काशभैषज्य

प्रसूति या यक्ष्मादि की काश या श्लेष्मा के निराकरणार्थ का. २ सू २७ तथा शत्रु पराजय, तथा कां. ६ सू. १०५ 'काश शमनम्' तथा कां. ७ सू. १०७ से हल्दी को अभिमन्त्रित कर लें, या पीपली को शहद के साथ लें या पूर्वोक्त काली मिर्च १ पाव, ४ सेर जल में डाल, १/४ शेष जल में २ सेर चीनी की चाशनी लें, इलायची दानों की भाँति लें। या १ से ४१ दिन तक वृद्धि व ह्रास अर्थात् प्रथम दिन १ और ४१वें पुनः ४०वें दिन ४० ग्रास के साथ ८२वे दिन १ के क्रम से हरडें अभिमन्त्रित कर उपर्युक्त जल के साथ प्रातः सूर्योदय के पूर्व लें। निगलें। जौ के सत्तू अभिमन्त्रित कर खायें। सूर्य का उपस्थान करें। तीर्थजलों की शान्ति ओषधियाँ

डाल स्वर्ण चाँदी के साथ उबालकर अभिमन्त्रित कर आचमन करे। अपामार्ग की दातुन करें। गौ मूत्र नित्य पान करें, गौ बछड़े की हो, जिसके बच्चे न मरते हों, स्वस्थ पुष्ट हों।

कर्णशूल

कान में दर्द हो या फुन्सी हो, उससे पीड़ा या अन्य कान को पीड़ा हो तो कान में खाना सोडा डालें और १० बूँद नींबू के रस, ३ या ४ बार प्रयोग करें।

नपुंसकता हरणः बल वीर्यकरण विधि

१. मनसिल, २. कूठ, ३. सुहागा, ४. वीरवहोटी, ५. सफेद कन्नेर की जड़ें १/१ तोला ६. तेल आधा सेर, ७. चमेली का रस आधा सेर, सबको कढ़ाई में पकायें, रस जल जावे, तो उतारकर छान लें, जननेन्द्रिय पर लगावें ऊपर पान बाँध दें, रग फूलें नपुंसकता दूर होती है।

इसे अथर्ववेद काण्ड ६ सूक्त १३८ 'क्लीवत्वम्' (त्वंवीरुधांश्रेष्ठतमा) इत्यादि से अभिमन्त्रित कर लें।

अन्य

१. ढाक का गोंद १ छ० २. सैमर का गोंद १ छ०, ३. दूध १० सेर, गोंद पीसकर दूध में डालें, खोआ करें, उसे छाया में सुखायें, पीसकर उसी के बराबर मिश्री मिला लें, प्रातः सायं १५ दिन मात्रा एक तोला अनुपान गौ का धारोष्ण दूध, शहद व गौघृत डालकर सेवन करें।

अभिमन्त्रण उपर्युक्त सूक्त से सभी में अनिवार्य है।

अन्य

शिववीरज, लोहा, स्वर्ण, ताँबा की भस्में ये सब मिला उपर्युक्त दूध के साथ मलाई के साथ सेवन करें।

अथवा

दूध, घी, मोचरस, काली मिर्च, स्याह मूसली, शहद, गोरखमुण्डी, असगन्ध, छोटी दुद्धी, शंखाहूली (शंखपुष्पी), गुडूची, पीपरि, खाँड़, कैत्थ के बीज, केवड़ा, कूठ, मुलहठी, गेहूं कूट-पीसकर (समभाग) परबल, पान, गिलोय, तिल तेल में मिला शरीर पर मर्दन करना और असगन्ध नागौड़ी को दूध में पीना।

यदि संभोग के उपरान्त पियें तो संभोग से अरुचि नहीं हो बल और काम-वृद्धि हो।

वीर्य स्तम्भन

गोरखमुंडी, असगन्ध, जायफल, (दक्षिणी) जावित्री, अहिफेन, भंग, अजवायन, इन को चूर्ण कर गौ के धारोष्ण दूध, शहद, गौघृत मिला एक तोला २१ दिन सेवन करें।

लोहभस्म एक रत्ती, सोंठ २ तोला, मिश्री एक तोला, २१ दिन प्रातः सायं उपर्युक्त दूध के साथ सेवन करना।

पके केला, खाँड़, मधु, मिला ७ दिन प्रातः सायं, रजोदर्शन के उपरान्त स्त्री, पुरुष, संभोगान्तर सेवन करें।

पिण्डखजूर, केला पके, इनसे दूने ताल मखाने, पीसकर उपर्युक्त दूध से स्त्री पिये तो समस्त रोग दूर हों रजस्तम्भन हो।

उड़द का चूर्ण, महुआ का शहद (रस) सौंठ, विदारीकन्द मिला उपर्युक्त दूध के साथ स्त्री, ऋतुस्नानान्त सेवन करे ७ दिन प्रातः सायं।

यदि शुक्राणु नष्ट हो गये हों तो

असगन्ध, शितावर, सफेदमूसली, विदारीकन्द, पर्वतीगोखुरी, तालमखाना, हल्दी, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, गोरखमुण्डी, सैमर के फूल व गोंद, सफेद दूब, बबूल का पञ्चाङ्ग, ढाक के फूल, गोद जल-जमनी, बीज लजवन्ती, बीज वन तुलसा, सभी समभाग लें चूर्ण कर उसमें त्र्यवंगभस्म ६ माशा मिलाकर उपर्युक्त दूध के साथ ४१ दिन सायं प्रातः एक-एक तोला सेवन करें।

दमा श्वास का उपचार

अपामार्ग इसे ग्राम्य भाषा में चिचिड़ी, लटजीरा, चोरवा कहते हैं। इसके बीजों को शरद् पूर्णिमा के दिन अग्नि पर रखकर चीलम में रखकर धुआँ पीने से दमा चला जाता है। यह बवासीर, आँव, रक्तस्राव, रक्तचाप सभी विकारों को दूर करता है।

क्षेत्रीय रोग का उपचार

वंशानुक्रम से आनेवाले कुष्ठ, यक्ष्मा, अपस्मार, श्वास, पाण्डुरोग को अपामार्ग के प्रयोग से दूर किया जा सकता है। अपामार्ग खोटी भूमि ऊसर, श्मशान आदि स्थानों से नहीं लेना चाहिए। यदि अपमार्ग सूक्त से अभिमन्त्रित करके प्रयोग किया जाय तो अधिक उत्तम होगा।

सर्वज्वर शान्ति विधान

विनियोग–ॐ अस्य मन्त्रस्य अगस्त्य ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः कालिका देवता ज्वरस्य सघः शान्त्यर्थे विनियोगः।

मन्त्र

ॐ शान्ते शान्ते सर्वारिष्ट नाशिनी स्वाहा।

इस मन्त्र का दस हजार जप करने और आम के पत्तों से हवन करने से सभी प्रकार के ज्वर शान्त हो जाते हैं।

नक्षत्रदोष ज्वर निदान

(१) अश्विनी नक्षत्र में आया ज्वर छह दिन तक रहता है।

(२) भरणी नक्षत्र में आया ज्वर पाँचवें दिन में मृत्यु करने वाला हो जाता है।

(३) कृत्तिका नक्षत्र का ज्वर सात दिन रहता है। मतान्तर से २१ दिन तक चलता है।

(४) रोहिणी नक्षत्र का ज्वर आठ दिन तक रहता है।

(५) मृगशिरा नक्षत्र का ज्वर नौ दिन तक रहता है।

(६) आर्द्रा नक्षत्र में आया हुआ ज्वर ५ दिन अथवा ४५ दिन में मार डालता है।

(७) पुनर्वसु नक्षत्र का ज्वर तेरह मतान्तर से २७ दिन रहता है।

(८) पुष्य नक्षत्र का ज्वर तीन दिन अधिकतम सात दिन में शान्त हो जाता है।

(९) आश्लेषा नक्षत्र का ज्वर बहुत दिन तक रहने के बाद मार डालता है।

(१०) मघा नक्षत्र का ज्वर १२ दिन में मारता है यदि १२ दिन तक कुशल रहा तो बच जाता है।

(११) पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र का ज्वर मृत्यु तक कर देता है।

(१२) उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का ज्वर आठ या नौ दिन तक रहता है।

(१३) हस्त नक्षत्र का ज्वर सात या आठ दिन में उतर जाता है।

(१४) चित्रा नक्षत्र का ज्वर तीन दिन में ही शान्त हो जाता है।

(१५) स्वाती नक्षत्र का ज्वर दस दिन मतान्तर से ४५ दिन तक रहता है।

(१६) विशाखा नक्षत्र का ज्वर २१ दिन तक रहता है। यह मृत्यु भय भी देता है।

(१७) अनुराधा नक्षत्र का ज्वर आठ दिन तक रहता है। यदि इसके बाद भी रह गया तो असाध्य हो जाता है।

(१८) ज्येष्ठा नक्षत्र का ज्वर यदि ५ दिन में न मार डाले तो १२ दिन तक रहने के बाद ठीक हो जाता है।

(१९) मूल नक्षत्र का ज्वर यदि १० दिन तक बना रह गया तो फिर उसके बाद ओषधि कार्य नहीं करती अर्थात् असाध्य हो जाता है।

(२०) पूर्वाषाढा नक्षत्र का ज्वर नौ दिन तक रहता है। उपचार से लाभ हो जाता है।

(२१) उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का ज्वर १ महीने तक कष्ट देता है। इसमें न उतरा तो ९ मास तक कष्ट देता है।

(२२) श्रवण नक्षत्र का ज्वर आठ दिन तक पीड़ित रखता है।

(२३) धनिष्ठा नक्षत्र में ज्वर आया हो तो दस दिन कष्ट मिलता है।

(२४) शतभिषा नक्षत्र में चढ़ा हुआ ज्वर ६ दिन या १० दिन तक रहता है।

(२५) पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र का ज्वर मृत्यकारक होता है।

(२६) उत्तराभाद्रपद नक्षत्र का ज्वर चौदह दिन तक रहता है।

(२७) रेवती नक्षत्र का ज्वर पाँच या छह दिन तक रहता है।

ज्वर या अन्य बीमारी की दवा करने से पूर्व यदि नक्षत्र दोषों का ज्ञान कर लिया जाय तथा दवा के साथ ही नक्षत्र दोष की शान्ति करा दी जाय तो रोगी शीघ्र ही आरोग्य लाभ कर लेता है।

नक्षत्र ज्वर शान्त्यर्थ विधान

नक्षत्र दोषों के शमनार्थ निम्नलिखित वैदिक मन्त्रों को एक हजार जप करके पुनः बतायी गयी विधि से १०८ बार हवन करने से समस्त नक्षत्र दोषों का निवारण हो जाता है।

अश्विनी नक्षत्र के लिए

(१) ॐ उभा पिवतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्।
अविद्रियाभिरुतिभिः।। (यजुर्वेद ३४।२८)

इस मन्त्र के जप के पश्चात् इसी से अन्त में स्वाहा का प्रयोग करते हुए

१०८ बार दूधवाले वृक्ष की लकड़ी गूलर अथवा महुआ से घी के साथ आहुति देनी चाहिए।

(२) भरणी नक्षत्र के लिए

ॐ यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे।
देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु पृथिव्याः स स्पृशस्पाहि।
अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि।।

(यजुर्वेद ३७।११)

इस मन्त्र का जप एवं चावल से १०८ आहुति देनी चाहिए।

(३) कृत्तिका के लिए –

ॐ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपां रेतासि जिन्वति।। (ऋग्वेद ८।४४।१६, यजुर्वेद १५।२०)

इस मन्त्र का १ हजार जप एवं दही से १०८ बार आहुति दे।

(४) रोहिणी नक्षत्र के लिए –

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवी द्यातुरेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(ऋग्वेद १०।१२१।१, यजुर्वेद १३।४)

मन्त्र का जप एवं १०८ बार सर्वोषधि से आहुति दे।

(५) मृगाशिरा नक्षत्र के लिए –

ॐ इमं देवा सपत्न सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्येष्ठाय महते जानराज्यान्द्र स्येन्द्रियाय।

इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोमी राजा सोमाऽस्माकं ब्राह्मणाना राजा।।

(यजुर्वेद ९।४०)

मन्त्र का जप एवं घी से १०८ आहुति देनी चाहिए।

(६) आर्द्रा नक्षत्र के लिए –

ॐ इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामह मतीः।
यधा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं गामे अस्मिन्ननातुरम्।।

(ऋग्वेद १।११४।१

मन्त्र जप एवं शहद से १०८ आहुति देनी चाहिए।

(७) पुनर्वसु नक्षत्र के लिए –

ॐ महीमूषु मातर सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम।
तुविक्षत्रामजरन्ती मुरुची सुशर्माणमदिति सुप्रणीतिम्।।

(यजुर्वेद २१।५) अथर्ववेद ७।६।२)

मन्त्र का जप एवं चावल की आहुति दे।

(८) पुष्य नक्षत्र के लिए –

ॐ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद् विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद् दीदयच्छवस ऋत प्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्।।

(ऋग्वेद २।२३।१५)

इस मन्त्र का जप एवं दूध तथा खीर मिलाकर आहुति दे।

(९) श्लेषा नक्षत्र के लिए –

ॐ नमोऽस्तु सर्वेभ्यो ये के च पृथिवी मनु।
अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः।।

(यजुर्वेद १३।६)

इस मन्त्र का जप एवं सर्वोषधि से आहुति देनी चाहिए।

(१०) मघा नक्षत्र के लिए –

ॐ इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु।।

(ऋग्वेद १०।१५।२, अथर्ववेद १८।१।४६)

मन्त्र जप के पश्चात् चावल पकाकर भात से आहुति दे।

(११) पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के लिए –

ॐ प्रातर्जितं भगमुग्र हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्राश्चिद्यं मन्य मास्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह।।

(ऋग्वेद ७।४१।१२, यजुर्वेद ३४।३५)

मन्त्र जप के बाद कङ्कु (काकुन) से आहुति दे।

(१२) उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के लिए –

ॐ अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय।
वाचं विष्णु सरस्वती सवितारं च वाजिन स्वाहा।।

(यजुर्वेद ९।२७)

मन्त्र जप के बाद घी की आहुति देनी चाहिए।

(१३) हस्त नक्षत्र के लिए –

ॐ भूभुर्वः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।

(यजुर्वेद ३६।४)

मन्त्र जप के बाद दही की आहुति देनी चाहिए।

(१४) चित्रा नक्षत्र के लिए –

ॐ घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वीमनुदुघे सुपेशसा।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूतिरेतसा।।

(यजुर्वेद ३४।४५)

इस मन्त्र द्वारा मधु और खीर की आहुति देनी चाहिए।

(१५) स्वाती नक्षत्र के लिए –

ॐ वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम्।
शिवो नियुद्भिः शिवाभिः।।

(यजुर्वेद २७।३१)

इस मन्त्र के द्वारा घी और तिल की आहुति देनी चाहिए।

(१६) विशाखा नक्षत्र के लिए –

ॐ इन्द्राग्नी आगत सुतं गीर्भि न भो वरेण्यम्।

अस्य पात धियेषिता उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा।।

(ऋग्वेद ३।१२।१, यजुर्वेद ७।३१)

इस मन्त्र द्वारा नये चावल के भात से आहुति देनी चाहिए।

(१७) अनुराधा नक्षत्र के लिए –

ॐ महिभूर्मा पृदाकुर्नसस्त आ माना नर्वा प्रेहि।
घृतस्य कल्याऽउपऽऋतस्य पथ्याऽअनु।।

(यजुर्वेद ६।१२)

इस मन्त्र के द्वारा लहसुन की आहुति देनी चाहिए।

(१८) ज्येष्ठा नक्षत्र के लिए –

ॐ त्रातारमिन्द्र मवितारमिन्द्र हवे हवे सुहव शूरमिन्द्रम्।
हवयामि शक्रं पुरुहूत मिन्द्रं स्वस्त नो मघवा धात्विन्द्र।।

(यजुर्वेद २०।५०)

इस मन्त्र के द्वारा करिहारी की आहुति देनी चाहिए।

(१९) मूल नक्षत्र के लिए –

ॐ अयं ते योनिऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः।
तं जानन्नग्न आ सीदाथा नो वर्धया गिरः।।

(ऋग्वेद ३।२९।१०, अथर्ववेद ३।२०।१)

इस मन्त्र के द्वारा अनन्तमूल की आहुति देनी चाहिए।

(२०) पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के लिए –

ॐ इदमाप्नः प्रवहत यत् किं च दुरितं मयि।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम्।।

(ऋग्वेद १०।९।८)

इस मन्त्र के द्वारा नये चावल से आहुति देनी चाहिए।

(२१) उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के लिए –

ॐ विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊतीं विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः।
विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे।।

(ऋग्वेद १०।३५।१३, अथर्ववेद ६।४७।२)

इस मन्त्र के द्वारा असगन्ध की आहुति देनी चाहिए।

(२२) श्रवण नक्षत्र के लिए –

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूढ़ मस्य पां सुरे।।

(ऋग्वेद १।२२।१७, अथर्ववेद ७।२६।४)

इस मन्त्र के द्वारा लाल पुष्प से आहुति देनी चाहिए।

(२३) धनिष्ठा नक्षत्र के लिए –

ॐ वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता।।

इस मन्त्र के द्वारा वट वृक्ष के वरौंत की आहुति देनी चाहिए।

(२४) शतभिषा नक्षत्र के लिए –

ॐ तत् त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस् तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेऽमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः।।

(ऋग्वेद १।२४।११)

इस मन्त्र के द्वारा कमल पुष्प की आहुति देनी चाहिए।

(२५) पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र के लिए –

ॐ उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः।
विश्वेदेवा ऋतावृधो हुवाना स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु।।

(यजुर्वेद ३४।५३)

इस मन्त्र के द्वारा नये चावल के भात से आहुति देनी चाहिए।

२६) उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र के लिए –

ॐ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुंमासि परिपातु विश्वतः।

(ऋग्वेद ६।७५।१४, यजुर्वेद २९।५१)

इस मन्त्र के द्वारा चावल के भात से आहुति देनी चाहिए।

(२७) रेवती नक्षत्र के लिए

ॐ पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन।
स्तोतारस्त इह स्मसि।।

(यजुर्वेद ३४।४१)

इस मन्त्र के द्वारा अक्षत एवं फल से आहुति देनी चाहिए।

इन सत्ताईस नक्षत्रों में जिस नक्षत्र में ज्वर अथवा कष्ट आरम्भ हुआ हो उस नक्षत्र के मन्त्र का एक हजार जप तथा बताये गये समिधाओं से १०८ आहुति देने से यथाशीघ्र लाभ होता है।

सर्वज्वर हरण मन्त्र

निम्नलिखित मन्त्र को पढ़ते हुए कुश से झाड़ देने पर सभी प्रकार के ज्वरों से निवृत्ति हो जाती है।

मन्त्र

ॐ ह्रीं क्लीं ठः ठः भो भो ज्वर शृणु शृणु हं हं गर्ज गर्ज एकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुराहिकं साप्ताहिकं मासिकं अर्द्धमासिकं वार्षिकं द्विवार्षिकं मौहूर्तिकं नैमिषिकं अट अट भट भट हुं फट् (अमुकस्य रोगी का षष्ठ्यन्त नामोच्चारण) ज्वरं हन हन मुञ्च मुञ्च भूम्यां गच्छ गच्छ स्वाहा।।

नेत्र विकार

नेत्र सम्बन्धी किसी प्रकार का कष्ट होने पर चाक्षुषोपनिषद् मन्त्र का ११ पाठ प्रतिदिन प्रातः वेला में चतुर्मुख दीपक जलाकर करने से नेत्र ज्योति बढ़ती है तथा समस्त नेत्रदोषों का शमन हो जाता है।

विनियोग– ॐ अस्य चाक्षुषोपनिषदः अहिर्बुध्न्य ऋषिः। सविता देवता। गायत्री छन्दः चक्षूरोग निवृत्तये विनियोगः।

मन्त्र

ॐ चक्षुः चक्षुः चक्षुः तेजः स्थिरो भव। मां पाहि पाहि। त्वरितं चक्षूरोगान् शमय शमय। मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय। यथाहम् अन्धो न स्यां तथा कल्पय कल्पय। कल्याणं कुरु कुरु। यानि मम पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुः प्रतिरोधक दुष्कृतानि सर्वाणि निर्मूलय निर्मूलय। ॐ नमः चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्याय भास्कराय। ॐ नमः करुणाकरायामृताय। ॐ नमः सूर्याय। ॐ नमो भगवते सूर्यायाक्षितेजसे नमः। खेचराय नमः महते नमः। रजसे नमः तमसे नमः। असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्युर्मा अमृतं गमय। उष्णो भगवाञ्छुचि रूपः। हंसो भगवान् शुचिर प्रतिरूपः। य इमां चाक्षुष्मती विद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति। न तस्य कुले अन्धो भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा विद्या सिद्धिर्भवति।



अध्याय ६

वैदिक साहित्य के बिखरे मोती

वैदिक साहित्य में संस्कार शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है किन्तु संस्कार के पर्याय के रूप में 'संस्कृतम्' शब्द का उल्लेख यजुर्वेद संहिता में आया है।

भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व मुवस्पते विश्वान्यभि धामानि।
मा त्वा परिपरिणो विदन् मा त्वा परिपन्थिनो विदन् मा त्वा वकाऽअघायवोविदन्। श्येमो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहन् गच्छ तन्नौ संस्कृतम्।। (यजुर्वेद ४।३४)

छान्दोग्योपनिषद् (४।१६।१-२) में वर्णन आता है -

तस्मादेष एवं यज्ञस्तस्य मनश्च वाक् च वर्तिनी।
तयोरन्यतरां मनसा संस्करोति ब्रह्मा वाचा होता।।

संस्कार का प्रयोग प्रायः तीन अर्थों में हुआ है -

१. गुणाधान २. दोषापनयन ३. हीनाङ्गपूर्ति।

यहाँ संस्कारों की विधि, उद्देश्य तथा कर्मकाण्ड पक्ष को न लेकर मात्र ज्योतिषीय उल्लेखों का विवेचन किया जा रहा है।

अथर्ववेद काण्ड ५ सूक्त २५ गर्भाधान संस्कार से सम्बन्धित है। इसके ऋषि ब्रह्मा हैं देवता योनिगर्भ है तथा छन्द अनुष्टुप् है। इसमें कहा गया है कि पर्वत की ओषधि, स्वर्ग के पुण्य और अंग शक्ति से पुष्ट वीर्य धारण करनेवाला पुरुष जल में पत्ते के समान गर्भाधान करता है। सभी प्राणियों के गर्भ को जैसे पृथ्वी धारण करती है वैसे ही मैं तेरा गर्भ धारण करती हुई उसकी रक्षा के लिए तुझे बुलाती हूँ। हे सिनीवाली, हे सरस्वती, हे कल्याणी, गर्भ को पुष्ट करो। पुष्पमाला धारी अश्विद्वय तेरे गर्भ को पुष्ट करें। मित्रावरुण, बृहस्पति, इन्द्र, अग्नि और धाता तेरे गर्भ को पुष्ट करें।

इस सूक्त में गर्भ की रक्षा के लिए परमात्मा तथा अन्य देवों से पुत्रोत्पत्ति की प्रार्थना की गयी है। इस प्रकार की भावनाओं के साथ गर्भाधान होने से मानसिक शक्ति का भागी सन्तान पर कल्याणकारी प्रभाव पड़ता है।

गर्भाधान काल ज्ञान

प्रतिमास मंगल एवं चन्द्रमा की परस्पर दृष्टि अथवा युति अथवा चन्द्रमा पर

मंगल की दृष्टि ही स्त्रियों के ऋतुधर्म का कारण बनता है। किन्तु प्रत्येक ऋतुधर्म गर्भाधान में सहायक नहीं होता। गर्भाधान के लिए उपर्युक्त ऋतुधर्म वह है जब किसी भी स्त्री की राशि से चन्द्रमा उपचय स्थान अर्थात् ३, ६, १०, ११ को छोड़कर अनुपचय में हो अर्थात् १।२।४।५।७।८।९।१२ इन स्थानों में हो तथा चन्द्रमा पर गुरु की दृष्टि हो उस समय पुरुष की राशि से उपचय स्थान में चन्द्रमा गुरु से दृष्ट हो तब स्त्री–पुरुष संयोग से निश्चय ही सन्तान का योग बनता है।

(१) आधान लग्न से सातवें स्थान में पापग्रह मंगल, शनि, राहु, केतु की दृष्टि हो, क्रोध में समागम यदि सौम्यग्रह बुध, गुरु, शुक्र की दृष्टि हो तो प्रसन्नता में समागम होता है।

(२) आधानकाल में सूर्य, चन्द्र, मंगल एवं शुक्र अपने–अपने नवांशों में हों, गुरु लग्न से १, ४, ७, १० केन्द्र तथा ५, ९ त्रिकोण में हो तो निश्चित ही पुत्र सन्तान का जन्म होता है।

(३) आधानकाल में सूर्य से सातवें मंगल या शनि हो तो पुरुष अथवा चन्द्रमा से सांतवें मंगल या शनि हों तो स्त्री के लिए रोग देनेवाला होता है।

(४) आधानकाल में सूर्य से दूसरे या बारहवें मंगल शनि हों अथवा इनकी दृष्टि हो तो पुरुष तथा चन्द्रमा से दूसरे या बारहवें मंगल शनि हो अथवा इनकी दृष्टि हो तो स्त्री के लिए घातक योग बनता है।

(५) आधानकाल में सूर्य मंगल अथवा शनि में किसी एक से युत हो तथा अन्य एक से दृष्ट भी हो तो पुरुष के लिए इसी प्रकार चन्द्रमा, मंगल अथवा शनि में किसी एक से युत तथा दूसरे से दृष्ट हो तो स्त्री के लिए घातक हो जाता है।

(६) आधानकाल यदि दिन में हो तो शुक्र मातृग्रह तथा सूर्य पितृग्रह होता है तथा रात्रि में आधान हो तो चन्द्रमा मातृग्रह एवं शनि पितृग्रह होता है। पितृग्रह विषम राशि में तथा मातृग्रह सम राशि में हो तो माता–पिता के लिए शुभ होता है। विपरीत होने से आधान स्त्री–पुरुष को कष्टदायक होता है।

(७) आधान लग्न से यदि बारहवें कोई पापग्रह किसी भी पापग्रह से दृष्ट हो तथा शुभग्रह से दृष्ट न हो तो ऐसी स्थिति होने पर गर्भाधान के पश्चात् बच्चे के जन्म देने तक स्त्री की मृत्यु हो जाती है।

(८) आधानकालीन लग्न में शनि हो उस पर क्षीण चन्द्रमा अथवा मंगल की दृष्टि हो तो भी आधान होने पर स्त्री की मृत्यु हो जाती है।

(९) आधानकाल में लग्न अथवा चन्द्रमा दोनों दो–दो अथवा एक–एक पाप–ग्रहों के मध्य में हों तो उस स्थिति में स्त्री एवं गर्भस्थ शिशु दोनों की मृत्यु हो जाती है।

(१०) आधानकाल में लग्न अथवा चन्द्रमा से चौथे पापग्रह हों, मंगल आठवें हो तो भी गर्भवती की मृत्यु होती है।

(११) आधानकाल में यदि लग्न में मंगल तथा सातवें सूर्य हो तो गर्भवती स्त्री का शस्त्र अथवा प्रसूति के समय शल्य क्रिया से मृत्यु होती है।

(१२) आधानकाल में जिस मास का स्वामी पीड़ित हो अथवा अस्त हो उस मास में असह्य वेदना अथवा गर्भस्राव की स्थिति बनती है।

गर्भमासों के स्वामी

गर्भकाल से प्रथम मास का स्वामी शुक्र, द्वितीय मास का स्वामी मंगल, तृतीय मास का स्वामी गुरु, चतुर्थ का स्वामी सूर्य, पंचम मास का स्वामी चन्द्रमा, षष्ठ मास का स्वामी शनि, सप्तम मास का स्वामी बुध, अष्टम मास का स्वामी आधानकालिक कुण्डली का लग्नेश ग्रह तथा नवम मास का स्वामी सूर्य या चन्द्रमा कहा गया है। आधानकाल में जो ग्रह बली अथवा निर्बल हो उसी के अनुसार उस–उस मास का फल जानना चाहिए।

(१) आधान लग्न से चन्द्रमा दूसरे हो अन्य ग्रह पाप ग्रहों की सन्धि में हो तो जातक मूक (गूँगा) होता है। यदि शुभ ग्रहों से चन्द्रमा दृष्ट हो तो शिशु देर से बोलता है।

(२) आधानकालीन लग्न से बुध पंचम अथवा नवम भाव में अकेला हों बली हो तथा अन्य ग्रह निर्बल हों तो शिशु विचित्र आकृति जैसे दो मुख या अन्य विकृति वाला राक्षस जैसा उत्पन्न होता है।

(३) आधानकालीन कुण्डली में मंगल एवं शनि बुध की राशि या नवमांश में हों तो शिशु को गर्भ में ही दांत निकल जाते हैं।

(४) आधानकालीन कुण्डली में चतुर्थ स्थान का स्वामी ग्रह चन्द्रमा के साथ अथवा लग्न में हो तथा शनि अथवा मंगल से पूर्ण दृष्ट हो तो शिशु कुबड़ा होता है।

(५) आधानकाल में मीन लग्न हो। लग्न पर चन्द्रमा, मंगल एवं शनि की पूर्ण दृष्टि हो तो जातक पंगु (लँगड़ा) होता है।

(६) आधानकाल में पापग्रह एवं चन्द्रमा चतुर्थ भाव में सन्धि में हो, शुभ ग्रहों से दृष्ट न हो तो शिशु मन्दबुद्धिवाला होता है।

(७) आधानकाल में लग्न में मकर का अन्तिम अंश हो उस पर सूर्य, चन्द्रमा एवं शनि की दृष्टि हो तो शिशु (वामन) बौना होता है।

(८) आधानकाल में लग्न, पंचम एवं नवम के द्रेष्काण में पापग्रह हों तो शिशु क्रमशः हाथ, पैर एवं सिर से रहित होता है।

(९) यदि गर्भाधान के समय सिंह लग्न हो उसमें सूर्य एवं चन्द्रमा की युति हो तथा उस पर शनि एवं मंगल की दृष्टि हो तो शिशु नेत्रहीन (अन्धा) होता है।

(१०) यदि उपर्युक्त स्थिति में पापग्रहों के साथ शुभग्रहों की भी दृष्टि हो तो नेत्र विकार जैसे फूली आदि होता है। यदि लग्न से १२वें चन्द्रमा हो तो बायाँ, सूर्य हो तो दायाँ नेत्र विकार युक्त होता है।

(११) यदि आधान लग्न में शनि का नवांश हो शनि सातवें हो तो तीन वर्ष के पश्चात् प्रसव होता है।

(१२) यदि आधानकाल में लग्न में चन्द्रमा का नवांश हो और चन्द्रमा सप्तम में हो तो १२ वर्ष पर जन्म होता है।

जन्मकाल का ज्ञान

आधानकाल में जिस द्वादशांश में चन्द्रमा हो उससे उतनी संख्या आगे की राशि में चन्द्रमा के जाने पर प्रसव होता है। द्वादशांश भुक्त अंश आदि को २ से गुणा कर ५ से भाग दे लब्धि राशि, अंश, कला, विकला परिणाम को सूचक जानना चाहिए।

आधानकालीन लग्न द्वारा पुत्र, कन्या का ज्ञान

आधानकालीन लग्न या चन्द्रमा के साथ अथवा इन दोनों से ५, ९, ७, ४, १०वें शुभ ग्रह हों, ३, ६, ११ में पाप ग्रह हों तथा लग्न और चन्द्रमा पर ग्रहों की दृष्टि भी हो तो गर्भ सुखी रहता है। लग्न, सूर्य, चन्द्रमा एवं गुरु विषम राशि में तथा नवें हो अथवा सूर्य एवं गुरु विषम राशि में हो तो पुत्र का जन्म होता है।

उपर्युक्त ग्रह यदि सम राशि में हों अथवा नवम स्थान में हों अथवा चन्द्रमा, मंगल और शुक्र शुभराशि में हों तो कन्या का जन्म होता है। ये ही ग्रह द्विस्वभाव राशि में हों तथा बुध से दृष्ट हों तो यमल जुड़वा सन्तान का जन्म होता है। यदि दोनों प्रकार के ग्रह हों तो एक पुत्र एक कन्या का जन्म होता है। शुक्र एवं चन्द्रमा समराशि में हों, बुध, गुरु, मंगल एवं लग्न विषमराशि में हो तो भी यमल सन्तान (जुड़वा) का जन्म होता है। यदि बुध, मिथुन, कन्या राशि का होकर नवम भाव में हो, द्विस्वभाव राशि के ग्रह देख रहे हों तो तीन सन्तान एक साथ होती है। यदि धनुराशि का अन्तिम अंश लग्न में हो उसी अंश में बली ग्रह हो बुध एवं शनि से दृष्ट हों तो तीन से भी अधिक सन्तानों का एक साथ जन्म होता है।

पारस्कर के अनुसार गर्भाधान में ग्राह्य दिन एवं फल

दिन	फल
प्रथम	शिशु प्रसव में नष्ट हो, गर्भपात हो जाता है।
द्वितीय	सूतिका घर में शिशु की मृत्यु होती है।
तृतीय	अल्पायु तथा अंगहीन होता है।
चतुर्थ	अल्पायु एवं दरिद्री पुत्र होता है।
पञ्चम	साधारण कन्या का जन्म होता है।
षष्ठ	साधारण पुत्र का जन्म होता है।
सप्तम	सुन्दर कन्या का जन्म होता है।
अष्टम	भक्तियुक्त पुत्र का जन्म होता है।
नवम	सौभाग्यवती कन्या का जन्म होता है।
दशम	गुणवान् पुत्र उत्पन्न होता है।
एकादश	अधर्मिणी कन्या का जन्म होता है।
द्वादश	उत्तम पुत्र का जन्म होता है।
त्रयोदश	वर्णसंकर सन्तानों को जन्म देनेवाली कन्या होती है।
चतुर्दश	धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सर्वगुणसम्पन्न पुत्र होता है।
पञ्चदश	पतिव्रता, सौम्या कन्या उत्पन्न होती है।
षोडश	धर्मात्मा, राष्ट्रनायक पुत्र उत्पन्न होता है।

पर्व के दिन, ग्रहण का काल, अमावस्या, पूर्णिमा, एकादशी, अष्टमी, चतुर्दशी तथा श्राद्ध के दिनों का त्याग गर्भाधान में करना चाहिए। दिन में गर्भाधान होने से नपुंसक, अल्पपराक्रमी तथा अल्पायु सन्तान होती है।

ग्राह्य तिथि एवं वार

गर्भाधान के लिए प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, नवमी, दशमी, द्वादशी एवं त्रयोदशी तिथियाँ उत्तम कही गयी हैं। जबकि सोमवार, शुक्रवार एवं गुरुवार श्रेष्ठ दिन माने गये हैं।

ग्राह्य नक्षत्र

रोहिणी, मृगशिरा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, तीनों उत्तरा, श्रवण, शतभिषा उत्तम नक्षत्र कहे गये हैं।

गर्भाधान में त्याज्य योग, तिथि, नक्षत्रादि

गण्डान्त, जन्म, विपत्त, प्रत्यरि, वध, तारा, मूल, भरणी, अश्विनी, रेवती, ग्रहण का दिन, व्यतिपात, वैधृति, श्राद्ध दिन, परिघ, उत्पात नक्षत्र, पापयुक्त लग्न, भद्रा, जन्म तथा अष्टम लग्न, रिक्ता तिथि अष्टमी, अमावस्या एवं पूर्णिमा, सन्ध्याकाल, दिन के समय, संक्रान्ति का दिन सूर्य, मंगल एवं शनि का दिन तथा रजोदर्शन से ४ दिन तक गर्भाधान सर्वथा त्याज्य है।

गर्भाधान में स्वरों का ज्ञान

यदि गर्भाधान के समय पुरुष का दाहिना तथा स्त्री का बायाँ स्वर चल रहा हो तो उस समय वन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती होती है।

यदि गर्भाधान में दाहिना स्वर चल रहा हो और भोग के ठीक बाद बायाँ स्वर चलने लगे तो स्त्री गर्भधारण नहीं कर सकती है।

गर्भाधान के समय मन का विचार

आरोग्य शास्त्र में भगवान् आत्रेय ने कहा है कि बीजग्रहण के समय स्त्री का मन जिस प्राणी की ओर जाता है अर्थात् जैसा संकल्प होता है उसी के अनुरूप सन्तान होती है।

गर्भोप्नपत्तौ तु मनः स्त्रियां यं जन्तुं ब्रजेत्तत्सदृशं प्रसूते।

अथर्ववेद का कथन है कि पुरुष में ही वीर्य उत्पन्न होता है वहीं गर्भाधान द्वारा गर्भ में सेचन करता है। उसी से पुत्र की प्राप्ति होती है। इस पुत्र जनन उपाय को प्रजापति ब्रह्मा ने कहा है। प्रजापति पुरुष और अनुमति पति के अभीष्ट पुत्र का चिन्तन करने वाली सिनीवाली स्त्री ही गर्भधारण और पालन में समर्थ हो सकते हैं अन्यथा विधि से कन्या उत्पन्न होती है।

पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिर ब्रवीत्।।
प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्य चाक्लृपत्।
स्त्रैषुमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह।। (अथर्ववेद ६।११।२-३)

गर्भिणी के गर्भ पर तथा गर्भाधान काल में उत्तम संस्कार डालने की अनिवार्यता को ऋग्वेद आदेश देता है।

ऊँ प्रतिस्तोनेभिरुषसं वसिष्ठाः गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्नन्।
विवर्तयन्ती रजसी समन्ते आविष्कृण्वन्तीं भुवनानि विश्वा।।

एषास्या नत्यमायुर्दधाना गूढवी तमो ज्योतिषोषा अवोधि।
अग्रं एति युवति रह्वयाषा प्रचिकितत्सूर्य यज्ञमग्निम्।।

(ऋग्वेद ७।५।८०।१-२)

गर्भस्थ बालक पितामह हो, पितामह के तुल्य हो इसका हेतु मन ही प्रथम संस्कार है।

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानौ अक्षरे सीदन्नृतस्ययोनिमा।

(ऋग्वेद ६।२।१६।३५)

सन्तानोत्पत्ति में स्त्री–पुरुष दोनों के मनोबल, संस्कार तथा व्यवहार, आहार तथा स्वास्थ्य एवं पारस्परिक प्रगाढ़ प्रेम, निष्ठा और विश्वास ही मूल कारण हैं। यही यजुर्वेद का मन्तव्य है।

ॐ उत्सक्थ्याऽअवगुदं धेहि समाञ्जि चारया वृषन्।
या स्त्रीणां जीव भोजनः।। (यजुर्वेद २३।२१)

गर्भाधान विवेचन

सृष्टि के रचनाकार देवताओं के अंश प्रत्येक शरीर में कहाँ, किस प्रकार हैं, इसका उल्लेख अथर्ववेद में प्राप्त होता है। लिखा है आशिष, प्राशिष, शासन तथा मन की सब वृत्तियों ने पुरुष देह में प्रवेश किया। स्नान जल, प्राण स्थिर रखने-वाले जल, त्वरण जल, अल्पजल, गुहास्थित जल, वीर्यरूपी जल, स्थूल जल और सर्व व्यवहारास्पद जल सभी अपने कर्म सहित शरीर में प्रविष्ट हुए। प्राणियों की हड्डियों को समिन्धन साधन बनाकर आठ जलों ने शरीर में प्रवेश किया और उसमें वीर्य रूप घृत को बनाया। इस प्रकार इन्द्रियों और उनके अधिष्ठातृ देवताओं ने पुरुष देह में प्रवेश किया।

आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः।
चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरसनु प्राविशन्।।

आस्नेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणः कृपणाश्च याः।
गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता वीभत्सादसादयन्।।

अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन्।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन्।।

(अथर्ववेद ११।८।२७-२९)

विश्वदेव	शरीर में देवतांश
१. परब्रह्म	जीवात्मा
२. सूर्य	नेत्र
३. पृथिवी	नासिका
४. आपः	रसना
५. अग्नि	वाणी, मुख
६. दिशा (आकाश)	कान
७. वायु (रुद्र)	प्राण (त्वचा)
८. ओषधि (वनस्पति)	केश
९. आपः	रक्त
१०. द्यौः	मस्तक
११. अन्तरिक्ष	नाभि उदर
१२. पृथ्वी	पैर
१३. पर्वत	पर्व, जोड़
१४. अश्विनौ	श्वास, प्रश्वास

अथर्ववेद के इन मन्त्रों में वर्णित इस गर्भाधान यज्ञ में घी रेत ही है। इस रेत की आहुति स्त्री के गर्भाशय में डाली जाती है। इसी रेत के साथ विश्व के समस्त देवताओं के अंश रूप जो पिण्डदेह में पिता के थे उनके अणुतम रूप सत्वांश वीर्य के द्वारा प्रविष्ट होते हैं अर्थात् ब्रह्माण्ड में जो देवता जो जल और ब्रह्म के साथ विराट् पुरुष हैं वे वीर्य के साथ प्रवेश करते हैं। जल तो प्रवाही पदार्थ के रूप में गर्भाशय में रहता ही है उसी में विराट् पुरुष (ब्रह्म का अंश) जीवात्मा में पहुँचता है।

पुंसवन संस्कार का मुहूर्त

पुंसवन संस्कार से पुत्र की उत्पत्ति मानी जाती है। "पुमान् प्रसूयते येन तत् पुंसवनम्।" अथर्ववेद में पुंसवन शब्द का प्रयोग आया है। इसका अर्थ है पुत्र को जन्म देना।

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम्।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि।। (अथर्ववेद ६।११।१)

जिस शमी वृक्ष में पीपल वृक्ष भी चढ़ा हो तो उसके नीचे पुंसवन करने से अवश्य ही पुत्रोत्पत्ति होती है। आश्वलायन गृह्य सूत्र (१।१३।२-७) ने गर्भ से तीसरे महीने में इस संस्कार को सम्पन्न करने का विधान दिया है। पारस्कर सूत्र १।१४ का कथन है कि जब भ्रूण हिलने-डुलने लगे तब पुंसवन क्रिया करनी चाहिए। प्रायः गर्भ से तीसरे मास के अन्त तक लिङ्ग निर्धारण (पुत्र अथवा कन्या) हो जाता है। अतएव गर्भ से दूसरे अथवा तीसरे मास तक यह संस्कार सम्पन्न कर देना चाहिए। यदि गोचर वश मंगल अधिक बली हो तो दूसरे मास में अन्यथा गुरु के बली होने पर तीसरे मास में संस्कार करना चाहिए।

पुंसवन में ग्राह्य दिन

पुरुष ग्रहवाले वार यथा रविवार, भौमवार तथा गुरुवार के दिन श्रेष्ठ कहे गये हैं। अन्य मत से बुध एवं शुक्र भी ग्राह्य हैं। जिस दिन पुरुष एवं स्त्री दोनों की शुभ तारा हो वह दिन अधिक श्रेयस्कर होता है।

पुंसवन के ग्राह्य नक्षत्र

मृगशिरा, पुष्य, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, हस्त, रेवती, रोहिणी तथा तीनों उत्तरा नक्षत्र पुंसवन के लिए उत्तम कहे गये हैं। इसमें जो पुरुष का अपना नक्षत्र हो उस नक्षत्र को छोड़ देना चाहिए। कुछ ऋषियों के मत में रेवती, रोहिणी एवं तीनों उत्तरा पुरुष संज्ञक नक्षत्र न होने से इसमें पुंसवन उत्तम नहीं होता।

पुंसवन में ग्राह्य तिथि

द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी तथा त्रयोदशी तिथि शुक्ल पक्ष में तथा कृष्ण पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, पंचमी तथा सप्तमी उत्तम कही गयी हैं। यह संस्कार सदैव मध्याह्न के पूर्व तक करना उत्तम है अपराह्न में कदापि श्रेयस्कर नहीं होता।

पुंसवन में ग्राह्य लग्न

इस संस्कार में मेष, सिंह, तुला एवं धनु लग्न श्रेष्ठ कहे गये हैं। तथापि किसी भी लग्न में जब शुभग्रह केन्द्र अथवा त्रिकोण में हो तथा पापग्रह ३।६।११ में हो चन्द्रमा १, ६, ८, १२ में न हो उस समय यह संस्कार शुभ फलदायक होता है।

सीमन्तोन्नयन संस्कार

सीमन्त शब्द का अर्थ है माँग अतः सीमन्तोन्नयन से अभिप्राय है स्त्री के केशों के ऊपर विभाजित करके माँग निकालना। आश्वलायन गृह्य सूत्र के अनुसार गर्भाधान के चौथे मास में यह संस्कार करना चाहिए। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी जब चन्द्रमा क्षय होने लगे उस समय यदि पुरुष संज्ञक नक्षत्र भी हो तो अथवा जभी पुँल्लिग नक्षत्र हो तो इस संस्कार को सम्पन्न करना चाहिए। कुछ गृह्य सूत्रों के अनुसार इसे साँतवें या आठवें मास में किया जाना चाहिए। पारस्कर गृह्य सूत्र के अनुसार यह संस्कार पुंसवन संस्कार के समान शुभ दिन तिथि नक्षत्रों में होना चाहिए।

पुंसवनवत्।।१।१५।२ पारस्कर गृह्यसूत्र।

जातकर्म संस्कार

जातकर्म संस्कार के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी बातें कही गयी हैं। पारस्कर गृह्य सूत्र में कहा गया है कि जब स्त्री प्रसववेदना से युक्त हो तब उसका पति उसके ऊपर एजतु मन्त्र का पाठ करता हुआ जल से सिञ्चन करें। एजतु मन्त्र यजुर्वेद में प्राप्त है।

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह।
यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति।
एवायं दशमास्यो अस्त्रज्जरायुणा सह।। (यजुर्वेद ८।२८)

शतपथ ब्राह्मण में नालच्छेदन के पूर्व तथा जन्म के बाद इस संस्कार को सम्पादित करने का उल्लेख किया है। वस्तुतः यह संस्कार शिशु के जन्म के पश्चात् ११ दिनों के अन्दर करना चाहिए। इस संस्कार के शुभ तिथ्यादि मुहूर्त निम्नलिखित हैं।

ग्राह्य तिथि वारादि

भद्रा, व्यतिपात, वैधृति तथा संक्रान्ति दोष से रहित प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी तिथियाँ उत्तम कही गयी हैं तथा सोमवार, बुधवार, गुरुवार एवं शुक्रवार श्रेष्ठ दिन कहे गये हैं।

ग्राह्य नक्षत्र

मृगशिरा, अश्विनी, रेवती, चित्रा, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, पुनर्वसु, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य एवं हस्त नक्षत्र जातकर्म के लिए उत्तम माने गये हैं।

नामकरण संस्कार

सांसारिक सम्पूर्ण व्यवहार नाम द्वारा ही सिद्ध है। नाम से ही मनुष्य यशस्वी होता है अतः नामकरण संस्कार आवश्यक माना गया है। पारस्कर गृह्य सूत्र के अनुसार शिशु का नामकरण जन्म के दसवें दिन ही करना चाहिए। जब शिशु सूतिका गृह से बाहर निकल आये तथा जननाशौच समाप्त हो जाय तो ब्राह्मण भोजनोपरान्त नामकरण की प्रक्रिया होनी चाहिए। नाम दो या चार अक्षरों का होना चाहिए। नाम कृदन्त होना चाहिए तद्धितान्त नहीं। नाम के प्रारम्भ में घोष वर्ण होना चाहिए। नाद की दृष्टि से जिन व्यञ्जन वर्णों के उच्चारण में स्वर झंकृत हो जाय उसे घोष कहते हैं। प्रत्येक वर्ग का तीसरा, चौथा और पाँचवाँ वर्ण सभी स्वर तथा य व र ल तथा ह घोष वर्ण हैं। बीच में अन्तःस्थ अर्थात् य, र, ल, व में से कोई एक वर्ण हो और अन्तिम वर्ण दीर्घ हो। पुत्र का नाम दो या चार अक्षर का होना चाहिए जबकि कन्या का तीन अथवा पाँच अक्षर का। कन्या के नाम के अन्त में दीर्घ आ या ई होना आवश्यक है।

नामकरण में ग्राह्य वार एवं तिथि

सोमवार, बुधवार, गुरुवार एवं शुक्रवार में नामकरण करना उत्तम कहा गया है तथा प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी, द्वादशी एवं त्रयोदशी तिथियाँ भद्रादि दोषों से रहित होने पर उत्तम मानी गयी हैं।

ग्राह्य नक्षत्र

नामकरण के लिए अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अभिजित तथा रेवती नक्षत्र उत्तम कहे गये हैं।

अन्नप्राशन संस्कार

जन्म से ५, ६ महीने के समय से शिशु को ठोस आहार की आवश्यकता होती है। उसके शरीर के इस आवश्यकता की पूर्ति केवल दूध से सम्भव नहीं हो पाती। आश्वलायन गृह्यसूत्र (१।१६।१-६) आपस्तम्बगृहसूत्र १६।१-२ तथा पारस्कर गृह्यसूत्र ने "षष्ठे मासेऽन्नप्राशनम् १।१९।१ अर्थात् जन्म से छठे महीने में अन्नप्राशन संस्कार करना चाहिए। सर्वप्रथम स्थालीपाक पकाकर अग्नि में घी की आहुतियाँ डालकर निम्नलिखित दो मन्त्रों से दो आहुति घी की अग्नि में डाले।

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु स्वाहा।।

बाजो नो अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवां ऋतुभि कल्पयाति।
वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेय स्वाहा।।

(यजुर्वेद १८।३३)

अन्नप्राशन में ग्राह्य वार एवं तिथि

शुभ ग्रहों के वार तथा सोम, बुध, गुरु एवं शुक्रवार को तथा द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी एवं पूर्णिमा तिथियां अन्नप्राशन में उत्तम कही गयी हैं।

ग्राह्य नक्षत्र

अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा तथा रेवती नक्षत्र श्रेष्ठ माने गये हैं।

उपनयन संस्कार

उपनयन संस्कार का अर्थ वटु को गुरु के पास विद्याध्ययनार्थ ले जाना है। आचार्यादीनां समीपे नीयते वटुर्येन तदुपनयनमिति। ऋग्वेद के निम्नलिखित मन्त्र से ज्ञात होता है कि गृह्यसूत्रों में वर्णित उपनयन संस्कार उस समय भी होता था।

युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान्भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः।।

(ऋग्वेद ३।८।४)

अथर्ववेद ११।७।१-२६ का पूरा सूक्त ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचर्य के विषय में प्रशंसा से भरा है। शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि जो ब्रह्मचर्य ग्रहण करता है वह लम्बे समय की यज्ञावधि ग्रहण करता है।

दीर्घसत्रं वा एष उपैति यो ब्रह्मचर्यमुपैति।

(शतपथ ब्राह्मण ११।३।३।२)

उपनयन के लिए ब्राह्मण वटु की उचित अवस्था गर्भाधान या जन्म समय से लेकर आठवें वर्ष में, क्षत्रिय का ११वें वर्ष में तथा वैश्य का १२वें वर्ष में होना चाहिए। आपतम्ब गृह्यसूत्र में ब्राह्मण के लिए वसन्त ऋतु, क्षत्रिय के लिए ग्रीष्म तथा वैश्य के लिए शरद् ऋतु श्रेष्ठ कही गयी है। धर्मशास्त्रों में उपनयन के लिए माघ मास से लेकर ५ मास अर्थात् आषाढ़ तक उपयुक्त माना है। जब गुरु या शुक्र अस्त हों बालत्व या वृद्धत्व दोष युक्त हो तब यह संस्कार नहीं करना चाहिए। गुरु ऋग्वेद का अधिपति है, सामवेद का मंगल अथर्ववेद का बुध तथा शुक्र यजुर्वेद का अतः इन

वेदों के अध्ययनकर्ताओं का उनके देवों के बारे में ही उपनयन होना चाहिए। जिस दिन उपनयन हो उस दिन रोगबाण नहीं होना चाहिए।

उपनयन के लिए ग्राह्य दिन एवं तिथि

गुरु, शुक्र एवं बुध उपनयन के लिए सर्वोत्तम हैं। रविवार उत्तम तथा सोमवार सामान्य है। मंगल एवं शनिवार त्याज्य हैं किन्तु सामवेद के अनुयायी तथा क्षत्रियों के लिए मंगलवार मान्य है। तिथि द्वितीया, तृतीया, पंचमी, दशमी, एकादशी तथा द्वादशी शुक्ल पक्ष में तथा कृष्ण पक्ष में द्वितीया, तृतीया एवं पंचमी तिथि उत्तम कही गयी है।

ग्राह्य नक्षत्र

अश्विनी, हस्त, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, श्लेषा, पुनर्वसु, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल, चित्रा, मृगशिरा, अनुराधा, आर्द्रा, रेवती तथा तीनों पूर्वा नक्षत्र श्रेष्ठ कहे गये हैं।

विवाह संस्कार

विवाह संस्कार मानव–जीवन का एक आवश्यक तथा अपरिहार्य संस्कार है। विवाह के अन्य पर्याय वैदिक साहित्य में उपलब्ध होते हैं। यथा– उद्वाह, परिणय, पाणिग्रहण आदि। तैत्तिरीय संहिता ७।२।८७ तथा ऐतरेय ब्राह्मण २७।५ में विवाह शब्द आया है। ताण्ड्य महाब्राह्मण का कथन है कि पहले स्वर्ग एवं पृथिवी में एकता थी बाद में वे अलग हो गये तब उन्होंने कहा आओ हम लोग विवाह कर लें।

इमौ वै लोकौ सहास्तां तौ वियन्तावभूतां विवाहं
विवहावहै सह नावस्त्विति।।

(ताण्ड्य महाब्राह्मण ७।१०।१)

ऋग्वेद का कथन है हे कन्ये! तुझे सौभाग्यवती बनाने के लिए मैं तुम्हारा पाणिग्रहण कर रहा हूँ। तुम मुझे स्वामी रूप से प्राप्त करती हुई वृद्धावस्था तक साथ रहना। तुम्हें हमारे लिये सूर्य, भग, अर्यमा, पूषा देवताओं ने बनाया है।

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यमं त्वा दुर्गार्हपत्याय देवाः।।

(ऋग्वेद १०।८५।३६)

शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि पत्नी पति की अर्धांगिनी है अतः जब तक व्यक्ति विवाह नहीं करता, सन्तानोत्पत्ति नहीं होती तब तक वह अपूर्ण है।

अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया तस्माद्यावज्जायां न विन्दते नैव तावत्प्रजायते असर्वो हि तावद् भवति। अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ तर्हि हि सर्वो भवति। (शतपथ ब्राह्मण ५।२।१।१०)

विवाह के अन्य पक्षों पर विचार न कर यहाँ ज्योतिषीय पक्षों का उल्लेख ही विवेच्य है। विवाह में वर एवं कन्या की कुण्डलियों का मेलापक वैदिक साहित्य में उल्लिखित नहीं है किन्तु विवाह के शुभ नक्षत्रों की चर्चा पारस्कर गृह्य सूत्र में आयी है।

त्रिषु त्रिषु उत्तरादिषु। स्वातौ मृगशिरसि रोहिण्यां वा।।

(पारस्कर गृह्यसूत्र १।४।६ तथा १।४।७)

अर्थात् तीनों उत्तरा नक्षत्रों से तीन-तीन यथा उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद, रेवती तथा अश्विनी एवं स्वाती, मृगशिरा एवं रोहिणी विवाह के शुभ नक्षत्र हैं। वर्तमान ज्योतिष में अश्विनी, श्रवण, धनिष्ठा तथा चित्रा विवाह में त्याज्य किये गये हैं। इनके स्थान पर मूल, मघा तथा अनुराधा नक्षत्रों के साथ कुल ग्यारह नक्षत्र ही विवाह में विहित हैं। चैत्र एवं पौष मास को छोड़कर शेष मास विवाह में श्रेष्ठ हैं। किन्तु दक्षिणायन में मार्गशीर्ष को छोड़कर शेष त्याज्य हैं। दिनों में बुध, सोम, शुक्र एवं गुरुवार श्रेष्ठ हैं किन्तु अन्य आचार्यों के अनुसार रात्रि में विवाह करने से सभी दिन अच्छे माने गये हैं। तिथियों में रिक्ता तिथि, अमावस्या, भद्रादि दोष, वैधृति, व्यतिपात तथा मृत्युबाण आदि का त्याग करना चाहिए।

इन संस्कारों के अतिरिक्त अन्य संस्कारों के मुहूर्त पञ्चमहायज्ञ विधान, उपाकर्म (श्रावणी) नवान्नप्राशन, आग्रहायणी कर्म, स्रस्तारोहण, रथारोहण, हस्त्यारोहण, अश्वारोहण, उष्ट्रारोहण, खरारोहण, मार्गारोहण, चतुष्पथ गमन, नौकारोहण, वापीकूपतडागादि स्थापन विधि, देव प्रतिष्ठा तथा अन्त्येष्टिकर्म का विधान एवं मुहूर्त का उल्लेख वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है।

मंगली दोष की शान्ति

कन्या की कुण्डली में लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, द्वादश स्थानों में मंगल, शनि अथवा राहु, केतु आदि ग्रह हों अथवा इनमें से कोई एक ग्रह हो तो कन्या मंगली दोषयुक्त होती है। ऐसी कन्या को सुख प्राप्ति मं सदैव बाधा बनी रहती है यदि गुरु भी चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश में स्थित हो जाय तो कष्ट और भी बढ़ जाता है। इस स्थिति में गुरुदोष एवं मंगली दोष के निवारणार्थ निम्नलिखित अथर्ववेद के मन्त्रों

का २४ हजार जप करके अथवा ब्राह्मणों द्वारा कराके इन्हीं मन्त्रों से दशांश हवन करने पर मंगल आदि दोष शान्त हो जाते हैं।

मंत्र

विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे।।१।।

मा तुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे।।२।।

निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे।।३।।

उतानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे।।४।।

श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि।
न वै कुमारि तद् तथा यथा कुमारि मन्यसे।।५।।

अवश्लक्ष्णमिव भ्रंश दन्तर्लोममति हृदे।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे।।६।।

(अथर्ववेद २०।१३३।१-६)

वैधव्य दोष की शान्ति

यदि कन्या की कुण्डली में वैधव्यादि दोष पड़े हों तो कुम्भ विवाह, विष्णु प्रतिमा विवाह अथवा अश्वत्थ विवाह द्वारा शान्ति की जाती है। वैधव्य योग जानने के लिए सर्वप्रथम कुण्डली का भलीभाँति निरीक्षण करे। फलित प्रकरण में वैधव्य दोष का उल्लेख किया जा चुका है। कुछ अन्य वैधव्य योग इस प्रकार हैं।

यदि कुण्डली में सप्तम भाव में मंगल क्रूर ग्रहों से युत तथा दृष्ट हो तो बाल विधवा योग बनता है। यदि मंगल की राशि मेष अथवा वृश्चिक का राहु पापग्रहों से युत या दृष्ट होकर चौथे, आठवें अथवा बारहवें हो तो वैधव्य योग बनता है। यदि लग्न एवं सप्तम स्थान पापग्रहों से पीड़ित हों तो थोड़े दिनों में वैधव्य योग होता है। लग्न में अष्टम भाव में सारे पापग्रह हों तो भी वैधव्य योग होता है। कन्या के छठे आठवें भाव का चन्द्रमा भी वैधव्य दोष देता है। यदि सप्तमेश एवं अष्टमेश में राशि परिवर्तन योग हो तथा पापग्रहों से युत अथवा दृष्ट हों तो युवावस्था में वैधव्य योग बनता है। बुध के आठवें भाव में रहने से कन्या काक बन्ध्या होती है। यदि सूर्य एवं शनि अष्टम भाव में हो तो वन्ध्या योग होता है।

इन योगोंवाली कन्याओं के दोष शमन हेतु निम्नलिखित मन्त्र से पीपल वृक्ष के

नीचे जप करके परिक्रमा करे पुनः इन्द्र जौ, साठी चावल की खिचड़ी को अभिमन्त्रित करके खाये तो वैधव्य दोष शान्त होकर दीर्घजीवी पति प्राप्त होता है।

विनियोग–ॐ अस्य अथर्ववेदस्य द्वितीयकाण्डस्य त्रयोदशसूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। अग्नि बृहस्पति विश्वेदेवाः देवताः? त्रिष्टुप अनुष्टुप विराट् जगती छन्दांसि। वैधव्यादि दोष परिमार्जने विनियोगः।

मन्त्र

ॐ आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृत प्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने।
घृतं पीत्वा मधुचारु गव्यं पितेव पुत्रानभिरक्षतादिमम्।।१।।
परिधत्तनो वर्चसे मं जरामृत्युं कुणुत दीर्घमायुः।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमायराज्ञे परिधातवा उ।।२।।
परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनामभिशस्ति पा उ।
शतं च जीव शरदो पुरुची रायश्चपोषमुप्न संव्ययस्व।।३।।
एह्माश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम्।।४।।
यस्य ते वासः प्रथमवास्यं हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः।
तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां वहवः सुजातम्।।५।।

(अथर्ववेद २।३१।१-५)

शीघ्र पतिप्राप्ति विधान

यदि कन्या के विवाह में अधिक विलम्ब हो रहा हो अथवा अधिक कुयोग के कारण योग्य पति मिलने में विलम्ब हो तथा कन्या विवाह के योग्य हो गयी हो तो उस समय निम्नलिखित विनियोग एवं मन्त्र जप एक हजार तथा १०८ मन्त्रों से हवन गुग्गुल, दूध, घी तथा शहद मिलाकर करने से शीघ्र विवाह होता है।

विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य द्वितीयकाण्डस्य षट्त्रिंशत् सूक्तस्य पतिवेदनः ऋषिः। अग्नि सोमः अर्यमा धाता अग्निषोमौ इन्द्रः सूर्यः धनपतिः भगादि देवताः। त्रिष्टुप् भूरिक् अनुष्टुम् निचृत्पुर उष्णिक् छन्दांसि। शीघ्रपति प्राप्तये विनियोगः।

मन्त्र

आ नो अग्ने सुमतिं सं भलो गमेदिमां कुमारीं सहनो भगेन।
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै।।१।।

सोमजुष्ट ब्रह्मजुष्टमर्यम्णासंभृतं भगम्।
धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिवेदनम्।।२।।
इयमग्ने नारीपति विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति।
सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा विराजतु।।३।।
यथा खरो मघवं चारुरेष प्रियो मृगाणां सुषदा बभूव।
एवा भगस्य जष्टेयमस्तु नारीसप्रियापत्या विराधयन्ती।।४।।
भगस्य नावमा रोहपूर्णामनु पदस्वतीम्।
तयोप प्रतारय यो वरः प्रतिकाम्यः।।५।।
आक्रन्दय धनपते वरमा मनसं कृणु।
सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिकाम्यः।।६।।
इदं हिरण्यं गुल्गुल्व यमौक्षो अथोभगः।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे।।७।।
आते नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रति काम्यः।
त्वमस्यै धेह्योषधे।।८।।

एक दूसरा विधान भी है। यदि वर मिलने में कठिनाइयाँ आ रही हों उस समय कन्या का पिता या अभिभावक उषाकाल में कौओं के बोलने से पूर्व हवन करे। हवन के बाद दशों दिशाओं में बलिदान (पूजन की छवि आदि) बिखेर दे।

विनियोग– ॐ अस्य सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। अर्यमा देवता। अनुष्टुप् छन्दः पतिलाभार्थे जपे हवने विनियोगः।

मन्त्र

अर्यमा यात्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुप्नः।
अस्या इच्छन्नग्रु वै पतिमुत जायामजानये।।१।।
अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती।
अङ्गोन्वऽर्यमन्नस्या अन्याः समनमायति।।२।।
धातादाधार पृथिवीं धाताद्यामुतसूर्यम्।
धातास्या अग्रु वै पतिं दधातु प्रतिकाम्यऽम्।।३।।

शीघ्र पत्नी प्राप्ति विधान

शीघ्र योग्य पति की प्राप्ति के लिए वर स्वयं अथवा पुरोहितादि के माध्यम से निम्नलिखित मन्त्र का इक्कीस हजार जप एवं दशांश हवन करे तो मनोरमा मनोनुसारिणी पत्नी शीघ्र ही प्राप्त होती है।

विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठकाण्डस्य द्वाशीति सूक्तस्य भग ऋषिः। इन्द्रः देवता। अनुष्टुप् छन्दः। शीघ्र मनोनुकूलां पत्नी प्राप्तये इन्द्रदेव उपस्थाने जपे हवने च विनियोगः।

मन्त्र

ॐ आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः।
इन्द्रस्यवृत्रघ्नोवन्वे वासवस्य शतक्रतोः।।१।।
येनसूर्यासावित्रीमश्विनो हतुः पथा।
तेनमामब्रवीद् भगो जायामावहतादिति।।२।।
यस्तेङ्कशो वसुदानो वृहन्निन्द्र हिरण्मयः।
तेना जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते।।३।।

प्रातः वेला में सूर्य की ओर मुख करके पीपल वृक्ष के नीचे जप करने से योग्य पत्नी की प्राप्ति यथाशीघ्र होती है।

मूलादि नक्षत्रों की शान्ति

ज्येष्ठा, मूल, रेवती, अश्विनी, आश्लेषा और मघा इन छह नक्षत्रों में उत्पन्न जातक मूलादि जन्य अरिष्टों से पीड़ित होता है। इसके शमन के लिए विस्तृत कर्मकाण्ड की आवश्यकता पड़ती है। अथर्ववेद इस सम्बन्ध में एक अत्यन्त सरल विधि बताता है जिससे सभी मूलादि नक्षत्रजन्य अरिष्टों का शमन हो जाता है तथा बालक दीर्घायु, विद्वान् तथा वंश का उन्नयन करनेवाला होता है।

विधि– अथर्ववेद काण्ड ६ सूक्त ११० की एक से तीन ऋचाओं से विनियोगपूर्वक बालक का कुश एवं अपामार्ग से जलावसेचन करे। पुनः अथर्ववेद काण्ड २ सूक्त ८ की ऋचाओं द्वारा विनियोगपूर्वक कुश अपामार्ग से जलावसेचन कर इन्हीं ऋचाओं से सूर्योपस्थान कराकर हवन करा दिया जाय।

विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षष्ठकाण्डस्य दशाधिकशतं सूक्तस्य अथर्वा ऋषिः। अग्निः देवता। त्रिष्टुप् पंक्ति छन्दसी। मूलजात मूलादिजनित दोषोपशमनार्थे जलावसेचने रक्षोहणे च विनियोगः।

मन्त्र

ॐ प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व।।१।।
ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलवर्हणात्परिपाह्येनम्।
अत्येनं नेषद्दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।।२।।

व्याघ्रेऽह्ययजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः।
स मां वधीत्पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीञ्जनित्रीम्।।३।।

२ विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य द्वितीयकाण्डस्य अष्टमसूक्तस्य भृग्वङ्गिराः ऋषयः। वनस्पतिः यक्ष्मनाशनं देवते। अनुष्टुप् पथ्या पंक्तिः विराट् निचृत् पथ्यापंक्तिश्छन्दांसि। मूलजात मूलादिजनित दोषोपशमनार्थे जलावसेचने सूर्योपस्थाने रक्षोहणार्थे हवने च विनियोगः।

मन्त्र

ॐ उद्गातां भगवती विचृतौ नाम तारके।
विक्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम्।।१।।
अपेयं राज्युच्छत्वपोच्छपोच्छन्त्वभिकृत्वरीः।
वीरुत्क्षेत्रिय नाशन्यप क्षेत्रिय मुच्छतु।।२।।
वभ्रोरर्जुनक़ाण्डस्य यवस्य ते पलाल्यातिलस्य तिलपिञ्ज्या।
वीरुत्क्षेत्रिय नाशन्यप क्षेत्रिय मुच्छतु।।३।।
नमस्ते लाङ्गलेभ्यः नमः ईषायुगेभ्यः।
वीरुत्क्षेत्रिय नाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु।।४।।
नमः सनिस्त्रसाक्षेभ्यो नमः सन्देश्येभ्यः।
नमः क्षेत्रस्य पतये वीरुत्क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रिय मुच्छतु।।५।।

मृत्युसूचक लक्षणों का ज्ञान

जिन व्यक्तियों की मृत्यु सन्निकट होती है अथवा आयु क्षीण हो जाती है उन्हें निम्नलिखित लक्षणों से अपनी मृत्यु का ज्ञान कर लेना चाहिए –

(१) आकाशस्थ सप्तर्षियों में वशिष्ठ तारे के पास एक छोटी तारिका अरुन्धती तथा सप्तर्षियों से ऊपर जो उत्तर दिशा में नीचे की ओर एक चमकता हुआ ध्रुव तारा दिखायी देता है। ये अरुन्धती, ध्रुव तथा आकाशगंगा आँख की रोशनी ठीक होते हुए भी जिसे न दिखायी दें वह एक वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहता है।

(२) सूर्य किरणों से रहित किन्तु अग्नि किरणों से युक्त जिसे दिखायी दे वह ११ महीने ही जीवित रहता है।

(३) जाग्रत अवस्था अथवा स्वप्नावस्था में मलमूत्र त्याग के समय यदि स्वर्ण या चांदी दिखाईं पड़े तो वह व्यक्ति १० महीने से अधिक नहीं जी पाता।

(४) रेत अथवा कीचड़ आगे अथवा पीछे जिसे खण्डित पैर दिखायी पड़ें वह सात मास जीवित रहता है।

(५) जिसके सिर पर कौआ, कबूतर, गीध, चील बैठें अथवा मँडरायें तो ६ मास से अधिक जीवन नहीं रहता।

(६) धूलवृष्टि से अथवा काकपंक्ति से विकृत छाया दिखांयी दे तो ४ अथवा ५ मास ही जीवन शेष रह जाता है।

(७) बादलों के बिना दक्षिण दिशा में बिजली चमकती दिखायी दे अथवा जल में इन्द्रधनुष दिखायी दे तो २ अथवा ३ मास ही जीवन शेष बचा जाने।

(८) जल में अथवा शीशे में जो अपने को खण्डित सिर बाल देखे तो १ मास से अधिक जीवन नहीं रहता।

(९) शरीर में मुर्दे की गन्ध अथवा चर्बी की गन्ध आती हो तो १५ दिन से अधिक जीवन नहीं रहता।

(१०) स्नान के बाद हृदय और पैर का जल सद्यः सूख जाय अथवा मस्तिष्क से धुआँ निकलता दिखायी पड़े तो २० दिन से अधिक जीवन नहीं रहता।

(११) विभिन्न प्रकार से वायु जिसके मर्मस्थानों को छेदे अथवा जल स्पर्श से प्रसन्नता न रहे तो भी मृत्यु शीघ्र होगी।

(१२) रीछ अथवा वानरयुक्त रथ से गाता हुआ स्वप्न में दक्षिण दिशा को जाता हुआ देखे तो मृत्यु समीप जाननी चाहिए।

(१३) काले वस्त्रों वाली स्त्रियाँ गाती हुई स्वप्न में दक्षिण दिशा को ले जाती हुई दिखायी दें तो भी मृत्यु सन्निकट जाननी चाहिए।

(१४) स्वप्नावस्था में फटे-पुराने काले वस्त्र धारण करे अथवा कान विकृत दिखायी दे तो भी मृत्यु को सन्निकट जाने।

(१५) स्वप्नावस्था में कीचड़ में पैर से सिर तक फंसा हुआ देखे तो भी मृत्यु समीप जाननी चाहिए।

(१६) स्वप्नावस्था में भस्म, अङ्गार, केश, सूखी नदी दिखायी दे तो १० दिन के अन्दर मृत्यु हो जाती है।

(१७) स्वप्नावस्था में पत्थर या अस्त्र-शस्त्र लिये हुए काला विकराल पुरुष चोट पहुंचाये अथवा डराये तो मृत्यु अत्यन्त समीप जाने।

(१८) प्रातःकाल भूँकती हुई सियारिन सामने आ जाय तो साक्षात् मृत्यु आयी है यह जाने अर्थात् थोड़े दिन जीवन शेष समझे।

(१९) जिसका केवल स्नान से ही हृदय अत्यन्त पीड़ित हो वह भी मृत्यु के

गोद में आ चुका है ऐसा जाने।

(२०) जो दिन रात्रि में जल्दी-जल्दी श्वास ले अथवा श्वांस उल्टी चलने लगे तो मृत्यु की गोद में पहुँचा हुआ जाने।

(२१) यदि जलती हुई दीपक के गन्ध का ज्ञान न हो तो भी मृत्यु को समीप जाने।

(२२) रात्रि के समय धनुष दिन में नक्षत्रादि दिखायी दें अथवा दूसरों के नेत्रों में स्वयं को देखे तो भी मृत्यु समीप जाने।

(२३) किसी एक नेत्र से पानी गिरे, कान अपने स्थान से हटे हुए दिखायी दें नाक टेढ़ी दिखायी दे हों शीघ्र ही मृत्यु जाननी चाहिए।

(२४) जिसकी काली काँटोंयुक्त जीभ और कीचड़-जैसा मुख चिपके विचित्र रक्त के गाल हो गये हों तो मृत्यु समीप जाननी चाहिए।

(२५) जो स्वप्न में खुले बालों से गा रहा हो. हँसता-नाचता हुआ दक्षिण दिशा को जाये उसकी भी मृत्यु निश्चित जाने।

(२६) जिसे श्वेत सरसों जैसी पसीनें की बूँदें आयें और बार-बार पसीना आये तो भी जीवन समाप्त जाने।

(२७) जो स्वप्नावस्था में गधे अथवा ऊँटों के रथ में बैठकर दक्षिण दिशा की यात्रा करे तो भी मृत्यु समीप जाने।

(२८) जो अपने को दो या दो से अधिक रूपों में देखे, कानों से न सुने, नेत्रों से न देखे, स्वप्न में गड्ढे में गिरे तथा दरवाजा न दिखायी दे उसका जीवन समाप्त समझे।

(२९) दृष्टि ऊपर को न हो, न रक्त प्रवाह हो, मुख की कान्ति समाप्त हो गयी हो, नाभि रोयें से युक्त दीख पड़े, मूत्र गरम तथा रुक-रुककर हो रहा हो तो थोड़ा जीवन जाने।

(३०) जो मरे हुए प्राणियों को दिन या रात्रि में प्रत्यक्ष देखे तो भी जीवन को समाप्तप्राय जाने।

(३१) जो स्वप्नावस्था में अपने को अग्नि में प्रवेश करता देखे तथा स्मृतिभ्रंश हो रही हो उसका जीवन समाप्त जाने।

(३२) स्वप्न में अपना वर्ण श्वेत, लाल या काला देखे तो जीवन की समाप्ति जाने।

उपर्युक्त ये सभी प्राणान्त सूचक चिह्न हैं। इन अरिष्टसूचक चिह्नों को जानकर पूर्व अथवा उत्तर दिशा में पवित्र स्थान में एकान्त स्थान में भगवान् शंकर का स्मरण करके नेत्र बन्दकर मन को नियन्त्रित करता हुआ अपने इष्ट को हृदय में धारण कर ॐ का जप करता रहे। यदि सम्भव हो सके तो किसी वेदज्ञ ब्राह्मण द्वारा अरिष्ट निवारण का उपाय कराये।

अरिष्ट निवारण विधि (मृत्यु टालने का विधान)

विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षोडशकाण्डस्य पंचसूक्तस्य यम ऋषिः। दुःस्वप्ननाशनम् देवता। विराट् गायत्री भुरिक् स्वराट् प्राजापत्य गायत्री तृतीय द्विपदा साम्नीबृहती छन्दांसि। मृत्युसूचक भय प्राणान्त क्लेश-जनक दुःस्वप्न निवारण उपस्थाने विनियोगः।

विनियोग के जल से समस्त शरीर पर छींटे देकर उपस्थान करें।

उपस्थान

विद्मते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः।।१।।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि।।२।।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात्पाहि।।३।।
विद्मते स्वप्न जनित्रं निऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि।
तं त्वां स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात्पाहि।।४।।
विद्मते स्वप्नजनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्यकरणः।
अन्तकोवसि मृत्युरसि।
तं त्वां स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात्पाहि।।५।।
विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात्पाहि।।६।।
विद्मते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात्पाहि।।७।।
विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्यकरणः।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात्पाहि।।८।।

पुनः मन्त्र जप के लिए विनियोग करे।

विनियोग– ॐ अस्य अथर्ववेदस्य षोडशकाण्डस्य षष्ठसूक्तस्य यम ऋषिः। दुःस्वप्ननाशनम् उषा देवता। प्राजापत्य अनुष्टुप् साम्नीपंक्तिः निचृत आर्चीबृहती द्विपदा साम्नी बृहती आसुरी जगती आसुरी बृहती आर्ची उष्णिक् त्रिपदा यवमध्या गायत्री वा आर्ची अनुष्टुप् छन्दांसि। मृत्यु आनुषङ्गिक दुर्घटना प्राणान्तभय दुःखसंकटनिवारणे आधिदैविक आधिभौतिक आध्यात्मिक अद्भुत दर्शनोत्पन्न अपशकुनजनित दुःखक्लेशनिवारणे, दीर्घायुष्ये नैरुज्ये अभ्युदये विजयार्थे उपस्थाने अभिचारकर्मणि च विनियोगः।

मन्त्र

अजैष्माद्यासनामाद्याभूमा नागसो वयम्।।१।।
उषो यस्माद्दुष्वप्न्यादभैष्याप्न तदुच्छतु।।२।।
द्विषते तत्परा वह शपते तत्परा वह।।३।।
यं द्विष्मो यच्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद्गमयामः।।४।।
उषा देवी वाचा सं विदाना वाग्देव्युषसा सं विदाना।।५।।
उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः।।६।।
तेऽमुष्मै परा बहन्त्वरायान्दुर्णाम्नः सदान्वाः।।७।।
कुम्भीका दूषीकाः पीयकान्।।८।।
जाग्रद् दुष्वप्न्यं स्वप्ने दुष्वप्न्यम्।।९।।
अना गमिष्यतो वरानवित्तेः संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान्।।१०।।
तदमुष्मा अग्नेदेवाः परा बहन्तु बध्रिर्यथासद्विथुरो न साधुः।।११।।

शिव संकल्प

मनुष्य के शरीर में अद्भुत अनन्त दिव्य अमृत समुद्र भरा हुआ है। विराट् शक्तियाँ इस शरीर में निवास करती हैं इसीलिए यह शरीर देवताओं की पुरी अयोध्या कही गयी है। अतः इस शरीर को आधि-व्याधि से सर्वथा मुक्त रखने के लिए तथा जड़ता, अज्ञता और मृत्यु आदि से दूर रखने के लिए, निर्भय तथा निर्विकार रहने के लिए नित्य शिव संकल्प मन्त्रों का पाठ करना चाहिए। यह शिव संकल्प यजुर्वेद तथा अथर्ववेद दोनों वेदों में प्राप्त है। यजुर्वेद में छह मन्त्र हैं जबकि अथर्ववेद में १० मन्त्र, अपनी सुविधानुसार किसी एक शिव संकल्प के नित्य पाठ से अलौकिक सुखानुभूति एवं परमानन्द प्राप्त होता है।

शिव संकल्प मन्त्र १

ॐ अग्नि र्मे वाचि श्रितः। वाग्घृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि।।१।।
वायुर्मे प्राणे श्रितः। प्राणो हृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि।।२।।
सूर्यो मे चक्षुषि श्रितः। चक्षुर्हृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि।।३।।
चन्द्रमा में मनसि श्रितः। मनो हृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि।।४।।
दिशो मे श्रोत्रे श्रिताः। श्रोतं हृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि।।५।।
आपो मे रेतसि श्रिताः। रेतः हृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि।।६।।
पृथिवी मे शरीरे श्रिता। शरीर हृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि।।७।।
ओषधिर्वनस्पतयो मे लोमसु श्रिताः। लोमानि हृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि।।८।।
इन्द्रो में बले श्रितः। बलहृदये। हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि।।९।।
प्नर्जन्यो में मूर्ध्निश्रितः। मूर्द्धाहृदये! हृदयं मयि।
अहममृते। अमृतं ब्रह्मणि।।१०।।

शिव संकल्प मन्त्र २

यज्जाग्रतो दूर मुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।।१।।
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः
यद्पूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।।२।।
यतप्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।३।।
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।४।।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्त सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।५।।
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्याग्नेनीयतऽभी शुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यद जिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।६।।

वास्तु विज्ञान

घर आदि बनाने में ग्राम, दिशा, भूमि, मास, नक्षत्र, लाभ, व्यय, लग्न, अंश तथा शल्यशोधन करें।

"ग्रामादेरानुकूलत्वं दिशोभूतग्रहस्य च। मासऋक्षादि शुद्धिं च वीक्ष्याय व्ययभांशकान्"।।१।।

ग्रहबलम्

गुरु शुक्रार्क चन्द्रेषु स्वोच्चादि बलशालिषु।
गुर्ववैंदुवलं लब्ध्वागृहारम्भ प्रशस्यते।।२।।

वु.शु.सू.चं. ये अपने उच्च में हों, बलवान् हों, ऐसे समय में गु.सू.चं. का बल् देख घर प्रारम्भ शुभ फलदाता होता है।।२।।

विवाहोक्तान्महादोषानृते जामित्रशुद्धितः।
रिक्ताः कुजार्क वारौ च चरलग्नं चरांशकम्।।३।।

विवाहोक्त महादोषों में से जामित्र दोष शुद्धि के सिवा अन्य समस्त दोष, रिक्ता तिथि मंगल, रविवार, चरलग्न, या चर कानवांश घर बनाने में त्याग दें।।३।।

त्यक्त्वा कुजार्कयोश्चांश षष्ठ चाग्रस्थितम् विधुम्।
बुधेज्यराशिगं चार्क कुर्याद्गेहं शुभाश्रये।।४।।

मंगल सूर्य के अंश, ६ठे चन्द्रमा, या सन्मुख चन्द्र को त्याग दें, मिथुन, कन्या, धन, मीन राशिस्थ सूर्य त्याग दें, तब गृह निर्माण करना शुभ होता है।।४।।

द्वारशुद्धिः

द्वारशुद्धिं निरीक्ष्यादौ भशुद्धिं वृषचक्रतः।
निष्पञ्चके स्थिरे लग्ने द्व्यङ्गेवाऽऽलयमारभेत।।५।।

प्रथम द्वार, चक्र और नक्षत्र शुद्धि वृषचक्र से देखें; पञ्चकरहित, स्थिर या द्विस्वभाव लग्नों में ही गृहनिर्माण शुभ होता है।।५।।

ग्रामानुकूल्यम्

स्वनामराशेर्यद्राशि द्विशारांकेशदिङ्मितः।
संग्राम शुभदः प्रोक्त स्त्वशुभः स्यात्ततोऽन्यथा।।६।।

अपनी नामराशि से ग्राम नाम राशि २:५:९:११:१० में से कोई भी एक हो तो शुभ, शेष अशुभ।।६।।

प्रथमे सप्तमे व्योम गृह हानि स्त्रिषष्ठगे।
तुर्यादष्टादशेरोगा शेषस्थाने भवेत्सुखम्।।७।।

अपनी नामराशि से ग्राम की नाम राशि १ या ७ हो तो शून्य; ३।६ हो घर की हानि , ८, १२ रोगकारक, इससे शेष ६ठे में निदिष्ट २:५:९:११:१० शुभ।

शल्यशोधनम्

कुंडार्थमादौपारिशोध्यपृथ्वींपृष्ठेमुखाद्यः प्रथमः स्फुटीभवेत्।
वागादिवर्णः किलतद्दिशिस्मृतं शल्यंमुनींद्रैर्हपयैस्तु मध्यगः।।८।।
स्मृत्वेष्टदेवतांप्रष्टुर्वचनस्याद्यमक्षरम्।
गृहीत्वातु ततः शल्याशल्यं सम्यग्विचार्यते।।९।।

कुण्डनिर्माण–या गृहनिर्माण में निम्न भाँति शल्यशोधन करें। प्रश्नकर्त्ता मयपत्र-पुष्प दक्षिणादि प्रभुसंस्मरण कर जो प्रश्न करे–उसके मुख से निकले प्रथम अक्षर या लिखित प्रश्न के प्रथम अक्षर या किसी भी पुष्प के प्रथम नामाक्षर जो ले या लिखे का (अः कः चः टः तः प्तः यः श) अष्टवर्गों में से जिस वर्ग का प्रथम अक्षर उसका हो उसी वर्ग संख्या को अवर्ग से शवर्गान्त, ८ को पूर्व आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम वायव्य, उत्तर, ईशान इन ८ दिशाओं में क्रमशः बाँटें उस दिशा को निम्न जो भी शल्य हो समझें और उसका निम्न फल भी समझें।

प्रश्नाक्षरफलम्

यदि प्रथम अक्षर अ से अः पर्यन्त अवर्ग है तो पूर्व दिशा में डेढ़ हाथ नीचे मनुष्य का हाड़ है,उसे न निकाले तो मृत्युकारक होगा। यदि प्रथम अक्षर कवर्ग का है तो आग्नेय दिशा में २ हाथ नीचे गदहे का हाड़ हो जो राजभय, त्रास, दण्डकारक है। यदि चवर्ग का हो तो दक्षिण में स्वामी की कमर के बराबर नीचा मनुष्य का हाड़ है, जो मृत्यु, रोग, दुर्घटना करनेवाला है। यदि ट वर्ग हो तो नैर्ऋति में डेढ़ हाथ नीचे कुत्ते का हाड़ है, जो पुत्रनाश, वंशविच्छेद, गर्भस्राव, मृतापत्यादोष, स्त्री, गौ, महिषी, घोड़ी सभी को वन्ध्याकारक है।

यदि प्रश्न का प्रथम तवर्ग का अक्षर हो, पश्चिम दिशा में लड़के का हाड़ है जो गृहस्वामी की गृहनिर्माण से पूर्व ही मृत्युप्रद है। यदि पवर्ग का अक्षर हो तो वायव्य दिशा में ४ हाथ नीचे भूसा, कोयला लकड़ी है जो मित्र, बन्धुनाश, दुःस्वप्नकारक है। यदि यवर्ग है तो उत्तर दिशा में हाथ भर नीचा ब्राह्मण का हाड़ है जो विविध क्लेश, दौर्भाग्य, दारिद्र्य मिथ्यालाञ्छन, सहसा बना घर हाथ से परहस्त में चले जाने का प्रतीक है। यदि ८वाँ शवर्ग का आदि का अक्षर हो तो ईशान दिशा में डेढ़ हाथ गहरा गौ का हाड़ है जो गोधन कृषि, उद्योग, उत्पादन को हानिकारक है। यदि क्ष, त्र, ज्ञ में से कोई हो तो मध्य में कमर के बराबर खोदने से मनुष्य का कपाल, भस्म, लोह, है जो कुलक्षय करनेवाला है।

इस प्रकार शल्य को भली भाँति कुण्ड, घर, कूप, वापी, तडाग, बाग, मन्दिर, धर्मशाला आदि निर्माण करने से पूर्व देखें और आगे लिखी अथर्वविधि से यदि कल्याण की इच्छा, निष्ठा और विश्वास हो, करें।

गृह जातक

स्वरोदय के मर्मज्ञ महर्षियों ने अ से श तक आठ वर्गों के ४९ अक्षर कहे हैं, जिनमें अ वर्ग के १६; क वर्ग के ५; च वर्ग के ५; टवर्ग के ५; तवर्ग के ५; पवर्ग के ५; यवर्ग के ४, शवर्ग के ४ कुल ४९ हैं। इन वर्गों के क्रमशः निम्न स्वामी हैं अवर्ग- गरुड़; कवर्ग- बिलाव; च-सिंह; ट-श्वान; त-सर्प; पवर्ग-मूषक; य वर्ग- हाथी; शवर्ग-शूकर। इनमें अपने नाम के अक्षर के वर्ग से ५वाँ वर्ग शत्रु समझें। इसमें शुभाशुभ का ज्ञान कर लें।

काकिणी

१. अपने नामाक्षर वर्ग संख्या को दूना करें। ग्रामादि के नामाक्षर वर्ग संख्या को उसी में जोड़ें, तब योग में आठ का भाग दें। इसी प्रकार ग्राम या परवर्ग के नामाक्षर वर्ग संख्या को दूना करें उसमें अपनी नामाक्षर वर्ग संख्या जोड़े और योग में आठ का भाग दें- उन शेष में जिसकी शेष संख्या अधिक हो उसी को ऋणी समझें- ग्राम अपना ऋणी हो तो उसमें घर बनायें।

२. कृत्तिका से आश्लेषा तक के ७ नक्षत्रों में से चन्द्रमा हो तो घर का द्वार दक्षिण में; अनुराधा से ७ धनिष्ठा तक में चन्द्रमा हो तो द्वार उत्तर में, मघा से ७ विशाखा तक चन्द्रमा हो तो द्वार पूर्व में; और धनिष्ठा से ७ भरणी तक के किसी नक्षत्र में चन्द्रमा हो तो द्वार पश्चिम में मुख समझें।

भूमि रज

आर्द्रा नक्षत्र के प्रथम चरणों में सूर्य के रहने पर भूमि को तीन दिन रज रहता है, बीजवपन आदि में विचारें।

भूमि शयन

सूर्य जिस नक्षत्र पर हो, उससे ५, ७, ९, १२, १९, २६वें नक्षत्र में भूमिशयन होता है, उसमें सभी निर्माण, खनन, हल जोतना, बीज बोने आदि का प्रारम्भ करना अशुभ है।

शेष शिरोज्ञान

भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक में, शेषशिर पूर्व में, मार्गशीर्ष, पौष माघ में दक्षिण में; फाल्गुन, चैत्र, वैशाख में पश्चिम में; ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, उत्तर में; शेष-सिर जानें, मुख की २ पुच्छ की २ दिशा त्याग मध्य में खात, बीजवपन आदि करें। देवालयादि, जलाशयादि गृह आदि निर्माण में जहाँ राहु (शेष) मुख हो उसके पृष्ठकोणं में नीम (खात) खोदना, बीज बोना आदि शुभ हैं– सूक्ष्म ज्ञान निम्न हैं–

ईशान में मीन, मेष, वृष के सूर्यों में	वायव्य में मिथुन, कर्क, सिंह के सूर्यों में	नैर्ऋत्य में कन्या, तुला, वृश्चिक सूर्यों में	आग्नेय में धन, मकर, कुम्भ के सूर्यों में	देवालयादि प्रारम्भ प्याऊ बाग, कुण्ड, धर्मशाला
मकर, कुम्भ, मीन के सूर्यो में	मेष, वृष, मिथुन के सूर्यों में	कर्क, सिंह, कन्या के सूर्यों में	तुला, वृश्चिक, धन के सूर्यों में	जलाशय, वापी, कूपादि का प्रारम्भ
सिंह, कन्या, तुला के सूर्यों में	वृश्चिक, धन, मकर के सूर्यों में	कुम्भ, मीन, मेष के सूर्यों में	वृष, मिथुन, कर्क के सूर्यों में	गृह आदि निर्माण प्रारम्भ
(खात दिशा) आग्नेय	ईशान	वायव्य	नैर्ऋत्य	खात करने की दिशा

वास्तु भूमि के शुभाशुभ ज्ञान की विधि

पूर्वदिन में सायं ही १ हाथ लम्बा, १ चौड़ा; १ वालिश्त गहरा गड्ढा खोदें (उपर्युक्त) उसे सौभाग्यवती कन्या, धुले-स्नानकर, स्वच्छ वस्त्र धारणकर, पवित्र घट में पुष्प चावल, हल्दी आदि डाल, मौलि कलावा बाँधे, स्वस्तिक बना, पवित्र जल से पूर्ण कर मंगल गान, हरि कीर्तन के साथ गर्त को जल से पूर्ण स्वरूप से भरें। उसे प्रातः ही देखें–जल हो तो शुभ, सूख गया हो तो मध्यम, यदि जल सूखकर दरार हो गयी हों– अशुभ समझें। किन्तु देश-काल-पात्र के अनुरोध पर ही करें।

शिलान्यास

पूजा, प्रतिष्ठा के उपरान्त प्रथम पाषाण आग्नेय दिशा में, दूसरा दक्षिण, ३. नैर्ऋत्य, ४. पश्चिम, ५. वायव्य, ६ठा उत्तर, ७. ईशान, ८. पूर्व में स्थापित करें, इसी

क्रम से रक्षातंत्र की कीलें गाड़ें, इसी प्रकार, पाषाण स्थापित करें। रक्षार्थ दण्ड आग्नेय में करें–आगे वास्तुशान्ति में देखें।

श्रवण, मृगशिरा, रेवती, हस्त, रोहिणी, पुष्य, तीनों उत्तरा–शिलान्यास में हैं।

आय आदि साधन विधि

घर आदि की भूमि की लम्बाई–चौड़ाई, अन्दर की ओर से तथा देवालयादि धार्मिक निर्माण के बाहर की ओर से हाथ से नापें–परन्तु ३२ हाथ लम्बे–चौड़े मकान या चार द्वारवाले घर में आय का विचार न करें। लम्बाई–चौड़ाई का गुणाकर पिण्ड बनायें। उन्हें क्रमशः ९ स्थानों पर रखें और क्रमशः पिण्ड को ९। ९। ६। ८। ३। ८। ८। ४। ८ से गुणा करें, उसी क्रम में ८। ७। ८। १२। ९। २७। १५।२७। १२०से भाग दें जो शेष बचें उन्हें क्रमशः आय, वार, अंश, द्रव्य, ऋण, नक्षत्र, तिथि योग, आयु समझें, यदि गृह और गृहस्वामी का नक्षत्र एक हो तो मृत्युकारक है आय ८ होते हैं – १ ध्वज, २ धूम्र, ३ सिंह, ४ श्वान, ५ वृषभ, ६ गर्दभ, ७ हस्ति ८ (०) काक। इनमें विषम संख्या के शुभ, सम संख्या के अशुभ हैं। १ ध्वज आय ब्राह्मण, ३ सिंह–क्षत्रिय, ७ हस्ति शूद्र, ५ वृषभ आय वैश्य के लिये शुभ है। अन्य आय नीच (क्षुद्र) समस्त जाति को शुभ है।

घर का नक्षत्र और व्यय का ज्ञान

उपर्युक्त पिण्ड को ८ से गुणा कर २७ से भाग देने पर शेष संख्यावाला गृह का नक्षत्र होता है; इस नक्षत्र को ८ से भाग दें–जो शेष रहे वही व्यय है, आय से व्यय कम हो तो शुभ, अन्यथा अशुभ।

ग्राम या घर के नक्षत्र से वासकर्त्ता के नाम नक्षत्र तक फल में समझें

मस्तक–७–धनलाभ

पृष्ठ–७–हानि, निर्धनता

हृदय–७–सुख, समृद्धि

पाद–७–पर्यटन

चरणी विचार

उपर्युक्त गृहस्वामी के हाथ की लम्बाई–चौड़ाई के योग को ८ से भाग दें शेष १ पशुहानि; २ पशुनाश; ३ पशुलाभ; ४ पशुक्षय; ५ पशुरोग; ६ पशुबुद्धि; ७ पशुबाहुल्य समझें।

मण्डलेश ज्ञान

उपर्युक्त ल० + चौ० के योग ही का ९ से भाग दें, शेष का फल १ दाता, २ नृपति, ३ नपुंसक, ४ चोर, ५ विद्वान, ६ भोगी, ७ धनाढ्य, ८ दरिद्र, ९-(०) कुबेर के अनुसार समझें।

उपर्युक्त आयों के विशेष फल

१ ध्वज-कीर्ति; (२) धूम्र, शोक; (३) सिंह (जय); (४) श्वान (वैर); ५ वृषभ (धनः); ६ गर्दभ (निर्धन); ७ हस्ति (सुख); ८ ध्वांक्ष (रोग-भय)।

व्यय साधन में विशेष ज्ञान

घर का द्वार पूर्व को बनाने में-वृषभ आय, दक्षिण को गज आय।

गृह राशि ज्ञान

उपर्युक्त पिण्ड को ८ से गुणा २७ से भाग देने पर शेष नक्षत्रों से अ०भ०कृ० हों तो घर की राशि मेष, म०पू०फा०, सिंह ५, मू०पू०षा०, उ०षा० धन (९) शेष नक्षत्रों से क्रमशः दो, दो की ही एक राशि, यथा रो० मृ० वृष० २; आर्द्रा पुन० मिथुन) पु० श्ले० कर्क और ह० चि० कन्या ६, स्वा० वि० तुला (७) अनु० ज्ये० (वृश्चिक ८) श्र० ध० (१० मकर) श०पू० कुम्भ उ०भा०रे० (मीन) समझें।

गृह का नामकरण

पूर्व में १, दक्षिण में २, पश्चिम में ४, उत्तर में ८ कल्पना करें। घर का द्वार जिस दिशा में हो उपर्युक्त में से उसी अंक संख्या को लें, उस संख्या में, घर में जिस दिशा में जितने भी दालान हों, उस संख्या के अङ्कों को जोड़ें, उस योग में १ और मिला दें। अब १ से १६ तक की संख्या के अङ्कों का क्रमशः नाम समझें। १ (ध्रुवः) २ (धान्यः) ३ (जय) ४ (नन्द) ५ (खर) ६ (कान्त) ७ (मनोहर) ८ (सुमुख) ९ (दुर्मुख) १० (क्रूर) ११ (रिपुद) १२ (धनद) १३ (क्षय) १४ (आक्रन्द) १५ (विपुल) १६ (विजय) - फल नामानुसार समझें।

अंश ग्रहण

पूर्व जो आय व व्यय बताये हैं उनमें से खर्च की संख्या को पिण्ड (ल० + चौ०) 'क्षेत्रफल' की संख्या में जोड़े, उसी योग में घर के उपर्युक्त नामाक्षर मिलायें, इन तीनों के योग में ३ का भाग दें, शेष २ अशुभ-१ या ३ (०) शुभ।

गृह में स्थान योजना

पूर्व में स्नानालय; आग्नेय में पाकशाला, दक्षिण शयनकक्ष, नैर्ऋति में शस्त्रागार, पश्चिम-भोजनालय, वायव्य में पशुशाला, उत्तर में भण्डार (द्रव्यादि), ईशान में यज्ञशाला, देवालय बनाना शुभ है।

विशेष ज्ञातव्य

गृहादि निर्माण में गुण अधिक दोष थोड़े हों तो शुभ; परन्तु आय से व्यय, या ऋणी धनी, और नक्षत्र की विरुद्धता कदापि न लें, उसे त्याग दें।

वास्तु चक्र नाम

गृह के आरम्भ में वृषभ चक्र; स्तम्भस्थापन में कूर्म चक्र; प्रवेश काल में कलशचक्र देखें। वास्तु चक्र बुधवार को शुभ माना है।

विशेष

१. गृहनिर्माण के लिए सप्त सकार योग-शनिवार, स्वाती नक्षत्र; सिंह लग्न, शुक्ल पक्ष, सप्तमी तिथि; शुभ योग और श्रावण मास निर्माण मुहूर्त्त में यदि किसी प्रकार सम्भव हो तो 'शाला' वास्तु देव की पत्नी-स्वामी या उसमें वास करनेवालों को पुत्र-पौत्र, स्वास्थ्य, सन्मति, सौमनस्य (परस्पर प्रीति) सम्पदा धन-धान्य, वाहन, पशु, भोग्य पदार्थों से पूर्ण शास्त्रीयजनों का आश्रय होती हैं।

विपरीत इसके- कृष्ण पक्ष में निर्माण प्रारम्भ से चोर भय होता है।

आयादि का फल- विषम आय हैं तो शुभ सम हैं तो अशुभ दुःखप्रद।

रवि और मंगल के वार-राशि अंशवाले घर में अग्निमय; अधिक धन और न्यून आय मकान का जो नक्षत्र आया है; उससे गृहारम्भ दिन नक्षत्र तक तथा स्वामी के जन्म नक्षत्र तक; जिनकी जितनी संख्या हो उसमें ९ का भाग दे। १।३।५।७ शेष हों तो अशुभ; २।४।६।८।१ शेष तो शुभ; ।४।९।१४।३०। तिथियाँ अशुभ, शेष तिथि आयें तो शुभ, योगों में अतिगण्ड, शूल, विष्कम्भ, गण्ड; व्याघात, वज्र व्यतिपात और वैधृति आये तो नितान्त अशुभ, शेष आयें तो शुभ। आयु में भी अधिक आयुवाला शुभ-कम का अशुभ। इसी प्रकार स्वामी तथा घर का एकही नक्षत्र आवे तो मृत्युप्रद है।

गृह की आयु में विशेष-गृह निर्माण कालिक लग्न में गुरु, ६ठे रवि, ७वें बुध ४ शुक्र ३ शनि हो तो १०० वर्ष की; लग्न में शुक्र ३ रवि, ६ठे भौम ५वें गुरु हो तो २०० वर्ष; लग्न में शुक्र १०वें बुध ११वें रवि, १।४।७।१० वें गुरु हो तो १५० वर्ष की १।४।७।१०वें उच्च का गुरु हो और अन्यपूर्ववत् हो तो ३०० वर्ष की; गु०शु० चं०

उच्च के चौथे स्थान में अन्य शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट हो तो २०० से अधिक आयु; शुक्र मूल त्रिकोण ५।९ या उच्च का होकर ४थे में हो तो गृहस्वामी सुखी सर्व प्रकार सन्तुष्ट और गृह सैकड़ों वर्ष सुदृढ़ बना रहता है जिसके प्रारम्भ काल में चतुर्थ भाव में गु. १०वें चन्द्रमा; ११वें मं० शु० हों तो ८० वर्ष की जिसके आरम्भ में कोई भी गृह शत्रु के नवांश में स्थित होकर १ या ७ अथवा १०वें में हो तो वह घर एक या दो वर्षों में ही बेचने की विवशता होती है।

गृह द्वार में विशेष– कुम्भ के सूर्य फाल्गुन में; कर्क के सूर्य सिंह में श्रावण में; मकर में पौष में गृह निर्माण करें तो द्वार पूर्व या पश्चिम का शुभ है। १।२ राशि वैशाख मास में ७।८ में अगहन में उत्तर दक्षिण द्वार शुभ है। पूर्णिमा से कृष्णा अष्टमी तक पूर्व में कृष्णा ९ से कृष्णा १४ तक उत्तर में; ३० अमा से शुक्ला अष्टमी तक पश्चिम में शुक्ला ९ से शुक्ला १४ तक दक्षिण में बनाना शुभ है। २।३।५।६।७।१०।११ और द्वादशीं में बना द्वार शुभ होता है शुक्लपक्ष में द्वार निर्माण शुभ कृष्ण पक्ष के बने द्वार में चोरी का सतत भय होता है।

सूर्यस्थित नक्षत्र से द्वार निर्माण नक्षत्रों तक गिनकर क्रमशः इस प्रकार रखें और फल भी समझें। प्रथम ४। सिर में लक्ष्मीप्रद; आगे ८ नक्षत्र चारों कोणों में रखें और उनमें बने दरवाजे से घर नष्ट (उजाड़े) हो। उनमें आगे ८ बाजू (शाखाओं) में रखें इनमें बना सुख, सम्पत्ति वैभव हो, इसके आगे के ३ देहली में स्वामीमरण और उससे आगे के ४ मध्य भाग में रखें इनमें बना दरवजा सुख, सम्पत्तिप्रद होता है।

गृहारम्भ के मासों का फल

चैत्र (शोक); वैशाख (धान्यप्राप्ति); ज्येष्ठ (मृत्युकारक); अषाढ (पशुहानि); श्रावण (द्रव्यप्रद); भादों (दरिद्रपन); आश्विन (कलह); कार्तिक (सेवक नाश); मार्गशीर्ष (धनप्राप्ति); पौष (लक्ष्मीप्रद); माघ (अग्निभय); फाल्गुन (धन-धान्य-सौख्यप्रद)।

गृहद्वार

गृह को नौ भागो में बाँटें, प्रथम ५ भाग दक्षिण दिशा में; पुनः तीन भाग उत्तर दिशा में, शेष १ भाग के मध्य में द्वार शुभ हैं। कल्याणकामी गृह के द्वार के ऊपर द्वार कदापि न बनायें, न एक द्वार के सम्मुख दूसरा द्वार ही बनायें, ये सर्वनाश के प्रतीक हैं।

गृह द्वार शाखा चक्र

रवि जिस नक्षत्र पर हों, उससे दिन नक्षत्र पर्यन्त गिनें। क्रमशः फल

स्थान	संख्या	फल
(१) सिर में	४	श्रीलाभ
(२) कोण	८	उद्वसन
(३) शाखा	८	सौख्य
(४) देहली	३	गृहस्वामी का नाश
(५) मध्य	४	सौख्य, समृद्धि

गृहारम्भ में वृषभ-चक्र-शुद्धि ज्ञान-रवि-नक्षत्र से दिन नक्षत्र पर्यन्त अभिजित-तक गिनें

(१) सिर	३	अग्निदाह
(२) अग्रपाद	४	शून्य-असत-अनर्थ
(३) पृष्ठपाद	४	स्थिरता
(४) पृष्ठ	३	लक्ष्मीप्रद
(५) दायीं कुक्षि	४	लाभ-सौख्य
(६) पुच्छ	३	गृहस्वामी नाश
(७) वामकुक्षि	४	दारिद्र, दुःख, निःस्वम्
(८) मुख	३	पीड़ा-अनर्थ, आपत्तिभय

गृहमध्ये कूप-नल का विचार

(१) मध्य में (अर्थहानि); (२) ईशान में (सुपुष्टि); (३) पूर्व (ऐश्वर्य); (४) आग्नेय (पुत्रनाशः); ५ दक्षिण (स्त्रीनाश); (६) नैर्ऋत्य (गृहेशनाश); (७) पश्चिम (सम्पत्); (८) वायव्य (शत्रुभय); (९) उत्तर में (सुखप्रद) होता है।

चुल्लि चक्र– रविनक्षत्र से दिननक्षत्र पर्यन्त गिनें (१) पीठ में (६) सुखप्रद; (२) मस्तक (४) मृत्युप्रद; बाहु (८) सौभाग्य भोग्यप्रद; गर्भ (५) विनाश; भुज के (२) भोगप्रद; चरण के (२) सर्वनाशकारक होते हैं। उपर्युक्त शुभ नक्षत्रों में ही चूल्हा बनायें और इन्हीं शुभ नक्षत्रों में प्रथम अग्नि प्रज्वलित करें।

स्तम्भ (पाषाण, ध्वजारोपणादि) में कूर्मचक्र

गृहारम्भ की तिथि जो भी हो उसको ५ से गुणा करें; कृत्तिका से प्रारम्भ कर उस दिन की जो नक्षत्रसंख्या हो उसे तथा उस योग में १२ मिलायें, कुल योग में ९ का भाग दें। शेष ४:७:१ हों तो कूर्म जलस्थान में लाभप्रद है। ५:२:८ शेष हों तो कूर्म-भूमि पर हैं-अनर्थकरी; यदि ३:६:० शेष हों तो कूर्म आकाश में मृत्युप्रद समझें।

स्तम्भ चक्र-सूर्य नक्षत्र से दिननक्षत्र तक गिनें।

(१) मूल-२-धनक्षय; (२) मध्य-२०-सर्वसौख्य; (३) अग्र-६; मृत्युप्रद शुभफलप्रद नक्षत्र में ही स्तम्भ तथा ध्वजारोपण करें।

धनरक्षण-मुहूर्त्त (भौमचक्र)

सूर्य नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिने, निम्न प्रकार रखें, निम्न फल समझें–

(१) मूल	३	गृहस्वामी की मृत्यु, नाश
(२) गर्भ	५	सौख्यप्रद
(३) मध्य	८	पुत्र-पौत्रादि सुख
(४) पुष्प	८	मित्रनाश
(५) अग्र	३	गृहस्वामी को सुख, सौभाग्य, पुत्र-धन, सम्पदाप्रद

नूतन गृह या नित्य भौमचक्र देखकर धन गिनकर रखना अभिवृद्धिकारक होता है।

गृहारम्भ के नक्षत्ररादि मुहूर्त्त

तीनों उत्तरा, मृ०रो० पुष्य अनु०ह०चि०, स्वा०श०रे० शुभ हैं। रवि, भौम को छोड़ अन्य दिन शुभ, चन्द्रबल, रविबल मिलता हो, स्थिर लग्न हो, शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो, शुभ नवांश हो, तब थंभों का खड़ा करना शुभ होता है। अन्य कर्म अशुभ हैं, परन्तु कूप, बावड़ी में शुभ है।

दुष्ट योग

वज्र-व्याघात, शूल-व्यतीपात, विष्कम्भ तथा परिध तथा रवि मंगल वार सर्वथा त्याज्य कहे हैं।

वास्तु शान्ति-अग्निचक्र

उपर्युक्त समस्त अशुभ लक्षणों से उत्पन्न विघ्न की शान्ति तथा गृहप्रवेश, अग्नि, चोर, सर्प, राक्षस, यातुधान, पिशाचादि, विघ्न, रोगोपशमनार्थ, आथर्वणी-वास्तु शान्ति करें।

वास्तुशान्ति होम में अग्निविचार निम्न प्रकार करें– जिस तिथि में वास्तु देवता-या-अन्य शान्ति करनी हो, उसमें अग्निवास ज्ञान हेतु उसी तिथि में एक मिलायें, उसी में उस दिन के वार की संख्या जोड़ें, योग में चार से भाग दें–शेष ३ या ४ (०) हों तो अग्निवास मृत्युलोक में है। सौख्यप्रद है। १ शेष से स्वर्ग में है, प्राणनाशक है; २ शेष से पाताल में अर्थनाशक है।

गृहाहुति क्रम

सूर्य नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिनें।

(१) सूर्य- ३ अशुभ; (२) बुध-३-शुभ; (३) शुक्र-३-शुभ (४) शनि ३-अशुभ-(५) चन्द्र-३-शुभ, (६) मंगल-३-अशुभ (७) गुरु-३-शभः (८) राहु-३-अशुभ; (९) केतु-३-अशुभ हैं।

गृहप्रवेश

नूतन प्रासाद प्रवेश-यात्रा वापसी में गृहप्रवेश-जीर्ण गृहप्रवेश, राजदर्शन में उत्तरायण में-प्रथम वास्तु पूजाकर-भूतबलि के उपरान्त शुभ होता है। शुभ नक्षत्र-चि०अनु०, मृ०, रे० पुष्य, स्वा० ध०, श्र०मू०, वार-चं० बु०गु०शु०श० तिथि रिक्ता तिथियों को त्याग अन्य तिथियाँ।

गृहप्रवेश में वामार्क ज्ञान-व-फल

गृहप्रवेश में वाम रवि शुभ है, प्रवेश लग्न से आठवें स्थान से पंचम स्थानों में सूर्य हो, और गृह द्वार पूर्व दिशा में हो या घर का द्वार दक्षिण को हो; अथवा गृहद्वार पश्चिम में हो और सूर्य प्रवेश लग्न से द्वितीय स्थान में हो अथवा सूर्य प्रवेश लग्न के ११वें स्थान से ५ स्थानों में से किसी में हो और गृहद्वार उत्तर को हो तो वह वामार्क होता है, वही शुभ है।

गृह प्रवेश में लग्नशुद्धि-प्रवेशलग्न से ९; ५; १ : ४ : ७ : १०वें शुभग्रह हों, ३ : ६ : ११वें पापग्रह हों, प्रवेश लग्न स्थिर हो चन्द्रबल शुभ हो- तब प्रवेश शुभ है।

अशुभ लग्न-शुक्ल पक्ष में लग्न से १:२:४:७:१०:५:९ में चन्द्र अशुभ है, ७:१०वें बैठे सभी ग्रह अशुभ हैं, इष्टकाल में शत्रु का नवांश हो तो अशुभकारक है।

गृह की आयु प्रमाण

लग्न में शुक्र १०वें बुध ११वें रवि और केन्द्र में गुरु ग्रह आरम्भ लग्न में हों तो गृह आयु २०० वर्ष। गृहारम्भ लग्न में गुरु, ४थे शुक्र, १० बुध ६ठे रवि, ३रे शनि हों तो १०० वर्ष। गृहारम्भ लग्न से १०वें गु०बु०शु० ११वें रवि, भौम हों तो गृह आयु ८० वर्ष। लक्ष्मी धन-धान्ययुक्त आयु जानें।

ये साधारणतया वास्तु प्रकरण की आवश्यक विचारणीय बातें हैं। इनमें से समस्त अशुभ की तथा चिर कल्याणार्थ वास्तु शान्ति विधि कौशिक सूत्र-वैतान श्रौत सूत्र-शान्तिकल्प, अथर्ववेदीय शौनकीय शाखा से करना चाहिए।

✦✦✦

अध्याय ७

अश्लील आक्षेपों का वैदिक समाधान

भारतीय संस्कृति के मूल वेद ही हैं। इस संस्कृति पर प्राचीनकाल से ही आक्षेप होता रहा है। बौद्धों और जैनियों के द्वारा वेद में पशु हिंसा का आक्षेप किया गया। उनका कहना था कि किसी भी प्राणी को सताना या मारना धर्मविरुद्ध है। किन्तु यह आक्षेप सर्वथा निराधार है कारण वेद ही कहता है कि 'मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि।' अर्थात् किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। वेद तो साक्षात् परमात्मा की वाणी है अतः उसमें हिंसा की बात हो भी कैसे सकती है। यज्ञों में जो प्राचीन नाम मिलते हैं उनसे यह सिद्ध हो जाता है कि यज्ञ सर्वथा अहिंसात्मक थे। ध्वर शब्द का अर्थ हिंसा है अतः जहाँ ध्वर (हिंसा) न हो उसे अध्वर अर्थात् यज्ञ कहा गया है। वैदिक यज्ञों में तो मांस का इतना विरोध है कि मांस जलानेवाली आग को सर्वथा त्याज्य किया गया है। यज्ञकुण्ड से थोड़ी अग्नि जिसे क्रव्याद (मांस जलानेवाली अग्नि) कहते हैं उसे निकालकर हवन करने की विधि ऋग्वेद में बतायी गयी है।

क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्।।

(ऋग्वेद ७।६।२१।९)

अर्थात् मैं मांस खाने या जलानेवाली अग्नि को दूर हटाता हूँ। यह पापभार को ढोनेवाली है अतः यमराज के घर जाय। इससे भिन्न जो ये दूसरे पवित्र और सर्वज्ञ अग्निदेव हैं इन्हें यहाँ स्थापित करता हूँ। ये इस हवि को देवताओं के समीप पहुँचाये। क्योंकि ये देवताओं को जाननेवाले हैं।

ऋग्वेद के एक स्थल पर कहा गया है कि जो व्यक्ति, मनुष्य, घोड़े और गाय का मांस खाता हो तथा गाय के दूध को चुरा लेता हो उसका मस्तक काट डालो।

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च।

(ऋग्वेद ८।४।८।१६)

यजुर्वेद में रुद्र से प्रार्थना की गयी है कि वे हमारे पुत्र और पौत्र को हिंसित न करें। हमारी आयु को नष्ट न करें। हमारी गायें और घोड़ों पर प्रहार न करें। हमारे वीरों को न मारें।

मा न स्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
मा नो वीरान् रुद्र भामिनी वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे।।

(यजुर्वेद १६।१६)

अथर्ववेद में धान को गाय और तिल को बछड़ा कहा गया है।

धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत्।
तां वै यमस्त राज्ये अक्षितामुपजीवति।।

(अथर्ववेद १८।४।३२)

चावल के कणों को अश्व, चावल गाय, भूसी मशक, चावलों का श्याम भाग मांस तथा लाल भाग को रुधिर कहा गया है –

अश्वाः कव्य गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः।
श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम्।।

(अथर्ववेद ११।३।५-७)

इन प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि वेदों में पशु हिंसा की बातें निराधार हैं। किन्तु इसी प्रकार अनेक आक्षेप देवताओं पर अश्लीलता के लगाये गये हैं। यद्यपि ये आक्षेप अधिक हैं सभी का संग्रह इस एक अध्याय में सम्भव नहीं है तथापि कुछ अति प्रसिद्ध आक्षेपों का उल्लेख किया जा रहा है जिनका निराकरण वेद मन्त्रों से किया जायगा।

समुद्र मन्थन

वेदों में वरुण से सम्बन्धित अनेक मन्त्र प्राप्त होते हैं। वरुण का अधिकांश वर्णन मित्र देवता के साथ आया है। वरुणदेव जल के स्वामी हैं, जल में रहते हैं, जल बरसाते हैं, जल उनकी माता है, कुछ मन्त्रों में जल वरुण की पत्नी है। जल के समुद्र भी दो हैं। इसका वर्णन पूर्व अध्याय में आ चुका है। एक समुद्र पृथ्वी पर तथा दूसरा समुद्र आकाश में। अथर्ववेद में इन दोनों को वरुण की कोख (दाहिनी एवं बायीं) कहा गया है। मन्त्र में कहा गया है कि यह पृथ्वी राजा वरुण की है आकाश वरुण का है।

यथा –

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरे अन्ता।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः।।

(अथर्ववेद ४।१६।३)

मुख्यतः आकाश को ही समुद्र कहा गया है। ज्योतिष के आधुनिक विद्वान् आकाशगंगा को मिल्की वे अर्थात् दूध का मार्ग कहा है। आकाश ही घृत समुद्र है, मधु समुद्र है, क्षीर (दूध) समुद्र तथा अमृत समुद्र है। ऋग्वेद के पंचम मण्डल में १० सूक्त ६२ से ७२ तक वरुण की गाथा से भरे हैं। इन मन्त्रों से यह सिद्ध हो जाता है कि आकाश ही मुख्य समुद्र है तथा जल ही मधु, घी, दूध, दही, अमृत, मदिरा तथा विष है। पृथ्वी पर दूध या दही का समुद्र कहीं भी नहीं है। आकाश का वर्णश्वेत है। वह ग्रह, नक्षत्रों, ताराओं तथा निहारिकाओं के कारण अत्यधिक श्वेत हो जाता है अतः वह क्षीरसागर है। निरुक्त में जल का निर्वचन करते हुए महर्षि यास्क ने इसके सैकड़ों पर्याय बताये हैं। यथा– दूध, मधु, अमृत, घृत, वन, विष, व्योम, अन्न, सत्य, क्षेम, रस, भेषज, सुख, शुभ, पवित्र, हेम, शम्बर, शुक्र तथा तेज आदि। अतएव आकाश अनेक पदार्थों का समुद्र है उसका ऊपर का नीला भाग भगवान् शंकर की जटा है। आकाश एक कुम्भ सदृश है यही ब्रह्मा का कमण्डलु है, आकाशगंगा यहीं से निकलती है। वेदों में इन्द्र ही भग (ऐश्वर्य) युक्त होने से भगी है तथा मेघ ही उनका रथ है अतः मेघ को भगीरथ कहा गया है। यही (बादल) भगीरथ आकाशगंगा को लेकर आगे-आगे चलता है। बादलों का गर्जन ही भगीरथ का शंखनाद है। समुद्र मन्थन अमृत के लिए हुआ था वेदों में जल को अमृतोपस्तरण, अमृतापिधान, महौषध तथा मधु आदि कहा गया है –

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः।
देवीरापो योवऽऊर्मिः प्रतूर्तिः ककुन्माम् वाजसास्तेनायं वाजसेत्।।

(यजुर्वेद ९।६१)

अर्थात् जलों में अमृत है और जलों में ही आरोग्य तथा पुष्टिदायिनी ओषधियाँ हैं। हे अश्वो, इस प्रकार से अमृत और ओषधि रूप जलों में वेगवान् होकर जलों के प्रशस्त मार्गों में प्रविष्ट होओ–

मधु वाताऽऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।। (यजुर्वेद १३।२७)
आपो ज्योती रसोऽमृतम्। (ऋग्वेद १।५।१)

शतपथ ब्राह्मण में जल को अनेक वार अमृत, शान्ति और अन्नप्रद कहा गया है। यजुर्वेद ने जल को स्पष्टतः क्षीर कहा है।

अद्भ्यः क्षीरं व्यपिवत्। इदं पयोऽमृतं मधु।। (यजुर्वेद १९। ७३)

आकाश इसी अमृत तथा क्षीर का समुद्र है। वेदों में सूर्य को ही विष्णु कहा गया है और वह अपनी श्री और लक्ष्मी नाम्नी दो पत्नियों के साथ इसी में रहता है और अमृत की वर्षा करता है–

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णान्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण।। (यजुर्वेद ३१।२२)

सूर्य की सहस्रों किरणें ही शेषनाग के सहस्र सिर हैं और सूर्य (विष्णु) इन्हीं पर शयन करते हैं। यही विष्णु की शेष शय्या है। पुराणों के अनुसार देवों और दैत्यों ने मिलकर विष्णु की आज्ञा से समुद्र मन्थन किया। इनके पिता एक हैं कश्यप तथा माताएँ दो हैं दिति एवं अदिति। ये कश्यप, दिति तथा अदिति मनुष्य रूप में नहीं हैं। जगत् का पालक, द्रष्टा पश्यक ही कश्यप हैं। निरुक्तकार ने पश्यको एवं कश्यपः कहा है। यह कश्यप सूर्य ही हैं। सूर्य से ही दिन एवं रात्रियाँ हैं। दिन ही देवता है तथा रात्रि ही दैत्य है। दोनों का पिता सूर्य है। दिति उषा से दिन तथा सूर्यास्त गोधूलि से अदिति का बोध होता है। सूर्य की तेजस्वी किरणों से देवता तथा मेघों (बादलों) को शम्बर, नमुचि तथा वृत्रासुर आदि कहा गया है। इन्हीं दोनों के संघर्ष से आकाश रूपी क्षीर–समुद्र का मन्थन होता है। तथा अमृत के रूप में जल की प्राप्ति देवों को होती है असुरों को नहीं।

यममश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्य सुनोदिन्द्रियाय।
इमं तं शुक्रं मधुमन्तमिन्दु सोमं राजानमिह भक्षयामि।।

(यजुर्वेद १९।३४)

उतदासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि।
अवाहन्निन्द्र शम्भरम्।। (ऋग्वेद ४।३०।१४)
नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायां अस्ति वृत्रहन्।
न कि रेवा यथात्वम्।। (ऋग्वेद ४।३०।१)

यजुर्वेद तथा ऋग्वेद के इन मन्त्रों में मेघों को ही असुर, वृत्र, शम्बर और नमुचि कहा गया है। निरुक्तशास्त्र में मेघ के असुर, वृत्र, शम्बर, अद्रि ग्रावा, वराह, सर्प और रैवत आदि तीस नाम आये हैं। पुराणों में समुद्रमन्थन से जो १४ रत्न उत्पन्न हुए हैं वे आकाशरूपी क्षीरसागर से सर्वथा सम्भव हैं। सूर्य की किरणों की शोभा ही लक्ष्मी है। वरुण के द्वारा बरसाया जल ही वारुणी है। आकाश के तारे कौस्तुभ मणि, शंख तथा देवाङ्गनाएँ हैं। जल में जो सरकती हैं वही अप्सरा हैं जल का एक नाम इरा है। इरा से बना मेघ ही ऐरावत हाथी है। उसकी ध्वनि उच्च है अतः वही उच्चैःश्रवा घोड़ा है। मेघ जलरूपी अमृत प्रदान करता है अतः वही कामधेनु और कल्पवृक्ष है। समुद्र मन्थन में विष्णु के मोहिनी रूप का वर्णन है। वेदों में बिजली को ही मोहिनी कहा गया है। समुद्रमन्थन में सर्वप्रथम विष उत्पन्न हुआ वर्षा का न होना, वर्षा के पूर्व की गर्मी रोगोत्पत्ति ही विष है।

अतः यह आक्षेप कि समुद्र मन्थन सर्वथा असत्य है कहना गलत है। वेदों के इसी प्रतीकों को पुराणों में एक आलंकारिक कथा का स्वरूप दिया गया है।

वामन का पादन्यास

दूसरा आक्षेप वामन के तीन पादन्यास को लेकर किया जाता है। भगवान् विष्णु वामन रूप में अवतरित होते हैं तथा बल से तीन पग भूमि की योजना करते हैं, ३ पग में ही पृथ्वी आकाश को नाप लेते हैं पुनः वलि को पाताल भेज देते हैं। यजुर्वेद में कहा गया है –

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। (यजुर्वेद ५।१५)

सूर्य ही विष्णु हैं वे सूर्योदय, मध्याह्न तथा सूर्यास्त रूपी तीन पगों में ही पूरे आकाश को नाप लेते हैं। उस समय अन्धकार रूपी राजा बलि पाताल लोक में चला जाता है। वामनावतार की कथा का बीज इसी में है। ये सूर्य रूपी विष्णु उदय के समय वामन रहते हैं मध्यान्ह में विराट् हो जाते हैं उनके पैर लम्बे हो जाते हैं और मस्तक ऊपर चला जाता है।

चन्द्रमा, तारा का बुध

पौराणिक कथाओं के आधार पर एक अन्य आक्षेप चन्द्रमा पर किया जाता है जिसमें कहा गया है कि चन्द्रमा ने अपने गुरु बृहस्पति की धर्मपत्नी तारा को जबर्दस्ती छीन लिया। जब तारा को चन्द्रमा का पुत्र बुध उत्पन्न हो गया तो ब्रह्मा के कहने से तारा बृहस्पति को तथा बुध चन्द्रमा को दे दिया गया। इस कथा में अश्लीलता तथा धर्म विरुद्धता है जिसका समाज पर बुरा असर पड़ता है। इस प्रसंग में यह कहना है कि यह कथा ज्योतिषीय दृष्टि से आकाशस्थ ग्रह बुध की वैज्ञानिक उत्पत्ति बताती है। रहस्य यह है कि बृहस्पति नामक ग्रह की कक्षा में घूमनेवाला तारा नामक उपग्रह चन्द्रमा के परिभ्रमण से उसकी कक्षा में आ गया जिससे तारागण के आकर्षण-विकर्षण से हलचल हुई। कुछ समय पश्चात् प्रजापति सूर्य (ब्रह्मा) के आकर्षण से लौटकर पुनः वह तारा उपग्रह बृहस्पति की कक्षा में आ गया किन्तु इस आकर्षण विकर्षण से चन्द्रमा का बहुत बड़ा भाग टूटकर उस उपग्रह के समीप चला गया। जो पीछे आकाशस्थ आग्नेय वाष्प के मिश्रण से एक स्वतन्त्र ग्रह बन गया जिसको आजकल बुध कहते हैं। बुध में चन्द्रमा के बहुत–से टूटे हुए भाग रहने के कारण बुध कहते हैं। बुध चन्द्रमा का पुत्र माना जाता है तथा गति में भी बुध का चन्द्रमा के साथ बहुत साम्य है। इसी वैज्ञानिक भाव को रूपकालंकार के द्वारा इस कथा में व्यक्त किया गया है। यही वैज्ञानिक भाव वेदों में प्रकट किया गया है। अथर्ववेद का कहना है–

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छद् हृणीयमानः।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय।।

(अथर्ववेद ५।१७।२)

अर्थात् सोम (चन्द्रमा) प्रथम राजा हुआ जिसने बृहस्पति की धर्मपत्नी को अपने यहाँ कुछ दिन रखकर निर्लज्जतापूर्वक लौटा दिया। पुनः

यमाहुस्तारकैषा विकेशोति दुच्छनां ग्राममवप्नद्यमानाम्।
सा ब्रह्मजाया वि दुनोतिराष्ट्र यंत्र प्रापादि शण उल्कुषीमान्।।

(अथर्ववेद ५।१७।४)

अर्थात् उस स्त्री का नाम तारा है जिसके बड़े-बड़े बाल हैं।

तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नतां जुह्वं न देवः।।

(अथर्ववेद ५।१७।५)

चन्द्रमा द्वारा जबर्दस्ती छीनी गयी अपनी पत्नी को बृहस्पति ने वापस ले लिया।

अहल्या का सतीत्वभंग

कतिपय लोगों का आक्षेप होता है कि इन्द्र ने गौतम ऋषि को धोखा देकर उनकी धर्मपत्नी अहल्या के साथ व्यभिचार किया था। इस बात का पता चलते ही गौतम ऋषि ने इन्द्र को सहस्र भग हो जाने का तथा अहल्या को पत्थर हो जाने का शाप दे दिया था। यह कथा अत्यन्त अश्लील तथा धर्मविरुद्ध है। इस कथा से दुराचारियों को प्रोत्साहन मिलता है।

यह कथा वैदिक साहित्य में वर्णित है। ऋग्वेद में कहा गया है कि इन्द्र माया से अनेक रूप बनाकर चलते हैं।

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते। (ऋग्वेद ६।४७।१८)

शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि इन्द्र अहल्या का जार है।

अहल्यायै जारेति। (शतपथ ब्राह्मण ३।३।४।१८)

कुमारिल भट्ट ने अपने तन्त्रवार्तिक ग्रन्थ में इस कथा का अर्थ सूर्य तथा रात्रिपरक किया है। गौतम की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है।

उत्तमा गावो रश्मयः यस्य सः गोतमः। अर्थात् चन्द्रमा।
अहर्लीयते यस्यां सा अहल्या। अर्थात् रात्रि।

यः एव तपति स एवं इन्द्रः अर्थात् सूर्य ही इन्द्र हैं।

निरुक्तकार यास्क का कथन है कि सूर्य रात्रि को जीर्ण करता है अतः वह जार है।

सुषुम्णः सूर्यरश्मिचन्द्रमा गन्धर्व इत्यपि निगमो भवति सोऽपि। गौरुच्यते। सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यन्ते। (निरुक्त २।२।२)

अर्थात् सूर्य की सुषुम्ना नामक रश्मि चन्द्रमा को रूप सम्पन्न बनाती है। यह वैदिक सिद्धान्त है। इसीलिए इस रश्मि को गौ कहते हैं। अथवा सभी रश्मियों का नाम गो है।

आदित्योऽत्र जार उच्यते रात्रेर्जरयिता। (निरुक्त ३।३।४)

अर्थात् सूर्य ही इन्द्र है, रात्रि ही अहल्या है तथा चन्द्रमा ही गौतम है। रात्रि और चन्द्रमा का स्त्री–पुरुष के समान रूपक है। जैसे स्त्री–पुरुष साथ रहते हैं वैसे ही चन्द्रमा और रात्रि साथ–साथ रहते हैं। चन्द्रमा अत्यन्त शीघ्र गति से चलता है इसलिए भी वह गोतम है। रात्रि का दिन में लय हो जाता है इसीलिए वह अहल्या है। सूर्य रात्रि को जीर्ण कर देता है इसीलिए वह जार है। अतः यह आक्षेप भी निराधार है।

ब्रह्मा और सरस्वती

ब्रह्मा पर आक्षेप किया गया है कि वे कामविवश होकर अपनी पुत्री सरस्वती के साथ व्यभिचार करने के लिए उनके पीछे दौड़े। पिता के इस कार्य को देखकर सरस्वती हिरणी बन गयी तब ब्रह्मा जी हिरण (मृग) बन गये तब रुद्र ने ब्रह्मा का शिरःछेद कर दिया।

इस कथानक का ज्योतिषीय समाधान नक्षत्र प्रकरण के रोहिणी प्रसंग में बताया जा चुका है। रोहिणी नक्षत्र सरस्वती हैं आर्द्रा ही रुद्र हैं तथा मृगशिरा ब्रह्मा का सिर है। किन्तु इसके आधिभौतिक आध्यात्मिक आदि अर्थ हैं। ऋग्वेदादि का कथन है कि–

प्रजापतिः स्वां दुहितरमधिष्कन्। (ऋग्वेद १०।६१।७)

पिता दुहितुः गर्भमाधात्। (अथर्ववेद ९।१०।१२)

प्रजापतिः स्वां दुहिततरमभिदध्यौ। (शतपथ ब्राह्मण १।७।४।११)

कुमारिल भट्ट ने इस प्रसंग का समाधान करते हुए तन्त्रवार्तिक में लिखा है कि–

प्रजापतिस्तावत् प्रजापालनाधिकाराद् आदित्य एवोच्यते। स च अरुणोदय वेलायां उषसमुद्यन्नभ्यैत्। सा तदा गमनादेवोपजायत इति, तददुहितृत्वेन व्यपदिष्यते। तस्यां चारुण किरणाख्य बीजनिक्षेपात् स्त्री-पुरुष योगवदुपचारः। (तन्त्रवार्तिक १।३।७)

संसार का रक्षक, पालक होने के कारण सूर्य ही प्रजापति हैं, वे अरुणोदय के समय उषा के पीछे उदित होते हैं। उषा सूर्य से ही उत्पन्न होती है। अतः वह उनकी पुत्री कही गयी है। उस उषा में सूर्य अपनी लाल किरण रूप बीज डालता है। इसी बात को उपचार मात्र से स्त्री-पुरुष संयोग की भांति कहा गया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में इसी अर्थ को स्वीकार किया है। वे लिखते हैं।

सविता सूर्यः सूर्यलोकः प्रजापति संज्ञकोऽस्ति तस्य दुहिता कन्यावद् द्यौरुषा चास्ति। यस्माद्यदुत्पद्यते तत्तस्यापत्यवत्, स तस्य पितृवदिति रूपकालंकारोक्तिः। स च पिता तां रोहितां किञ्चिद् रक्तगुण प्राप्तां स्वांदुहितरं किरणैऋस्यवच्छीघ्रमभ्यध्यायत् प्राप्नोति। तस्या मुषसि दुहितरि किरणरूपेण वीर्येण सूर्यादिवसस्य पुत्रस्योत्पन्नत्वात्। तयोः पिता दुहित्रोः समागमादुत्कटदीप्तिः।

अर्थात् प्रजापति नामक सूर्य की दो कन्याएँ हैं। एक प्रकाश दूसरी उषा क्योंकि जो जिससे उत्पन्न होता है वह उसकी ही सन्तान कहा जाता है। इसलिए उषा सूर्य की किरणों से उत्पन्न होने के कारण उसकी कन्या कही जाती है। उनमें से उषा के सन्मुख जो प्रथम किरणें पड़ती हैं वे ही वीर्यस्थापना के समान हैं। उन दोनों के समागम में दिन रूप पुत्र उत्पन्न होता है।

यह हुआ आधिभौतिक अर्थ अब आध्यात्मिक अर्थ जो वैदिक मन्त्रों के अनुसार इस प्रकार है-

मन एवं ब्रह्मा। (गोपथपूर्व १०)

प्रजापतिर्वै मनः। (शतपथ ब्राह्मण ४।१।१।२२)

वाग्वै सरस्वती। (कौषीतकी उपनिषद् ५।१)

मनोह वै पूर्वं वाचो यद्धि मनसाभिगच्छति तद्वचा वदति।

(ताण्ड्य ब्राह्मण १।१।१।३)

अर्थात् मन ही प्रजापति या ब्रह्मा है। वाणी का नाम सरस्वती है। प्रथम मन से जो सोचा जाता है वही वाणी से बोला जाता है। इस कथा का तात्पर्य यह है कि मन में जैसा विचार उत्पन्न होता है वही वाणी के रूप से व्यक्त होता है। अतः मन और वाणी का पिता और पुत्री के रूप में वर्णन है। जब मन रूप पिता वाणी रूप पुत्री में प्रेरणा से वीर्याधान करता है तब उससे शब्द रूप पुत्र उत्पन्न होता है।

अतः इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि ब्रह्मा पर जो आक्षेप किया जाता है वह सर्वथा निर्मूल है।

भगवान् कृष्ण की रासलीला

कतिपय लोग भगवान् कृष्ण की रासलीला को लेकर आक्षेप करते हैं कि यदि श्रीकृष्ण जो भगवान् के अवतार हैं शरद् ऋतु की रात्रि में गोपियों के साथ रासलीला करते हैं यह अश्लील तथा धर्म विरुद्ध आचरण है। इसका उत्तर भी वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है जहाँ चन्द्रमा का रासलीला से सम्बन्ध बताया गया है। कृष्ण भी चन्द्र वंश में अवतीर्ण हुए है। चन्द्रमा समुद्र में रहता है।

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं में अस्य रोदसी।।

(ऋग्वेद १।१०५।१)

भगवान् कृष्ण भी समुद्र के मध्य द्वारका बसाकर रहते थे। चन्द्रमा राशि चक्र में रासलीला करता रहता है। वैदिक काल में नक्षत्रों की गणना कृत्तिका से प्रारम्भ की जाती थी, उसके अनुसार विशाखा नक्षत्र सभी नक्षत्रों के मध्य होने से रासेश्वरी है विशाखा का दूसरा नाम राधा भी है। अतएव विशाखा का अगला नक्षत्र अनुराधा है। अनुराधा अर्थात् जो राधा के पीछे आये। विशाखा नक्षत्र पर जिस पूर्णिमा को चन्द्रमा रहता है, उस दिन सूर्य कृत्तिका नक्षत्र पर रहता है। सम्मुख स्थित सूर्य की सुषुम्णा किरणों से विशाखायुक्त चन्द्रमा प्रकाशित होता है। कृत्तिका का सूर्य वृष राशि का है अतएव यह राधा वृषभानु की पुत्री कही जाती हैं। पुनः जब पूर्ण चन्द्रमा राधा के (विशाखा) ठीक सामने कृत्तिका पर आता है तब कार्तिकी पूर्णिमा रास का मुख्य दिन होता है। अतः रासलीला को अश्लील मानना वेदों की अनभिज्ञता का द्योतक है।

अगस्त्य का समुद्र पान एवं विन्ध्याचल को रोकना

कुछ लोग अगस्त्य द्वारा समुद्रपान घटना को अतिशयोक्ति मानकर आक्षेप करते हैं कि वेदों एवं पुराणों में वर्णित यह कथा केवल गल्प मात्र है। इसका समाधान करते हुए व्यंकटेश बापू केतकर ने अपने नक्षत्र विज्ञान नामक ग्रन्थ में लिखा है कि आज से लगभग १५ हजार वर्ष पूर्व अगस्त्य तारा नीलगिरि के केवल दक्षिण दिखायी देता था। भूगर्भशास्त्रीय शोधों से ज्ञात होता है कि उस समय कच्छ, सिन्ध, मारवाड़, वायव्यप्रान्त, बिहार, बंगाल और कोंकण पट्टी तक के प्रान्त समुद्र के नीचे थे और मध्य प्रान्त से नीलगिरि तक एक द्वीप बन गया था। चूँकि इसके उत्तर भी समुद्र था, अतः हिमालय की नदियाँ वहीं सागर में गिरती थी। पौराणिक नाम जम्बूद्वीप से भी यह बात सिद्ध होती है। आगे चलकर समयानुसार ध्रुवस्थान बदलते रहने के कारण विन्ध्य पर्वत पर अगस्त्य तारा दिखायी देने लगा। अगस्त्य क्रमशः ऊपर उठने लगा और लोग कहने

लगे कि उसने विन्ध्य को रोक दिया है। विन्ध्य पर्वत २२ अक्षांश पर है और आज से लगभग ९ हजार वर्ष पूर्व अगस्त्य तारा दक्षिण ध्रुव से २२ अंश दूरी पर था। अगस्त्य सरीखे तेजस्वी तारे का क्षितिज पर अकस्मात् दर्शन होने से जनता को यह एक संस्मरणीय घटना प्रतीत हुई तथा पुराणों ने उसका आलंकारिक वर्णन किया।

भूगर्भीय उलटफेर के कारण उत्तर के समुद्र का तल धीरे-धीरे ऊपर उठने लगा और समुद्र समाप्त हो गया। वहाँ कच्छ आदि देश और नदियाँ दिखायी देने लगीं। इस घटना से अगस्त्य का कुछ भी सम्बन्ध नहीं था परन्तु साथ-ही-साथ आगमन के कारण इसका यश उन्हें दिया गया और अगस्त्य ऋषि ने सारा समुद्र तीन आचमन में पी डाला यह कथा कही जाने लगी। जम्बूद्वीप का द्वीपत्व नष्ट होने के आस-पास वर्तमान आगरा तक समुद्र था। आगे चलकर समुद्र के साथ-साथ यमुना भी धीरे-धीरे पूर्व दिशा में उतरने लगी। स्वतन्त्र रूप से समुद्र में गिरनेवाली गंगा आदि नदियाँ अब यमुना में गिरने लगीं। यह है अगस्त्य नामक तारा के उदय से विन्ध्य पर्वत का बढ़ने से रुकना तथा समुद्र का सूख जाने की कथा। यह अगस्त्य दक्षिण दिशा का एक सुन्दर तेजस्वी तारा है जिसका सम्बन्ध अगस्त्य ऋषि से माना गया है।

इस प्रकार जो भी आक्षेप देवताओं पर किये जाते हैं वे सभी निर्मूल एवं निराधार हैं।

✦✦✦

अध्याय ८

उपसंहार

इस भूतल पर श्रेय या प्रेय जो कुछ भी है वह सब वेद में ही निहित है। वेदों में रहस्यार्थ निहित है। यह प्रायः सभी को ज्ञात है कि कृतधर्मा आद्य ऋषियों ने वेदों का साक्षात्कार किया। सम्प्रति वेदाध्ययन की परम्परा ही क्षीण होती जा रही है। वेद साक्षात् परमात्मा की वाणी हैं इसीलिए अथर्ववेद कहता है कि पश्चदेवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति। (अथर्ववेद १०।८।३२) ऋषियों द्वारा साक्षात्कार की गयी वैदिक ऋचाओं का अध्ययन हमें ज्ञानपूर्वक अर्थपूर्वक करने का निर्देश निरुक्ताचार्य यास्क ने दिया है उनका कथन है कि –

स्थाणुरयं भारवाहः किलाभूत्
अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
यो अर्थज्ञः सकलं भद्रमश्नुते
नाकमेति ज्ञान विधूतपाप्मा।।

बिना अर्थज्ञान के बिना रहस्यबोध किये केवल कण्ठस्थ वेद भारस्वरूप ही हैं। इसीलिए आचार्य यास्क का कथन है कि वेद का अध्ययन गुरुमुख से किया जाय तथा वेद मन्त्रों का अर्थबोध भी होना चाहिए।

इस वैदिक ज्योतिष ग्रन्थ में ज्योतिष सम्बन्धी कतिपय तथ्यों को संक्षेप में उपस्थापित किया गया है। यह विषय अत्यन्त गम्भीर है। इस विषय पर पूर्व में कोई ग्रन्थ अवश्य लिखा गया होगा पर अधिक प्रयास करने पर भी कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं हुआ। कुछ बिखरी सामग्रियाँ अन्यान्य ग्रन्थों में देखने को मिलीं। मैंने यथादृष्ट ग्रन्थों का सार संचयन किया है। आगे भी इस विषय पर अनेक ग्रन्थ लिखे जायेगें क्योंकि ज्ञान का अन्त नहीं है। वेदों में भी अनन्ता वै वेदाः का उद्घोष बारम्बार किया गया है। मुझ जैसा क्षुद्र व्यक्ति ज्ञान का अन्त प्राप्त करने की चेष्टा स्वप्न में भी नहीं कर सकता। जैसे प्रायः सर्वजन अनन्त जल राशि से अपने पीने भर के लिए जल लेकर सन्तुष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार वैदिक साहित्य की अनन्तता में से ज्योतिष शास्त्र का कुछ भाग मैंने जिज्ञासु पाठकों के समक्ष रखने का प्रयास किया है।

इति





जन्म : दिसम्बर 1961

शिक्षा : एम. ए. संस्कृत (प्रथम) इलाहाबाद विश्वविद्यालय
ज्योतिषाचार्य (प्रथम) सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
पी. एच. डी. फिल. (ज्योतिष) इलाहाबाद विश्वविद्यालय

पुरस्कार : भाउराव देवरस सेवान्यास की ओर से पं0 प्रताप नारायण मिश्र युवा साहित्यकार सम्मान।
उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा ज्योतिष तत्त्व विवेक पुरस्कृत।
ज्योतिष महाकुम्भ में प्रयागरत्न सम्मान।

रचनायें : होडा चक्रम्
आचार्य वराह मिहिर, ज्योतिष तत्त्व विवेक
भारतीय कुण्डली विमर्श, ज्योतिष फलितार्णव
लोमश संहिता, मयूर चित्रक (यन्त्रस्थ)

सम्प्रति : अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, ईश्वर शरण डिग्री कालेज, इलाहाबाद।

सम्पर्क सूत्र : 455 वासुकी खुर्द, दारागंज, इलाहाबाद - 211006
दूरभाष नं. 2503472

Printed by : Academy Press, Alld., Ph. : 2500970
Design by : Thought Graphics, Alld. Ph. : 2651309 P.P.